ॐ

जैनहितैषी

मासिक पत्र।

पन्नालाल बाकलीवालद्वारा संपादित व प्रकाशित।

पांचवां भाग	कार्तिक वीर नि० संवत् २४३५।	प्रथम अंक

जरूरत।

हमको गुरुओंकी प्राचीन पट्टावलियोंकी बहुत जरूरत है। जिन भाइयोंके पास ऐसी पट्टावलियां हो, वे यदि कृपा करके उसकी इत्तला हमको देवेंगे, और उसकी नकल कराकर अथवा खास प्रति भेजनेकी कृपा करेंगे तो उनके हम बहुत कृतज्ञ होंगे। लिखाईका खर्च हम देनेको तयार हैं। जो भाई खास प्रति भेजना चाहें, उनके पास हम कुछ रकम डिपाजिटके तौरपर भी जमा करा सकते हैं।

हमको निम्नलिखित ग्रन्थोंकी भी जरूरत है। जो भाई हमारे पास भेजेंगे, उन्हें छप जानेपर छपी पुस्तकें भी भेट की जावेंगी।

१ पांडवपुराण—बुलाकीदासजी कृत कविता.

२ अमितगतिश्रावकाचार मूल शुद्धप्रति.

३ तीस चौवीसीपाठ वृन्दावनजी कृत.

४ भूधरविलास—शुद्धप्रति

५ द्यानतविलास— ,,

६ पदसंग्रह कविवर जयचन्दजी कृत.

७ कथाकोश—पुण्यास्रव तथा आराधनासारके सिवाय कोई दूसरा कथाका ग्रन्थ।

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय—गिरगांव—बम्बई।

कर्नाटक छापखाना, मुंबई.

सबसे [illegible]

जैनहितैषीका यह अंक [illegible] जाता है कि, इसे आप एकवार शुरूसे आखिर तक जी लगाकर पढ़ें और यादि आपको यह कुछ भी अच्छा मालूम पड़े, तो तत्कालही इसके साथ जो जुडे़ कार्ड भेजे हैं, उनमें से एकको फाड़कर अपना नाम ग्राम पोष्ट वगैरह लिखकर एक पैसेका टिकट लगाकर डांकमें डाल देवें, जिससे हम आपका नाम ग्राहकोंके रजिष्टरमें लिख लेवें, और आगामी अंक प्रवचनसारपरमागम ग्रन्थके साथ डेड़ रुपयेक वेल्यूपेविलसे भेज देवें।

कविवर वृन्दावनजीका उक्त प्रवचनसार ग्रन्थ जो हम मुफ्तमें लुटा रहे हैं, बहुत ही उत्तम ग्रन्थ है। जो लोग जैनहितैषीके ग्राहक नहीं है, उन्हें यह ग्रन्थ सवा रुपया (डांकखर्च अलग) में भेजा जाता है। परन्तु डेड़ रुपया देकर जैनहितैषीके ग्राहक बनने वालोंको मुफ्तमें घर बैठे पहुंचा दिया जाता है।

जो लोग इस वर्ष जैनहितैषीके ग्राहक न बनेंगे, वे पछतावेंगे। क्यों कि उपहारके ग्रन्थके सिवाय इस साल जैनहितैषीमें ऐसे उत्तम लेख निकलेंगे, जैसे आजतक किसी भी जैनसमाचारपत्रमें नहीं निकले हैं।

यह नमूनेका अंक १५०० पढ़े लिखे भाइयोंके पास भेजा जाता है, परन्तु आगामी अंक केवल उन्हींके पास भेजा जावेगा, जो वेल्युपेबिल भेजनेकी मंजूरी भेज देवेंगे।

उपहारका ग्रन्थ डेड़ सौ ग्राहकोंके पास भेजा जा चुका है। केवल साढ़े तीन सौ ग्रन्थ और बाकी हैं।

मैनेजर—जैनहितैषी कार्यालय,

गिरगांव—बम्बई।

ॐ

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

पंचम भाग } कार्तिक श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३५। { प्रथम संख्या

कोकिलान्योक्तिपञ्चक।

(मूल संस्कृत श्लोकोंकी छाया)

१

हे कोकिल कर मौन, देख यह कौन समय है।
भूमि हुई कीचड़मय औ हरियालीमय है॥
झिल्लीकी झनकार, बधिर करती चौफेरी।
दादुर वक्ता हुए, सुने ध्वनि अबको तेरी॥

२

इस कंटकमय मरु-करीर-तरुपर, वसि कोकिल भ्राता।
मीठा मीठा रसमय कूजन, किसको बना सुनाता॥
यहां नहीं गुणग्राहक तेरा, कोई है अज्ञानी।
आमोंका वह देश और जहँ, रुचती तेरी बानी॥

३

तुव कोमल कूजनका कोकिल, मरमी यहां न कोई।
इससे चुप हो बैठ कुछ समय, शान्तिउपासक होई॥
सुनकरके ये पामर नर ध्वनि, तेरी मधुर मनोहर।
कहते हैं रे मारो इसको, कू कू कौन रहा कर॥

ॐ

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र ।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

पंचम भाग } कार्तिक श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३५ । { प्रथम संख्या

कोकिलान्योक्तिपञ्चक ।

(मूल संस्कृत श्लोकोंकी छाया)

१

हे कोकिल कर मौन, देख यह कौन समय है ।
भूमि हुई कीचड़मय औ हरियालीमय है ॥
झिल्लीकी झनकार, बधिर करती चौफेरी ।
दादुर वक्ता हुए, सुने ध्वनि अबको तेरी ॥

२

इस कंटकमय मरु-करीर-तरुपर, बसि कोकिल भ्राता ।
मीठी मीठी रसमय कूजन, किसको बना सुनाता ॥
यहां नहीं गुणग्राहक तेरा, कोई है अज्ञानी ।
आमोंका वह देश और जहँ, रुचती तेरी बानी ॥

३

तुव कोमल कूजनका कोकिल, मरमी यहां न कोई ।
इससे चुप हो बैठ कुछ समय, शान्तिउपासक होई ॥
सुनकरके ये पामर नर ध्वनि, तेरी मधुर मनोहर ।
कहते हैं रे मारो इसको, कू कू कौन रहा कर ॥

४

आनँददाई अमराईको, पाकरके पिक ! प्यारे ।
औ आस्वादन कर नव मंजरि, पंचम स्वर न सुना रे ॥
नहिं तो यह सब काकमंडली, व्यर्थ कुपित होवेगी ।
काँव काँव कर सुजन पक्षियों,-को भी बधिर करेगी ॥

५

जाके बैठ किसी कोटरमें, हे कोकिल चुप होकर ।
नहीं सुनाना अब यह प्यारी, प्यारी ध्वनि जनमनहर ॥
काँव काँव करनेवालोंकी, जिसमें उड़त **पताका** ।
समय शिशिर ऋतुका यह भाई, नहिं वसन्त सुखमाका ॥

कोकिलका प्रेमी ।

विद्वद्रत्नमाला ।

प्रस्तावना ।

हमारा प्राचीन इतिहास बड़े ही अंधकारमें पड़ा हुआ है । प्राचीन कालमें हमारे पूर्व पुरुषा कैसे प्रतिभाशाली और कीर्तिशाली हो गये हैं, इसके जाननेके लिये आज हमारी संतानके पास कोई साधन नहीं है । आजतक संसारमें जिन २ जातियोंने उन्नति की है, उन सबने अपने पुरुषाओंके इतिहास पढ़कर की है । अपनी जातिके प्राचीन गौरवका इतिहास पढकर मनुष्यके हृदयमें उसका अभिमान उत्पन्न होता है, और उस अभिमानसे वह अपनी अवस्थाको सुधारनेका प्रयत्न करता है, तथा अपने पुरुषाओंके चरित्रोंका अनुकरण करनेके लिये तत्पर होता है । परन्तु खेद है कि, उन्नतिके इस अपूर्व साधनसे जैनसंतान वंचित हो रही है । उसके हृदयमें अपने धर्मका अभिमान उत्पन्न करनेके लिये इस कमीको बहुत जल्दी पूरी करनेकी जरूरत है ।

जैनियोंके इतिहासके मुख्य दो भाग हैं, एक तो श्रीवृषभदेव भगवानसे लेकर अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीर भगवानके निर्वाणतक और दूसरा निर्वाणके पश्चात् वर्तमान समयतक । इसमेंसे पहिला भाग तो हमारे प्राचीन पुराण ग्रन्थोंमें अच्छी तरहसे सुरक्षित है, परन्तु दूसरा भाग बिलकुल अंधेरेमें है । इसी भागको शृंखलाबद्ध करके लिखनेकी आवश्यकता है । इस दूसरे भागमें महावीर भगवा-

नके निर्वाणके अनन्तर जैनियोंमें कितने राजा हुए हैं, किन २ देशोंमें जैनधर्म फैला है, किन २ कारणोंसे इसकी अवनति हुई है, किन २ भाषाओंमें जैनधर्मके ग्रंथ लिखे गये हैं, कौन २ साम्प्रदायिक भेद उपभेद हुए हैं, किस समयमें जैनसाहित्यकी उन्नति हुई है और किस समयमें अवनति हुई है, आदि सब बातें समावेशित होनी चाहिये। इसका सम्पादन करना अनेक भाषाओंके जाननेवाले बहुत बड़े विद्वानोंका कार्य है। उसके लिये साधनोंकी भी बहुत आवश्यकता है। इसलिये उसके विषयकी चर्चा करना हमारे लिये "छोटी मुंह बड़ी बात" होगी। परन्तु इस भागके अन्तर्गत जो विद्वानोंका, ग्रन्थकर्त्ताओंका, तथा आचार्योंका इतिहास है, ग्रन्थोंका स्वाध्याय करते रहनेसे उसका थोडा बहुत परिचय हमको होता रहता है, तथा परिश्रम करनेसे उसके थोड़े बहुत साधन भी यहां वहां मिल जाते हैं, इसलिये हमने इस लेखमें इसी भागको यत्किंचित् प्रकाश करनेका मानस किया है।

जैनियोंको जैसे इतिहासकी आवश्यकता है, उसकी पूर्ति अभी नहीं होगी। धीरे २ समय पाकर होगी। अभी तो हमारे यहां इस विषयकी चर्चा भी नहीं है। दश वीस वर्षमें जब हमारे यहां इस विषयकी ओर पूर्ण अभिरुचि हो जावेगी, विद्वान लोग ऐसे २ सैकड़ों जुदे २ विषयोंपर फुटकर लेख प्रकाशित कर चुकेंगे, लुप्तप्राय ग्रन्थ प्रकाशित होगें, उनका पठन पाठन होने लगेगा, तब कहीं किसी अच्छे विद्वानके द्वारा इसका संग्रह हो सकेगा। परंतु इस विषयकी ओर समाजको अभीसे ध्यान देना चाहिये। श्रीजीकी कृपासे अभी हमारे यहांके प्राचीन भंडारोमें इतिहासके हजारों साधन मौजूद हैं। उन्हें हमें सुरक्षित रखना चाहिये और उन्हें शनैः २ प्रकाशित करते रहना चाहिये, नहीं तो पीछे बहुत पछताना पड़ेगा।

हम अपने इस लेखमें एक २ दो २ आचार्योंका थोडा २ वृत्तांत प्रकाशित करेंगे, परंतु वह समयके अथवा संवादिके क्रमसे नहीं होगा। जिन २ आचार्यों तथा विद्वानोंके विषयमें परिचय मिलता जावेगा, सुभीतेके अनुसार उन्हींके विषयमें लिखा जाया करेगा। सबसे पहले हम माथुरसंघाग्रणी श्रीअमितगतिसूरि विषयमें लिखना चाहते हैं;—

(१) श्रीमदमितगति यतिपति।

कविकुलकमलदिवाकर महाराजाधिराज **भोज**के समयमें संस्कृत विद्याकी

जैसी उन्नति हुई थी, उसके पीछे आजतक वैसी उन्नति नहीं हुई। संस्कृत साहित्यके नामी २ कवि और ग्रन्थकार उसी समयमें हुए हैं। भोजदेवके चाचा महाराजाधिराज **मुंज**[1] भी कवि और विद्वानोंकी कदर करनेवाले थे। यद्यपि भोजके समान इस विषयमें उनकी विशेष ख्याति नहीं है, तौ भी वे सरस्वतीके आलम्बन समझे जाते थे। संस्कृतकी मुरझाई हुई लताको उन्होंनें चैतन्य किया था और फिर महाराज भोजने उसका भली भांति रक्षण पोषण किया था। महाराज मुंजकी मृत्युके पश्चात् कहा गया था,—

लक्ष्मीर्यास्यति गोविन्दे वीरश्रीर्वीरवेश्मनि।
गते मुञ्जे यशःपुञ्जे निरालम्बा सरस्वती।

अर्थात् "यशपुंज महाराज मुंजकी मृत्युके पश्चात् लक्ष्मी तो गोविन्दके चली जायगी और वीर लक्ष्मी वीरोंको महलोंमें चली जावेगी; परंतु बेचारी सरस्वतीका कोई नहीं है। वह निराश्रिता हो जावेगी!" इस उक्तिके पढनेसे मुंजकी गुणग्राहकताके विषयमें कोई सन्देह नहीं रहता है।

जिस प्रकार भोजकी सभामें **कालिदास, अमरसिंह** आदि नव रत्न थे, सुनते हैं, उसी प्रकार मुंजकी सभामें भी अनेक कविरत्न थे। तिलक-मंजरीके कर्त्ता **धनपाल,** दशरूपकके कर्त्ता **धनिक,** पिंगलसूत्रवृत्तिके प्रणेता **हलायुध, पद्मगुप्त** कवि और हमारे इस लेखके नायक महात्मा **अमितगति** इन्हीं महाराजके राज्यकालमें हुए हैं। पुण्यात्मा राजाके राज्यमें ही ऐसे विद्वान अवतार लेते हैं।

महाराज मुंजका एक दानपत्र विक्रम संवत् १०३६ का प्राप्त हुआ है, जिस-पर उनके हाथकी सही है और जिसे उनके प्रधान मंत्री **रुद्रादित्य**ने लिखा था। और विक्रम संवत् १०७८ में तैलंग देशके राजा **तैलिपदेवके** द्वारा उनकी मृत्यु हुई थी। तथा उनकी मृत्युके पश्चात् भोजमहाराजका राज्याभि-षेक हुआ था। यथा:—

---

१ मुंजके **वाक्पतिराज** और **अमोघवर्ष** ये दो नाम भी प्रसिद्ध हैं। प्रश्नोत्तररत्नमालिकाके कर्त्ता तथा **भगवज्जिनसेनके** शिष्य महाराजा **अमोघवर्ष** इनसे भिन्न हैं। वे दक्षिणस्थ **वनवास** देशके राजा थे। उनका राज्यकाल शक संवत् ७३७ से ८०० तक माना जाता है।

विक्रमाद्वासरादष्टमुनिव्योमेन्दु (१०७८) संमिते।
वर्षे मुञ्जपदे भोजभूपः पट्टे निवेशितः।

मुंजका राज्याभिषेक कब हुआ था, इसका ठीक २ पता नहीं लगता है, परन्तु संवत् १०३६ के कुछ वर्ष पहलेसे १०७८ तक वे मालवदेशके राजा रहे हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है[1]। महात्मा **अमितगति** भी उक्त समयमें वर्तमान थे। वर्तमानमें उनके जो तीन ग्रन्थ मिलते हैं, उनमेंसे **धर्मपरीक्षा** विक्रम संवत् १०७० में रची गई थी और दूसरा **सुभाषितरत्नसंदोह** १०५० में बनाया गया था। यथाः—

[2]समारूढे पूतत्रिदशवसतिं विक्रमनृपे
सहस्रे वर्षाणां प्रभवति हि पञ्चाशदधिके।
समाप्तं पञ्चम्यामवति धरिणीं मुञ्जनृपतौ
सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम्॥

(सुभाषित)

[3]संवत्सराणां विगते सहस्रे ससप्ततौ विक्रमपार्थिवस्य।
इदं निषिध्यान्यमतं समाप्तं जिनेन्द्रधर्मामितयुक्तिशास्त्रम्॥

(धर्मपरीक्षा)

संवत् १०५० और १०७० के पहले और पीछेका हमको यद्यपि कुछ वृत्तान्त मालूम नहीं है और न वर्तमानमें उसके जाननेका कोई साधन है, परन्तु अनुमानसे यह कहनेमें कुछ हानि नहीं है कि, विक्रमसंवत् १०२५ के कुछ पहले श्रीअमितगतिसूरिका जन्म हुआ होगा। क्योंकि सुभाषितरत्न-संदोह जिस समय उन्होंने बनाया है, उस समय उनकी गणना श्रेष्ठ आचरणके धारण करनेवाले मुनियोंमें हो चुकी थी। उन्होंने स्वयं भी सुभाषितके अन्तमें

---

१ श्रीमेरुतुंगाचार्यने प्रबन्धचिन्तामणिमें मुंजकी विस्तृत कथा लिखी है। समयानुसार उसे प्रकाश करनेका विचार है। उक्त कथाका पूर्व भाग विनोदीलालकृत भक्तामरचरित्रमें भी लिखा है।

२ पौष सुदी ५ विक्रम संवत् १०५० में मुंजराजकी पृथ्वीपर इस पवित्र शास्त्रकी रचना समाप्त की। ३ विक्रमराजाके १०७० संवत्में यह जिनधर्मकी अमित युक्तियोंबाला और अन्य मताकों निषेध करनेवाला ग्रन्थ समाप्त हुआ।

अपने लिये **शमदमयममूर्तिः चन्द्रशुभ्रोरुकीर्तिः** आदि विशेषण दिये हैं। अर्थात् उस समय उनकी अवस्था खूब प्रौढ़ होगी और दीक्षा लिये हुए बहुत कम हुए होगें; तो चार छह वर्ष जरूर हो चुके होंगे। इसके सिवाय यह भी अनुमान होता है कि उन्होनें बालकपनमें ही दिक्षा नहीं ले ली होगी, किन्तु कुछ काल गृहस्थाश्रमका अनुभव करके और फिर उससे विरक्ति लाभ करके ली होगी। धर्मपरीक्षाकी रचनामें उन्होंने जिस प्रकारकी व्यवहारकुशलता दिखलाई है, और सांसारिक घटनाओंके जैसे उत्तम चित्र खींचे हैं, उन्हें ध्यानस्थ करनेसे यह अच्छी तरहसे विश्वास हो जाता है कि, उन्होंने पहले संसारका भलि भांति अनुभव कर लिया होगा। इस तरहसे सुभाषितकी रचनाके समय उनकी अवस्था बहुत कम होगी, तो २५–३० वर्षकी होगी अर्थात् उनका जन्म विक्रमसंवत् १०२५ के लगभग हुआ होगा। महाराजमुंज उस समय या तो राज्यारूढ़ होगे, अथवा युवराज होंगे। धर्मपरीक्षा बना चुकनेके पश्चात्, आचार्य महाराजने संसारका और कब तक हितसाधन किया, यह उनके अन्यग्रन्थोंसे अथवा उनकी शिष्यपरम्पराके ग्रन्थोंसे जाना जा सकता है। परन्तु खेद है कि, इस समय हमारे पास उक्त दोनोंही साधन नहीं है। धर्मपरीक्षा और सुभाषितके सिवाय **श्रावकाचार** नामका एक ग्रन्थ और भी प्राप्त है, परंतु उसमें समयका उल्लेख बिलकुल नहीं है। नहीं कह सकते हैं कि, वह उक्त दो ग्रन्थोंसे पहलेका बना हुआ है, अथवा पीछेका। **शेठहीराचंद**जीने रत्नकरंडश्रावकाचारकी भूमिकामें उसके बननेका समय वि० संवत् १०५० लिखा है, परंतु वह अनुमानसे लिखा हुआ जान पड़ता है। उसे ग्रन्थ बननेका समय नहीं, किन्तु आचार्यके विद्यमान होनेका समय समझना चाहिये। शेठजीका भी शायद उसके लिखनेमें यही अभिप्राय होगा।

आचार्यवर्य अमितगति बडे भारी विद्वान् और कवि थे। उनकी असाधारण विद्वत्ताका परिचय पानेके लिये उनके ग्रन्थोंका भलीभांति मनन करना चाहिये। उनकी रचना सरल और सुखसाध्य होनेपर भी बडी गंभीर और मधुर है। संस्कृत भाषापर उनका अच्छा अधिकार था। उन्होंने अपने धर्मपरीक्षा नामके ग्रन्थको जिसे वांचकर लोग मुग्ध हो जाते हैं, और विधर्मियोंका लज्जासे सिर नीचा हो जाता है, केवल दो महीनेमें रचके तयार किया था। यथाः—

अमितगतिरिवेदं स्वस्यमासद्वयेन
प्रथितविशदकीर्तिः काव्यमुद्भूतदोषम्।

धर्मपरीक्षामें कुल श्लोक १९४५ हैं। इतने बडे उत्तम ग्रथको दो महीनेमें रच डालना, पाठक सोच सकते हैं, कि कितने विलक्षण पांडित्यका काम है।

संस्कृत साहित्यमें धर्मपरीक्षा अपने ढंगका एक विलक्षण ही ग्रन्थ है। दूसरे धर्मोंका एक मनोरंजक कथामें हास्य विनोदके साथ खंडन करनेवाला और अपने धर्मका मंडन करनेवाला शायद ही कोई ग्रन्थ इस श्रेणीका हो। इसके पढ़नेसे यह भी मालूम होता है कि अन्यमतके रामायण महाभारतादि ग्रन्थोंका भी उन्हें पूर्ण परिचय था। क्योंकि उक्त ग्रन्थोंके असंबंद्ध लेखोंकी ही इसमें परीक्षा की गई है। वर्तमानके उपन्यास ग्रन्थोंके पढनेमें जैसा चित्त लगता है, और फिर छोडनेको जी नहीं चाहता है, ठीक वही दशा इस ग्रन्थको हाथमें लेनेसे होती है। अन्तर केवल इतना है कि, उपन्यासोंसे थोडे समयके लिये मनोरंजन मात्र होता है, और इसके पढनेसे धर्ममें दृढता होनेके सिवाय बहुज्ञता प्राप्त होती है। अर्थान्तर न्यासोंकी और नीतिके खंड-श्लोकोंकी इस ग्रन्थमें इतनी अधिकता है कि, यदि कोई उनको अलग चुनकर प्रकाशित करै, तो एक उत्तम पोथी बन सकती है, जिसे धर्मी विधर्मी सबही विद्वान आदर पूर्वक ग्रहण कर सकते हैं। यदि अवकाश मिला, तो हम अपने पाठकोंको किसी अंकमें धर्मपरीक्षाके सुभाषितरत्नखंड भेंट करनेका प्रयत्न करेंगे।

धर्मपरीक्षा ग्रन्थ कैसा है, इसके लिये हम अधिक कुछ न लिखकर अपने पाठकोंसे उसके एक वार स्वाध्याय करनेका आग्रह करते हैं। यदि श्रीअमित गति महाराजने केवल धर्मपरीक्षा ही रची होती, अन्य ग्रन्थ न रचे होते, तो यही एक उनके विलक्षण पांडित्यको प्रगट करनेके लिये बस थी।

धर्मपरीक्षा[1] के अतिरिक्त अमितगतिके बनाये हुए निम्नलिखित ग्रन्थोंका और भी उल्लेख मिलता है।

१ **सुभाषितरत्नसंदोह।**	५ **जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति।**
२ **श्रावकाचार।**	६ **चन्द्रप्रज्ञप्ति।**
३ **भावनाद्वात्रिंशति।**	७ **सार्द्धद्वयद्वीपप्रज्ञप्ति।**
४ **पंचसंग्रह** (गोमठसार सदृश)	८ **व्याख्याप्रज्ञप्ति।**

---

१ **धर्मपरीक्षा** मूल और भाषासहित भी छप चुकी है। इसकी दो तीन भाषाटीकायें और भी हैं, जो अभीतक प्रकाश नहीं हुई हैं।

इनमेंसे धर्मपरीक्षा और सुभाषितरत्नसंदोह ये दो ग्रन्थ तो छपकर प्रकाशित हो चुके हैं, और तीसरा श्रावकाचार अनेक स्थानोंमें मिलता है। परन्तु शेषके ६ ग्रन्थ अभीतक कहीं प्राप्त नहीं हुए हैं। इन ग्रन्थोंके नाम देखनेसे यह भी विदित होता है कि, अमितगति महाराज प्रथमानुयोग चरणानुयोगके समान करणानुयोग और द्रव्यानुयोगके भी असाधारण पंडित थे। प्रज्ञप्ति ग्रन्थोंमें भूगोलका विषय होगा और पंचसंग्रहमें गोमठसारका।

अमितगतिका दूसरा उपलब्ध ग्रन्थ सुभाषितरत्नसंदोह है। इसमें सांसारिक-विषयनिराकरण, मायाहंकारनिराकरण, इन्द्रियनिग्रहोपदेश, स्त्रीगुणदोष-विचार, देवनिरूपण आदि बत्तीस प्रकरण हैं और प्रत्येक विषयके बीस २ पच्चीस २ सुभाषितश्लोक हैं। सरल संस्कृतमें प्रत्येक विषयका बडी सुन्दरतासे निरूपण किया गया है। यह सबका सब ग्रन्थ कंठ करनेलायक है। ग्रन्थके अन्तमें ११७ श्लोकोंमें श्रावकधर्मनिरूपण नामका प्रकरण बहुत ही अच्छा है। यदि वह हिन्दी टीकासहित पृथक् प्रकाशित किया जावे, तो एक छोटासा श्रावकाचार[३] बन सकता है। और श्राव-कधर्मका संक्षेपमें परिचय चाहनेवालोंको उपयोगी हो सकता है। यहांपर सुभाषितके दश बीस चुने हुए श्लोक उद्धृत करनेकी इच्छा थी, परन्तु स्थाना-भावसे इस विचारको छोड़ना पड़ा। कुछ दिन पहले हमने इसके **शौचनिरूपण** आदि दो तीन प्रकरण **जैनमित्र**में प्रकाशित किये थे। हो सका, तो आगे भी कभी उन्हें सानुवाद प्रगट करेंगे।

तीसरा ग्रन्थ श्रावकाचार इस समय हमारे समक्ष उपस्थित नहीं है, परन्तु उसका विषय बतलानेकी पाठकोंको अवश्यकता नहीं है। १३५२ श्लोकोंमें बहुत उत्तमताके साथ श्रावकाचारका स्वरूप बतलाया गया है।

---

१ सुभाषितरत्नसंदोह **निर्णयसागर**की काव्यमालामें छप चुका है। इसकी संघी पन्नालालजीकी बनाई हुई एक भाषाटीका भी है, जो जयपुरमें हस्तलिखित मिल सकती है। २ अमितगतिश्रावकाचारकी पंडितवर्य **भागचन्द्र**कृत भाषाटीका अभीतक छपी नहीं है। बहुत उत्तम ग्रन्थ है।

३ धर्मपरीक्षाके पिछले दो परिच्छेदोंमें भी श्रावकाचारका विषय बहुत उत्तमताके साथ कहा है। उसके २०० के करीब अनुष्टुप् श्लोक हैं।

प्रचलित श्रावकाचारोंसें यह बहुत बडा है, इसलिये इसमें प्रायः सबही विषयोंका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। इसके छपनेकी बहुत जरूरत है।

ये तीन ग्रन्थ ही आज श्रीअमितगतिके यशको संसारमें विस्तृतकर रहे हैं। शेष ग्रन्थ हम लोगोंकी मूर्खतासे कहींके सरस्वती भंडारमें पड़े पड़े सड़ रहे होंगे। न जाने उनके उद्धारकी जैनियोंको कब चिन्ता होगी।

ऊपर कहा जा चुका है कि, अमितगति महाराज मुंजराजके समयमें हुए हैं और उन्हींके राज्यमें संभवतः **उज्जयनीमें**[1] उन्होंनें सुभाषितरत्नसंदोहकी रचना की थी। परन्तु शेष ग्रन्थ भी उन्होंने उसी राज्य में बनाये ऐसा कहा नहीं जा सकता है। क्योंकि एक तो शेष ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंमें स्थानोंका उल्लेख नहीं है और दूसरे मुनियोंकी वृत्तिसे यह बात निश्चित है कि वे अपने संघके साथ विहार करते रहते हैं किसी एक स्थानमें चौमासेके अतिरिक्त और कभी नहीं रहते हैं। शेष ग्रन्थोंमें उन्होंने राज्यका भी उल्लेख नहीं किया है। जिससे यह भी अनुमान होता है कि वे मालवामें न रहकर किसी दूसरेही देशमें विहार कर गये होंगे।

यशस्तिलकचम्पू ग्रन्थकी रचना विक्रमसंवत १०१६ (शक संवत ८८१) में हुई है, और उसके पीछे भी महाकवि **श्रीसोमदेवसूरिने** नीतिवाक्यामृत[2], षण्णवतिप्रकरण, युक्तिचिन्तामणि आदि बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना की है, जिससे मालूम पड़ता है कि, वे अमितगतिके समसामयिक अथवा कुछ ही समय पहलेके विद्वान थे। ऐसा नहीं हो सकता है कि, ऐसे धुरंधर विद्वानोंका एक दूसरेसे परिचय न होगा, अथवा दूसरेने पहलेकी कीर्ति न सुनी होगी। परन्तु खेद है कि अपने किसी भी ग्रन्थमें अमितगतिने सोमदेवसूरिका उल्लेख नहीं किया है। इतना ही क्यों अमितगतिसे कुछ ही समय पीछे **ज्ञानार्णव** (योगशास्त्र) के कर्त्ता **श्रीशुभचन्द्राचार्य** और कुछ ही समय पहले **भगवज्जिनसेन** तथा **गुणभद्रसूरि** जैसे विद्वान

---

१ बहुत लोगोंका ख्याल है कि **मुंजकी** राजधानी **धारा** नगरी थी। परन्तु यह केवल भ्रम है। मुंजकी राजधानी उज्जैनमें थी और भोजकी धारामें।

२ **नीतिवाक्यामृत** मूल सटिप्पण बम्बईमें छपा हुआ है। बडोदा नरेशने इस अपूर्व ग्रन्थके गुजराती और मराठी अनुवाद भी छपाकर प्रकाश किये हैं।

हो गये हैं, परन्तु किसीने भी एक दूसरेका उल्लेख नहीं किया है। पाठकोंको मालूम होगा कि, शुभचन्द्राचार्य धाराधीश **भोज**के समयमें हुए हैं, जो कि वि० सं० १०७८ में राज्यके अधिकारी हुए थे, तथा भगवद्गुणभद्र-सूरिने **उत्तरपुराण**[1] वि० संवत् ९५५ में पूर्ण किया था। पूर्वके विद्वानोंके ग्रन्थोंमें परस्परका उल्लेख न रहनेका कारण एक तो यह प्रतीत होता है कि, देशभेदके कारण उनका साक्षात प्राय: बहुत कम होता था, दूसरे उनकी कीर्तिके कारणभूत ग्रन्थोंका प्रचार दूर देशोंमें तत्काल न हो सकनेसे वे अपनी जीवितावस्थामें प्रसिद्ध भी नहीं हो पाते थे। इसके सिवाय ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंमें वे अपना और अपनी थोड़ी सी गुरुपरम्पराका परिचय मात्र देना बस समझते थे। आजकलके पुस्तक बनानेवालोंके समान आडम्बर बनाना उन्हें नहीं आता था। कीर्तिकी उन्हें आकांक्षा भी नहीं थी। हमारे यहां ऐसे सैकड़ों बडे २ गन्थ हैं, जिनके कर्त्ताओंका कुछ भी पता नहीं है।

श्रीअमितगति मुनिका गृहस्थावस्थाका क्या नाम था, वे किस कुलमें तथा किस नगरमें उत्पन्न हुए थे, इन बातोंका कुछ भी पता नहीं लगता है, परंतु उनके ग्रन्थोंसे उनके मुनिकुलका भली भांति परिचय मिल जाता है, यह एक संतोषकी बात है। अपने तीनोंही ग्रन्थोंमें उन्होंने अपनी गुरुपरम्पराका उल्लेख किया है। जिसमेंसे यहां हम धर्मपरीक्षाकी प्रशस्तिके कुछ श्लोक उद्धृत करते हैं,—

सिद्धान्तपाथोनिधिपारगामी
श्रीवीरसेनोऽजनि सूरिवर्य्यः।
श्रीमाथुराणां यमिनां वरिष्ठः
कषायविध्वंसविधौ पटिष्ठः॥ १॥
ध्वस्ताशेषध्वान्तवृत्तिर्महस्वी
तस्मात्सूरिर्देवसेनोऽजनिष्टः।
लोकोद्योती पूर्वशैलादिवार्कः
शिष्टाभीष्टः स्थेयसोऽपास्तदोषः॥ २॥
भासिताखिलपदार्थसमूहो
निर्मलोऽमितगतिर्गणनाथः।

---

१ **उत्तरपुराण** बननेके कुछ ही वर्ष पहले **भगवज्जिनसेन** विद्यमान थे।

वासरो-दिनमणेरिव तस्मा—
  ज्जायतेस्म कमलाकरबोधी ॥ ३ ॥
नेमिषेणगणनायकस्ततः
  पावनं वृषमधिष्ठितो विभुः ।
पार्वतीपतिरिवास्तमन्मथो
  योगगोपनपरो गणार्चितः ॥ ४ ॥

कोपनिवारी शमदमधारी माधवसेनः प्रणतरसेनः।
सोऽभवदस्माद्गलितमदोस्मा यो यतिसारः प्रशमितसारः॥
धर्मपरीक्षामकृत वरेण्यां धर्मपरीक्षामखिलशरण्याम्
शिष्टवरिष्ठोऽमितगतिनामा तस्य पटिष्ठोऽनघगतिधामा ।

इसका सारांश यह है कि, **माथुरसंघके** मुनियोंमें **श्रीवीरसेन** नामके एक श्रेष्ठ आचार्य हुए । और उनके शिष्योंमें क्रमसे **देवसेन, अमितगति** (प्रथम) **नेमिषेण,** और **माधवसेन** नामके मुनि हुए । अमितगति इन्हीं माधवसेनके शिष्य थे ।

अमितगतिने अपने जिन पूर्व गुरुओंका उल्लेख किया है, उनमेंसे जहांतक हम जानते हैं, किसीका भी कोई ग्रन्थ अभीतक प्रसिद्धिमें नहीं है, और न कहींकी रिपोर्टोंमें उनका कोई पता लगता है ।

जिस **माथुर** संघमें अमितगतिका अवतार हुआ था, अभीतक हम उससे बहुत कम परिचित हैं । हमारे **मूलसंघके**[1] जो **नंदि, सिंह, सेन** और **देव**[2] ये चार भेद हैं, उनमें माथुरसंघ नहीं है । तब क्या यह इनसे पृथक् कोई पांचवां संघ है, अथवा इन्हींमेंसे किसी एकका नामान्तर है? यह एक प्रश्न उपस्थित होता है ।

---

१ मूल संघमें जो अनेक भेद हैं, उनमें शास्त्रविषयक तथा आचार विषयक किसी प्रकारका मतभेद नहीं हैं । केवल संघव्यवस्थाके लिये इनकी स्थापना हुई थी ।

२ कहीं २ देवसंघ नहीं कहकर वृषभसंघ कहा है । जान पड़ता है, यह देव संघकाही नामान्तर होगा । **श्रीइन्द्रनन्दिकृत** श्रुतावतार ग्रन्थमें **नंदि, वीर, अपराजित, देव, सेन, भद्र, गुणधर, गुप्त, सिंह,** और **चन्द्र** इन दश संघोंका उल्लेख है ।

इस संघके **माधवसेन, नेमिषेणादि** आचार्योंके नामसे तो अनेक लोग ऐसा कहते हैं कि, यह **सेन** संघका ही नामान्तर है । क्योंकि **माथुर** शब्दका अर्थ सामान्यत: ' मथुरामें उत्पन्न होनेवाला' अथवा ' मथुरावाला ' ऐसा होता है । क्या आश्चर्य है, जो सेन संघके मुनि विशेषतासे **मथुरामें** रहते हों, और इसलिये पीछेसे **माथुर** कहलाने लगे हों । अथवा **द्रावडीय** संघका नामान्तर भी इसे मान सकते हैं । क्योंकि **द्रविड** देशमें–जिसके कारण यह द्रावडीय नाम पड़ा है, **मथुरा**(दक्षिण) एक बडा भारी नगर था । इसलिये इस प्रधान नगरके नामसे **द्रावडीयका** नामान्तर **माथुरसंघ** भी हो जाना कुछ असंभव नहीं है । इसके सिवाय बम्बईके तेरहपंथी मंदिरकी एक पोथीमें जिसमें कि आचार्यों तथा उनके ग्रन्थोंकी नामावली है, अमितगतिको काष्ठासंघी लिखा है; जिससे माथुरसंघ काष्ठासंघका ही भेद जान पड़ता है । परन्तु द्रावडीय और काष्ठासंघकी गणना पांच जैनाभासोंमें है । इसलिये अमितगतिको जैनाभास कहनेका साहस नहीं होता है । क्योंकि उनके उपलब्ध ग्रन्थोंसे यह सिद्ध करना असंभव जान पड़ता है कि, वे जैनाभास थे । उनके ग्रन्थोंमें देवका, गुरुका, शास्त्रका, जीवादि तत्त्वोंका, श्रावकाचारका और यत्याचारका सबका ही स्वरूप कहा है । परन्तु हमारी आम्नायसे इन विषयोंमें कहीं रंचमात्र भी विरोध नहीं आता है । यही कारण है कि, उनके ग्रन्थोंकी पंडित भागचन्दजी जैसे मान्य विद्वानोंने भाषाटीकायें करके प्रचलित की हैं ।

इस विषयमें अनेक भाई यह शंका करेंगे कि, काष्ठासंघमें भी तो हमारे सिद्धांतोंसे कुछ प्रतिकूल नहीं कहा है । काष्ठासंघके **पद्मपुराणको**[1] हम प्रतिदिन बांचते है, परंतु उसकी गणना भी जैनभासोमें है, इसी तरहसे माथुरसंघ भी होगा । परंतु हम इस बातपर विश्वास नहीं कर सकते हैं कि, **काष्ठासंघ** और **मूलसंघमें** कुछ विशेष भेद नहीं होगा । केवल काष्ठकी प्रतिमा पूजनेसे काष्ठासंघ कहलाने लगा, ऐसा जो लोग मानते हैं, वे लोग भूलते हैं । क्योंकि इसमें कोई भेदका कारण ही नहीं है । काष्ठकी प्रतिमा पूजनेका मूलसंघवाले कब निषेध करते हैं ? ऐसी छोटी २ वातोंसे किसीमें भी जैनाभासपनेका अरोपण नहीं किया जा सकता है । यह हो सकता है कि, काष्ठासंघमें किसी पदार्थका निरूपण मूलसंघसे विरुद्ध हो और पद्मपुराणसे जो कि एक कथाका ग्रन्थ है, इस विरोधका पता नहीं लग सकै । परंतु इसके लिये प्रमाणकी आवश्यकता है ।

---

१ **पद्मपुराणके** समान **हरिवंश** पुराणको भी बहुत लोग काष्ठासंघी

यहांपर यह बात स्मरण रखने योग्य है कि, संघभेद तथा सम्प्रदायक भेद विना किसी तत्त्वकी मान्यतामें अन्तर पड़े नहीं होते हैं। प्रत्येक धर्ममें हमेशासे शिथिलाचारी होते आये हैं, परन्तु उन शिथिलाचारियोंने अपनी शिथिलताको जब तक विधिका रूप नहीं दिया, तब तक कोई भी भेद नहीं हुआ है। जिस प्रकार **श्वेताम्बरी** साधु वस्त्रादि परिग्रह रखते हैं, उसी प्रकारसे हमारे सम्प्रदायके **भट्टारक**गण भी परिग्रहके स्वामी हो गये हैं। परन्तु जिस प्रकार श्वेतांबर हमसे एक पृथक् सम्प्रदाय हो गया है, उस प्रकारसे भट्टारकोंका कोई सम्प्रदाय नहीं हुआ है। कारण श्वेताम्बरियोंने अपनी शिथिलताको तत्त्वका तथा शासनका स्वरूप दे दिया है। उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें निरूपण कर दिया है कि, परिग्रहका धारण करनेवाला साधु भी मोक्षका अधिकारी है। परन्तु भट्टारकों-ने अभी तक यह बात नहीं की है। वे कितने ही शिथिलाचारी क्यों न हो गये हों, परन्तु उन्होंनें अभी तक अपने शिथिलाचारकी प्रशंसा नहीं की है, और न उसे ऐसा तत्त्वका स्वरूप दे दिया है कि, हाथी घोडा पालकी रखनेवाले भी मुनिपदसे च्युत नहीं है। इस लिये यदि माथुरसंघ और कष्ठासंघ यथार्थमें एक स्वतंत्र संघ है, तो उनमें इसी प्रकारका कोई निरूपण होगा।

ज्ञानसूर्योदय नाटककी भाषावचनिका करनेवाले पंडित **पार्श्वदास-जी**ने एक जगह पांच जैनभासोंके नाम लिखे हैं, उनमें **श्वेताम्बर, काष्ठा-संघ, द्रावडिया, निःपिच्छि** और **यापनीयक** ये पांच संघ हैं। इनक सिवाय उन्होंने केशर लगानेवालोंको, क्षेत्रपालादिकी मंदिरमें स्थापना पूजा करने-वालोंको, अभिषेकादिके कलशोंकी बोली बोलनेवालोंको, रात्रिपूजन करनेवालोंको

जिनसेनका बनाया हुआ समझते हैं। परंतु श्रीयुत कुप्पूस्वामी शास्त्रीने जीवंधरचरित्रकी प्रस्तावनामें प्रगट किया है कि, आदिपुराणके कर्त्ता भगवज्जि-नसेन ही हरिवंशके कर्त्ता हैं। उन्होंने पहले वल्लभराजके समयमें शक संवत् ७०५ में हरिवंशपुराण बनाया, पीछे महाराज **अमोघवर्षके** समयमें पार्श्वाभ्यु-दय (मेघदूतवेष्टित) बनाया और उसके पीछे आदिपुराण (अधूरा) बनाकर परलोक यात्रा की। हरिवंशकी प्रशस्तिका उन्होंने यह श्लोक दिया है;—

शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तरां।
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्॥
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्साधिराजेऽपरां।
सौराणामधिमण्डलं जययुते वीरे वराहेऽवति॥

और भट्टारकोंके अनुयायियों आदि सबको जैनाभास कह डाला है। सो यदि अभिषेकादि करनेवालोंको जिस दृष्टिसे उन्होंने आभास कहा है, उसी दृष्टिसे यदि माथुरसंघ जैनाभास कहा जाता है, तो हमारी कोई हानि नहीं है। जिस दिन अभिषेकादि करनेवाले हमारे धर्मसे च्युत समझे जाने लगेंगे, उस दिन हम इन्हें भी च्युत समझने लगेंगे। परन्तु यदि माथुरसंघकी पांच जैनाभासोंमें गिनती है, और वह किसी प्रामाणिक ग्रन्थमें मिलती है, तो विद्वानोंको इस विषयका निर्णय करना चाहिये कि, माथुरसंघ और काष्ठासंघ जैनाभास क्यों है? उनके मान्यपदार्थोंमें क्या विरुद्धता है?

कुछ भी हो, अर्थात माथुरसंघ जैनाभास भले ही हो परन्तु श्रीअमितगति-मुनिके अगाध पांडित्य और उत्कृष्ट कवित्वके विषयमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इस विषयमें उनकी प्रशंसा करनेमें कोई भी कुंठित नहीं होगा। और उनके पवित्र ग्रन्थोंके पठन पाठनका कोई भी विरोधी नहीं होगा। संसारमें उनकी कीर्ति **यावच्चन्द्रदिवाकरौ** स्थिर रहेगी। अलमतिविस्तरेण।

नाथूराम प्रेमी।

नोट—यह लेख प्रेसमें दे चुकनेपर अमितगतिके **पंचसंग्रह** और **योगसार** नामके दो ग्रन्थोंकी प्रशस्तियां मिली हैं, तथा माथुरसंघ और काष्ठासघके विषयमें भी बहुत कुछ परिचय मिला है, जो आगामी अंकमें प्रकाशित किया जावेगा। **लेखक**।

दियातले अँधेरा।

"विमलप्रसाद! आज जो टौनहालमें स्त्रीशिक्षाके विषयमें व्याख्यान हुआ, उसके विषयमें तुम्हारी क्या राय है? महोपदेशक महाशयका यह विचार क्या ठीक है कि, लोग स्त्रीशिक्षाको अच्छा नहीं समझते हैं और पुराने ढँगके लोग इसके विरुद्ध हैं, इसलिये स्त्रीशिक्षाका यथेष्ट प्रचार नहीं होता है?"

"व्याख्यान तो अच्छा ही हुआ है, व्याख्याताकी शक्ति भी प्रशंसाके योग्य है। परन्तु उन्होंने जो इसी विषयपर ज्यादा जोर दिया कि, लोग स्त्रीशिक्षाके विरुद्धमें है, सो ठीक नहीं किया। यह एक बाधक कारण अवश्य है, परन्तु आजसे २५ वर्ष पहले इस विषयका जितना महत्व था, उतना अब नहीं रहा है। हमारे समाजमें अब ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत थोड़ी रह गई है, जो इसे बुरा समझते हैं, और इसके विरुद्धमें कुछ प्रयत्न करते हैं। अब उद्योग करनेका

समय आ गया है। इस समय स्त्रीशिक्षाका महत्व दिखलाकर लोगोंको काम करनेके लिये उत्तेजित करना चाहिये। ''

यह सुनकर लक्ष्मीचन्द्रने कहा, '' अच्छा आपही बतलावें कि, स्त्रीशिक्षाका प्रचार करनेके लिये लोगोंको किन २ कामोंके लिये उत्तेजित करना चाहिये ? ''

विमलप्रसादने कहा, '' मेरी समझमें प्रत्येक नगर और गांवोंमें स्त्रियोंके लिये पाठशालायें खुलाना चाहिये, और उनमें अच्छे लोगोंकी देखरेखमें कुलीन सदाचारिणी शिक्षित स्त्रियोंके द्वारा शिक्षा दिलानी चाहिये। लोग अपनी बहू बेटियोंको तथा कन्याओंको पाठशालाओंमें पढनेके लिये भेजें, इस विषयमें निरन्तर उपदेश और प्रेरणा होना चाहिये। इसके सिवाय पढी लिखी स्त्रियोंका सत्कार करना, उन्हें पारितोषिक देकर उत्साहित करना, सभाओं तथा मेलोंमें शिक्षाकी आवश्यकतापर उपदेश देना आदि अनेक उपाय हैं, जिनसे स्त्रीशिक्षाका प्रचार हो सकता है।''

'' ये प्रयत्न तो हमारे यहां बहुत दिनसे हो रहे हैं। महासभाके और यंगमेन्स एसोसियेशनके प्रत्येक अधिवेशनमें स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव रक्खे जाते हैं, अच्छे २ पंडित और जेंटलमेन बडे २ लम्बे चौडे व्याख्यान फटकारते हैं, थोड़ी बहुत पाठशालायें भी खोली गई हैं, उनमें पारितोषिक वगैरह भी दिये जाते हैं, परंतु मुझे तो यह सब काम पोच ही दिखते हैं। स्त्रीशिक्षाके प्रचारका सच्चा उपाय इनमेंसे एक भी नहीं है। पाठशालाओंमें जो थोड़ी बहुत शिक्षा दी जाती है, वह स्त्रीशिक्षाके असली उद्देश्यकी पूर्ति नहीं कर सकती है। केवल हिन्दीका लिखना बांचना आ जानेसे अथवा 'छोटे कंतका ख्याल' बांचने योग्य विद्वत्ता प्राप्त कर लेनेसे स्त्रीशिक्षा लाभकारी नहीं हो सकती है। हमारी समझमें तो इस अधकच्ची शिक्षासे उलटी हानि हो रही है, और होगी।''

विमलप्रसादने कहा '' आप जो कुछ कहते हैं, सो तो ठीक है, परन्तु इसका उपाय क्या है ? बिलकुल नहीं होनेसे तो अच्छा है! ''

'' उपाय–उपाय क्या ? तुम्हारे हाथमें है, मेरे हाथमें है–सबके हाथमें है। केवल इच्छा होनी चाहिये। प्रत्येक पुरुषको काममें लगना चाहिये। अभीतक यथार्थमें पूछो, तो अपने समाजमें स्त्रीशिक्षाके विषयमें सच्ची स्फूर्ति नहीं हुई है। जो कुछ होता है, सब ऊपरी दिलसे होता है। हमारे यहां प्रतिवर्ष सैकड़ों सुशिक्षित लोग तयार होते हैं, बीसों ग्रेज्युएट होते हैं और बीसों पंडित होते

हैं, जो सारे देशका अथवा समाजका कल्याण करनेके लिये कंटशोष करते हैं, परन्तु विचार करो कि, यदि ये सब वातौनी जमाखर्च छोड़कर दुनियां भरकी झंझटोंसे बरी होकर केवल एक अपनें २ घरको ही सुधारनेके लिये कटिबद्ध हो जावें, अपनी २ स्त्रियोंको अपने समान विचारोंवाली-सुशिक्षिता बनानेका प्रयत्न करें, तो कितना लाभ हो सकता है ? परन्तु हमारे भाइयोंको यह विचार सूझे, तब न ! घरमें अंधेरा रखकर हम बाहर उजेला करनेके लिये दौड़ते हैं। जहां देखो, वहां **परोपदेशे पाण्डित्यं** दिखलाई पड़ता है।"

" भाई साहब ! आपका यह विचार बहुत ही उत्तम है। बेशक यदि आज हम सब सुशिक्षित लोग अपने २ घरोंके सुधारनेका बीड़ा उठा लेवें, तो आशातीत लाभ हो सकता है। हमारी भाभी साहबाको आपने जिस प्रकारसे सुशिक्षिता बनाई है, उसे देखकर आपकी हजार मुखसे प्रशंसा करनेको जी चाहता है। किसीने सच कहा है कि, हजार बकबक करनेवालोंसे एक काम करनेवाला अच्छा होता है।"

" खैर, यह तो गई बीती बात है, अब चिन्ता तुम्हारी है। देखना है कि तुम्हारा भाग्य कैसा चमकता है। तुम किसी सुशिक्षित भार्याको पाकर धन्य होते हो, अथवा मेरे ही समान अशिक्षिताको पाकर परिश्रम करनेमें दत्तचित होते हो। तुम्हारे भाईसाहब अच्छे विद्वान हैं, इससे तुम्हारा जीवनसम्बंध किसी बुद्धिमतीके साथ ही जोड़ा जावेगा, ऐसा जान पड़ता है। मैं उस दिन बहुत प्रसन्न होऊंगा, जब तुम्हारे जोड़ेको एकसा सुशिक्षित और कार्यदक्ष देखूंगा।" विमलप्रसादके मुखपर किंचित् मुसकुराहट तथा लज्जाकी छाया दिखलाई दी। वे इसका कुछ उत्तर दिये बिना ही लक्ष्मीचन्द्रके घरसे उठकर चले आये। चलते चलते लक्ष्मीचन्द्रने कहा, " खैर, टाइम बहुत हो गया है। इस समय जाओ, कल मैं इस विषयमें और भी अपने विचार प्रगट करूंगा।"

लक्ष्मीचन्द्र और विमलप्रसाद में अतिशय गाढस्नेह था। दोनों ही अच्छे सुशिक्षित, सदाचारी, विचारशील और परोपकारी युवा थे। देश और समाजके हितकी ओर उनका निरन्तर लक्ष्य रहता था। दोनों ही अलाहाबाद कालेजमें एल. एल. बी. का अभ्यास करते थे। दोनोंने निश्चय किया था कि, अन्तिम परीक्षामें उत्तीर्ण होकर देश और समाजके लिये अपने जीवनका बहुतसा भाग

व्यय करेंगे। विमलप्रसाद बोर्डिंगहाउसमें रहते थे, और लक्ष्मीचन्द्र शहरके एक अच्छे मुहल्लेमें कोठरी लेकर अपनी स्त्री रामदेईसहित रहते थे। विमलप्रसाद प्रायः हररोज लक्ष्मीचन्द्रके यहां आया करते थे, और घंटे आध घंटे देश-समाजहितकी तथा अन्यान्य उत्तमोत्तम विषयोंकी चरचा किया करते थे। आजकी बैठकमें टौनहालके व्याख्यानके सम्बधमें जो चरचा हुई, उसे पाठक ऊपर वांच चुके हैं।

विमलप्रसाद बोर्डिंगको लौटे, परन्तु उनके हृदयमें विवाहसम्बधी विचार-तरंगोंकी प्रतिध्वनि उठने लगी। वे सोचने लगे, जीवनमें विवाह करना सबसे महत्वका, जोखमका, और सुख दुःखकी भवितव्यताका प्रश्न है। लोग इसे पुतला पुतलियोंका खेल समझते हैं, परन्तु यथार्थमें यह बड़े ही विचार का विषय है। देखो, लक्ष्मीचन्द्रजी अपनी ही जैसी भार्याको पाकर कैसे सुखी हैं। मैने उन दोनोंको अनेक ऊंचे विषयोंपर विवाद करते देखा है। घरमें कभी उदासीनताकी, अथवा लड़ाई झगडेकी छाया भी नहीं देखी। दोनों सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। और उधर हमारे विद्वान भाईसाहबकी दशा देखो। बेचारे कैसे दुःखी हैं। हमारी भाभी रूपवान है, बोलचालमें अच्छी है, बड़े घरकी लड़की है, तौभी भाईसाहब कभी प्रसन्न नहीं रहते। क्यों? इसलिये कि, वह शिक्षिता नहीं है। अशिक्षितभार्यासे शिक्षित पुरुषको स्वप्नमें भी सुख नहीं मिल सकता है। क्या मेरा विवाह किसी शिक्षिताके साथ होगा? होगा क्यों नही? मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि, अशिक्षिताके साथ मैं कभी विवाह नहीं करूंगा, चाहे जीवनभर अविवाहित रहूं। मुझे धन दौलतसे-दहेजसे कोई मतलब नहीं है। किसी गरीबकी ही लडकी क्यों न हो, यदि वह वयःप्राप्त निरोगी सुन्दरी और शिक्षिता होगी, तो मैं प्रसन्नतासे विवाह कर लूंगा। इस प्रकार विचारतरंगोंमें आन्दोलित होते हुए विमलप्रसाद बोर्डिंगमें जा पहुंचे। उस रात और कुछ लिखना पढ़ना नहीं हुआ। इसी विषयमें संकल्प विकल्प करते हुए उन्होंने निद्रादेवीका आश्रय ले लिया।

२

अनुमान दो महिने पीछे एक दिन सबेरे विमलप्रसादके हाथमें चिट्ठीरसाने एक लिफाफा लाकर दिया। सिरनामा देखनेसे अपने बडे भाईका पत्र जानक

उन्होंने उसे बड़ी आतुरतासे खोला और पढना शुरू किया । राजी खुशीके समाचारोंके पश्चात् उसमें निम्नलिखित वाक्य लिखे हुए थे:—

"* * * पठन पाठनमें अन्तर न पड़े, इस लिये इतने दिन मैं तुम्हारे विवाहकी झंझटमें नहीं पड़ा था। परन्तु अब तुम्हारा विवाह शीघ्र कर देना चाहिये, ऐसा मेरा विचार हो रहा है। और घरमें तो इसका रात दिन तकादा ही रहता है। तुम्हारा जिसमें हित हो, मैं वैसा ही सम्बध मिलानेकी खोजमें हूं। अभी अभी तीन चार स्थानोंसे संबंध आया है, और उनमेंसे दो मैंने पसन्द भी किये हैं। परन्तु घरके लोग उन दोनोंको ही पसन्द नहीं करते हैं। क्यों कि वहांसे दहेज वगैरह अधिक मिलनेकी आशा नहीं है। परन्तु अपनेको दहेजकी आवश्यकता नहीं है, लडकी अच्छी होनी चाहिये। इस लिये सुशिक्षिता लडकीके लिये ही मैं प्रयत्न कर रहा हूं। और जब कोई ऐसा सम्बध मिल जावेगा, तब ही मैं इस वर्ष विवाह करूंगा। अपना अनुभव अपनी दृष्टिके सम्मुख होते हुए मैं तुम्हारा सम्बन्ध अशिक्षिताके साथ कभी नहीं करूंगा। तुम्हारे विचार मुझे मालूम हैं। उन विचारोंको आचारका स्वरूप देनेमें जिससे सहायता पहुँच सकै, तुम्हें वही पत्नी चाहिये। सो जब मैं वैसी पत्नीके साथ तुम्हारा सम्बन्ध करा सकूंगा, तबही अपने कर्तव्यकी पूर्ति समझूंगा।"

भाई साहबका पत्र पढ़कर विमलप्रसाद अंगमें फूले नहीं समाये। भाईसाहबने अपनेको छोटेसे बड़ा किया, अपने पढ़ानेके लिये पानीकी तरह पैसा खर्च किया और अब अपनी इच्छानुसार कन्याकी भी शोधमें हैं,यह जानकर विमलप्रसादको आनन्द होना ही चाहिये।"थोड़े दिनोंमें लक्ष्मीचन्दके समान अपनी भी अत्यन्त संतोषकारक स्थिति होगी। जिस प्रकार हम दोनों मित्रोंके एकसे विचार हैं, उसी प्रकार हम दोनोंकी स्त्रियोंके भी होंगे, इससे हम अपने विचारोंको शीघ्र ही कार्यमें परिणत कर सकेंगे," ऐसा उन्हें विश्वासपूर्वक जंचने लगा। इतनेमें भाभी साहबाके विचारोंका जो चिट्ठीमें इशारा था, उसका स्मरण हुआ। जिससे उन्हें शंका हुई कि, "कहीं भाभीसाहबा कुछ उलटा ही न कर धरें। परन्तु उलटा क्या करेंगी, विवाह तो मेरा होना है न? यदि कुछ गड़बड़ हुई, तो मैं एकदम इंकारा कर दूंगा। बस झगड़ा मिट जावेगा। परन्तु इस विषयमें भाभीसाहबा ऐसा उलटा हठ करेंगी, ऐसा विश्वास तो नहीं है।" इस प्रकारके विचार करके विमलप्रसाद उठ खड़े हुए और कपड़े पहिनकर उन्होंने बाहरका रास्ता लिया।

पत्रका अभिप्राय मित्रवरको सुनाये विना विमलप्रसादको चैन कहां पड़ सकती थी। बस बोर्डिंगसे निकलकर आप विना कुछ यहां वहां देखे, सीधे लक्ष्मीचन्दके घर पहुंचे। बड़े सबेरे ही आया देखकर लक्ष्मीचन्दने पूछा, क्यों विमलप्रसाद! आज तुम यहां कैसे? कुशल तो है?

"हां! कुशल ही है," यह कहकर विमलप्रसादने चिट्ठी निकालकर लक्ष्मीचन्द्रके हाथमें दे दी। पत्र वांच चुकनेपर विमलप्रसादने कहा "देखा आपने, भाई साहबको मेरे विषयमें कितनी चिन्ता है? अब तो आपकी इच्छा पूर्ण होनेमें कोई सन्देह नहीं हैं?"

"इस चिट्ठीमे सन्देहके निराकरणके योग्य तो कुछ बात मुझे नहीं जान पड़ती। बल्कि इससे तो शंका बढ़ती है। जब तुम्हारी भाभी साहबाका हठ होगा। तब मुझे आशा नहीं है कि, तुम्हारे भाई उसमें जय प्राप्त कर सकेंगे। यदि हठकी मात्रा थोड़ी भी बढ़ी, तो भाभी साहबाकी ही जीत होगी। इसलिये इस विषयमें तुम्हें निश्चिन्त नहीं रहना चाहिये एक चिट्ठीके द्वारा अपने विचार स्पष्ट शब्दोंमें भाईसाहबको प्रगट कर देना चाहिये। उन्होंने जब स्वयं इस विषयको छेड़ा है, तब तुम्हारी ओरसे उत्तर जानेमें कुछ हानि नहीं है।"

विमलप्रसादको यह सम्मति अच्छी जँची, परन्तु भाईके पत्रमें क्या लिखना, यह उन्हें नहीं सूझता था। "तेरे हितका सब प्रकारसे खयाल किये विना मैं कुछ भी नहीं करूंगा" ऐसा वे लिखते हैं, इतनेपर भी मैं उन्हें इसी विषयमें लिखूं, यह उनका अपमान नहीं तो और क्या है? वारंवार यही विचार विमलप्रसादके मनमें आता था। इसलिये आज कल आज कल करते २ एक सप्ताह निकल गया। आठवें दिन उन्होंने कई घंटेमें एक पत्र लिखा। उस समय उनके पास कागजकी चिंदियोंका ढेर पड़ा था, जिससे मालूम होता था कि, आप पहले १०–२० चिट्ठियां लिख लिखकर फाड़ चुके हैं! पत्र लिख चुकनेपर आपको बड़ा भारी समाधान हुआ। मानो आपने एक बडे भारी कार्यको समाप्त किया। लिफाफेको बन्द करके डाकखानेमें डालनेके लिये आप तयार ही हो रहे थे कि, तारके सिपाहीने एक तार लाकर हाथपर रख दिया। तार भाईके पाससे ही आया होगा, ऐसे विचारसे उनका चित्त कुछ अस्वस्थ हुआ। उन दिनों जबलपुरमें प्लेग हो रही थी, इससे तारमें क्या समाचार है? विमलप्रसादने कई मिनट

इसीकी चिन्तामें निकाल दिये, परन्तु तार वांचे विना छुटकारा नहीं था, इसलिये उसे खोलना ही पड़ा। उसमें लिखा था,—

" बहुत जल्दी चले आओ, विवाहका निश्चय हुआ। "

तारका समाचार पढ़कर विमलप्रसादने लिखा हुआ पत्र पाकेटके हवाले किया। और घड़ीमें आठ बजे देखकर भोजनादि शीघ्रतासे समाप्त करके वे १० बजेकी गाड़ीसे जबलपुरको रवाना हो गये।

३

प्रियवर मित्र लक्ष्मीचन्द्रजी !

उस दिन भाई साहबका अचानक तार आया, इसलिये मैं यहां चला आया। आठ बजे तार मिला। और १० बजे गाड़ी रवाना होती है, इसलिये मैं आपसे भी न मिल सका, इसके लिये मुझे क्षमा करें। यहां आकर देखा, तो मेरे विवाहकी सम्पूर्ण तयारी हो चुकी थी। बुधवारको पाणिग्रहण होनेवाला था, और मैं सोमवारको सवेरे यहां आया। भोजनादि कर चुका, दो पहर हो चुके, परन्तु तब तक मुझे यह भी मालूम नहीं हुआ कि, लड़की किसकी है। भाभी साहबा तयारीकी इतनी गडबड़ीमें थीं, कि इच्छा होनेपर भी मैं उनसे इस विषयमें कुछ पूछ न सका। भाई साहब सबेरेहीसे कहीं चले गये थे। आनेपर उनकी सदाकी नाईं मुझसे बोलने चालनेकी इच्छा नहीं दिखाई दी। इसके सिवाय उस समय उनके चेहरेपर थोड़ीसी उदासीनताकी छाया भी दीखती थी। इससे उनके समीप यह चरचा छेड़नेका मुझे साहस नहीं हुआ। तब मुझे एक युक्ति सूझी। वह यह कि, जो मैंने इलाहाबादमें उनके लिये पत्र लिखा था, और तार आ जानेके कारण डांकमें नहीं डाला था, उसे उनके पास पहुंचा दूं। पत्र वांचनेपर वे यह विषय छोड़ेंगे, और फिर मुझे जो कुछ पूछना होगा, पूछ लूंगा। ऐसा विचार करके मैंने वह पत्र उनके पास भेज दिया। तत्काल ही उन्होंने मुझे अपनी एकान्त कोठरीमें बुलाया। मैंने जाकर देखा कि, भाई साहब मेरे पत्रको अपने सन्मुख रक्खे हुए और अतिशय खिन्नमुद्रा किये बैठे हुए हैं। मुझे देखते ही वे बोले, " विमल ! यह पत्र तुमने मुझे पहले ही क्यों नहीं भेजा ? तुम्हारे विवाहका निश्चय अवश्य

ही हुआ है, परन्तु मैं जानता हूं कि, उसमें मैंने हितके बदले तुम्हारा अहित ही किया है। मैंने अपनी ओरसे शक्ति भर प्रयत्न किया, परन्तु घरकी ओरसे जो हठ किया गया, वह नहीं छूटा। और अन्तमें लाला विहारीलालजीकी लड़कीके साथ सम्बन्ध निश्चय करना पड़ा। लड़की खूबसूरत है। अवस्था भी योग्य अर्थात् १४—१५ वर्षकी है। दहेज अच्छा मिलेगा। परन्तु विहारीलालजी-का घराना बिलकुल पुराने ढंगका है। स्त्रीशिक्षाकी ओर उनका कुछ भी ध्यान नहीं है। बल्कि इसे वे एक पाप समझते हैं। स्त्रियोंको बढियां २ कपड़ों और कीमती जेवरोंसे लदी हुई रखना, इसीको वे अपना कर्तव्य समझते हैं। सभा पाठशालादि कार्योंसे उन्हें घृणा है। मंदिर बनवाने और प्रतिष्ठादि करानेमे वे लाखों रुपये खर्च कर चुके हैं। लड़की स्यानी हो चुकी थी, एक महीने बाद सिंहस्थ लगैगा, आगे दूसरा मुहूर्त नहीं था, इसलिये उन्होंने बड़े आग्रहसे मुझे दबाकर इस सम्बन्धके लिये राजी किया है। इतना अच्छा है कि, उनका घराना बहुत कुलीन है। इतने बडे धनिक होनेपर भी उनके घरकी कभी किसी प्रकारकी अप-कीर्ति नहीं सुनी है। ये सब बातें मैं तुम्हें किस तरह समझाऊं, इसी विचारमें था कि, तुम्हारा पत्र मिला।" भाई साहबका कथन समाप्त हो चुकनेपर मैं अपने मुँहसे एक भी शब्द निकालेविना उठ खड़ा हुआ और बडी कठिना-ईसे अपनी कोठरीमें चला गया। मनमें विचारोंकी उथल पुथल मच रही थी। अब क्या करना चाहिये, मेरे सब विचारोंका अब क्या होगा? मेरे द्वारा समा-जका क्या हित होगा? भाईसाहबका जैसा जोड़ा मिला है, वैसा ही अब यह मेरा हुआ। इसकी अपेक्षा जबलपुरसे हमेशाके लिये जुहार कर लेना क्या बुरा है? मेरी इच्छाके विरुद्ध उन्होंने यह इतना प्रपंचजाल क्यों फैलाया? पर इसमें उनका क्या दोष है? वेचारोंने निरुपाय होकर किया है। तब इस समय यहांसे पलायन करके उनकी कीर्तिमें बट्टा लगाना अच्छा नहीं है। जो हुआ है, सो भाग्यसे हुआ है। अब तो इस विषयमें उनकी सहायता करना ही मेरा कर्तव्य है। ऐसा विचार मेरे जीमें आया, इस लिये मैं कन्यासम्बन्धी कुछ अधिक शोध करनेके झंझटमें न पड़कर जो होगा, सो देखा जायगा, यह निश्चय करके स्वस्थ हो रहा। तदनुसार कल मेरा विवाह हो गया! भाईसाहबकी इच्छा है कि, शीघ्र ही इलाहाबादमें घर लेना चाहिये। परंतु मुझे अब क्या करना चाहिये, यह कुछ भी नहीं सूझता है। मेरी बधूका नाम नर्मदा है।

उसकी शिक्षाकी मुझे सर्वथा आशा नहीं है। और इस विषयमें कुछ भी प्रयत्न न करनेका मैं निश्चय कर चुका हूं। आप जहां रहते हैं, वहीं मेरे लिये एक जगह देख राखिये। आगे पीछे यदि इलाहाबाद ले आनेका निश्चय हुआ, तो वहीं रहूंगा। आपके साथ रहनेसे शायद भाभी साहबाके सहवासका कुछ असर पड़े, तो पड़े। नहां तो मेरे भाग्यमें क्या है, सो तो दिखता ही है। आपके पूर्वके सम्पूर्ण विचार अब मुझे स्वप्न सरीखे मालूम पडते हैं। "**यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति यच्चेतसापि न कृतं तदिहाभ्युपैति।**" इतिशम्

आपका दुःखीमित्र—

विमल।

४

विवाह होनेके छह महिना पीछे विमलप्रसादने लक्ष्मीचन्दके पड़ोसमें ही अपना घर वसाया। रामदेईने नर्मदाबाईके घरकी पहलेहीसे सब तयारी कर रक्खी थी, इसलिये उन्हें अपने नये संसारके लिये विशेष झंझटें नहीं उठानी पड़ीं। विमलप्रसादका अपनी पत्नीसे अन्य किसी विषयमें वैमनस्य नहीं था। वे उसके साथ अच्छी तरहतसे वर्ताव करते थे। परन्तु लिखने पढ़नेके विषयमें कभी बात भी नहीं निकालते थे। विवाहके थोड़े दिन पीछे उन्होंनें अपनी पत्नीसे जरा निरसताके साथ पूछा था कि, "तुझे लिखना पढ़ना आता है, या नहीं? यदि नहीं आता है, तो आगे सीखनेका विचार है, या नहीं।" इसके उत्तरमें नर्मदाबाईने कहा था "मुझे कुछ भी नहीं आता है और उसके विना मेरा कुछ अटका भी नहीं रहता है।" यह हमारा बडा भारी अपमान हुआ, ऐसा समझकर विमलप्रसादने पढने लिखनेकी चरचा करना ही छोड़ दिया था। विमलप्रसादकी यह उदासीनवृत्ति देखकर लक्ष्मीचन्द और रामदेईको बहुत आश्चर्य होता था। वे सोचते थे, विमलप्रसादका इस विषयमें इतना हठ क्यों है। जो हुआ सो हुआ, अब वह वापिस नहीं हो सकता है। फिर इन्हें अपनी पत्नीको ज्ञानसम्पन्ना करनेका प्रयत्न क्यों नहीं करना चाहिये। एक दिन मौका पाकर उन्होंने कहा, विमलप्रसाद यह तुमने कौनसा मार्ग स्वीकार किया है? विवाहसे पहलेके सम्पूर्ण विचार जान पड़ता है, तुम भूल गये! विमलप्रसादने कहा, "नहीं अभी नहीं भूला हूं। परन्तु यदि वे जल्दी भूल जाता, तो अच्छा होता।"

" क्यों भला ! तुम इतने हताश क्यों हो गये हो। कुछ भी प्रयत्न न करके इस तरहसे कष्टसे काल बिताना मेरी समझमें ठीक नहीं है। और इसमें तुम्हारी बहूका भी क्या दोष है ? फिर अपने पूर्वमें निश्चित किये हुए प्रयत्नमें तुम क्यों नहीं लगते ?"

" भाई साहब ! इस विषयमें मैं अपने भाग्यकी परीक्षा कर चुका हूं। मैं हताश हुआ हूं, सो कुछ करके ही हुआ हूं। मुझे चोखा उत्तर मिल चुका है कि, " मुझे लिखना पढ़ना नहीं आता है और उसके विना मेरा कुछ अटकता भी नहीं है " फिर जहां इच्छा ही नहीं है, वहांपर उपाय क्या है ?"

किवाड़की ओटमें खड़ी हुई रामदेई ये सब बातें सुन रही थी। इस विषयमें वह अपनी इच्छाको रोक न सकी, और बोली, " परंतु लालाजी ! वह इच्छा उत्पन्न करना क्या आपका कर्तव्य नहीं है ? उसे पढ़ने लिखनेका शौक आप नहीं लगावेंगे, तो और कौन लगावेगा ? आप जब इस विषयमें उसके साथ कठोरताका वर्ताव करते हैं, तब पढ़ने लिखनेकी अभिरुचि होना ही कष्टसाध्य है।"

यह सुनकर विमलप्रसादने बहुत देरतक स्तब्ध रहकर कहा " भाभी साहबा ! आप चाहे जो कहें, परन्तु मुझे इसमें कुछ लाभ नहीं दीखता है। और प्रयत्न करनेकी अब मेरी इच्छा भी नहीं है।"

लक्ष्मीचन्द्र बोले, " विमलप्रसाद तुम अपने मुखपर स्वयं इस प्रकारसे पानी फेरोगे, ऐसा मुझे विश्वास नहीं था। यह मैं मानता हूं कि, कभी उसने त्रासित होकर तुम्हें कुछ उलटा सीधा उत्तर दे दिया होगा। परन्तु क्या ऐसी छोटी सी भूलपर ख्याल करके उसका अकल्याण और अपना अहित कर डालनेको तयार हो जाना बुद्धिमानी है ? मुझे तो भाई यह खासा **दियातले अंधेरा** दीखता है। दूसरोंको प्रयत्न करना चाहिये। "अपनी स्त्रियोंको सुशिक्षित बनाना चाहिये, उन्हें विद्या पढनेका शोक लगाना चाहिये," निरन्तर इस प्रकार लम्बी २ स्पीचें झाड़नेवालोंको अपनी पत्नीकी एक थोड़ीसी भूलसे क्या इस प्रकार हताश होके बैठ जाना चाहिये ? मुझे अपने घरके द्वारा जो कुछ परिचय मिला है, उससे यह भी ज्ञात नहीं हुआ है कि, तुम्हारी पत्नी कुछ अधिक

हठीली है । ऐसी अवस्थामें एक गई बीती बातका ख्याल करके अपने कर्तव्यके नहीं करना, मुझे तो ठीक नहीं दीखता है । "

इसके उत्तरमें विमलप्रसादने कुछ नहीं कहा । वे चुपचाप उठकर अपनी कोठरीमें चले गये । उनके जानेपर रामदेईने अपने स्वामीसे कहा, " आपको यह विषय इतना नहीं बढ़ाना चाहिये था । मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि, उन दोनोंके बीचमें कोई ऐसी घटना हो गई है, जो अपनेसे कहनेके योग्य नहीं होगी ।"

" अपनेसे भी नहीं कहने योग्य घटना ? भला ऐसी क्या बात होगी ?"

" कुछ भी हो, उससे अपनेको प्रयोजन नहीं है । अब तो जो विमलप्रसाद नहीं करते हैं, वह मैं करके देखूं, ऐसी मेरी इच्छा होतीहै । "

" अर्थात् आप उसे लिखना पढना सिखलाके पंडिता बनावेंगी ! "

रामदेईने कहा, "दूसरोंको पंडिता करनेके पहले स्वयं तो पंडिता होना चाहिये ! केवल लिखना पढ़ना सीखनेसे ही यदि स्त्रियां पंडिता हो सकती हैं, तो फिर आप लोग इतनी परीक्षापर परीक्षायें किस लिये देते हैं ? "

" अस्तु इस बातको जाने दो, पर यह तो कहो कि, प्रयत्न करनेका निश्चय तो हो चुका न ? " लक्ष्मीचन्द्रने हँसते हुए पूछा ।

" देखिये क्या होता है। सब कुछ विमलप्रसादसे छुपाकर करनेका विचार है"

रामदेईने नर्मदाबाईको विद्याकी अभिरुचि उत्पन्न करानेका निश्चय तो कर लिया, परन्तु उसका प्रारंभ किस प्रकारसे करना और उसमें सफलता होगी कि, नहीं ? यह सब छुपके कब तक होगा, आदि सब बातोंका वह रातदिन विचार करने लगी । महीनेभरतक ऐसा कोई भी अवसर हाथ न आया, जिसमें वह कुछ प्रयत्न करती । एक दिन रविवारको विमलप्रसाद और लक्ष्मीचन्द्र दो प्रहरको अपने एक मित्रसे मिलनेको गये थे । और कह गये थे कि, हम लोग संध्याकालतक लौटके नहीं आवेंगे । रामदेई अपनी कोठरीमें भारतमित्रका ताजा अंक पढ रही थी । उसमें कहींका एक चित्र भी था । नर्मदाबाईका रामदेईकी कोठरीमें पैर रखते ही उसीपर ध्यान गया ।

" क्यों जीजी ! यह तुम्हारे हाथमें काहेकी तसवीर है । "

रामदेईने कहा, 'कौन ? यह जो मैं बांचती हूं ? यह तो भारतमित्र है—"

"भारतमित्र क्या, और उसमें यह तसबीर किसकी है ? भला इसके पढनेसे फायदा क्या होता है ?"

" नर्मदाबाई ! देखो, यह पत्र बहुत अच्छा है। इसके पढनेसे मनोरंजन होता है, और सैकड़ों नई नई बातें मालूम होतीं हैं। कभी २ इसमें ऐसे २ अनेक चित्र भी आते हैं। इसीको वांचनेसे मैं अपने देशकी बनी हुई चीजोंको वर्ताव में लाने लगी हूं। उस दिन तुमने पूछा था कि, तुम ये भद्दी चूड़ियां क्यों लेतीं हो, मेरी जैसी अच्छी नगीनें जड़ी हुई क्यों नहीं लेती, सो उसका सबब यही था कि, तुम्हारी चूड़ियां विलायती ओर सरेस लगी हुई थीं, और मेरी ये देशकी बनी हुई हैं। यह पत्र न पढ़ती, तो मुझे ये बातें कैसे मालूम पड़तीं ?"

नर्मदाबाईने कहा, " मैं तुम्हें प्रत्येक रविवारको यही पत्र पढ़ती हुई देखती हूं। सो तुम इसे रविवारको ही क्यों वांचती हो ? क्या एक पत्र वांचनेको इतने रविवार लगते हैं ? फिर और दूसरे पत्र जो तुम्हारे यहां आते हैं, उन्हें कब वांचती होगी ?"

यह प्रश्न सुनकर रामदेईको हँसी आई जाती थी, परन्तु उसे उसने बडे प्रयत्नसे दबाकर कहा, अजी ! मैं कुछ एकही पत्र हर रविवारको नहीं वांचती हूं। किन्तु हर रविवारको इसका एक नया अंक निकलता है और उन प्रत्येक अंकोंमें नवीन २ समाचार रहते हैं।"

" क्यों जीजी ! तुम्हें क्या सूत्र सहस्रनाम भक्तामर भी वांचना आते हैं ?"

" हां आते हैं !"

" बिलकुल मर्दों सरीखे ?"

" नहीं वैसे तो नहीं, परंतु लिखना वांचना अच्छा आता है। सूत्र सहस्रनाम भक्तामर वांचनेसे मुझे उनका अर्थ भी समझमें पड़ता है। परन्तु यह सब मुझे पहलेसे नहीं आता था। विवाहके पश्चात् मुझे घरहीमें यह सब सिखलाया है।"

" किसने ? क्या बाबूजीने तुम्हें सिखलाया है ? परंतु क्यों जीजी ! इतनी पुस्तकें पढ़कर अपन स्त्रियोंको क्या करना है ? इसके विना अपना कुछ अटकता थोड़े ही है !"

" नर्मदाबाई ! यह तुम क्या कहती हो ? देखो, मुझे थोड़ासा लिखना पढना आता है, तो मेरा कैसा मनोरंजन होता है ? आनंदसे दिन कट जाता है। कामके समय अपना काम करना; और जब न हो तब कोई अच्छीसी पुस्तक पढकर मन बहलाना। इससे बहुतसी नई २ बातें मालूम पड़ती हैं। देखो कल-ही मैंने स्त्रीशिक्षा नामकी पुस्तक बांचकर पूरी की है। उसमें अपने रोजके व्य-वहारकी कैसी अच्छी २ बातें लिखी है। अपना घर कैसा होना चाहिये। स-फाईके लिये अपनेको क्या २ खबरदारी रखनी चाहिये, अमुक पक्वान्न कैसा बनाना चाहिये; अमुक तरकारीमें क्या २ मसाले पड़ते हैं, चोली कुरतीके काट कैसे करना चाहिय; आदि अनेक जानने योग्य बातें उसमें लिखी हैं। और यह भी तो सोचो कि जब अच्छी २ पुस्तकें बांचनेसे पुरुषोंको फायदा होता है; तब स्त्रियोंको क्यों नहीं होगा ? "

"जीजी ! इसपर अब मैं क्या कहूं? परंतु मेरी मा तो कहती थी कि, जो लड़-कियां किताबें पढ़ना सीख लेती हैं, वे उद्धत हो जाती हैं, घमंडिन हो जाती हैं और बुरी भली चालें सीख जाती हैं। परंतु तुममें तो वैसा एक भी अवगुण नहीं दीखता है। "

" बहिनी ! तुम यह क्या कहती हो ? क्या लिखना पढ़ना सीखनेसे ही ये अवगुण आ जाते हैं, और मूर्ख रहनेसे नहीं आते ? क्या मूर्ख स्त्रियां बुरी चाल नहीं सीखती हैं ? "

" सो तो कुछ नहीं हैं, परन्तु मेरी माने एक बार ऐसा कहा था, इस लिये मैंने तुमसे कह दिया। तुम्हारी भलमंसी देखकर तो वह बात निरी झूट मालूम पड़ती है। अस्तु अब तो मै जाती हूं, परन्तु कल दो प्रहरको जब मैं आऊंगी, तब यह अखबार थोडासा मुझे बांचकर सुना दोगी क्या ? "

" हां ! हां ! बडी खुशीसे। तुम जब आओगी, मैं तुम्हें तब ही बांचके सुना-दूंगी। " रामदेई से यह समाधानकारक उत्तर पाकर नर्मदाबाई हर्षित होती हुई अपनी कोठरीमें चली गई।

५

रामदेई बहुत गंभीर विचारवाली स्त्री थी। अपने सिरपर लिया हुआ काम किस तरह सफल होता है, इसके विषयमें वह निरन्तर विचार किया करती

थी। विमलप्रसादकी सहायताके विना यह कार्य सिद्ध होना था भी कठिन। परन्तु उस कठिनाईकी रामदेईने कुछ भी परवा नहीं की। पहले उसका विचार था कि, लक्ष्मीचन्द्रकी सम्मतिसे यह कार्य करना और इसका परिचय उन्हें देते जाना। परन्तु पीछे यह सोचकर कि दोनों मित्र हैं, कहीं बातों बातोंमें विमलप्रसादसे यह बात कह दी, तो सब आनन्द किरकिरा हो जावेगा, उन्हें भी इसकी खबर न होने देनेका निश्चय कर लिया। केवल भारतमित्रके विषयमें जो नर्मदाबाईके साथ वार्तालाप हुआ था, वह उसने पतिके कानोंपर डाल दिया था। पीछे एक चित्तसे उसने नर्मदाबाइका पढ़ानेमें मन लगाया।

नर्मदाबाई और रामदेईका सौहार्द थोड़े ही दिनमें अतिशय सघन हो गया। रामदेईकी विनयता, नम्रता, सदाचारिता, उद्योगतत्परता, ज्ञानकी अभिरुचि, सादगी और रंजायमान करनेका स्वभाव देखकर नर्मदाको ऐसा मालूम पड़ता था कि, यह कोई विचित्र ही स्त्री है, इसलिये वह निरन्तर उसके सहवासमें रहना ही पसन्द करती थी, और पढ़ना लिखना तथा और हजारों बातें सीखा करती थी। धीरे २ डेढ़ वर्ष व्यतीत हो गया। इतने दिनोंमें क्या किया, इसकी कल्पना भी उसने अपनी पतिको न होने दी। उधर टर्म्स शुरू हो गया था, इसलिये दोनों मित्रोंको पढनेके सिवाय इन बातोंकी ओर ध्यान देनेका अवकाश भी नहीं मिलता था।

परीक्षा हो चुकी। परचे दोनोंने अच्छे लिखे थे, इसलिये उस दिन लक्ष्मीचन्द और विमलप्रसाद एकत्र बैठे हुए आनन्दसे गप्पाष्टक उड़ा रहे थे। रामदेई और नर्मदाबाई भी किवाड़ोंकी ओटसे इनकी गपशप सुन रही थीं। थोड़ी देरमें स्त्रीशिक्षाकी चर्चा फिर निकली। जापानमें स्त्रीशिक्षाको अमुक रीतिसे उत्तेजना दी गई, राजाने उसमें यों सहायता दी, धनवानोंने यों पारितोषिक दिये, पुरुषोंने यों उद्योग किया आदि बातें अस्खलित रीतिसे चल रही थीं। इसी बीचमें रामदेईने धीरेसे कहा, "आपकी बातोंसे मुझे एक बातका स्मरण हो आया। बहुत दिनसे यह विचार मेरे हृदयमें आन्दोलित हो रहा है कि, किसी अखबारमें विज्ञापन (नोटिस) देकर स्त्रियोंके किसी उपयोगी विषयपर निबंध मंगवाना चाहिये।"

यह सुनकर लक्ष्मीचन्द्रने हंसते २ कहा:–"निबंध मंगाना! किसलिये? क्या कुछ मासिक आसिक पत्र निकालनेका विचार हुआ है?"

"यह अपने कैसे जान लिया? मैं क्या कहती हूं, सो तो आपने पूरा सुना ही नहीं और लम्बा चौड़ा अनुमान बांधने लग गये।"

बीचमें विमलप्रसादने कहा, "अच्छा भाभीजी! आप क्या कहना चाहती हैं. सो कहिये?

रामदेईने कहा " यह निबन्ध केवल स्त्रियोंको ही लिखना चाहिये। निबंधपर अपना नाम न लिखकर कोई कल्पित निशान करके भेज देना चाहिये। पीछे उस निशानके साथ अपना नाम एक दूसरे शीलमोहर किये हुए बन्द लिफाफेमें रखकर भेज देना चाहिये। इस प्रकार आये हुए सब निबन्धोंमें जो उत्तम ठहरेगा, उसे एक उत्तम पारितोषिक दिया जावेगा।"

"ठीक! यह तो सब सुन लिया. परन्तु किस विषयपर निबंध लिखवाया जावेगा, सो तो आपने कहा ही नहीं और इनामकी रकम कौन देगा?"

"इनाम पचास रुपयेकी रखना चाहिये। और उसके लिये मैं अपनी माके दिये हुए रुपयोंमेंसे २५ रुपये देनेको तयार हूं! विषयकी भी मैंने योजना कर ली है। परंतु लालाजी! उससे आप नाराज तो नहीं होगे?

"क्यों? मैं नाराज क्यों होऊंगा?"

"**विवाहित स्त्रियोंकी शिक्षा**" इस विषयपर निबंध लिखवानेकी मेरी इच्छा है, इसलिये!"

"इसमें मैं नाराज क्यों होने लगा? आप जिस विषयपर निबंध मंगाती हों, उसे बांचकर कुछ स्त्रियोंके विचार तो मालूम होंगे! इनाममें १५ रुपये मैं अपनी तरफसे भी दूंगा, परन्तु इसमें शर्त यह है कि, निबन्ध तुम नहीं लिखना! विमलप्रसादने कटाक्ष करके कहा।"

लक्ष्मीचन्द्र मुसुकुराते हुए बोले, "हां यह शर्त जरूर होना चाहिये। नहीं तो यदि श्रीमतीका ही निबन्ध पसन्द किया गया, तो फिर "**गुड़के गणेश और गुडकाही नैवेद्य**" हो जावेगा। और इधर बाकी रहे हुए रुपये मुझे देना ही पड़ेंगे; ऐसा जान पड़ता है।

रामदेईने कहा, मैंने यदि निबन्ध लिखा; तो भी ऐसा कुछ नहीं है कि; मुझे इनाम मिलेगा ही। तौभी आप लोगोंके संतोषके लिये मैं यह शर्त स्वीकार करती हूं। इनाम किसको देना चाहिये, यह निर्णय करना आप दोनोंकी मुंसिफीपर है।

६

रामदेईकी इच्छानुसार दो तीन अखबारोंमें विज्ञापन निकलने लगा। इस समय रामदेईको पहलेकी अपेक्षा ज्यादा समयकी आवश्यकता थी; क्यों कि अब दोनोकी परीक्षाका समय निकट आ गया था। परन्तु इन दिनों समय बहुत कम मिलने लगा। क्यों कि परीक्षा हो जानेके कारण विमलप्रसाद आदि दो प्रहरको भी घरपर रहते थे; इस लिये बहुत थोडे समयके लिये इनका सहवास हो सकता था। रामदेईको इसकी बडी चिन्ता हो गई। इतने-हीमें एक अनपेक्षित अवकाश पानेका समय आ गया। विमलप्रसादके घरसे एक जरूरी चिट्ठी आनेसे दोनों मित्र जबलपूर चले गये। पतिविरहसे उन पतिव्रताओंको खेद तो हुआ, परन्तु विद्याभ्यासके उत्साहमें उन्होंने उसे अधिक नहीं गिना।

ग्यारहवें दिन दोनों मित्र लौट कर इलाहाबाद आ गये। उसी दिनकी डांकमें भारतमित्रके सम्पादककी चिट्ठीके साथ ५ स्त्रियोंके निबंध आये। सम्पादकने लिखा था, " अवधिके भीतर ये पांच निबंध आये है; सो आपके पास भेजे जाते है। इनमेंसे नं० २ के निबंधको मैने इनामके योग्य पसन्द किया है, जिसके नीचे "**दिया तले अंधेरा**" ऐसा नाम लिखा हुआ है। आपलोग इन्हें पढ़कर फल प्रकाशित कीजिये।" नोटिसमें निबंध भारतमित्र-सम्पादकके नामसे भेजनेको लिखा गया था; इस लिये वे उनके प्रास होकर लक्ष्मीचन्द्रके पास आये थे।

दो तीन दिनमें विमल और लक्ष्मीचन्द्र ने ३-४ और ५ नंबरके निबंध वांच डाले थे। पहला और दूसरा निबंध रहा था, सो उसे वांचकर इनामका फैसला करना था। इसलिये एक दिन एत्रिके ८ बजे दोनों मित्र जजमेंट देनेके लिये बैठे। रामदेई तो इसके लिये बहुत आतुर हो रही थी। परन्तु इनके जीमें कुछ सन्देह उत्पन्न न हो जावे; इसलिये उसने अपनी इच्छाको रोक रक्खा था। यह जान कर कि थोडी ही देरमें इसका फल प्रगट होनेका है और मेरी गुप्तमंत्रणा प्रगट होनेवाली है, उसका जी उछलने लगा। नर्मदाबाईको अपने समीप बिठाकर वह निबंध सुननेकी प्रतीक्षा करने लगी।

पहला निबंध वांचना शुरू किया गया। परन्तु थोड़ी ही देरमें उसे सुनते २ सबका जी ऊब गया। इसलिये विमलप्रसादने उसे केवल १५-२० मिनटमें

शीघ्रतासे वांचकर पूरा कर दिया। अब दूसरेका वांचना शुरू हुआ। एक सुयोग्य सम्पादकने उसे इनामके योग्य ठहराया था; इसलिये उसके विवेचनपर सबने विशेष ध्यान लगाया। निबंध वांचते समय विमलप्रसादकी मुखचर्यामें अनेक बार अन्तर पड़ा। वांचते २ वे कई जगह अटके भी। उन्हें ऐसा मालूम पड़ता था कि; किसी मार्मिकने यह सब मुझे लक्ष्य करके ही लिखा है। स्थानके अभावसे हम यहांपर उक्त निबंधकी मुख्य २ बातें उद्धृत करते हैं:—

\+ + + +

" **विवाहित स्त्रियोंकी शिक्षा** " यह विषय मुझे बहुत कठिन मालूम पड़ता है। परन्तु अपनी एक बहिनके आग्रहसे मैं इसे लिखती हू; पारितोषिककी आशासे नहीं।"

विवाहित स्त्रियोंकी शिक्षाके उतरदाता वास्तवमें यदि देखा जावे, तो उनके पति हैं। परन्तु अपने इस उत्तरदायित्वपर ध्यान देनेवाले पति हमारे समाजमें बहुत थोड़े हैं। मैं यह नहीं कहती हूं कि; सुशिक्षित पुरुष स्त्रीशिक्षाको नहीं चाहते हैं। नहीं; वे चाहते हैं। परन्तु आलस्यसे कहो; अथवा किसी अदूरदर्शितासे कहो; वे इस ओर अपना ध्यान नहीं देते हैं। इसलिये स्त्रीशिक्षाकी उन्नति नहीं होती है। अनेक सुधारणाओंमें आज स्त्रियोंकी ओरसे अडचनें उपास्थित होती हैं। परन्तु यदि वे उनकी अज्ञानतासे होती हैं. तो फिर वह अज्ञानता दूर करना उनके पतियोंका नहीं तो और किसका कर्तव्य है? पुरुषोंको चाहिये कि वे अपनी स्त्रियोंको विद्याका शौक लगावें; केवल सुधार सुधार चिल्लानेसे और संसारकी सुधारना करनेकी डींग मारनेसे कुछ लाभ नहीं है।

\+ × × ×

प्रत्येक सुशिक्षित पतिको सबसे पहिले अपनी स्त्रीको शिक्षिता बनानेके काममें लगना चाहिये। इस कार्यमें यदि स्त्रियां प्रतिबंधक हों; वे अपना दुराग्रह प्रगट करें; तो भी पुरुषोंको उनमें विद्याभिरुचि उत्पन्न करनी चाहिये। हमारे विचार बहुत ऊंचे हैं; और हमारी स्त्रीको कुछ भी अकल नहीं है; इस घमंडमें रहनेसे बड़ी भारी हानि होती है।

शिक्षा किस प्रकारकी देना चाहिये; यह एक कठिन प्रश्न है। परंतु मैं समझती हूं, हालमें हिंदीके साथ स्त्रियोंको संस्कृत पढना चाहिये। हिन्दीमें

दिनपर दिन उत्तमोत्तम पुस्तकें निकल रही हैं, तौ भी संस्कृत जाने विना धर्म विद्याका अच्छा ज्ञान नहीं हो सकता है । इसलिये जितना हो सके; संस्कृतका ज्ञान स्त्रियोंको अवश्य ही कराना चाहिये । स्त्रियोंके हाथोंमें [illegible] चौबोले बगैरहकी घृणित पुस्तकें तथा व्यर्थ समय खोनेवाली तिलिस्माति आदि सम्बधी उपन्यासकी पुस्तकें न जाने देना चाहिये । जिन्हें अपनी स्त्रियोंको सदाचारिणी और उत्तम विचारों वाली बनाना हो; उन्हें ऐसी घृणित पुस्तकोंसे स्त्रियोंको बचाना चाहिये । स्त्रियोंको अंग्रेजी पढ़ाना बुरा नहीं है; परन्तु वर्तमानमें उक्त विद्याके सम्बन्धसे जो आचार व्यवहार और विचार हमारे अनुकूल नहीं हैं; उनके घुस आनेका सदा भय रहता हैं । इसलिये इस ख्यालसे उसका न पढ़ाना ही अच्छा है ।

* * * * *

मामूली लिखने बांचनें तथा सीना पिरोना आने लगनेको मैं स्त्रीशिक्षा नहीं कहती हूं । पतिको अपनी स्त्रीमें इतनीं पात्रता लानी चाहिये, जिसमें वह अपने विचार समझ सकै । प्रत्येक विषयमें दोनोंको वादविवाद करना चाहिये । और गृहस्थीसम्बन्धी विषय दोनोंको एक दृष्टिसे देखना चाहिये । कोई एक आन्दोलन उठनेपर स्त्रीके उस विषयमें प्रश्न करनेपर यह कह देना कि. तू इस विषयमें कुछ समझेगी नहीं, स्त्रीपर अन्याय करना है । इसलिये इस निबंधको पूर्ण करनेके पहले मैं एक बार फिर कहती हूं कि, स्त्रीशिक्षाकी सब जबाबदारी पुरुषोंपर है । स्त्रीशिक्षाकी उन्नति न होनेमें मुख्य कारण पुरुष ही हैं । सामाजिक सुधारणाओंमें स्त्रियोंकी ओरसे जो विघ्न पड़ते हैं, उनके भी मूल कारण पुरुष ही हैं । सब दोष पुरुषोंका ही है ऐसा मेरा अभिप्राय नहीं है, तौ भी दोषोंका सबसे बड़ा भाग उन्हींकी ओर है, ऐसा मैं अपने अनुभवसे कहती हूं ।"

* * *

निबंधके अन्तिम शब्द सुनकर सब लोग स्तब्ध हो रहे । दोनों मित्र एक दूसरेकी ओर देखने लगे । रामदेवी बडी भारी उत्सुकतासे यह देखने लगी कि, देखें, कौन पहले बोलता है और क्या बोलता है । परन्तु जब दो तीन मिनट बीत गये, किसीने कुछ भी नहीं कहा, तब रामदेईने बेचैन होकर पूछा, लालाजी! तो क्या अब निबंध लिखनेवाली स्त्रियोंके नाम नहीं सुनाये जावेंगे और इनाम किसको दी जावेगी, इसका निर्णय नहीं करेंगे ?"

" लक्ष्मीचन्दने कहा, हां! हां! यह तो होना ही चाहिये। मेरी समझमें तो नम्बर दोको ही इनाम मिलना चाहिये। क्योंकि उसकी लेखिकाने सब बातें अपने [illegible] हुई लिखी हैं, ऐसा जान पड़ता है "

"विमलप्रसादने कहा, मालूम तो ऐसा ही होता है। निबंध अच्छा हैं। कहीं २ संगति नहीं मिलती है, तो भी उसके विचार अच्छे हैं। और फिर इसमें हम सरीखोंकी तो खूब ही खबर ली गई है। मेरी समझमें इसके साथ नम्बर एकको भी थोड़ीसी इनाम देना चाहिये! अच्छा तो अब मैं ये लिफाफे खोलता हूं।

विमलप्रसादने लिफाफे खोलना शुरू किया कि, नर्मदाबाई रामदेईके कानमें कुछ धीरे २ कहकर उठ गई! परन्तु विमलप्रसादने उस ओर नहीं देखा। पहले नम्बरका लेख " जानकीबाई–गौरीशंकर त्रिपाठी-सागर का लिखा हुआ था, ऐसा मालूम हुआ। पश्चात् दूसरा लिफाफा खोला गया। उसमें लिखे हुए नामको देखकर विमलप्रसाद चकित स्तंभित हो रहे। उनके मुँहसे एक अक्षर भी किनलना कठिन हो गया। हाथोंमें किंचित् कंप होने लगा। इधर रामदेईने अपने मुंहको लम्बे घूँघटमें ढँक लिया था। यह लीला देखकर लक्ष्मीचन्द्रने बडी उत्सुकतासे पूछा, विमलप्रसाद! है क्या? तुम नाम क्यों नहीं वांचते हो?

विमलप्रसादने एकाएक चौंककर कहा, " यह निबंध—यह निबंध " श्रीमती नर्मदाबाई बाबू विमलप्रसादजी–अलाहाबाद " का लिखा हुआ है।"

" कौन नर्मदाबाई! क्या आपकी नर्मदाबाई? उसने लिखना पढना कब सीख लिया? क्या उसने यह निबंध लिखा है? " लक्ष्मीचन्द्रने आश्चर्ययुक्त हो कर पूछा।

"मुझे क्या खबर है! भाभीजी! यह गोरखधंदा तुम्हें अवश्य मालूम होगा? यह कौन नर्मदाबाई है और यहां तुम्हारी नर्मदाबाई थी, सो कहां चली गई? विमलप्रसादने बडी उत्सुकतासे अपने प्रश्नका उत्तर चाहा।

" नर्मदाबाई थोडी देर पहले यहांसे उठ गई है? क्योंकि उसे मालूम था कि, कुछ समय पीछे ही यह कौतुक होनेवाला है?"

" तो क्या सचमुच यह निबंध उसीने लिखा है? उसमें इतनी योग्यता कहांसे आ गई? और मुझे अभी तक इसकी खबर क्यों नहीं लगी? "

ॐ

जैनहितैषी

मासिक पत्र।

पन्नालाल बाकलीवालद्वारा प्रकाशित।

पांचवां भाग	मंगसर और पौष वीर नि० संवत् २४३५।	अंक २-३

लूट शीघ्र ही बंद हो जायगी।

क्योंकि हमने सिर्फ ५०० प्रति प्रवचनसारजी इस पत्रके ग्राहकोंको देना स्वकिार किया है। परंतु आजकल ग्राहकोंकी इतनी फरमायसें आ रही हैं कि—सायद फाल्गुन महीनेके भीतर २ पांचसौ ग्राहक पूरे होजांयगे और पांचसौ ग्राहक हुये बाद फिर ऐसा ग्रंथ इस छोटेसे पत्रकी भेटमें नहीं दे सकेगे फिर यदि कोई ग्राहक बनैगा तो सिर्फ जैनहितैषीका १।) लिया जायगा और प्रवचनसारजीकी न्योछावर १।) रुपया और डांक खर्च दिये विना कदापि नहिं मिलेंगे और भादोंमें जो ज्ञानसुर्योदय नाटककी एक विषेश भेट बिना कुछ लिये एक विशेष सर्त्तके साथ देना चाहते हैं वह भी किसीको नहिं दी जायगी अत: जिनको इन अपूर्व ग्रंथोंकी स्वाध्याय करना हो, वे शीघ्रही १॥) के वी. पी. में प्रबचनसारजी मगा लेवें।

मैनेजर–जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय–पो० गिरगांव–बम्बई.

कर्नाटक छापखना, मुंबइ.

जैनहितैषीके नये नियम।

१ इस पत्रकी वार्षिक न्योछावर सर्व साधारणसे अग्रिम उपहार सहित १॥)रु० और प्रसिद्ध धनाढ्य, ओधेदार, वकील, रईसोंसे २॥) रुपये। उपहार सहित ३) छापेके विरोधियोंसे ५) रुपये वर्षके अन्तमें देनेवालोंसे दूनी लियी जाती है। पढी हुई असमर्थ स्त्रियों और संस्कृत पढनेवाले असमर्थ विद्यार्थियोंसे ॥) आने उपहार सहित १) एक रुपया लियीजाती है और फुटकर अंककी न्योछावर चार आने ली जाती है।

२ यह पत्र अनेक प्रसिद्ध धनाढ्य रईसोंके पास बिना मगाये भी भेजा जाता है अगर प्रथम अंक पहुंचते ही कोई महाशय इनकारी कार्ड भेजदेंगे अथवा हमारा अंक ही नहिं लेकर वैसाका वैसा लोटा देंगे तो उनका नाम काट दिया जायगा नहीं तो उन्हें पक्का ग्राहक समझकर हरमहीने जैनहितैषी भेजते जांयगे ६ अंक तकमूल्य भेजदेंगे तो वह अग्रिम समझा जायगा तत्पश्चात् प्रथम नियमके अनुसार दूनी न्योछावर अदा की जायगी।

३ यह पत्र—हमेशहसे धर्मार्थ रक्खा गया है इस पत्रमें मैनेजर वगैरहका खर्च जाकर नफा रहैगा तो वह विद्योन्नति वा जिनवाणी माताकी उन्नतिमें लगाया जायगा और घाटा पडैगा तो जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय देगा क्योंकि इस पत्रमें इस कार्यालयके इस्तहार सूचीपत्र विनामूल्य वितरण किये जाते हैं। इसकारण जो महाशय इसकी चढीहुई न्योछावर नहि भेजकर टालटूल करदेंगे वे विद्योन्नतिके घातक समझे जांयगे और जो महाशय इसके ग्राहक बनेंगे वा बनावेंगे वे विद्योन्नति करनेवाले धर्मात्मा समझे जावेंगे।

४ यह पत्र प्रत्येक पूर्णमासीको प्रगट होता है कभी २ आठ दशदिनकी देर भी हो जाती है सो जिनके पास कोई अंक अमावस्यातक नहिं पहुंचै तो अमावास्याके पश्चात् उसी महीनेकी सुदी १५ तक हमारे पास सूचना भेजनेपर वह अंक त्वरित ही भेज दिया जायगा। यदि पूर्णमासीके पश्चात् सूचना देंगे तो वह पिछला अंक कदापि नहिं मिलैगा। अगर मिलैगा तो ।) का टिकट भेजनेपर मिलैगा।

५ पत्रव्यवहार साफ २ हिंदी अक्षरोंमें करना चाहिये जो कोई महाशय उर्दू अंगरेजी मूडी वगैरहका पत्र भेजेंगे तो वह विना तामील किये रद्दीमें डाल दिया जायगा और जवाबी कार्ड वा टिकट आये बिना जवाब भी प्रायः नहि दिया जाता!

हमारा पता—**पन्नालाल बाकलीवाल**
पो. गिरगांव, बम्बई।

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

पंचम भाग } मार्गशीर्ष और पौष श्रीवीरनिर्वाण सं. २४३५। { अंक २-३

विद्वद्रत्नमाला।

(१) श्रीमदमितगति यतिपति।

(२)

गतांकका लेख लिख चुकनेके पीछे हमको श्रीअमितगति सूरिके दो ग्रन्थोंका और भी पता लगा, जिनमेंसे एकका नाम **योगसार प्राभृत** अथवा **अध्यात्मतरंगिणी** और दूसरेका **पंचसंग्रह** है। योगसारमें ५५० के करीब अनुष्टुप श्लोक हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, चारित्र, और उपसंहार इसप्रकार नौ अध्याय हैं। और प्रायः प्रत्येक अध्यायमें पचास २ श्लोक हैं, अन्तके दो अध्यायोंमें सौ सौ के अनुमान श्लोक हैं। विषय नाम ही से प्रगट है। योगियोंको उपयुक्त विषयोंका ध्यानावस्थामें किसप्रकार चिन्तवन करना चाहिये, बहुत सरल शब्दोंमें इसीका उपदेश दिया गया है। जो प्रति हमारे देखनेमें आई वह संवत १५५२ की लिखी हुई है। और प्रायः शुद्ध है। उसमें आदिके १०–१२ श्लोक नहीं हैं। एक पत्रका अभाव है। ग्रन्थके अन्तमें ग्रन्थ लिखानेवालोंकी तो बडी लम्बी चौड़ी प्रशस्ति लिखी है, परन्तु ग्रन्थकर्ताके विषयमें विशेष कुछ भी नहीं लिखा है। जो कुछ लिखा है, उससे केवल नामका पता लगता है;—

दृष्ट्वा सर्वं गगननगरस्वप्नमायोपमानम्
निःसङ्गात्मा**मितगति**रिदं प्राभृतं **योगसारम्** ।
ब्रह्मप्राप्त्या परममकृतं स्वेषु चात्मप्रतिष्ठम्
नित्यानन्दं गलितकलिलं सूक्ष्ममत्यक्षलक्ष्यम् ॥ १ ॥
योगसारमिदमेकमानसः प्राभृतं पठति योऽभिमानतः ।
स्वस्वरूपमुपलक्ष्य सोऽचितः सम्प्रयाति भवदोषवञ्चितम् ॥ २ ॥

इति श्री**अमितगति वीतराग**विरचितायामध्यात्मतरंगिण्यां नवमोऽधिकारः ।

इसका सारांश यह है कि, सम्पूर्ण संसारको आकाश नगरके समान स्वप्नकी माया समझकर **श्रीअमितगति** नामक निर्ग्रन्थ मुनिने ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये यह नित्यानन्दस्वरूप पापरहित, सूक्ष्म, अतीन्द्रिय गोचर योगसार नामका ग्रन्थ बनाया जो लोग इसे एकचित्त होकर सन्मानपूर्वक पढेंगे, वे अपने स्वरूपको पाकर संसारके पापोंसे मुक्त हो जावेंगे ।

यह ग्रन्थ हमको केवल एक घंटे तक देखनेका अवसर मिला, इसलिये हम इसे अच्छी तरहसे नहीं देख सके, तो भी जितने श्लोक पढे वे बहुत ही उत्तम और हृदयग्राही मालूम हुए । अमितगतिके ग्रन्थोंमें यह बडी खूबी है कि वे कठिन नहीं हैं । सरल भाषामें ही उन्होंने अच्छे २ गंभीर विषय कहे हैं ।

इस ग्रन्थमें अध्यात्मकी ओर विशेष झुकाव दिखता है इससे तथा अपने नामके साथ जो वीतराग विशेषण दिया है, इससे अनुमान होता है कि, यह ग्रन्थ पहले ग्रन्थोंके बहुत पीछे बना होगा ।

दूसरे ग्रन्थका नाम **पंचसंग्रह** है । इसकी एक प्रति **ईडर**के ग्रंथसंग्रहालयमें संवत् १५२४ की लिखी हुई है । हमको उसकी प्रशस्ति मात्र प्राप्त हुई है । वह इस प्रकार है:—

श्री**माथुरा**णामनघद्युतीनां संघोऽभवद्वृत्तिविभूषितानाम् ।[1]
हारोमणीनामिव तापहारी सूत्रानुसारी शशिरश्मिशुभ्रः ॥ १ ॥

---

१ इस श्लोकमें माथुर संघको मणियोंके हारकी उपमा दी है और उसे दोनों पक्षमें घटित की है । पापरहित प्रकाशवाले (निर्मल कान्तिवाले) वृत्तों करके शोभायमान (वृत्तरूप अर्थात् गोलमणियोंसे शोभायमान) तापको हरन करनेवाला, सूत्र अर्थात् सिद्धान्त वचनोंका अनुसरण करनेवाला (सूत्र अर्थात् सूतमें

माधवसेन गणीगणनीयः शुद्धतमोऽजनि तत्र जनीयः।
भूयसि सत्यवतीव शशाङ्कः श्रीमति **सिन्धुपतावकलङ्कः** ॥ २ ॥
शिष्यस्तस्य महात्मनो**ऽमितगति**र्मोक्षार्थिनामग्रणिः
रेतच्छास्त्रमशेषकर्म्मसमितिप्रख्यापनायाकृत ।
वीरस्येव जिनेश्वरस्य गणभृद्ध (व्यात्मनां) व्यापको-
दुर्वारस्मरदन्तिदारुणहरिः **श्रीगौतमः** सत्तमः ॥ ३ ॥
यदत्र सिद्धांतविरोधि बद्धं ग्राह्यं निराकृत्य तदेतदार्यैः।
गृह्णन्तिलोका ह्युपकारि यत्नात्त्वचं निराकृत्य फलं विनम्रं ॥ ४ ॥
अनीश्वरी केवलमर्चनीयं (यावच्चिरं) तिष्ठति मुक्तिशुक्तौ
तावद्धरायामिदमत्र शास्त्रं स्तुयाच्छुभं कर्मनिराशकारि ॥ ५ ॥
इत्यमितगतिकृतः पञ्चसंग्रहः समाप्तः ।

इसका सारांश यह है कि, जिस समय कि महाराजा **सिन्धुपति** (भोजके पिता) पृथ्वीका पालन करते थे, उस समय कीर्तिशाली माथुरसंगमें एक **माधवसेन** नामके आचार्य हुए जिनके गौतमगणधरके समान विद्वान शिष्य **अमितगतिने** यह पंचसंग्रह ग्रन्थ सम्पूर्ण कर्मसमितियोंकी प्रख्यापनाके लिये बनाया। इसमें यदि कोई बात शास्त्रविरुद्ध हो, तो उसका निराकरण करके सार ग्रहण करना चाहिये, जैसे छिलके निकाल करके लोग उपकारी फलको काममें लाते हैं।

इस प्रशस्तिमें ग्रन्थके बनानेका समय नहीं लिखा है, परन्तु दानवीरशेठ माणिकचन्दजीके यहां जो प्रशस्तिसंग्रह पुस्तक है, उसमें इसके बननेका समय संवत् १०७३ लिखा हुआ है, जिससे मालूम होता है कि, प्रशस्तिका एकाध श्लोक जिसमें संवत्का उल्लेख होगा, छूट गया है। यदि यह संवत् ठीक है, तो कहना चाहिये कि, पंचसंग्रहकी रचना **धर्मपरीक्षासे** ३ वर्ष पीछे हुई है।

इस प्रशस्तिसे यह भी मालूम होता है कि, ग्रन्थकर्त्ताके गुरुवर्य **श्री माधवसेन सूरी** महाराजाधिराज भोजके पिता तथा मुंजके भाई सिंधुपतिके

कीया हुआ) और चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्वल माथुरसंघ मणियोंके हारकी समान उत्पन्नहुआ। (१) इस श्लोकके पूर्वार्द्धका भाव समझमें नहीं आया।

२ अनेक लोगोंका ऐसा मत है कि, मुंज भोजके पितामह थे, परन्तु जैनग्रन्थोंसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि, मुंज भोजके पितृव्य (बडे काका) और सिंधुराजके भाई थे। सिंधुलके पिताके सन्तान नहीं होती थी, इस लिये उन्होंने

समयमें जिन्हें **सिन्धुल सिन्धल सिन्धुराज कुमारनारायण और नवसाहसांक** भी कहते हैं, हुए थे। सिन्धुल बडे प्रतापशाली राजा थे। भक्तामर चरित्रमें इनकी वीरताकी बहुत कुछ प्रशंसा लिखी है। ये परमारवंशके मुकुटमणि थे। म्लेच्छ राजाओंपर इन्होंने विजयश्री प्राप्त की थी। डाक्टर बुल्हरने एफिग्राफिया इंडिकाकी पहली जिल्दके २३६–२३८ पृष्ठमें जो प्रशस्ति लेख प्रकाशित किया है, उसमें लिखा है;—

तस्यानुजो निर्जितहूणराजः श्री**सिन्धुराजो** विजयार्जितश्रीः।
श्रीभोजराजोऽजनि येन रत्नं नरोत्तमाकम्पकृदद्वितीयम् ॥ १ ॥

इस प्रशस्तिसे यह भी मालूम पड़ता है कि, सिन्धुराजने मुंजके पहले कुछ समय तक उज्जयनीका राज्य किया है, क्योंकि इसमें जो " अवति सति ?" पद दिया है, उससे सिंधुलमहाराजके राज्य करनेमें कोई संदेह नहीं रहता है तब अनेक ग्रन्थों और शिलालेखोंमें मुंजके पश्चात् सिंधुलका नाम मिलता है, वह इस अभिप्रायसे जान पडता है कि, मुंज सिंधुलके बडे भाई थे, तथा मुंजके पश्चात् सिंधुलके पुत्र भोजका राज्याभिषेक हुआ था। अमितगतिने संवत् १०५० में सुभाषितरत्नसंदोह बनाते समय मुंजका राज्यकाल बतलाया है, और अपने गुरुके समयमें सिंधुल महाराजका राज्य बतलाया है। इससे यही निश्चय होता है कि, मुंजके पहले ही सिंधुल राज्य कर चुके थे। इसके पश्चात् मुंजने उन्हें राज्यसे निकाला होगा। मुंजके पीछे उनका राजा होना सिद्ध नहीं होता है। क्योंकि उनके पीछे उन्हींके पदपर संवत् १०७८ में भोज महाराजका राज्याभिषेक हुआ था, जब कि कल्याणमें वे तैलिप देवके द्वारा फांसी पर लटकाये जा चुके थे।

पहले एक मुंजके खेतमें पडे हुए नवजात बालकको पालकर उसका नाम मुंज रक्खा था। उसके थोडे ही दिन पीछे उनके सिंधुलका जन्म हुआ था। मुंज बुद्धिशाली था, और उसपर राजाका प्यार अधिक था, इसलिये उन्होंनें उसीको राजकार्य सौंप दिया। पीछे पिताके मरजाने पर सिंधुलके पराक्रमको देख मुंजको ईर्षा उत्पन्न हुई। इसलिये उन्होंने उसे देशसे निकाल दिया था। और दूसरी बार लौटकर आने पर नेत्र फोड दिये थे। अंधावस्थामें उनके भोजदेवने जन्म लिया था।

इस प्रशस्तिसे कुछ कुछ आभास इस बातका भी होता है कि, सुभाषित रत्नसंदोहकी रचनाकालमें अमितगतिको आचार्यपद मिल गया होगा। क्यों कि माधवसेनका स्वर्गवास सिंधुमहाराजके समयमें ही हो गया होगा। यदि ऐसा न होता तो पंचसंग्रहकी प्रशस्तिमें जो कि १०७३ संवत् के लगभग लिखी गई है, अमितगति महाराज सिंधुलके साथ मुंजका नाम भी अवश्य लिखते। श्रीविश्वभूषणकृत भक्तामरचरित्रमें **सिंधुल** और **मुंज** दोनोंको उनके पिता राज्यकार्य सौंप गये थे, ऐसा लिखा है। अर्थात् उनके मतसे वे दोनों ही एक साथ राज्य करते थे।

अथवा यदि माधवसेन मुंजके राज्यकाल तक रहते, तो उनके समयके अन्तिम राजा मुंजका नाम ही लिखा जाता। अभिप्राय यह है कि, मुंजके राज्यकालके प्रारंभमें ही अमितगति महाराज आचार्य पदवीसे भूषित हो गये थे।

माथुरसंघ और काष्ठासंघ।

गतांकके लेखमें इस बातका सन्देह रह गया था कि, माथुरसंघ काष्ठासंघका भेद है, अथवा कोई स्वतंत्र संघ है। परन्तु अब भलीभांति निश्चय हो गया है कि, माथुरसंघ काष्ठासंघका ही अन्तर्भेद है। काष्ठासंघकी पट्टावलीमें जो कि, **श्रीसुरेन्द्रकीर्ति** आचार्यकी बनाई हुई है, लिखा है कि,

> **काष्ठासंघो** भुवि ख्यातो जानन्ति नृसुरासुराः।
> तत्र गच्छाश्च चत्वारो राजन्ते विश्रुताः क्षितौ ॥ १ ॥
> **श्रीनन्दितट**संज्ञश्च **माथुरो बागडाभिधः**।
> **लाडबागड** इत्येते विख्याताः क्षितिमण्डले ॥ २ ॥

अर्थात् काष्ठासंघमें **नान्दितट**[1], **माथुर**[2], **बागड**, **लाडबागड**[3] ये चार गच्छ हैं। माथुरगच्छको माथुरसंघ लिखनेकी भी परिपाटी है। जैसे मूलसंघको भी संघ कहते हैं, और उसके नंदिदेव आदि चार भेदोंको भी संघ कहते हैं, और

---

१ **नन्दीतट** गच्छकी गद्दी निजामराज्यके मलखेड संस्थानमें है। इस समय उक्त गद्दीके पट्टाधीश **श्रीरत्नकीर्ति**जी हैं। २ दिल्लीमें जो भट्टारककी गद्दी थी और **पं० शिवचद्रजी** जिस गद्दीके शिष्य थे, सुनते हैं वह **माथुर** गच्छकी थी। ३ **लाडबागडा** गच्छकी गद्दी बहुत करके कारंजा (अमरावती) में होगी।

कहते हैं। उसी प्रकारसे यह भी हैं। माथुरसंघ काष्ठासंघका भेद है, इसं हमने और भी दो तीन प्रमाण एकत्र किये थे, परन्तु अब उन सबके प्रग करनेकी आवश्यकता नहीं दिखती है। क्यों कि यह पट्टावलीका प्रमाण सबां प्रबल है।

अमितगति काष्टांसघी ही थे, इसका भी एक प्रमाण मिला है। **श्रीभूष सूरी**कृत **प्रतिबोधचिन्तामणि** ग्रन्थके प्रारंभमें जो आचार्य परम्पराव वर्णन है, उसमें लिखा है:—

> भानुभूवलये कम्रो **काष्ठासङ्घाम्बरे** रविः।
> **अमितादिगतिः** शुद्धः शब्दव्याकरणार्णवः॥

इस श्लोकके अन्तिम चरणसे ऐसा जान पड़ता है कि, शायद अमितगतिं कोई व्याकरणका ग्रन्थ भी बनाया होगा। अथवा उनकी व्याकरणविद्यामें बहु ख्याति थी।

काष्टासंघकी उत्पत्ति।

काष्टासंघको हमारे यहां जैनाभास[1] माना है, इसका तथा उसकी उत्पत्तिक वृतान्त भी हमको **श्रीदेवसेन सूरि**के **दर्शनसार**[2] ग्रन्थमे मालूम हुअ है। वह इस प्रकार है:—

> सिरि **वीरसेण** सिस्सो **जिणसेणो** सयल सत्थ विण्णाणी।
> सिरि **पउमणंदि** पच्छा चउसंघसमुद्धरणधीरा॥ ३१॥
> तस्स य सिस्सो गुणवं **गुणभद्दो** दिव्वणाण परिपुण्णो।
> पक्खोववास मंडी महातवो भावलिंगो य॥ ३२॥

---

१ उक्तंच इन्द्रनन्दिकृत नीतिसारे—

> गोपुच्छकः श्वेतवासा द्राविडो यापनीयकः।
> निःपिच्छिकश्चेति पञ्चैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः।

अर्थात् गोपुछक (काष्टासंघ) श्वेताम्बर, द्राविडीय, यापनीय और निःपिच्छिक, ये पांच जैनाभास कहे गये हैं।

२ **श्रीदेवसेनसूरि**ने दर्शनसार ग्रन्थ विक्रमसंवत् ९०९ में **धारा** नगरीके पार्श्वनाथ चैत्यालयमें बनाया था, ऐसा उसकी प्रशस्तिसे विदित होता है। अर्थात् काष्टासंघके उत्पत्तिके केवल १५० वर्ष पीछे इस ग्रन्थकी रचना हुई थी।

तेण पुणो वि य मुचं णेउण मुणिस्स **विणयसेणस्स।**
सिद्धंतं घोसित्ता सयं गयं सग्गलोयस्स ॥ ३३ ॥
आसी **कुमारसेणो** णंदियडे विणयसेण दिक्खयओ।
सण्णास भंजणेण य अगहिय पुण दिक्खओ जाओ ॥ ३४॥
परि वज्जऊण पिच्छं चमरं थेतण्ण (?) मोहकलिदेण।
अस्मग्गासं (?) कलियं बागड विसएसु सव्वेसु ॥ ३५ ॥
इत्थीणं पुण दिक्खा छुल्लयलोयस्स वीरचरियत्तं।
कक्कसकेसग्गहणं छट्ठं च गुणव्वदं णाम ॥ ६६ ॥
आयमसच्छ (?) पुराणं पायच्छितं च अण्णहा किंपि।
विरइत्ता मिच्छतं पवट्टियं मूढलोयेसु ॥ ३७ ॥
सो सवणसंघ वज्झो कुमारसेणो हु समयमिच्छत्तो।
चत्तोवसमोसद्दो **कट्ठसंघं** परूवेदि ॥ ३८ ॥
सत्तसए तेवण्णे **विक्कमरायस्स** मरणपत्तस्स।
णंदियडे वरगामे कट्ठोसंघो मुणेयव्वो ॥ ३९ ॥

अर्थात्—**श्रीवीरसेन के** शिष्य **भगवज्जिनसेन** सम्पूर्ण तत्त्वोंके ज्ञाता चतुःसंघका उद्धार करनेवाले और धीर वीर हुए। ये **श्रीपार्श्वनन्दिके** पश्चात् आचार्य पदपर प्रतिष्ठित हुए। फिर इनके **गुणभद्र** नामके शिष्य हुए, जो दिव्यज्ञान परिपूर्ण, पक्षोपवास करनेवाले थे। इन्होंने **श्री विनयसेन** मुनिको सिद्धांत शास्त्रोंका उपदेश देकर स्वयं स्वर्ग लोकको गमन किया। अर्थात् गुणभद्रस्वामी के पश्चात् श्रीविनयसेन आचार्य हुए। और विनयसेन का एक

१ मूलमें **पउसणंदि** पाठ है उसकी छाया **पार्श्वनन्दि** ही हमने ठीक समझी है। ऐसा जान पडता है कि, **श्रीवीरसेनके** पश्चात् पट्टके आचार्य श्रीपार्श्वनन्दि हुए होंगे और उनके पश्चात् वीरसेनके शिष्य जिनसेन हुए होंगे

२ **विनयसेनमुनि** जिनसेनके सतीर्थ (एक गुरुके शिष्य) थे, ऐसा **पार्श्वाभ्युदय** काव्यकी प्रशस्तिसे जान पडता है। यथा,—

श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृङ्गः श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान्।
तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण काव्यं व्यधायि परवेष्टितमेघदूतम् ॥ १ ॥

परन्तु **जिनसेनके** पश्चात् पट्टके आचार्य **गुणभद्र** हुए होंगे, और फिर उनके पश्चात् **विनयसेन** हुए होंगे ऐसा इस ग्रन्थसे विदित होता है।

कुमारसेन नामका शिष्य हुआ। उसने एक वार सन्यास भंग करके फिर दीक्षा नहीं ली और मयूरपिच्छी छोडकर गोपुच्छकी पिच्छी ग्रहण करली। तथा **बागड** देशमें जाकर अपने संघकी स्थापना की। उसने स्त्रियोंको दीक्षा देनेकी, क्षुल्लक लोगोंको वीरोंकीसी चर्या करनेकी, और कठोरकेशोंकी पिच्छी रखनेकी विधिका निरूपण किया।: इसके सिवाय उसने छट्टे गुणस्थान[1]का कुछ और ही स्वरूप निरूपण किया, झूठे (?) पुराणोंकी रचना की, प्रायश्चित्त शास्त्रमें भी कुछ फेरफार किया। और मूढ लोगोंमें एक मिथ्यात्वकी प्रवृत्ति करदी। इसतरह उस श्रमण संघसे (दिगम्बरसंघसे) बाहर किये हुए, समय-मिथ्यादृष्टि उपशमको छोड देनेवाले रौद्र कुमारसेनने काष्ठासंघकी जड जमाई। यह काष्ठासंघ विक्रम राजाकी मृत्युके ७५३ वर्ष पश्चात् नन्दीतट नगरमें उत्पन्न हुआ था।

जयपुर निवासी पंडितवर्य **जवाहरलालजी** साहित्यशास्त्रीके पत्रसे विदित हुआ कि, **बुलाकीचन्द्र**कृत **वचनकोश**में (जो कि संवत् १७३७ में वना है) काष्ठासंघकी उत्पत्तिके विषयमें एक दूसरे ही प्रकार की कथा लिखी है। वह इसप्रकार है कि, " **उमास्वामीके** पट्टपर जो श्री**लोहाचार्य**जी विराजमान हुए, उनके शरीरमें एक वार असाध्यरोग हो गया। उससे मुक्त होनेकी आशा न समझकर अन्यआचार्योंने उन्हें अन्तःसन्यास धारण कराके चारों प्रकारके आहारका त्याग करा दिया। परन्तु दैवात्, उनका रोग धीरे २ शमन होने लगा, और अन्तमें वे सर्वथा नीरोग हो गये। उस समय उन्होंने क्षुधातुर होकर अन्नपान ग्रहण करनेकी आज्ञा मागी परन्तु दूसरे आचार्योंने उन्हें ऐसा करनेकी आज्ञा नहीं दी समाधिमरण करनेकी ही विधि

---

१ दर्शनसारकी जो हमारे पास प्रति है, उसकी टिप्पणीमें लिखा है, कि, रात्रि भोजनत्यागको छट्टा गुणव्रत माना. परन्तु यह ठीक नहीं है। धर्मपरीक्षामें पांच अणुव्रत और तीन गुणव्रत मूलसंघके समान ही माने हैं छह गुणव्रत नहीं माने हैं। काष्ठासंघमें छट्टे गुणस्थानमें ही कोई अन्तर होगा।

२ काष्ठासंघी पद्मपुराण हरिवंशपुराणकी कथाओंमें और मूलसंघी कथा ओमें (उत्तरपुराणके अनुसार) क्या २ फर्क है. इस विषयमें यदि कोई विद्वान लेख लिखेगा, तो हम उसे सहर्ष प्रकाशित कर देंगे।

बतलाई। लोहाचार्य क्षुधावेदनाको सहन नहीं करसके इसलिये वे आचार्योंकी आज्ञा पालन करनेमें समर्थ न हुए। उन्होंने अन्नपान ग्रहण कर लिया। इस अपराधमें वे संघसे बाहेर कर दिये गये और उनके पट्टपर अन्य किसी आचार्यकी स्थापना हो गई। लोहाचार्यजी संघस निकलकर **अगरोहा** नगर आये जहांपर अगरवालोंकी बहुत बडी बस्ती थी। यद्यपि वे सब अन्यम तावलम्बी थे, परन्तु उन दिनों लोहाचार्यका बहुत बडा प्रभाव था इसलिये उनका आगम सुनकर अगरवालेंोन भोजनके लिये प्रार्थना की। परन्तु लोहाचार्यने कहा कि, हम मिथ्यादृष्टिके घर आहार नहीं कर सकते हैं। यदि तुमलोक जैनधर्मग्रहण करना स्वीकार करो, तो हम भोजन कर सकते हैं। उनकी विद्वत्ता और तपस्याका अगरवालोंपर इतना प्रभाव पडा कि वे लोग जैनधर्मको ग्रहण करना अस्वीकार न कर सके। कोई ७०० अग्रवालोंने जैनधर्म स्वीकार कर लिया, और लोहाचार्यजीको खूब उत्सवके साथ नगरमें ले जा कर भोजन कराया। पीछे वहां जैनमन्दिर बनवाया गया और तत्काल पाषाणकी प्रतिमा न मिल सकनेके कारण उसमें काष्ठकी प्रतिमा स्थापित कराई गई। यह बात जब मूलसंघके आचार्योंनें सुनी तब उन्होंने मिथ्यातियोंको जैन बनानेके उपलक्षमें तो लोहाचार्यकी बहुत प्रशंसा की परन्तु काष्टकी प्रतिमाके लिये निषेध किया। किन्तु लोहाचार्यने यह भी नहीं माना इसके सिवाय गायकी पूंछकी पिच्छी लेनेकी भी उन्होंनें पद्धति चला दी और इन सबका प्रायश्चित्त लेनेको भी वे स्वीकृत न हुये उन्होंने एक स्वतंत्ररूपसे अपने संघ की स्थापना की, जो कि पीछेसे वह काष्टासंघके नामसे प्रख्यात हुआ।" परन्तु इस कथामें जो लोहाचार्यकेद्वारा इस संघकी स्थापना बतलाई गई है, उसपर विश्वास नहीं किया जा सकता है क्योंकि उमास्वामी विक्रमकी पहली शताब्दीमें हुए हैं, जिस समय कि दिगम्बर सम्प्रदायमें एक भी मतभेद नहीं हुआ था। उस समय काष्टासंघका नाम भी नहीं था। विक्रमकी सातवीं शताब्दिक पहलेके किसी भी ग्रन्थमें काष्टासंघका नाम नहीं मिलता है। इसके सिवाय श्रीदेवसेन सूरिने काष्टासंघके केवल १५० वर्ष पीछे जो काष्टासंघकी उत्पत्ति लिखी है, उसपर जितना विश्वास किया जा सकता है, उतना वचनकोशके कथनपर नहीं हो सकता है। देवसेन सूरिका वर्णन विशेष विश्वस्त होनेका एक कारण यह भी है कि, उन्होंने कुमारसेनका समय और उसकी गुरु परम्परा बिलकुल ठीक २ बतलाई है। अन्य ग्रन्थोंके

द्वारा भी जिनसेनादिका समय उनके कथनसे बराबर मिलता है। वचन कोशके कर्त्ताने काष्ठासंघके उत्पादक बतलाये तो लोहाचार्यको है, परन्तु उनका समय वही विक्रम संवत् ७५३ लिखा है। जो कि लोहाचार्यके समयसे किसी भी प्रकार नहीं मिल सकता है। इससे भी वचनकोशकी कथा किसी किंवदन्तिके आधारसे लिखी हुई जान पडती है। हां, उसमें जो सन्यासमरण न करनेकी तथा गोपुच्छ ग्रहण करनेकी बात है। वह अवश्य दर्शनसारके कथनसे मिलती है, और उसका वह अंश है भी सर्वानुमत।

मतविरोध।

स्त्रियोंकी दीक्षा, क्षुल्लक लोगोंकी वीरचर्या, प्रायश्चित्त आदि विषयोंमें काष्ठासंघका जो मतभेद है, उससे हम भलीभांति परिचित नहीं हैं, इसलिये हमें काष्ठासंघको जैनाभास कहना कुछ अटपटा मालूम पडता है। और दर्शनसार जैसे प्रामाणिक ग्रन्थका प्रमाण पाकर भी हमारे हृदयमें अभी बहुतसे सन्देह विद्यमान हैं। विद्वानोंसे प्रार्थना है कि, वे इस विषयका स्पष्टीकरण करके समाजका उपकार करें।

अभीतक हमारे यहां पदमपुराणादि बडे २ पुराण ग्रन्थ काष्ठासंघके ही प्रचलित हो रहे हैं, और समाजका बहुत बडा भाग इन्हीं ग्रन्थोंकी कथाओंपर श्रद्धान करनेवाला है। इसके सिवाय अमितगति श्रावकाचारादि अन्यान्य ग्रन्थ भी काष्ठासंघके प्रचलित हैं, जिन्हें लोग सब प्रकारसे प्रमाण मानते हैं! कोई नहीं कहता है कि ये सब ग्रन्थ जैनाभासोंके बनाये हुए हैं। इससे यह जान पडता है कि, काष्ठासंघ और मूलसंघमें पहले पहल लगभग विक्रमकी दशवीं शताब्दीमें जो विरोध था, वह आगे वृद्धिंगत नहीं हुआ. धीरे २ घटता गया और इस समय तो उसका प्राय: नामशेष ही हो चुका है। इस समय **तेरह** और **वीसपंथमें** जितना विरोध दिखलाई देता है, हमारी समझमें काष्ठासंघ और मूलसंघमें उतना भी विरोध नहीं रहा है। और यदि दोनों संघके अनुयायियोंने बुद्धिमत्तासे काम लिया तो आगे सदाके लिये इस विरोधका अभाव हो जावेगा।

इस समय काष्ठासंघके अनुगामियोंको पृथक् छांटना भी कठिन हो गया है। **अग्रवाल नरसिंह मेवाडा** थोडीसी जातियां इस संघकी अनुगामिनी

हैं, और उनके भट्टारकोंकी गद्दी दिल्ली, मलखेड, कारंजा, आदि स्थान
है। परन्तु श्रावकोंमें अक्षतके पहले पुष्पपूजा तथा भट्टारकोंमें मयूरपिच्छि
स्थानमें गोपुच्छ रखनेके सिवाय और कोई भेद नहीं जान पडता है। दो
संघके श्रावक एक दूसरेके मन्दिरमें आते जाते हैं, और एक ही आचार विचा
रहते हैं। क्षुल्लकोंकी वीरचर्या, स्त्रियोंकी दीक्षा, प्रायश्चित्तादि विवादविष
बातोंका आज कल काम ही नहीं पडता है। इसलिये शेष बात
काष्ठासंघ और मूलसंघका एकमत हो हिल मिलकर रहना कुछ आश्चर्य
विषय नहीं है।

काष्ठासंघके विषयमें यदि हमें और कुछ परिचय मिलेगा तो आगे कि
मौकेपर फिर प्रकाशित करेंगे अलमति विस्तरेण।

देवरी (सागर)
ता० १९-१२-०८

नाथूराम प्रेमी।

सम्पादकीय।

जैनपताकामें आजकल छापेके विरोधियोंने गालियें देने धोका देने
भोले भाईयोंको छापनेके विषयमें कुछका कुछ श्रधान करानेवाले झूटे लेख दे
ही परम धर्म समझ लिया है। परन्तु इस प्रकारके लेखोंसे छापेका प्रचार क
बंद नहीं होगा। छापे का प्रचार बंध करना हो तो पहिले हाथके लिखे
छापेके भावसे देनेका कार्यालय खोलिये और फिर जैनी भाइयोंको उ
देकर छपे ग्रंथोंसे विरक्त करना चाहिये जैनपताका भी अशुद्ध छापेमें न छा
हाथसे ही लिखकर भेजना चाहिये। अन्यथा जातिमें वैर विरोध फैल
सिवाय निरी गालियोंके लेखोंसे कुछ नहिं होगा।

जैनपताकामें धोकेबाजी।

पाठक महाशय! जैनपताका अंक ३-४ में-हकीम कल्याणरायजीके धो
जीके प्रश्नोंके उत्तर किसी पन्नालाल बाकलीवालके नामसे छपे हैं। उत्तर
बाकलीवालजीने जैसी चतुराईसे जैनपताकाके ग्राहकोंको धोका दिया है
प्रकार जैनपताकाके सम्पादक महाशयने भी उत्तरदाता पन्नालालजी बा

कका नामके साथ गांव न छापकर अपने पाठकोंको ऐसा धोका दिया है
ससे पताकाके भोलेभाले पाठक समझ ले कि यह लेख बंबईवाले पन्नालालकाही
मारा ही) भेजा हुआ है। अगर यह बात नहीं है और उत्तर देनेवाले भाईसा-
ने ही अपने नामके साथ गांव लिखकर परिचय देनेसे संपादकको मना कर
ा हो तो खेद है कि उन्होंने अपने पन्नालाल नामको और बाकलीवाल
को डरपोकपनके कलंकसे कलंकित किया है।

प्रान्तिकसभाका अधिवेशन।

अबकी बार दिगम्बरजैनप्रान्तिकसभाका अर्थात् मेसर्स हीराचन्द माणिक-
द लल्लूभाई एन्ड को० का बार्षिक खेल ता २५ से २८ तक तारंगाजी तीर्थ
नपर होगा। देखिये क्या क्या प्रस्ताव होते हैं। जैनमित्रको जीवित रखते
कि समाप्त करते हैं।

महासभाका वार्षिक नाटक।

अबकी वार महासभाका बार्षिक नाटक श्रवणबेलगुलमें होनेवाला है परन्तु
वेशनमें विचार होने योग्य प्रस्ताओंका निबेडा तो महासभाके चालक महा-
अपने घरमें ही कर लेते हैं फिर अधिवेसनमें क्या करेंगे ?

स्याद्वादपाठशालाको महाविद्यालयमें मिलाना।

महासभाके गतवर्षके अधिवेशनमें महाविद्यालयका स्थान परिवर्तन करनेके
ने महाविद्यालयको स्याद्वादपाठशालामें मिला दिया है अर्थात् स्याद्वाद
शालाके मासिक खर्चमें ही अपना खर्च घटाकर महाविद्यालयका नाम था
जुदा रखा है। परन्तु महासभाके मुख्य कार्यकर्त्ताओंको इससे सन्तोष नहीं
दिखता और वह असन्तोष इतना दुखदायी होगया कि—महासभाका
क अधिवेशन फाल्गुणमें गोमट्टस्वामीके मस्तकाभिषेकके उत्सव पर होने-
है उस दिनतक सबर नहिं करके ता. ३० दिसंबरको ही कानपुरमें एक
ी करके अनाथ हुई स्याद्वादपाठशालाके पृथक् एकत्र हुये चंदेको महाविद्यालय
रमें हडप जानेका उपाय किया सुना है। अर्थात् इस कमेटीमें महाविद्यालय
स्याद्वादपाठशालाका नामशेष करके दोनोंकी सामलातका कोई नया नाम
ा चाहिये और दोनों भंडारोंको एक कर देना चाहिये परंतु जब महा-

सभाका अधिवेशन फाल्गुणमें होनेवाला है तब इतनी जल्दी कानपुरमें कर्म करके कुलडीमें गुड क्यों फोडा जाता है? ऐसी क्या जल्दी है? क्या स्याद्वादपा शालाका रुपया कहीं भागा जाता है? या और ही कुछ दालमें काला है? व इस कठिन समस्याका महासभाके कर्ताहर्त्ता कर्मचारी बाबूगण गूढाशय बता समाजका सन्देह भंजन करेंगे?

महाराष्ट्रखंडेलवालदिगंबरीजैनपंचमहासभा।

इस नामकी एक सभाका प्रारंभ कचनेरजीके मेलेपर हुआथा प्रत्येक जातिकी उन्नत्यर्थ ऐसी सभाओंके स्थापन होनेकी आवश्यकता है। हर्षकी ब है कि सबसे पहिले महाराष्ट्र देशकी खंडेलवाल जातिने ही यह साहस कि है। हम आशा करते हैं कि माघ सुदी १३-१४-१५ के दिन गजपंथ तीर्थपर वार्षिक मेला होता है उसपर महाराष्ट्रदेशके अनेक खंडेलवाल भाई अ हैं सो इस सभाका प्रथम अधिवेशन होकर कुछ काम करनेका सिलसिला ह लना चाहिये। यह काम बहुत बडा और परम लाभदायक है इसमें प्रत्ये गांवके बुद्धिमान धनवान् खंडेलवाल भाइयोंको आगे होकर काम करना चाहिए और गजपंथ तीर्थपर अवश्य ही इसका अधिवेशन करना चाहिये।

मनोविनोद।

श्रीगिरनारजी तीर्थके रुपये हड़पना।

श्रीगिरनारजी तीर्थपर आराके एक बाबू साहब २४) रु. वर्षकी वर्ष भे हैं। एक साल वे खुद तीर्थक्षेत्रकी बहीमें अपने हाथसे २४) रुपये जमा क सराफी अक्षरोंमें भी चौवीस रुपये लिख आये थे। कुछ वर्ष बाद उक्त बाबू हब तीर्थयात्राको गये तो उन्होंने पिछला हिसाब देखकर वर्त्तमान वर्षतक रुपया चुका देना चाहा इसके लिये कौनसी शाल तक रुपया दिया गया है पुर बहीमें देखना चाहा तो उन्होंने क्या देखा कि तीर्थराजके मुनीमसाहबने २ को काटकर १४) कर दिया और दश रुपये ऊपरके ऊपर उडा गये अक्षर चोवीस ही बने रहे। बाबू साहबने उसी वक्त प्रबन्धकर्ता प्रतापगढके सेठ साह (जो कि वहां मौजूद थे) इस अन्यायकी रिपोर्ट की तो प्रबन्धकर्ता सेठ साह

हा कि बेशक दश रुपये उडा लिये गये। उस मुनीमके पिता यहां पर मौजूद रुका आप उसको यह बात जनाकर पूछिये तो बाबू साहबने मुनीमके पिताको सखे ही वक्त बुलाकर कैफियत मागी। मुनीमके पिताने तडाकसे जबाब दिया कि मार बाबूसाहब! मेरे बेटेने तो २४) मेसे १०) ही उडाये हैं परन्तु ये प्रबंधकर्ता ने छ साहब तो सबका सब हडप जाते हैं इसका भी कुछ न्याय करेंगे या नहीं?" ग बाबूसाहब और उस वक्तके मौजूद जात्री गण सुनकर बडा आश्चर्य करने लगे। बको प्रबंधकर्त्ता महाशयको भी कुछ जबाब नहिं आया।

नोट—यह बात हमने आराके उक्त बाबूसाहबके मुहसे सुनकर लिखी है। अ रनारजी तीर्थके संरक्षक महाशय तीर्थक्षेत्रकमेटीमें हिसाब नहिं भेजते इसकारण इ यह बात सर्वथा सच्ची प्रतीत होती है। सुना है कि आजकल धर्मशाला वगेरहका कुछ नप म छोड रक्खा है जिससे सबको मालूम होता रहै कि-यहांका रुपिया सुमा- कि में लगता है परंतु जब तीर्थक्षेत्रकमेटीमें अभीतक हिसाब देना स्वीकार नहिं किया है तो अवश्य ही दालमें कुछ काला है।

हम यात्रियोंको सूचना देते हैं कि-जिस तीर्थके मुनीम तीर्थक्षेत्रकमेटीकी अ रिपोर्टमें अपने तीर्थका हिसाब छपा हुआ नहिं बतावै तो उस तीर्थके भंडारमें रुपे पैसा कडा या उपकरण कुछ भी नहि देकर बंबई तीर्थक्षेत्रकमेटीमें उसी तीर्थके नामसे भेजकर दानवीर सेठ माणिकचन्दजी **जे. पी.** के हस्ताक्षरोंकी रसीद मगालिया रें। जबतक यात्रीगण ऐसा नहि करेंगे तबतक तीर्थक्षेत्रके संरक्षकगण (भक्षकगण) दापि हिसाब नहिं देंगे। तीर्थक्षेत्रकमेटीको भी चाहिये कि इस आशयके नह पचीस हजार इस्तहार छपाकर प्रत्येक तीर्थपर यात्रियोंको वितरण करनेका ने प्रबंध अवश्य करे।

समालोचना।

सम्मेदशिखरमाहात्म्य—इसको बद्रीप्रसाद जैन बनारस सिटीने बनारसके सुप्रसिद्ध चंद्रप्रभा प्रेसमें बंबइया टाइपमें बहुत सुंदरतासे छपाया है। मजबूत जिल्द सहित न्योछावर।) आने बहुत नहीं है। इसमें प्रथम ही भूमिका, तीर्थराज सम्मेदशिखरजीका माहात्म्यविधान बडा पंडित जवाहिरलालजी रचित अनेक प्रकारके छंदों सहित है जिसमे सब टोंकोंका वर्णन व अर्घ जयमाल स्तुति लावनी वगेरह सविस्तर है। यह पुस्तक प्रत्येक मंदिरजी तथा प्रत्येक जैनीके

घरमें रखनेलायक है। ऐसा कौन जैनी है जो तीर्थराजके माहात्म्य और विधानको बांचकर प्रसन्न नहिं होगा। मिलनेका पता—बद्रीप्रसाद जैन पुस्तकालय बनारस सिटी है परंतु हालमें. तीर्थराज सम्मेदशिखरजीपर मु० मधुबन पोष्ट पारशनाथ जिला हजारी बाग है. इसपतेपर सब जगहके छपे हुए जैनग्रंथ भी मिलते हैं।

जैनपंचाग—(गुजराती) यह गुजराती भाषाके दिगंबरजैनके ग्राहकोंकी भेटके लिये छपाया हुआ गुजराती तिथि-दर्पणका एक बडा भारी कागज है। इसमें स्वर्गीय शेठ प्रेमचंद मोतीचंदका फोटो भी है साधारण तिथि, वार, तारीख, बताई गई है परंतु जैनी लोग कौनसे दिन पूरी तिथि मानेंगे यह नहीं दिखाया गया है इससे **जैनपंचांग** नहिं कह सकते घडियां भी नहिं लिखीं जो हिसाब जानकर जैनतिथिका निर्णय करलेते। इसके सिवाय नाममें '**पंचांग**' शब्द भी नहिं डालना चाहिये क्योंकि पंचांगमेंसे तिथि और वार ये दोही अंग छपे हैं। नीचें तीर्थोंकी यात्रा तथा चतुर्विंशति तीर्थकरोंकी जन्म तथा मोक्ष तिथि भी प्रकाशित की है। बडे कागजमें न छपाकर यदि पुस्तकाकार छपाते तो रखनेके लिये दो तीन आनेका पुट्ठा (गत्ता) न लगाना पडता।

जैनगजट—नये वर्षसे जैनगजटने कुछ नवीनता धारण की है धार्मिक शास्त्रीय लेख भी छपने लगे है सुना था कि नये वर्षसे पुस्तकाकार छपेगा परन्तु प्रथम अंक वैसीही पुरानी साइजमें निकला है। विशेष हर्षकी बात है कि जयपुरनिवासी साहित्यशास्त्री पं० जवाहिरलालजी बाकलीवाल भी इसके सहायक संपादक हो गये हैं।

जैनहितैषीके नये नियम!

गतवर्ष हमने अनेक भाइयोंको छह २ अंक भेज और ग्राहक न बनना हो तो छह अंकोंका मूल्य ही भेजदें परंतु किसीने भी मूल्य नहीं भेजा और अनेक धनाढ्य महाशयोंको तेरह तेरह अंक भेज चुके है परंतु अबतक उन्होंने मूल्य नहिं भेजा। यदि ग्राहक नहीं रहनेकी सूचना दे दे तो भी हम उनका नाम रजिष्टरसे खारीज कर देते परंतु वह भी प्रमादके कारण सूचना भी नहिं देते। इस कारण अबकी बार हमनें नये नियम बनाये हैं। अब इन नियमोंके अनुसार सब कारवाई होगी।

जैनहितैषीका उपहार ।

अबकी बार भी इस छोटेसे पत्रके ग्राहकोंको कविवर वृंदावनजीकृत प्रवचनसारकी ५०० प्रति लुटाई गई है। इस प्रकारकी लूट छोटेसे पत्रके लिये कोई भी नहिं कर सकता है परन्तु इस जैनहितैषी पत्रसे किसीको अपना लाभ नहिं करना है यह पत्र परोपकारके अर्थ ही निकाला गया है इसीकारण ऐसी भेट इसके ग्राहकोंको देते हैं भादों महीनेमें इसकी दूसरी भेटमें नाथूरामप्रेमीकृत ज्ञानसूर्योदयका नवीन अति उपयोगी अनुवाद भी एक विशेष सरतके साथ दिया जायगा! वह सरत ज्ञानसूर्योदय नाटकके छपनेपर प्रगट की जायगी वह सरत कुछ पैसे लेनेकी नहीं होगी बलके डांकखर्च भी किसीसे नहिं लिया जायगा और ज्ञानसूर्योदय नाटक भेटमें दिया जायगा। इसलिये जिनको ऐसे २ अमूल्य २ ग्रंथोंका स्वाध्याय करना हो, वे १॥) रुपया वार्षिक अर्थात् सिर्फ दो आने महीने खर्च करके इस पत्रके ग्राहक बन जांय।

विषेश सूचना ।

हम हवा बदलनेको गजपंथतीर्थ चले गये थे इसकारण इसके प्रकाशित होनेमें विलम्ब हो गया और फिर भी हमें जाना है इसकारण इसके सम्पादक भाई नाथूरामप्रेमीको (जो कि जैनमित्रकी उन्नति करनेवाले सहायक संम्पादक थे) बना दिया है सो अब प्रतिमास नियमसे जैनीभाइयोंकी हाजिरीमें पहुंचता रहैगा!

जैनीभाईयोंका दास—**पन्नालाल बाकलीवाल।**

शोक! शोक!! महाशोक!!!

न मालूम हमारी जैनजातिकी धार्मिक अवस्था क्या होनेवाली है— एक तो जातिमें अशास्त्रीय सुधार करनेवालोंका प्रत्येक धर्मकार्यपर प्राबल्य होता जाता है दूसरी ओर धार्मिक विद्यामें अहोरात्र परिश्रम करके विद्वान् तैयार होते ही दुष्टकाल उन्हे अकालमें ही उठा लेता है! तवनप्पा पार्श्वप्पा का दुःख हृदयसे नहिं गया था कि हालहीमें महाविद्यालयमें १२ वर्षतक पढकर विद्वान् हुए भाई गोरेलालका अकाल परलोकवास होगया! यह नवयुवक विद्वान् व्याकरण धर्मशास्त्रका अच्छा जानकार हुआ था। इंदौरकी जैनबोर्डिंगमें अध्यापक हो गया था और धर्मोन्नति करनेमें कटिबद्ध था परंतु कालने अकालमेंही उससे लाभ उठानेसे जैनसमाजको वंचित करादिया।

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः ।

सुखसाधन प्रथमभाग।[1]

दोहा ।

पंच परमगुरु प्रणमिकरि, जिनवाणी उरधारि ।
सुखसाधन पुस्तक प्रथम, लिखूं सकल हितकारि ॥ १ ॥

सामाजिक सुख ।

समाज ।

समाज एक सुंदर नगर है; इस नगरमें हम सब ही निवास करते हैं। जिस दिन हम लोग विवाहरूपी बंधनसे बंधते हैं, उसी दिनसे ही हमको घर बनाकर इस नगरमें रहना पडता है इसकारण हमको उचित है कि विवाहसे पहिले इस नगरकी प्रकृति, जल, वायु आदि समस्त विषयोंको जान लेवें। यह साधारण नियम है कि हम जब कभी किसी नये स्थानमें रहनेके लिये जाते हैं तो उस स्थानकी आब, हवा, रीति, भांति तथा उस स्थानके रहनेवालोंके चाल चलनसे जानकार होनेका प्रथमहीसे प्रयत्न करते हैं। परन्तु समाजरूपी नगरमें रहनेके लिये तत्पर होनेपर उस समाजकी प्रकृति भाव नियम आदिके विषयमें कुछ भी जाननेका प्रयत्न नहिं करते। जिसप्रकार किसी नये स्थानपर रहनेके लिये

---

(१) इस सुखसाधन ग्रंथमें सामाजिकसुख, गार्हस्थ्यसुख, शारीरिकसुख, मानासिकसुख और आध्यात्मिकसुख ऐसे पांच प्रकारके सुखोंके उपाय वर्णन किये जांयगे। उनमेंसे प्रथमभागमें सामाजिकसुख और गार्हस्थ्यसुखका, दूसरे भागमें शारीरिकसुख और मानसिकसुखका और तीसरे भागमें आध्यात्मिक (पारमार्थिक) सुखका वर्णन किया जायगा।

जानेसे पहिले उस स्थानकी आव हवा, रीतिभांतिसे जानकर नहिं होते हैं तो पीछेसे अनेक प्रकारके दुःख व हानि उठानी पडती है, दुष्ट स्वभावी पडोसियोंसे अनेक प्रकारके नित्य नये कष्ट झेलने पडते हैं, उसीप्रकार जिस समाजमें हम रहना चाहते हैं, उस समाजके नियमादि समस्त विषय अवगत नहिं हो तो हम किसी प्रकार भी सुखी नहीं हो सकते। और सुखका साधन करना ही प्राणीमात्रका कार्य है। इसकारण प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि, जिस समाजमें अपना जन्म हो वा, जिस समाजमें अपनेको रहना हो, उस समाजकी प्रकृति, भाव, धर्म, नियम आदि भलेप्रकार जान लेवें।

मनुष्यजाति मानों एक प्रकारका जीव है। इस जीवका कभी नाश (मृत्यु) नहिं होता है। मनुष्यशरीरकी मृत्यु होती है परंतु मनुष्यजातिकी मृत्यु कभी नहिं होती। इस अमर जीवके (मनुष्यजातिके) एक एक अंगका नाम समाज है। जिस प्रकार मनुष्यके शरीरमें कोई अंग दुर्बल, कोई अंग सबल होता है उसी प्रकार समाजोंमें भी कोई समाज प्रबल, कोई समाज दुर्बल, कोई समाज उन्नत, कोई समाज अनुन्नत, कोई समाज सभ्य और कोई समाज असभ्य होता है। जब कितने ही गृहस्थ एकत्र हो कर किसी एक ही नियमावलीके अनुसार नियमित होकर रहते हैं, तब हम उसे **समाज** कहते है। अर्थात् एक ही रीति नीति, एक ही आचार, व्यवहार और एकही धर्म, कर्म इत्यादि अनेक (पंचायतसे) निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार चलनेवाले स्त्री पुरुषोंके समूहका ही नाम समाज है।

जिसप्रकार यह जगत कितने ही स्थिर और निर्दिष्ट नियमोंके आश्रित है, उसीप्रकार समाज भी कितने ही निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार चलता है। उन सब नियमोंके विरुद्ध कोई भी समाज कदापि कोई कार्य नहिं कर सकता है। जगतका एक नियम यह है कि–एक पदार्थ जिस प्रकृतिवाला होगा, उसका समूह भी सबका सब उसी प्रकृतिवाला होगा। इस जगतके प्रत्येक पदार्थमें अर्थात् उद्भिज, प्राणी, जड पदार्थ आदि समस्त पदार्थोंमें यही नियम परिलक्षित होता है। जिसप्रकार कितनी ही गोलाकार कमानोंके गोले उपर्युपरि सझाकर एक घरके आकारकासा किया जा सकता है किन्तु उत्तम छत्त सहित घरके समान कदापि नहिं किया जा सकता। यदि ईटें उपर्युपरि रखनेसे इस प्रकारका उत्तम घर हो

सकता है, तो गोलाकार कमानोंसे भी होना चाहिये ऐसा समझना भूल है। ठीक इसीप्रकार जिस समाजका प्रत्येक मनुष्य जिसप्रकारके स्वभावका होगा, वह समाज भी उसी स्वभाववाला हो जायगा। अन्यप्रकारका कदापि नहिं हो सकता। इसी कारण ही यदि हम लोग अपने समाजको अंगरेजोंके समाजके तुल्य करना चाहें, तो वह कदापि नहिं हो सकता। क्योंकि जब तक हम प्रत्येक मनुष्य अंगरेजोंकीसी प्रकृतिवाले न हो जांय, तबतक हजारों सभा समितियां, उपदेश बलके कठोरसे कठोर राजनियम भी हमारी समाजको अंगरेजोंकी समाजमें परिणत करनेमें समर्थ नहिं हो सकते। इन सब कारणोंसे हम लोगोंको जानना चाहिये कि एक प्रकारके पदार्थके स्वभावानुसारही उस पदार्थके समूहका आकार गठित होता है (The character of the aggregate is determined by the character of the units) हम लोग प्रत्येक स्त्री पुरुष जिस जिस प्रकृतिवाले हैं, हमारा समाज भी ठीक उसी प्रकृतिवाला हो जायगा।

जिस समाजमें हम लोगोंको रहना है, हम लोगोंको उसी समाजके अनुसार होकर चलना चाहिये। यह समाज मूर्ख है, इस समाजकी उन्नति होना चाहिये, इस समाजको छोड देना ही ठीक है, इस प्रकारके विचार करते हुए दीर्घ निश्वास डालने और चिन्ता करनेमें कोई लाभ नहीं है। जो मनुष्य किसी भी समाजमें रहकर उस समाजकी अवज्ञा करेंगे, वे नानाप्रकारसे दुःखी रहेंगे तथा दूसरोंको भी दुःखी करेंगे। और यदि वे उस समाजको छोड देंगे, तो वे अन्य समाजोंमें प्रविष्ट न होकर समाजरहित (ज्ञातिबहिष्कृत) हो जायगे। इस प्रकार होनेसे उनको सुखकी प्रत्याशा कदापि नहिं हो सकती। क्योंकि प्राकृत नियमोंको उल्लंघन करके यथेच्छाचारी होनेसे दुखका ही प्रादुर्भाव होता है, सुख किसी प्रकार भी नहि हो सकता।

हम लोगोंके समाजोंकी इसी प्रकारसे ही दुःखावस्था हो गई है समाजोंमें जहां तहां यथेच्छाचार होने लगा है। और तो क्या एक ही घरमें पिताका एक मत और एक प्रकारका आचार व्यवहार है। भाई भाई, मित्र मित्र बल्कि पति और स्त्रीमें परस्पर मतभेद होता है। पिता पुत्रके हृदयमें आघात करता है, पुत्र पिताके हृदयको जलाता है, पति स्त्रीके चित्तको दुखाता है, स्त्री पतिके हृदयको दुखाती है। अतएव प्रत्येक मनुष्यको जानना चाहिये कि, समाज जिस प्रकारकी

है उसप्रकारसे नहीं चलनेसे दु:ख ही दु:ख उत्पन्न होते हैं और समाजका प्रत्येक मनुष्य जिस स्वभावका अर्थात् जैसे आचार व्यवहारवाला है, समाज भी ठीक उसी प्रकारका हो जाता है। समाजको जबरदस्तीसे कदापि नहिं पलट सकते। इसलिये सामाजिक सुखसे सुखी होना इष्ट हो, तो समाजके नियमानुसार होकर ही चलना चाहिये। जिसप्रकार अपने शरीरपर अत्याचार करनेसे अपनेको ही कष्ट होता है, उसीप्रकार समाजरूपी शरीरपर अत्याचार करनेसे समाज भी व्याधिग्रस्त होकर नाना प्रकारके दु:खोंका कारण बन जाता है।

इस जडस्वरूप जगतमें देखा जाता है कि प्रत्येक पदार्थमें (Unit or atom) दो प्रकारकी शक्तियां विद्यमान हैं। एकका नाम आकर्षण शक्ति (Attraction) और दूसरीका नाम प्रत्याकर्षणशक्ति (Repulsion) है। इन दो शक्तियोंके बलसे ही समस्त जगत् सर्वदा गठित, परिवर्त्तित और परिचालित होता है। समाजमें भी प्राय: ये ही नियम सर्व समय कार्य करते रहते हैं। जिनमेंसे एकका नाम **आत्मरक्षा** अथवा **स्वार्थसाधन** (Self-preservation) और दूसरेका नाम **आत्मत्याग** अथवा **स्वार्थहीनता** (Self-destruction) है। सर्वदा ही आत्मरक्षा करनी होगी और आत्मत्याग भी सर्वदा करना होगा। इन दो कार्योंके कियेविना समाजमें सुखी होनेकी आशा नहीं है।

आत्मरक्षा करनेके लिये मनुष्यसमाजमें **सम्मिलनशीलता** (परस्पर सहायता करना Co-operation) विद्यमान है। अपन भलेप्रकार सुखसे रहेंगे, अपना स्वार्थ सधेगा ऐसा विचार कर, मनुष्य परस्पर एक दूसरेको सहायता करनेके लिये बाध्य हैं। जिसप्रकार असभ्य समाजमें जो कपडा बुनना जानता था, उसने विचार करके देखा तो अन्य किसीके पास वह कपडा बेचना वा उसके साथ किसी पदार्थका विनिमय (बदला) करना ही उचित समझा गया। क्योंकि इससे उसका कपडा उत्तरोतर अच्छा होनेसे उसका विशेष आदर होता है और साथहीसाथ उसके आवश्यकीय समस्त प्रकारके पदार्थोंकी प्राप्ति भी सुगम और यथेष्ट होती है। यदि वह इसप्रकार नहिं करके कपड़ेकी तरहँ

---

(१)यह मान्य आधुनिक पाश्चात्य (अंगरेजी) विद्वानोंकी है भारतीय प्राचीन पंडितोंकी नहीं है। अंगरेजी पढे बाबू लोगोंको समझानेके लिये ही यह दृष्टान्त दिया गया है। इसमें लेखकका मत नहीं है।

और २ अपने आवश्यकीय पदार्थोंके तैयार करनेमें लगै तो कदापि नहिं कर सकता और उसके स्वार्थकी हानि होती है। इसकारण ही उसने स्वार्थसाधनके लिये अपना तंतुवायका (जुलाहेका) धंदा ही हमेशहके लिये नियत कर लिया इसीप्रकार अपने २ स्वार्थके लिये प्रत्येक मनुष्य अपने भिन्न २ कार्योंमें लग गये। जिससे क्रम २ से समाजमें सभ्यताकी उन्नति होना प्रारंभ हुई। परस्पर सम्मिलनशीलता और सहायताका (Co-operation) प्रारंभ हुआ। इस साम्मिलनशीलतारूपी आकर्षण शक्तिके प्रभावसे कितने ही मनुष्य एकत्र होकर अपना अपना कार्य करने लगे।

हम पहिले ही कह चुके हैं कि जिसप्रकार मनुष्य समाजमें स्वार्थसाधन वा आत्मरक्षा है, ठीक उसीप्रकार आत्मत्याग वा निस्वार्थता भी है। यदि निस्वार्थता वा आत्मत्याग नहिं होता तो कदापि सम्मिलनशीलता (Co-operation) नहिं रहती क्योंकि परस्पर एक दूसरेको सहायता करनेमें हमेशह आत्मत्याग करना पडता है। आत्मत्याग किये विना अन्यकी सहायता करना बन ही नहीं सकता। आत्मरक्षा करना और उसके साथही साथ आत्मत्याग करना सहज नहीं है। परन्तु ये सब प्राकृत नियम हैं कि जिसप्रकार परमाणुमात्रमें ही आकर्षण तथा प्रत्याकर्षण शक्ति दोनों एकत्र एक समयमें कार्य करती है। समाजमें ठीक उसी प्रकार एक साथही आत्मत्याग वा आत्मरक्षा होती रहती है। हम देखते हैं कि इस जड जगतमें आकर्षण और प्रत्याकर्षण (Molecular attraction and repulsion) शक्ति अन्य एक तीसरी शक्तिकी सहायतासे कार्य करती है। उस शक्तिका नाम है, रासायनिक संयोग (Chemical affinity)। रासायनिक संयोग और उसके साथ आकर्षण प्रत्याकर्षण शक्तिके कार्य करनेसे जगतमें नानाप्रकारके द्रव्योंकी सृष्टि स्थिति और परिवर्तन होता है। समाजमें भी आत्मरक्षा और आत्मत्याग अन्य एक शक्तिकेद्वारा कार्य करते रहते हैं। यदि उसको छोड दिया जाय, तो कोई भी कार्य नहिं बन सके। उस शक्तिका नाम हैं **परस्परानुराग** (Love)। स्नेह, भक्ति, प्रेम, प्रीति, मित्रता, बंधुता, सहानुभूति, ममता, एकता आदि सबको हम परस्परानुराग कहते है। समाजमें यह परस्परानुरागता है इसी कारण ही हम आत्मरक्षाके साथ साथ आत्मत्याग करनेमें समर्थ हैं।

जिसप्रकार यह जडजगत प्रधान चार शक्तियोंद्वारा चलता है उसी प्रकार

समाज भी चार प्रधान शक्तियोंद्वारा चलता है। जगत परिचालनमें पाश्चात्य पंडितोंने मध्याकर्षण (Gravitation) परमाणु-आकर्षण और प्रत्याकर्षण (Molecular attraction and repulsion) तथा रासायनिक संयोग (Chemical affinity) ये चार शक्तियां मानी हैं, उसीप्रकार समाज परिचालन व संरक्षाके लिये-सम्मिलनशीलता, आत्मरक्षा, आत्मत्याग और परस्परानुराग ये ४ शक्तियां हैं। जो लोग समाजके इन प्रधान चार नियमोंकी अवज्ञा करकें स्वेच्छाचारका (यथेच्छाचारका) अवलंबन करते हैं, वे समाजको दुःखी करके स्वयं भी दुःखी होते हैं और अन्य सबको भी दुःखी करते हैं।

बस इन प्रधान चार नियमोंके अनुसार जो चलता रहे, वही समाज है। इसी प्रकारके समाजमें हम सब प्रविष्ट होते हैं। अब हम लोगोंका जो कर्तव्य है वह यह है कि सबसे प्रथम ही हम सब नरनारियोंको समाजके उक्त चार नियम पालन करना चाहिये। आत्मरक्षा और आत्मत्याग रहनेसे सम्मिलनशीलता आ जावेगी और परस्परानुराग होनेसे आत्मत्याग बना रहैगा, तथा सम्मिलनशीलताके कारण समाजमें सुखस्वच्छंदताकी प्राप्ति होगी। आत्मरक्षा करनेकी इच्छा हम सबके हृदयमें प्रबल है इसके विषयमें तो कुछ कहनेकी जरूरत ही नहीं है। आत्मत्यागके लिये परस्परानुरागिताकी आवश्यकता है, परस्परानुराग हृदयमें (चित्तमें) प्रबल और स्वाभाविक होनेपर भी उतना प्रबल नहीं है, जितना कि चाहिये। इसकारण परस्परानुरागिता उन्नति करनेकी आवश्यकता है क्योंकि परस्परानुराग रहनेपर ही आत्मत्याग करना आ सकता है और आत्मत्याग व आत्मरक्षा दोनों एकसाथ रहनेसे सम्मिलनक्षीलता (परस्पर सहायता) बुद्धि उत्पन्न होती है। सम्मिलनशीलतासे अनेक प्रकारकी सुखस्वच्छंदता प्राप्त होती है। अब देखना चाहिये कि सम्मिलनशीलता क्या है और **उससे किस २ किस** सुखस्वच्छंदताकी प्राप्ति होती है।

सम्मिलनशीलता।

हम पहिले कह आये हैं कि, सम्मिलनशीलता एक प्राकृत नियम है। इसका कार्य अपने आप ही होता रहता है परन्तु मनुष्य इस नियमका उल्लंघन मात्र कर सकता है। जिसप्रकार मनुष्य शारीरिक नियमोंको उल्लंघन करके (कुपथ्य करके) अपने शरीरको रोगी बना लेता है, उसीप्रकार वह समाजके इस नियमको उल्लंघन करके समाजको व्याधिग्रस्त (रोगी व दुःखी) बना देता है।

स्वार्थसिद्धिकी प्रबल इच्छासे ही सम्मिलनशीलता होती है और सम्मिलनशीलताकी उन्नतिसे समाजमें सभ्यताकी (वाणिज्य व्यापार, सिल्पीकर्म आदिकी) उन्नति होती है और उसके साथ ही साथ असंख्य प्रकारकी सुखस्वच्छंदता आती है। अति आदिम समाजमें सब लोग अपने २ प्रयोजनीय पदार्थ स्वयं संग्रह करते थे। असभ्य जातिमें (जंगली अज्ञानसमाजमें) सम्मिलनशीलता सर्वथा नहीं होती। इसीकारण उनमें सामाजिक सुखसामग्री कुछ भी नहिं होती किन्तु उनमेंसे प्रत्येक मनुष्यमें स्वार्थसिद्धिकी इच्छा वा आत्मरक्षाकी प्रबल व्याकुलता रहती है। और किसप्रकार सुखस्वंच्छदताकी वृद्धि होगी, उसके लिये वे सदा ही व्यग्र रहते हैं। इस प्रबल इच्छाके होनेसेही उनमें सम्मिलनशीलता आ जाती है।

हम पहिले कह आये हैं कि आदिम समाजमेंसे एक मनुष्य वस्त्र बुननेमें विशेष चतुर है. किन्तु यदि उसको उसके आवश्यकीय पदार्थ स्वयं तैयार करके संग्रह करने हो तो उसका वस्त्र बुनना भलेप्रकार नहिं हो सकता। परंतु उसने विचार किया कि "मैं यदि निरंतर कपडा ही बुनता रहूं और उसके बदलेमें मेरी आवश्यकताओंको पूरी करनेवाली समस्त सामग्री बदलेमें मिल जाया करै तो मेरा कपडा बुनना उत्तरोत्तर उत्तमप्रकारका हो सकता है और उत्कृष्ट होनेसे उसका आदर भी दिनोंदिन वृद्धि होने लगता है जिससे मेरे किसी भी प्रकारके आवश्यकीय पदार्थका अभाव नहिं रहैगा।" तब उसने समझ लिया कि कपडें बुनना और उसके बदलेमें आवश्यकीय पदार्थोंके संग्रह करनेमें ही मेरी स्वार्थसिद्धि होती है। किन्तु इसप्रकार करनेसे उसके अकेले रहनेसे कोई काम नहिं हो सकता है। दशबीश पचीस मनुष्योंके साथ रहे विना उसके वस्त्रोंको बदलेमें लेनेवाला कोई नहीं मिलता। लाचार होकर उसको दशवीस पचास मनुष्योंमें मिलजुल कर रहनेके लिये व्यग्रता हुई। जिसप्रकार एक तरफ एकने कपडा बुनना

---

(१) पाश्चात्य पंडितोंका मत है कि पहिले इस पृथ्वीपर मनुष्य जंगली पशुओंकी तरह जंगलमें रहते थे। फिर जब धीरे २ उनमें सभ्यताकी उन्नति होने लगी, तब नगर ग्राम राजा प्रजा विद्या वाणिज्य व्यापारादिकी वृद्धि हुई है। सो जिस मनुष्य समूहमें सबसे पहिले सभ्यता प्रारंभ होनेवाली थी, उसीको आदिमसमाज समझना चाहिये।

प्रारंभ किया इसीप्रकार सबने अपनी २ इच्छानुसार भिन्न २ प्रकारकी सामग्री तैयार करना प्रारंभ कर दिया। इसप्रकार कोई खेतीका काम, कोई लुहार तथा कुंभारका काम, कोई बढईका तथा घर बनानेका काम करने लगा। और अपने २ कामके बदलेमें दूसरोंसे अपने २ आवश्यकीय पदार्थ संग्रह करने लगे। परस्पर सहायता करना अर्थात सम्मिलनशीलताको ही स्वार्थरक्षाका एक मात्र उपाय समझकर सब जने इसी प्रकार सभ्यताके कार्य करने लगे। सम्मिलनशीलताका फलस्वरूप मनुष्यसमाजमें कार्यविभाग (Division of labour) बनता है। जिस समाजमें जितना अधिक कार्यविभाग और सम्मिलनशीलता होती है उस समाजमें उतनी ही अधिक उन्नति और सुख स्वच्छंदता होती है।

वर्तमानमें इयुरोपीय समाजें अतिशय उन्नत हैं इसी कारण ही हम युरोपीय समाजोंमें सम्मिलनशीलता और कार्यविभागकी अधिकता देखते हैं। युरोपीय समाजोंमें ऐसा कोई भी कार्य नहीं दीखता जो सम्मिलनशीलताके (परस्परकी सहायता वा एकताके) विना होता हो। इस समय उस देशमें दश वीस वा सौ पचास मनुष्य मिले विना कोई भी कार्य प्रारंभ नहिं किया जाता। राज्य परिचालनसे लेकर भिक्षुकोंका भरणपोषण, जहाज बनानेसे लेकर छोटीसे छोटी आलपीनें वा दियासलाई बनाना आदि जितने कार्य हैं अनेक मनुष्य मिलकर कंपनी खडी करके परस्परकी सहायतासे ही प्रारंभ करते हैं। एक ही मनुष्य यदि एक सूई बनानेको बैठे तो समस्त दिन परिश्रम करनेपर भी वह पचास साठ सूई नहिं बना सकैगा किन्तु दश आदमी दशप्रकारसे सूई बनानेके कार्यमें सहायक होनेसे प्रतिदिन करोडों सूइयें बनती रहती हैं। दृष्टांतके लिये एक कोट बनानेकी क्रिया देखो कि एक मनुष्य तो पशमके लिये एक मेषको पाला और दूसरेने उसके रों (उन) कतरे, इसीप्रकार तीसरेने उसको साफ किया चारपांच जनोंकी सहायतासे उसका सूत बना, सूत बने पीछे एकने उसको बुनकर कस्मीरा (कपडा) तैयार किया, एकने रंगा और एकने उसको कोटके आकारका चतुराईसे काटा और एकने उसको सिलाई किया और एकने उसको धोया और एकने उसपर उस्त्री की तथा अन्तमें एकने उसे बेचा। इसप्रकार अनेक मनुष्योंकी सहायतासे एक कोट तैयार हुआ है। यदि हमको मेषपालनसे लगाकर उस्त्री करने तकके सब कार्य अपने ही हाथसे करने पडते तो संभव है कि हमारे हाथसे कोटका तैयार होना कदापि नहीं बनता। अगर होता भी तो कदाकार बनता। सुंदर सफाईदार कदापि नहीं बनता।

इस सम्मिलनशीलताशक्तिकी सहायतासे कार्यविभाग करनेसे आज कितने द्रव्य कितने शीघ्र और सहजमें ही बनते हैं उनकी संख्या नहीं हो सकती है। इसके ही प्रभावसे युरोपादि देशोंकि बडे २ रेल, जहाज, कल, कारखाने और अति आश्चर्य करानेवाले कार्य हो गये और प्रतिदिन होते रहते हैं। भिन्न २ विषयोंमें अनेक मनुष्य मिलकर अत्यंत मन लगाकर भिन्न २ प्रकारके कार्य करनेसे उन सब कार्योंमें अतिशय उन्नति होती है। जिस समाजमें जितनी ही सम्मिलनशीलताकी उन्नति होगी उस समाजमें उन्नति भी अधिक २ होगी और उसके साथ साथ सुखस्वच्छंदता होने की भी सीमा नहिं रहैगी।

सम्मिलमशीलतासे एक तरफ जिसप्रकार सभ्यताकी वृद्धि और नानाप्रकारके सुखस्वच्छंदताके पदार्थसंग्रह होते हैं अन्य तरफ समाजकी भी क्रमसे वृद्धि और विस्तार होता रहता है। क्योंकि एक तरफ जैसे ही इस शक्तिके प्रभावसे प्रचुर परिमाणसे द्रव्य तैयार होते रहते हैं अन्य तरफ उसी प्रकारसे उन सब द्रव्योंके विनिमय वा विक्रय करनेके लिये खरीदनेवालोंका अभाव होनेसे खरीदनेवालोंकी संख्या बढानेके लिये सबको इच्छा होती है। क्रमसे जब माल बेचनेकी वा विनिमय करनेकी इच्छा सबमें व्याप्त हो जाती है तो सबजनें सबकी तरफ आकृष्ट हो कर एक जगह रहनेके लिये व्यग्र होते हैं, तब क्रमसे इसीप्रकार समाज दिनदिन बढता रहता है।

इस कथन परसे हमने क्या देखा? कि इस सम्मिलनशीलतारूपी शक्तिके प्रभावसे प्रचुरपरिमाणसे उत्कृष्ट मनुष्य जातिकी सुखस्वच्छंदताके पदार्थ तैयार होते हैं और उनका विनिमय चलता है। इस विनिमयसे एक नवीन विषयकी उत्पत्ति अपने आप हो जाती है। इसका नाम है व्यवसाय और बाणिज्य (Trade and commerce)। व्यवसाय और बाणिज्यके साथ २ और भी एक तीसरा विषय समाजमें प्रचलित होता है उसका नाम है मुद्रा (सिक्का Money)। आदिम समाजमें केवल विनिमय (बदला) ही चलता था। इस समय सुसभ्य समाजमें व्यवसाय चलता है, क्यों कि विनिमय करनेमें हर समय सबको सुभीता नहीं होता। हमारे पास जो द्रव्य तैयार है हर समय उसके बदलेमें हमारे प्रयोजनीय पदार्थ नहिं मिलते, जुलाहा जिस समय कपडेके बदलेमें अन्न चाहता है, किसानको उस समय कपडेकी आवश्यकताही नहीं क्योंकि कपडे तो वह पहिले ही अन्नके बदलेमें ले चुका है। इस कारण जुलाहेको उस समय

अन्न नहीं मिलता। ऐसी अवस्थामें एक साधारण विनिमयद्रव्य हुये विना यह कष्ट दूर नहिं होता इसकारण मुद्रा ही (रुपया पैसा ही) इस समय साधारण विनिमय द्रव्य रूपसे सुसभ्य समाजमें चलाया गया है। मुद्रा अपने २ द्रव्यके पलटेमें सब कोई लेते हैं क्यों कि मुद्राके बदलेमें हरसमय प्रत्येक पदार्थ मिल जाता है।

तब हमने समझ लिया कि सम्मिलनशीलतासे हम सुखस्वच्छंदताके समस्त पदार्थ प्रचुरताके साथ तैयार कर सकते हैं। और व्यवसाय तथा बाणिज्यकेद्वारा वे सब पदार्थ सबजने घर बैठे पा सकते हैं। किन्तु ये समस्त प्राप्त करनेकी इच्छा होनेपर साधारण विनिमय द्रव्यकी अर्थात् मुद्रा वा अर्थकी आवश्यकता है। जो मनुष्य जितना अर्थ (धन) हस्तगत कर सकता है वे उतने ही सुखस्वच्छंदताकी सामग्री संग्रह कर सकता है। इसकारण इस अर्थको ही धन (Wealth) कहा जाता है। यह धन क्या है और किस प्रकारसे कहां प्राप्त कर सकते हैं, गृहस्थमात्रको ही उसे अवगत होना अत्यन्त आवश्यकीय कर्त्तव्य है।

धन.

(Wealth.)

धनके विषयमें हम सबको एक प्रकारका बडा भारी भ्रम है। जबतक युरोप देशमें अर्थनीतिका (Political Economy) प्रचार नहिं हुआ था तब तक युरोपमें भी यह भ्रम विद्यमान था। मुद्रा वा अर्थको ही सब जने धन समझते थे। किंतु अन्य देशोंसे यथेष्ट परिमाणसे अर्थ वा मुद्रा संग्रह कर लेनेसे ही देश धनशाली हो जाता है ऐसा नहीं है और यथेष्ट परिमाणसे अर्थ संग्रह करलेनेसे हम धनवान हो गये ऐसा भी नहीं है क्योंकि अर्थ धन नहीं है। जिस द्रव्यमें विनिमय गुण है वा विनिमय करनेकी सामर्थ्य है, उसको ही धन कहते हैं। इसकारण जल धन नहीं है, वायु धन नहीं है, किन्तु जल जब अनेक मनुष्योंके परिश्रमकी सहायतासे नहर वा नलके द्वारा किसी बडे नगरमें लाया जाय उसवक्त वह जल ही धन होगया। अर्थात् जिसके विनिमयमें (बदलेमें) कोई द्रव्य पाया जाय अथवा पानेकी संभावना हो उसीको ही धन कहा जाता है। स्थान, पात्र, वा कालभेदसे कौनसा पदार्थ धन होता है कौनसा पदार्थ

धन नहिं होता है अर्थात् अर्थ धन नहीं है, सोना चांदी भी धन नहीं है; जो आज धन नहीं है, कल वह ही धन हो जाता है। इंलेन्डमें चिरकालसे कोयला और लोहेकी खाने हैं किन्तु जब इंग्लंडके अधिवासी असभ्यताके अंधकारमें मग्न थे तब उन सब कोयले और लोहेकी खानोंसे उनका कुछ भी उपकार नहिं होता था अर्थात् इनसे उनके किसीप्रकारका भी धन वृद्धि नहीं होता था। किंतु इस समय लोहे और कोयलोंकी खानेही इंग्लंडका प्रधान धन होगया है। जिनके द्वारा वा जिन सब पदर्थोंके द्वारा जन साधारणका उपकार होता है तथा उनके सुखस्वच्छंदताकी वृद्धि होती है वे ही सब धन हैं मुद्रा कदापि धन नहीं है। यह तो केवल विनिमय करनेका एक साधारण द्रव्य मात्र है।

अब देखना चाहिये कि यह धन किस प्रकार बढ सकता है तथा क्या क्या कार्य करनेसे इस धनको बढाया जा सकता है। सो धनवृद्धि करना हो तो उसके लिये प्रधानतया तीन विषयोंकी आवश्यकता है। जैसें—१ भूमि (Land), २ परिश्रम (Labour), ३ मूलधन (Capital)। इन तीनोंका सम्मिलन न हो तो किसी प्रकार भी धनवृद्धि होनेकी संभावना नहीं है। व्यक्ति विशेषका धन ही हो वा जातिविशेषका धन ही हो सब ही धन इन तीनों विषयोंपर निर्भर करते हैं क्योंकि इन तीनोंके संयोगसे जिस पदार्थकी उत्पत्ति होती है वह पदार्थ मानवजातिका विशेष प्रयोजनीय समझा जाकर उसमें विनिमय करनेकी सामर्थ्य रहती है सुतरां वही धन है। इसप्रकार इन तीनोंकी सहायतासे असंख्य धन वृद्धिरूप किये जा सकते हैं। अब देखना चाहिये कि–ये तीनों क्या है?

भूमि—केवल पृथिवीको ही यहांपर भूमि शब्दसे नहीं समझना किन्तु पृथिवी और पृथिवीसे उत्पन्न होनेवाले द्रव्य तथा पृथिवीमें स्थित जो द्रव्य हैं वे सबही भूमिशब्दके अर्थमें गर्भित समझने होंगे। अर्थात् भूमिसे (पृथिवीसे) फसल होती है इसकारण भूमि एक धनवृद्धिका उपाय है. भूमिसे उत्पन्न हुये घासको खाकर मेष गौ भैंस आदि पशु जीवन धारण करते हैं अत एव ये भी धनवृद्धिके उपाय हैं. भूमिमें कोयला लोह चांदी सोना वगैरह निकलते हैं इसकारण ये भी धनवृद्धिके उपाय हैं. प्रकृति सुंदरी हम लोगोंको जो कुछ दे और जिसको हम परिश्रम और बुद्धिकी सहायतासे अपने लिये उपयोगी बना सके उन सबको ही भूमि शब्दसे समझना चाहिये। जो अनावश्यकीय अर्थात् मनुष्य जातिके अनुपयोगी पदार्थ हो, उसको भूमि शब्दके अर्थमें समझना चा-

हिये और जब हम उस द्रव्यको हम लोगोंके व्यवहार करने योग्य और प्रयोजनीय बना लेवें तब वही द्रव्य धनके नामसे पुकारा जाता है और तबही वह धन होता है। इसकारण कहना चाहिये कि—भूमि धनवृद्धि करनेका आधार मात्र है।

परिश्रम—मनुष्य जिस कार्यको करके किसी द्रव्यको मनुष्य जातिके काम आने लायक आवश्यकीय पदार्थ बना दे उस कार्यको परिश्रम कहते हैं। मनुष्योंके व्यवहार करने योग्य ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो कि परिश्रमके विना पाया जाता हो। अति सामान्य द्रव्य सूईसे लेकर बडे २ जहाजतक तथा वनके फलसे लेकर उद्यानमें लगाये हुये पुष्पतक मनुष्यके व्यवहारमें आते हैं परंतु ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है कि अल्प वा अधिक परिश्रमके विना प्राप्त हो सके। इसकारण मनुष्य जो कुछ कार्य करें उन सबका नामही परिश्रम है। हाँ यह हो सकता है कि किसी कार्यमें कम परिश्रम किसीमें अधिक तथा किसीमें शारीरिक परिश्रम किसीमें मानसिक परिश्रम है परंतु सब परिश्रम ही अर्थात् मनुष्यके सब कार्योंको परिश्रम शब्दमें समझना चाहिये।

इस परिश्रमको दो प्रधान भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। जैसे फलप्रद परिश्रम (Productive Labour). और निष्फलपरिश्रम (Unproductive Labour). जिस परिश्रमके द्वारा कोई पदार्थ प्रयोजनीय हो उसीको फलप्रद परिश्रम कहते हैं। किसान, जुलाहे लुहार आदिका परिश्रम इसी जातिका है. जिस परिश्रमके द्वारा धनकी वृद्धि न हो उसको निष्फल परिश्रम कहते हैं। जैसें कविका परिश्रम ऐतिहासिक वा दार्शनिकोंका परिश्रम तथा गायिका वा नर्त्तकीका परिश्रम। ये सब कार्य समाजके लिये उपकारी तथा आवश्यकीय होनेपर भी इन सब परिश्रमोंसे किसी आवश्यकीय व व्यवहार करने योग्य पदार्थकी उत्पत्ति नहिं होती। इसकारण इन सबको निष्फल परिश्रम कहा जाता है। किन्तु कोई महाशय ऐसा न समझ बैठे कि ये सब विषय अनावश्यकीय हैं, जिससे धनवृद्धि न हो ऐसा विषय समाजमें रखना ही न चाहिये सो नहीं क्योंकि ये सब विषय समाजके लिये विशेष आवश्यकीय हैं इनसे ही समाजमें ज्ञान व सुख स्वच्छंदताकी वृद्धि वा विस्तार होता है। जिस समाजमें ज्ञान व सुख नहीं है उस समाजके रहनेसे क्या फल?

जिसप्रकार समाजमें फलप्रदपरिश्रम और निष्फल परिश्रम है ठीक इसी प्रकार व्यय भी दो प्रकारके हैं एक फलप्रद व्यय (Productive Consumption) दूसरा निष्फल व्यय (व्यर्थ व्यय-Unproudctive consumption). मनुष्यके परिश्रमकी सहायतासे जो सब पदार्थ तैयार होते हैं वे सब मौजूद नहिं रहते व्यय (खर्च) हो जाते हैं। किन्तु उनमेंसे कितने ही पदार्थ इसप्रकारसे व्यय होते हैं कि उनके द्वारा धनकी वृद्धि होती है वा धनवृद्धिमें सहायता होती है. और कितने ही पदार्थ ऐसी रीतिसे व्यय होते हैं कि जिनके द्वारा किसी भी धनकी वृद्धि नहिं होती। एक रेलवे लाइन तैयार करनेसे वा नहरके खुदानेसे धनवृद्धि होती है किन्तु एक मखमली वा रेशमीन जरीदार पोषाक खरीदनेसे किसी भी धनके वृद्धि होनेकी आशा नहिं रहती। जिस धनके व्यय करनेसे फिर भी धनकी प्राप्ति हो उसीको ही फलप्रदव्यय कहते हैं और जिस धनके व्यय करनेपर उसके बदलेमें कुछ भी न आवे उसको निष्फलव्यय कहते हैं अर्थात् विलास करनेके पदार्थोंमें व्यय करने मात्रको ही निष्फल व्यय कहा जाता है क्यों कि उससे किसीप्रकार भी धनकी वृद्धि नहिं होती।

मूलधन—स्वभावतःही धारणा होती है कि परिश्रम और भूमि (प्राकृतिक द्रव्य) होनेसे ही जब धन वा मनुष्योंके आवश्यकीय समस्त द्रव्योंकी (धनकी) उत्पत्ति हो सकती है तब धन वृद्धिकेलिये फिर मूलधनकी क्या आवश्यकता है। सो प्रथम प्रथम यही धारणा होती है किंतु विशेष विचार करके देखनेसे निश्चय हो जाता है कि मूलधनके विना कोई भी परिश्रम नहिं हो सकता, क्यों- कि कोई भी पदार्थ तैयार क्यों न करो उसके तैयार करनेमें कुछ समय लगता है। जुलाहे का एक धोती जोडा तैयार करना, बढईका एक खुरसी बनाना, किसा- नका अनाज उत्पन्न करना इत्यादि किसी भी कार्यको क्यों न करो सबमें सम- यकी अपेक्षा रहती है। जितने समयतक कोई पदार्थ पूरा तयार नहीं होगा तबतक वह पदार्थ बनानेवालेके किसी भी काममें नहीं आ सकता। ऐसी अव- स्थामें वह परिश्रम करनेवाला क्या खाकर जीवनधारण करैगा? यदि पहिलेका संचय किया हुआ धन नहिं हो तो उसके द्वारा कोई भी कार्य बनना संभव नहीं है। इसके निमित्त जिस धनकी आवश्यकता होती है उसीका नाम ही मूलधन है। इसके हुये विना किसी भी कार्यके होनेकी संभावना नहीं है । पूर्वपरिश्रमके

फलस्वरूप धनका जो अंश व्यय न होकर संचित रहता है और तत्पश्चात् वह धनवृद्धिके लिये व्यय हो उसीका नाम मूलधन है। धनके समान मूलधनका अर्थ मुद्रा (रुपया पैसा) वा अर्थ नहीं है। मुद्राके द्वारा तो मूलधनकी गिनती वा परिमाण मात्र होता है। जिस द्रव्यमें विनिमय गुण है और जो संचित रहकर फिर भी धनवृद्धिके लिये व्यय हो सके वह ही मूलधन होता है। निष्फल व्यय अर्थात् विलासके पदार्थोंमें जो धन व्यय होता है वह मूलधन नहीं है क्योंकि उस व्ययसे धनकी वृद्धि नहिं होती। धनको एक स्थानमें जमा कर रखनेसे भी वह मूलधन नहिं होता क्योंकि संग्रहकर रखनेसे भी किसी धनकी वृद्धि नहिं होती। जो समाज वा जो व्यक्ति संचय वा धनवृद्धिके लिये व्यय करते हैं वे ही धनी हो सकते हैं। इसके सिवाय धनवृद्धिका अन्य कोई उपाय नहीं है।

अब हमारे पाठकोंको निश्चय होगया होगा कि–धनवृद्धि करनेकी इच्छा होनेपर भूमि, परिश्रम और मूलधनकी आवश्यकता है और भूमि परिश्रम मूलधन क्या है वह भी समझगये होंगे। अब देखना चाहिये कि–इन तीनों द्रव्योंकी ह्रासवृद्धि किस प्रकारसे होती है क्योंकि इन तीनोंकी ह्रासवृद्धिके उपर ही धनकी वृद्धि होना सर्वतया निर्भर है।

भूमिकी ह्रासवृद्धि।

इसके कहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है कि–भूमिकी उत्पादिका शक्ति, परिश्रम और मूलधनकी अधिकतासे धनकी वृद्धि होती है। प्रथम ही देखना चाहिये कि–भूमिकी उत्पादिका शक्ति किसप्रकार बढती है? क्योंकि उर्वरा भूमि होनेसे ही धनादिककी फसल अधिक होगी अथवा अनेक प्रकारकी खाने होनेसे ही धनकी वृद्धि होगी ऐसा नहीं है। किन्तु निम्नलिखित कितनी ही बातें भूमिकी उत्पादिका शक्तिको बढानेके लिये आवश्यकीय हैं जैसे (१) उपयुक्त शिक्षित श्रमजीवी (काम सीखे हुये वा पढे लिखे मजूर) उत्पन्न द्रव्योंके क्रय विक्रय करनेवाले खरीदनेवाले, (२) उन द्रव्योंको थोडेसे खर्चमें खरीदनेवालोंके पास पहुंचानेके लिये रास्ता वा घाट। बंगालदेशमें कोयलोंकी खानें चिरकालसे वर्त्तमान हैं परंतु शिक्षितश्रमजीवी, खरीदनेवाले और रास्ता घाटके न होनेसे उन सब

कोयलोंकी खानोंसे देशका कुछ भी उपकार नहीं हो सका। स्वीझरलेंडमें पर्वतोंपर सुंदर २ पाईन वृक्ष होते हैं किन्तु उन्हें काटकर लाने और बेचनेमें इतना खर्च पड जाता है कि उस मूल्यसे कोई भी खरीदनेवाला नहिं मिलता था। इसकारण उन सुंदरकाठवाले वृक्षोंका कुछ भी मूल्य नहीं था। भूमि अतिशय उर्बरा होनेपर भी उससे उत्पन्न हुये पदार्थोंको खरीदनेवाले न हों तो कोई भी मनुष्य किसी पदार्थको उत्पन्न नहिं करै तब वह भूमि जंगलमय होकर व्यर्थ ही पडी रहती है। और खरीदनेवाले अनेक हों तो पदार्थ भी बढते रहैं। यथेष्ट खरीदनेवाले करना हो तो इसके लिये विस्तृत व्यापार वाणिज्यकी आवश्यकता है। और व्यापार वाणिज्यकी उन्नति करनेके लिये रास्ता, घाट, नौका, रेल, जहाज वगेरहकी अत्यावश्यकता है।

तब निश्चय हुआ कि भूमिकी उत्पादिका शक्ति बढानेके लिये शिक्षित श्रमजीवी (लिखे पढे मजूर Skilled Labourers) और रास्ता घाटकी (Means of Conveyance) आवश्यकता है। शिक्षित श्रमजीवियोंकी शिक्षा, पारदर्शिता, और अध्यवसायसे भूमिकी उत्पादिका शक्ति अनेक प्रकारसे बढ जाती है। तथा रास्ता घाट रेल नौकादिकी सहायतासे उत्पन्न हुये पदार्थ बहुत कम खर्चसे अनेक स्थानोंमें ले जाये जा सकते हैं, जिससे खरीदनेवालोंकी कमी नहिं रहती।

अब देखना चाहिये कि—परिश्रमकी उन्नति किस प्रकारसे की जा सक्ती है।

परिश्रमकी ऱ्हासवृद्धि।

परिश्रमकी उन्नति तीन प्रकारसे की जा सकती है—जैसे (१) शिक्षा, (२) कार्य विभाग (वा सम्मिलनशीलता), (३) कल कारखाने। इसमें कोई संदेह नहीं कि—लिखा पढा अर्थात् सीखा हुआ चतुर मजूर जिस परिश्रमसे जितना काम कर सकता है, उतना काम विना पढा लिखा अशिक्षित मजूर कदापि नहिं कर सकता। साधारणतया ऐसा नियम है कि जिसको शारीरिक परिश्रम करनेका विशेष काम रहता है वे प्राय: शिक्षाके बडे विरोधी होते हैं। वे समझते हैं कि—हमारे बाल बच्चे पढना लिखना शीख लेंगे तो अपने परंपरासे चले आये धंदेसे विमुख हो जांयगे। इसी कारणही वे अपने पुत्र कन्याओंको पढानेकी इच्छा नहिं करते। यह विश्वास हमारे देशमें ही है ऐसा नहीं है किंतु कुछ दिन पहिले

इंगलेन्डके साधारण लोगोंमें भी था। परन्तु इस समय युरोप और अमेरिकामें शिक्षा विस्तारके साथ साथ श्रमजीवीगण अधिकतर सुखस्वच्छंदताकी प्राप्ति करते रहते हैं और देश अधिकतर धनशाली होगया और होता जाता है। जो अ-शिक्षित श्रमजीवी हैं वे शिक्षितश्रमजीवियोंकी बराबरी किसीप्रकार भी नहीं कर सकते इसकारण इस समय सबही शिक्षितश्रमजीवियोंको (पढे लिखे मजूरोंको) चाहते हैं, उनका ही आदर अधिक है और उनकी ही कीमत अधिक है और वे ही अधिक धन पैदा करते हैं और सुखस्वच्छंदता भी अधिक भोगते हैं। इसका क्या कारण है अर्थात् जब कि शारीरिक परिश्रमकी बात है तब शिक्षाकी क्या आवश्यकता है? परंतु ऐसा समझना भ्रम है क्योंकि–समस्त प्रकारके श्रमजीवी मनुष्योंमें दो मुख्य गुण होते हैं एक तो उत्साह वा उद्यमशीलता (Energy) और दूसरा तीक्षणबुद्धिका (Intelligency) होना। सो यह कौन नहि जानता है कि पढने लिखनेमे ये दोनों ही गुण उत्कृष्टताको प्राप्त होते हैं? क्योंकि–शिक्षा पानेसे जो एक मनुष्य जिसप्रकार उद्यमशील वा उत्साही होगा वैसा विना पढा लिखा मजूर किसी प्रकार भी नहिं हो सकता। अर्थात् एक शिक्षि-तश्रमजीवी विना पढे लिखे १० मजूरोंकी बराबर काम करनेमें समर्थ हो जाता है। सो क्या हम प्रत्यक्ष नहीं देखते हैं कि विलायतके श्रमजीवी हमारे देशके दश श्रमजीवीकी बराबर काम कर रहे हैं।

केवल यह ही नहीं है किंतु शिक्षासे अनेक प्रकारका ज्ञान बढता है। दृष्टान्तके लिये देखिये–एक अशिक्षित कृषक (किसान) दश बीघे खेतमेंसे जितने परिश्र-मसे जितना फसल उत्पन्न कर सकता है। एकजन शिक्षित कृषक उसकी अपेक्षा उसी खेतसे थोडे परिश्रमसे ही दशगुणी फसल उत्पन्न करनेमें समर्थ हो सकता है। क्योंकि वह शिक्षित कृषक कृषिसंबंधी अनेक विषयोंको जानता है। वह जानता है कि भूमि की उर्बरता कैसे बढ सकती है? किस समयमें किस प्रकारसे कर्षण करना (हलचलाना) चाहिये, खेतमें जलसिंचन करना सहजमें ही कैसे हो सकता है, इत्यादि प्रकारसे खेत और खेतीके विषयका परिपूर्ण ज्ञाता होनेके कारण अशिक्षित कृषककी अपेक्षा वह थोडेसे परिश्रममें ही अधिक तर फसल उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकारकी शिक्षाके कारण दो प्रकारसे परिश्रमकी कीमत बढती जाती है। शिक्षा पानेसे मनुष्य अशिक्षितोंकी अपेक्षा अधिक उत्साही और बुद्धिमान हो जानेके कारण उनकी अपेक्षा अधिक परिश्रम कर सकते हैं

लोग क्या कहते हैं ?

बेलजियममें बहुमतसे होनेवाले कार्योंमें विवाहित पुरुषके दो मत होते हैं और अविवाहितका एकमत लिया जाता है।

जर्मनीमें पुलिसने एक ऐसे सभ्यको पकडा है कि जिसने एक दूसरीको खबर नहीं करके ३८४ युवतियोंके साथ विवाह किया है।

दिसंबरमासकी २८ तारीखको दक्षिण इटालीमें भयंकर धरणीकंप हुआ, पृथिवी फटकर उसमें दो लाख मनुष्य मर गये बडे भारी संहति पापका फल है।

ग्रेट ब्रिटन और आयर्लेंडमें सब मिलकर २३५३ अखबार निकलते हैं उनमेंसे ४०४ अखबार एक लंडन शहरसे निकलते हैं जिनमेंसे ३१ पत्र दैनिक हैं।

अकबर बादशाहकी तरफसे टोडरमल मंत्रीको २७० खासे घोडे, ८० हस्ती, ६५ ऊंट और १३७ रथके सिवाय प्रतिमास २२००० रुपये वेतन मिलता था।

बेलगांवका कोई हिंदू नीजामसाहबकी रेलसे मुसाफिरी करते हुये राजद्रोहका उपदेश करता था उसको हैदराबादके फर्स्ट असिस्टेंन्ट रेसिडेंटसाहबने पांच वर्ष कालेपानीकी सजा दी है।

ब्रिटिश और फारिन बाइबल सोसाईटीने ईसाईमतके धर्मशास्त्रोंके प्रचारके लिये आजतक बाईबल छापने और बांटनेमें तेरहकरोड पौंड अर्थात् एक अब्ज ९५ करोड रुपये खर्च कर डाले तब ही तो सारे देशमें ईसाईमत फैल गया!

नर्म पक्षवालोंकी कांग्रेस ता. २८-२९-३० दिसंबरको मद्रासमें भरी थी सो सरकारकी कृपासे निर्विघ्न पार पड गई परंतु गर्मपक्षकी कांग्रेस नागपुरमें होनेवाली थी वह सरकारी हुकमसे बंद रही।

बांकीपुरका **विहारबंधु** सबसे पुराना पत्र है पिछले दिनों किसी बिगडे दिल संपादकके हाथसे संपादित होकर बदनामीका कारण हुआ था परंतु अब यह किसी सुयोग्य संपादकके द्वारा संपादित होकर सर्वसाधारणके आदर करने योग्य हो गया है।

स्वदेशी पवित्रकेशर अब नहिं मिलती।

कोई भाई हमको फरमाइस न भेजा करे

गतवर्षसे हमारे जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालयसे स्वदेशी पवित्र केशर भेजी जातीथी परंतु अब बंबईमें जितनी केशर आती है उसमें आधी तथा दो हिस्से विलायती अपवित्र केशर काटकाटकर मिलाई हुई आती है किसी २ के कोई पारसल असली का भी आता होगा परंतु उसका निर्णय करना कठिन है इसलिये हमने केशर भेजना एकदम बंद कर दिया है। जो भाई-कहीं से भी स्वदेशी केशर मगावें उसको पानी मिले हुए दूधमें थोडीसी केशरके दाने डाल देना जब उसमेंसे सुनेरी रंग निकले तो प्राय: असली केशर समझना और किसी २ दानेमें केशरिया वा गुलाबीरंग निकलै तो नकली समझना। **पन्नालाल बाकलीवाल।**

ॐ

जैनहितैषी

मासिक पत्र।

पन्नालाल बाकलीवालद्वारा प्रकाशित।

पांचवां भाग	माघ वीर नि० संवत् २४३५।	अंक ४

लूट शीघ्र ही बंद हो जायगी।

क्योंकि हमने सिर्फ ५०० प्रति प्रवचनसारजी इस पत्रके ग्राहकोंको देना स्वीकार किया है। परंतु आज कल ग्राहकोंकी इतनी फरमायसें आ रही हैं कि—शायद वैशाख महीनेके भीतर २ पांचसौ ग्राहक पूरे होजायंगे और पांचसौ ग्राहक हुये बाद फिर ऐसा ग्रंथ इस छोटेसे पत्रकी भेटमें नहीं दे सकेंगे फिर यदि कोई ग्राहक बनैगा तो सिर्फ जैनहितैषीका १।) लिया जायगा और प्रवचनसारजीकी न्योछावर १।) रुपया और डांक खर्च दिये विना कदापि नहिं मिलेंगे और भादोंमें जो ज्ञानसूर्योदय नाटककी एक विशेष भेट बिना कुछ लिये एक विशेष सर्तके साथ देना चाहते हैं वह भी किसीको नहिं दी जायगी अतः जिनको इन अपूर्व ग्रंथोंकी स्वाध्याय करना हो, वे शीघ्रही १॥)के वी. पी. में प्रवचनसारजी मगा लेवें।

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय—पो० गिरगांव—बम्बई.

कर्नाटक छापखाना, मुंबई.

Reg. No. B. 719.

ॐ

जैनहितैषी

मासिक पत्र।

पन्नालाल बाकलीवालद्वारा प्रकाशित।

पांचवां भाग	माघ वीर नि० संवत् २४३५।	अंक ४

लूट शीघ्र ही बंद हो जायगी।

क्योंकि हमने सिर्फ ५०० प्रति प्रवचनसारजी इस पत्रके ग्राहकोंको देना स्वीकार किया है। परंतु आज कल ग्राहकोंकी इतनी फरमायसें आ रही हैं कि—शायद वैशाख महीनेके भीतर २ पांचसौ ग्राहक पूरे होजांयगे और पांचसौ ग्राहक हुये बाद फिर ऐसा ग्रंथ इस छोटेसे पत्रकी भेटमें नहीं दे सकेंगे फिर यदि कोई ग्राहक बनैगा तो सिर्फ जैनहितैषीका १।) लिया जायगा और प्रवचनसारजीकी न्योछावर १।) रुपया और डांक खर्च दिये विना कदापि नहिं मिलेंगे और भादोंमें जो ज्ञानसूर्योदय नाटककी एक विशेष भेट बिना कुछ लिये एक विशेष सर्तके साथ देना चाहते हैं वह भी किसीको नहिं दी जायगी अतः जिनको इन अपूर्व ग्रंथोंकी स्वाध्याय करना हो, वे शीघ्रही १॥)के वी. पी. में प्रवचनसारजी मगा लेवें।

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय—पो० गिरगांव—बम्बई.

कर्नाटक छापखाना, मुंबई.

जैनहितैषीके नये नियम।

१ इस पत्रकी वार्षिक न्योछावर सर्व साधारणसे अग्रिम उपहार सहित १॥) रु० और प्रसिद्ध धनाढ्य, ओहदेदार, वकील, रहीसोंसे २॥) रुपये। उपहार सहित ३'' छापेके विरोधियोंसे ५) रुपये। वर्षके अन्तमे देनेवालोंसे दूनी ली जाती है। पढी हुई असमर्थ स्त्रियों आर संस्कृत पढनेवाले असमर्थ विद्यार्थियोंसे ॥।) आने उपहार सहित १) एक रुपया ली जाती है और फुटकर अंककी न्योछावर चार आने ली जाती है।

२ यह पत्र अनेक प्रसिद्ध धनाढ्य रहीसोंके पास विना मगाये भी भेजा जाता है अगर प्रथम अंक पहुंचते ही कोई महाशय इनकारी कार्ड भेज देंगे अथवा हमारा अंक ही नहिं लेकर बैसाका वैसा लोटा देंगें तो उनका नाम काट दिया जायगा नहीं तो उन्हें पक्का ग्राहक समझकर हरमहीने जैनहितैषी भेजते जांयगे ६ अंक तक मूल्य भेजदेंगे तो वह अग्रिम समझा जायगा तत्पश्चात् प्रथम नियमके अनुसार दूनी न्योछावर अदा की जायगी।

३ यह पत्र—हमेशहसे धर्मार्थ रक्खा गया है इस पत्रमें मैनेजर वगेरहका खर्च जाकर नफा रहैगा तो वह विद्योन्नति वा जिनवाणी माताकी उन्नतिमें लगाया जायगा और घाटा पडैगा तो जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय देगा क्योंकि इस पत्रमें इस कार्यालयके इश्तहार सूचीपत्र विनामूल्य वितरण किये जाते हैं। इसकारण जो महाशय इसकी चढी हुई न्योछावर नहिं भेजकर टालटूल करदेंगे वे विद्योन्नतिके घातक समझे जांयगे और जो महाशय इसके ग्राहक बनैंगे वा बनावैंगे वे विद्योन्नति करनेवाले धर्मात्मा समझे जावेंगे।

४ यह पत्र प्रत्येक पूर्णमासीको प्रगट होता है कभी २ आठ दशदिनकी देर भी हो जाती हैं सो जिनके पास कोई अंक अमावस्यातक नहिं पहुचै तो अमावास्याके पश्चात् उसी महीनेकी सुदी १५ तक हमारे पास सूचना भेजनेपर यह अंक त्वरित ही भेज दिया जायगा। यदि पूर्णमासीके पश्चात् सूचना देंगे तो वह पिछला अंक कदापि नहिं मिलैगा। अगर मिलैगा तो ।)की टिकट भेजनेपर मिलैगा।

५ पत्रव्यवहार साफ २ हिंदी अक्षरोंमें करना चाहिये कोई महाशय उर्दू अंगरेजी मूडी वगेरहका पत्र भेजैंगे तो वह विना तामील किये रद्दीमें डाल दिया जायगा और जबाबी कार्ड वा टिकट आये विना जबाब भी प्राय नहिं दिया जाता।

हमारा पता—**पन्नालाल बाकलीवाल**

पो. गिरगांव, बम्बई

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

पंचम भाग } माघ श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३५। { अंक ४

मेरे पिताकी परलोक यात्रा।

(१)

विद्युतवत क्षणभंगुर जगको, जाना शाश्वत सुखकारी।
अजर अमर समझा शरीरको पाला पोषा कर यारी ॥
स्वजन सनेही सुहृद सभी ये, अपने सोचे समझे थे।
मोहराजकी मायामें हम, अब तक यों ही उलझे थे ॥

(२)

यद्यपि गुरुग्रन्थोंमें चरचा, पढी सुनी यह वारंवार।
सान्त अनित्य जगत तन धन सब, इनमें नहीं जरा भी सार ॥
किन्तु सभी वह पढना सुनना राम राम तोतेका था।
अन्तरंगपर रंग नहीं था, वह जैसाका तैसा था ॥

(३)

एकाएक एक घटनासे, आंखेंसी खुल गई इधर।
अन्तरंग पर भी पल भरमें, चहिये जैसा हुआ असर ॥
दीख गया सच्चा स्वरूप जगका चटपट चपला जैसा।
रहा नहीं सन्देह जरा भी, समझा जैसाका तैसा ॥

(४)

माघ सुदी आठेंकी निशिमें, मेरे पूज्य पिता गुणधीर ।
जिनमन्दिरसे शास्त्र श्रवणकर, घरको लौटे स्वस्थ शरीर ॥
देहरि भीतर पग धरते ही उन्हें विलक्षण शूल हुआ ।
जिसके मारे धीरज बीरज, साहस सब ही धूल हुआ ॥

(५)

हाय ! हाय ! कर लगे तडफने, जुड़ आये सब नरनारी ।
वैद्य बुलाकर नब्ज दिखाकर, दवा दिलाई सुखकारी ॥
ऊपरके उपचार और भी, किये उसी क्षणमें जारी ।
किन्तु हाय " टूटीपर बूटी. " चली नहीं विपदाहारी ॥

(६)

पूरे एक पहरके पीछे, थमा तडफना उनका जब ।
समझा की आराम मिला है, रोग शमन होनेसे अब ॥
धोखा खाया किन्तु बडा वह, थी निर्वाण दीपकी शान्ति ।
अज्ञ लोग अवसर पर अकसर, करते हैं ऐसी ही भ्रान्ति ॥

(७)

मुख उघाडकर देखा मैंने, तैजस तनका नाम न था ।
स्वास नहीं थी नब्ज नहीं थी, गरमीका कुछ काम न था ॥
बस, यह दशा देखके मेरा, धीरज गया हाथ से छूट ।
"पिता चले गये हाय ! हाय ! " कह, दी यों चीख गया सिर फूट ॥

(८)

सुनते ही यह शब्द, पिताकेशवपर तब कुटुम्बके जन ।
टूट परे एकाइक आकर, गगनगामि करके रोदन ॥
उनके उस परिदेवनको सुन, रोने लगे पडौसी भी ।
'पलमें प्रलय' हुआ यह कैसा, समझ सका नहिं कोई भी ॥

---

१ माघ शुक्ला अष्टमी श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३५ की रात्रि । २ ऐसा रोना जिसे सुनकर दूसरों को रुलाई आ जावे !

(९)

वृद्ध मातुको मूर्छा आई, घरनीने सिर दे मारा।
किया भतीजोंने भावजने, भाईने हाहाकारा॥
तडफे तीनों तनय इसतरह, जलविहीन ज्यों मीन अधीर।
ज्ञाताओंको भी प्यारों का, ताजा शोक छुटाता धीर॥

(१०)

सारी रात इसतरह बीती, हुआ सवेरा मुश्किलसे।
दुखकी रात बडी होती है जाना उस दिन अनुभवसे॥
यह आश्चर्य-वृत्त[२] सुन सुन नर, आने लगे सशंकित-चित्त।
उदासीन मुद्रायुत सब ही, जगको कहते हुए अनित्त॥

(११)

आते ही सब दाहक्रियाकी, लगे तयारी करने हाय।
मातुगोदसे जवरन, शवको, छीन धरा अर्थीपर लाय॥
बढा वेग तब शोकासिंधुका, आया जोर ज्वारके रूप।
क्यों कि समझते हैं भोले जन जडशरीरको ही चिद्रूप॥

(१२)

यद्यपि था वह आत्मरहित शव, पंचभूतमय अतिशय जड़।
तो भी उसको जनक समझ निज, आया मेरा हृदय उमड़॥
रोते रोते हिचकी बँध गई, सूज गई दोनों आंखें।
हाय तात! हा पिता! कहो, तुम विन कैसे जीवन राखें॥

(१३)

हाय जनक! अब बेटा कहकर, हमको कौन बुलावेगा।
सुधासिक्त सुन्दर वाणीसे कौन सुमार्ग बतावेगा॥
ये सारी सुखकी सामग्री कौन निरन्तर जोडेगा।
कौन हमारी अकुशल सुनके, खाना पीना छोडेगा॥

---

२ वृत्तान्त!

(१४)

स्वार्थरहित वह प्रेम तुम्हारा किये याद फटती छाती ।
स्वर्गलोकमें भी न मिलैगी वह प्रेमामृतकी स्वाती ॥
देवप्रकृति तुमसी न कहीं वह देती है दिखलाई यहां ।
पापभीरु सच्चे संतोषी. सीधे तुमसे हाय ! कहां ॥

(१५)

हरी आज सारी स्वतंत्रता निर्द्वन्दता विलाय गई ।
पिता ! तुम्हारे जाते ही यह, चिंता डांकिन आय गई ॥
देखो उसका रूप भयंकर' खानेको मुह फाड रही ।
विविध कार्य गृहके बतलाकर, मानो मुझको ताड रही ॥

(१६)

पालन पोषणमें हम सबके, अबतक मिला न तुमको चैन ।
सारा जीवन दुखमें बीता किया परिश्रम ही दिनरैन ॥
अब आये थे सुखके दिन सो नही सुहाये तुम्हे जरा ॥
पलक मारते खलक छोड तुम, अमरै धरामें पैर धरा ॥

(१७)

जीते जी तो यहां आपने, कभी नहीं अपकार किया ।
फिर क्यों बुरा विचारा यह जो दुखी बनाके कूच किया ।
यदि अनन्त उपकारोंमेंसे, बदला एक अंशका भी ।
तात चुका सकते तो होता इतना दुःख न हमें कभी ॥

(१८)

किन्तु नहीं कर पाये कुछ हम धोखा दे तुम चले गये ।
सब विचार हम दीनजनोंके जीके जीमें दले गये ॥
दोष देय किसको तुमने तो पथ पकडा गुणवानोंका ।
प्रतिफल नहीं चाहते हैं उपकारी जन उपकारोंका ॥

---

१ जगत । २ स्वर्गकी पृथ्वीमें ।

(१९)

देखो तो यह वृद्धा जननी, विलख विलखकर रोती है।
सहधर्मिणी अश्रुधारासे, भूतल वसन भिगोती है ॥
क्षणभरको होकर सचेत, दो बातें कह जाओ इनसे।
जिन्हें यादकर जीवन रक्खें, औ ढाँडस बांधैं जिनसे ॥

(२०)

ग्रामान्तरको भी जाते जब, कह जाते समझा सबको।
अमुक काम ऐसा करलेना, नहीं भूलना इस ढबको ॥
किन्तु कठोर हुए अब ऐसे, परभवके भी जानेमें।
हाय पिता! नहिं एक शब्द भी किया खर्च समझानेमें ॥

(२१)

इसप्रकार मैं जबतक रोया, तबतक मिलकरके सब लोग।
अर्थी सज ले चले सुविधियुत, देना पडा मुझे भी योग ॥
पहुंचे वहां जहां अगणितजन, जले खाकमें सोते हैं।
पुद्गल पिंडोंके रूपान्तर, जहां निरन्तर होते हैं ॥

(२२)

चिता बना उस प्रेतभूमिमें[1], प्रेत[2] पिताका पधराया।
किया चरम-संस्कार पलकमें प्रज्वलित हुई अनल-माया ॥
धाँय धाँयकर जीभ काढ, उस धूमध्वजने[3] धधक धधक।
मिला दिया पांचों तत्त्वोंमें, वह शरीर कर पृथक पथक ॥

(२३)

दी प्रदक्षिणा मैंने तब, उस जलती हुई चिताको घेर।
हृदय थाम, कर अश्रु संवरण, किया निवेदन प्रभुसे टेर ॥
शान्तिप्रदायक शान्तिनाथ! जिन! शोक शान्त सबका करके।
जनकजीवको शान्तरूप निज, देना शरण कृपा करके ॥

---

१ स्मशानभूमिमें। २ शव। ३ अग्निने।

(२४)

इस चरित्रको देख चित्त, सबके ही हुए विरक्त विशेष[1] ।
सदय हुए पाषाण–हृदय भी, दुष्कर्मोंसे डरे अशेष ॥
रहैं निरन्तर यदि अन्तरमें, ऐसे ही परिणाम कहीं ।
तो समझो संसारपार, होनेमें कुछ भी वार नहीं ॥

(२५)

जीवनलीलाकी समाप्ति यह, पढके पाठक समझेंगे ।
जल बुदबुदसम जीवन जगमें, इसके लिये न उलझेंगे ॥
स्वस्वरूपका सदा चिन्तवन, करके परको छोडेंगे ।
परके पोषक मोहक निजके, भोगोंसे मुख मोडेंगे ॥

देवरी (सागर) पितृवियोगी—**नाथूराम प्रेमी** ।

विषापहार स्तोत्र[2] ।

(महाकवि श्रीधनंजयकृत संस्कृतस्तोत्रका हिन्दी पद्यानुवाद)

(१)

अपने आतममें ठहरा है, किन्तु सर्वगत कहलाता ।
सब व्यापार जानता है पर, नहीं परिग्रहसे नाता ॥
कालमानसे वृद्ध हुआ है, तौ भी जो अजरामर है ।
रक्षा दुखसे करैं हमारी, वह पुराण परमेश्वर है ॥ १ ॥

---

१ सबके सब ।

२ जहांतक हम जानते हैं, इस स्तोत्रका भाषा पद्यानुवाद आजतक कहीं भी नहीं हुआ है । विषापहार भाषाके नामसे एक स्तोत्र मिलता है, परंतु वह संस्कृतका अनुवाद नहीं है । किसीने स्वतंत्र बनाया है इसीलिये हमनें भाषामें एक नई चीज समझकर यह परिश्रम किया है । यदि इसमें कुछ भूल हुई हो, तो विद्वानोंको सूचित करना चाहिये, ताकि पृथक पुस्तकाकार छपाते समय वह सुधारली जावै । यह अनुवाद हमने एक अज्ञात विद्वानकी बनाई हुई टीकापरसे समजकर किया है ।

(२)

जिसने परकल्पनातीत युगभार[1] अकेले ही झेला।
जिसका गुन गायन मुनिजन भी, कर नहिं सके एक बेला॥
आज दास यह उसी वृषभकी[2], विरद समझ यह रचता है।
जहां न जाता भानु वहां क्या, दीप प्रकाश न करता है॥ २॥

(३)

शक्र सरीखे शक्तिवानने, तजा गर्व गुणगानेका।
किन्तु मै न छोडूंगा निश्चय, विरदावली[3] बनानेका॥
प्रगटाउंगा बहुत विषय, है अल्प ज्ञान जो उसहीसे।
सारा नगर दिखाता जैसे, घरकी छोटी खिडकीसे॥ ३॥

(४)

तुम सबदर्शी देव किन्तु नहिं, तुम्हें देख सकता कोई।
तुम सबके ही ज्ञातापर नहिं, तुम्हें जान पाता कोई॥
'कितने हो' 'कैसे हो' ऐसा, कहा नहीं कुछ जाता है।
इससे 'निज अशक्ति बतलाना,' ही तेरी गुणगाथा है॥ ४॥

(५)

बालक सम अपने दोषोंसे पीडित जो नित रहते हैं।
उन्हें आप होकर दयालु भवरोगरहित नित करते हैं॥
यों न अहित हितका विचार जो, अपना कर सकनेवाले।
बालवैद्य उन सबके तुम हो, सदा स्वस्थ रखनेवाले॥ ५॥

(६)

शक्तिहीन सूरज छलबलसे, आज कल्य परसों करके।
नहिं कुछ देता लेता पर दिन खोता आशा दिखलाके॥
हे अच्युत! जिनपति! वैसे तुम, पलभर भी नहिं खोते हो।
शरणागत नत[4] भक्तोंको, तत्काल इष्ट फल देते हो॥ ६॥

---

१ चौथेकालका भार–पक्षमें जूएका भार। २ वृषभदेव–आदिनाथ तीर्थंकर पक्षमें बैल। ३ स्तोत्र। ४ नम्रीभूत।

(७)

भक्तिभावसे सुमुख तुम्हारे, रहते जो वे सुख पाते ।
पाते हैं दुख विमुख किन्तु नहिं, रागद्वेष तुम हो लाते ॥
जैसे सदा आरसी रहती एकरूप निर्मल काया ।
उसमें सुमुख विमुख दोनों ही ज्यों की त्यों देखें छाया ॥ ७ ॥

(८)

गहराई निधिकी उचाई गिरिकी[1], नभथलकी चौडाई ।
वहीं वहीं तक जहां जहां, निधि आदिक देते दिखलाई ॥
किन्तु नाथ ! तेरी अगाधता, और तुंगता विस्तरता ।
व्याप रही है तीन भुवनके बाहिर भी हे जगत्पिता ॥ ८ ॥

(९)

अनवस्थाको परमतत्त्व, तुमने अपने मतमें गाया ।
किन्तु बडा अचरज यह भगवन् !, पुनरागमन न बतलाया ॥
तथा आश करके अदृष्टकी[2], तुम सुदृष्ट[3] फलको खाते ।
यों तव चरित दिखें उलटे पर, सभी घटित देखे होते ॥ ९ ॥

(१०)

काम जलाया स्वामि ! तुम्हींने, इसीलिये यह उसकी धूले[4] ।
निज शरीरमें शंभु रमाई, होय अधीर मोहमें भूल ॥
विष्णु परिग्रह युत सोते हैं, लूटै उन्हें इसीसे काम ।
तुम निर्ग्रंथ जागते तब वह, तुमसे छीने क्या धनधाम ॥ १० ॥

(असमाप्त ।

देवरी (सागर)
१५-२-०९

अनुवादक—**नाथूराम प्रेमी ।**

---

१ सुमेरुपर्वतकी । २ आगामी समयसम्बन्धी-अप्रत्यक्ष । ३ वर्तमान कालसम्बन्धी-प्रत्यक्ष । ४ भस्म ।

शास्त्रीयचर्चा ।

अतिचार-निरूपण ।

शास्त्रकी चर्चा करनेवाले जैनियोंके लिये **अतिचार** शब्द अपरिचित नहीं है । परन्तु जहां तक हमको मालूम है, बहुत थोड़े लोग ऐसे होंगे, जो इसका यथार्थ अभिप्राय जानते हों । प्रसंग पाकर जैनहितैषीके पाठकोंको आज हम इसी विषयमें कुछ निवेदन करना चाहते हैं। आशा है कि, वे ध्यानसे पढ़ेंगे, और यदि भ्रमवश कुछ विपरीत लिखा जावे, तो सूचित करेंगे ।

पंडित प्रवर **श्रीआशाधर**जीने अतिचारका लक्षण इस प्रकार किया है **सापेक्षस्य व्रते हि स्यादतिचारोंऽशभञ्जनम्** । अर्थात् व्रतकी अपेक्षा रखनेवाले श्रावकके व्रतके किसी अंशके भंग होनेको अतिचार कहते हैं । अभिप्राय यह है कि, श्रावक जबतक व्रतके पालनेकी इच्छा रखता है, निरर्गल प्रवृत्ति नहीं करने लगता है, तबतक उसके अन्तरंग अथवा बहिरंग व्रतमें जो दोष लगते है, उन्हें अतिचार कहते हैं । व्रतपालना और व्रतभंगके मध्यके यदि सौ अंश माने जावें, तो एकसे लेकर ९९ तकके सब अंशोंको अतिचार कहना चाहिये, और आगे अनाचार । किसी २ विद्वानने अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार, इस इसप्रकार दोषोंके चार भाग किये हैं और उनके लक्षण भी किये हैं । यथाः—

अतिक्रमो मानसशुद्धिहानिर्व्यतिक्रमो यो विषयाभिलाषः ।
तथातिचारं करणालसत्वं भङ्गोह्यनाचारमिह व्रतानि ॥

अर्थात् धारण किये हुए व्रतमें चित्तकी शुद्धि नष्ट हो जानेको-परिणाम चल जानेको **अतिक्रम** कहते हैं, जिस विषयका त्याग किया है, उसके भोगनेकी अभिलाषा होनेको **व्यतिक्रम** कहते हैं. चरित्रमें अलसत्व-प्रमाद होनेको **अतिचार** कहते हैं और सर्वथा भंग हो जानेको **अनाचार** कहते हैं। अति-क्रम और व्यतिक्रम ये दोष बहुत सूक्ष्म हैं, सामान्य बुद्धिवालोंकी समझमें कठिनाईसे आते हैं, इसलिये उनका उल्लेख मात्र करके आचार्योंने अतिचार दोषोंका ही विशेष विचार किया है । उन्हें इसीमें गर्भित कर लिया है ।

---

१ अतिचार और अतीचार दोनों ही शब्द शुद्ध हैं ।

ऊपरके लक्षणोंसे पाठकोंको समझना चाहिये कि, हम लोग अतिचारको जितना छोटा दोष समझते हैं, वह उतना छोटा नहीं है। जिसप्रकार रुपयेमें एक पैसा कम रहने पर भी आना कहलाते हैं, उसी प्रकारसे व्रतभंग होनेमें थोडीसी भी कसर रहने तक अतीचार कहलाता है यह ठीक है कि अतिशय थोडे दोषको भी अतीचार कहते हैं, परंतु बडेसे बडे दोषोंकी भी तो अतीचारोंमें गणना है, इसको हम क्यों भूले जाते हैं?

अतिचारोंका यथार्थ अभिप्राय न समझनेके कारण लोग व्रतोंमें अतिचार लगनेको एक मामुली बात समझकर इस विषयमें बहुत निरर्गल हो जाते हैं, यह बडे खेद की बात है। व्रत जब निरतिचार पालन किये जावें तब ही फलद होते हैं, सातिचार नहिं होते। देखिये, कैसा अच्छा कहा है:—

व्रतानि पुण्याय भवन्ति जन्तो।
न सातिचाराणि निषेवितानि॥
सस्यानि किं क्वापि फलन्ति लोके।
मलोपलीढानि कदाचनापि॥

अर्थात् जीवोंको व्रत करनेसे पुण्य होता है, परन्तु कब? जबकि ये अतिचार रहित पालन किये जावें। अतिचार सहित पालनेसे फल नहीं होता। क्या कभी संसारमें मलीन धान्य बोनेसे उनमें फल आते हुए देखे गये हैं? नहीं।

सागार धर्मामृतके कर्ता आशाधरजीने व्रतके एकदेश भंग होने और एक देश भंग न होनेको अतिचार माना है। उन्होंने व्रत दो प्रकारके माने हैं, एक अन्तर्वृत्तिरूप और दूसरे बहिर्वृत्तिरूप। जिसमें अन्तरंग परिणामोंकी अपेक्षा रहती है, उसे अन्तर्वृत्तिरूप व्रत कहते हैं। और जिसमें बाह्य व्रतकी अपेक्षा रहती है, उसे बहिर्वृत्ति कहते हैं। जिसमें बहिर्वृत्ति व्रतकी तो रक्षा होती है, और अन्तर्वृत्तिका घात होता है, उसे अतिचार कहते हैं और जिसमें दोनोंका घात हो जाता है उसे अनाचार कहते हैं उदाहरणके लिये अहिंसा व्रतको ही लीजिये। देखिये अहिंसाणुव्रतका धारण करनेवाला गृहस्थ प्रतिज्ञा करता है कि, "मैं किसी जीवका घात नहीं करूंगा"। इस प्रतिज्ञाके करनेसे जीवोंके बध बंधनादि का भी त्याग हो जाता है। क्योंकि बन्धनादिक हिंसाके ही कारण हैं, बल्कि अन्तरंगमें निर्दयताके प्रवेश होनेसे उसके भाव

प्राणोंका घात होता है, इस कारण हिंसा ही हैं। परन्तु बध बन्धनादिसे साक्षातमें किसीके प्राणकी हिंसा नहीं होती है, इस अपेक्षासे वह बन्धनादि कार्यमें प्रवृत्त होता है। उसके ऐसे परिणाम नहीं रहते हैं, कि मेरी इस क्रियासे वह जीव मर जावै। इसलिये बन्धनादिक व्यापारोंमें बहिर्वृत्तिरूप व्रतकी तो रक्षा होती है, और अन्तर्वृत्तिरूप व्रतका घात होता है, इसलिये वधबन्धादिको आचार्योंनें अतिचार माना है। यथा:—

न हन्मीति व्रतं क्रुध्यन्निर्दयत्वान्न पाति न।
भनक्त्यघ्नन् देशभंग त्राणात्त्वतिचरत्यधीः ॥

अर्थात् बुद्धिरहित श्रावक निर्दयतासे क्रोधके आवेशमें "मैं जीवका घात नहीं करूंगा" इस नियमका पालन नहीं करता है। क्योंकि बाह्यहिंसाका कारण भूत क्रोधादिकषायोंका उदय अन्तरंग हिंसा है। परन्तु केवल बांधने मारनेमें साक्षात प्राणोंका वियोग नहीं होता है. इस लिये हिंसा भी नहीं होती है। इस तरह एक देशव्रतका भंग और एकदेश पालन होनेसे व्रतका अतिक्रमण करता है। अर्थात् व्रतमें अतीचार दूषण लगाता है।

यद्यपि अहिंसादि व्रतों तथा शीलोंके पांच पांच अतिचार कहे हैं, परन्तु यथार्थ में अतिचारोंकी संख्या कोई नियत नहीं है। इनके सिवाय और भी जो भंगा भंग रूप दोष लगनेवाले हों, उन सबको अतिचार कल्पना करलेना चाहिये। सागारधर्मामृतके चौथे अध्यायके १८ वें श्लोक की टीकामें इस विषयका स्पष्टीकरण किया है, जिसका सारांश यह है कि, गतिस्तंभन, मतिस्तंभन, उच्चाटनादि दुष्ट क्रियाओंके सिद्ध करनेके कारणभूत मंत्र तंत्र प्रयोगादि तथा और भी बुरे व्यापार जिनमें एक देश व्रतका भंग संभव हो वे सब अतिचार हैं अतिचारोंकी पांच पांच संख्या उपलक्षण रूप है, शेष सम्पूर्ण अतीचार इन्हींके अन्तभूर्त हैं।

जिसप्रकार अतिचारोंकी संख्या नियत नहीं है, उसी प्रकारसे यह भी कोई नियम नहीं है कि, अमुक अमुक व्रतोंमें ही अतीचार होते हैं। परंतु प्रत्येक व्रतमें प्रत्येक त्यागमें अतिचारोंकी कल्पना हो सकती है। रत्नकरंडादिक आचार ग्रन्थोंमें बारह व्रतोंके ही अतीचार कहे हैं, परन्तु सागारधर्मामृतादि ग्रन्थोंमें

पंचोदुम्बरत्याग, सप्तव्यसनत्याग, मद्यमांसमधुत्याग, जलगालनादि अनेक व्रतोंके पृथक् २ अतीचार कहे हैं।

इसके शिवाय पात्रकी अपेक्षा भी व्रतोंमें विशेष अतिचारोंकी कल्पना करनी पडती है। ब्रह्मचर्यके जो आतिचार पुरुषकेलिये कहे हैं। वे सबके सब स्त्रियों के लिये नहीं हो सकते हैं। इसलिये स्त्रियोंके अतिचारमें कुछ भेद बतलाया हैं। परविवाहकरण आदि चार अतीचार तो स्त्री और पुरुष दोनों में समान होते हैं। परन्तु इत्वरिकागमन स्त्रीमें घटित नहीं हो सकता है। इस लिये उसके स्थानमें ऐसा कहा है कि जिस दिन अपने पतिकी वारी सपत्नी (सौत) के पास जानेकी हो, उस दिन उसे रोककर स्वयं समागम करे अथवा ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा करनेवाले अपने पतिके पास अथवा किसी परपुरुषके पास भी संभोग करनेकी प्रार्थना करनेके लिये जावें (किंतु संभोग नहीं करै) तो उसे पांचवां अतिचार लगता है।

अतीचारोंके विषयमें किन्ही २ आचार्योंका मत भेद भी है। जैसे परिग्रह परिमाणव्रतके तत्त्वार्थसूत्रमें **क्षेत्रवास्तु हिरण्य सुवर्ण धनधान्य दासी दासकुप्यप्रमाणातिक्रमः** अर्थात् क्षेत्र वास्तु हिरण्य सुवर्ण, धनधान्य दासीदास और कुप्य ये पांच अतीचार कहे हैं। परंतु **स्वामी समन्तभद्राचार्यने** अतिबाहन। अतिसंग्रह। विस्मय। लोभ और अतिभारवहन ये पांच अतीचार माने हैं। यथा:—

अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि।
परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते॥

यशस्तिलकमहाकाव्यशास्त्रके कर्त्ता **श्रीसोमदेव सूरिने** ऊपर कहे हुए अतिचारों से भी भिन्न अतिचार माने हैं:—

कृतप्रमाणाल्लोभेन धनादधिकसंग्रहः।
पञ्चमाणुव्रतहानिं करोति गृहमेधिनाम्॥

अर्थात् "धनादिके किये हुए परिमाणसे लोभके वशीभूत होकर अधिक संग्रह करना गृहस्थोंके परिग्रहप्रमाणव्रतकी हानि करता है।"

इसीप्रकार भोगोपभोग परिमाणव्रतके तत्त्वार्थ महाशास्त्रमें सचित्त, सचित्त-सम्बन्ध, सचित्तसम्मिश्र, दुष्पक्व और अभिषव, पदार्थोंके खानेमें पांच अती-चार माने हैं, और स्वामी समन्तभद्रने—

विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषानुभवौ ।
भोगोपभोगपरिमा व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥

अर्थात् विषके सदृश विषयोंमें आदर, उनकी अनुस्मृति, अतिशय लोलुपता, अतिशयतृषा, और अतिशय अनुभव भोगोपभोगपरिमाण व्रतके पांच अति-चार कहे हैं और श्रीसोमदेवसूरिने इन दोनोंसे ही पृथक् अतिचार माने हैं:—

दुष्पक्वस्य निषिद्धस्य जन्तुसम्बन्धमिश्रयोः ।
अवीक्षितस्य प्राशस्त तत्संख्या क्षयकारणम् ॥

अर्थात्—दुष्पक्क, निषिद्ध, जन्तुसम्बन्ध, जन्तुमिश्र और अवीक्षित पदार्थोंका खाना भोगोपभोगपरिमाणव्रतको नष्ट करनेवाला है ॥

और भी अनेक व्रतोंके अतीचारोंमें मतभेद हैं जिन सबका उल्लेख करनेकी यहां आवश्यकता नहीं दिखती है । ये दो उदाहरण ही इस बातके समझानेके लिये बस होंगे कि, आचार्योंने अतिचार जुदी ५ अपेक्षाओंसे जुदे २ प्रकारके माने हैं ।

यहां हम यह भी कह देना उचित समझते हैं कि, अनेक अतीचार ऐसे हैं जो एक ही नामसे अभिहित होनेपर भी आचार्योंके मतसे जुदे २ अर्थोंके द्योतक होते हैं । उदाहरणके लिये ब्रह्मचर्य्याणुव्रतके **इत्वरिकागमन** नामक पहले अतीचारको ही ले लीजिये । रत्नकरंडके तथा तत्त्वार्थसूत्रके भाषाकारोंके मतमें इत्वरिकागमनका अर्थ व्यभिचारिणी (परिगृहीत और अपरिगृहीत) स्त्रियोंके घर आना जाना तथा उनसे सम्बन्ध रखना आदि होता है । तथा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाके टीकाकार श्रीशुभचन्द्राचार्यके मतसे इत्वरिकागमनका अर्थ " पुंश्चली, वेश्या, दासी आदि स्त्रियोंके जघन, स्तन मुख आदि अंग दे-खना, उनसे संभाषण करना, कटाक्ष मारना इशारे करना, आदि रागभावयुक्त सम्पूर्ण बुरी चेष्टाएं करना होता है । " **पुंश्चलीवेश्यादासीनां गमनं जघनस्तनवदनादिनिरीक्षणसंभाषणहस्तभ्रूकटाक्षादि संज्ञा वि-**

धानं निखिलरागित्वेन दुश्चेष्टितं गमनमित्युच्यते। परन्तु सागारधर्मामृतके कर्ता पंडितप्रवर **आशाधरजीके** मतमें अनाथ और सनाथ कुटिला स्त्रियोंके साथ सहवास करना इत्वरिकागमन है। इस सहवासमें उन्होंने अतिचारत्व किस प्रकारसे घटाया है, वह विचारने योग्य है, इसलिये हम उसका भावार्थ यहां उद्धृत कर देते हैं:—

"जो दुश्चरित्रा स्त्री पति अथवा पिता आदि स्वामीके न होनेसे स्वतंत्र होकर गणिकापनेसे (द्रव्य लेकर) अथवा पुंश्चलीपनेसे (व्यभिचारमात्रकी इच्छासे) परपुरुषोंके साथ समागम करती है, उसको **इत्वरी** कहते हैं। इसीप्रकार प्रत्येक पुरुषके साथ समागमन करनेवाली वेश्याको भी इत्वरी कहते हैं। और कुत्सित अर्थात् निंद्य स्त्रीको **इत्वरिका** कहते हैं। ऐसी स्त्रीके सेवन करनेको इत्वरिकागमन कहते हैं। यह ब्रह्मचर्य अणुव्रतका प्रथम अतीचार है। इसमें ब्रह्मचर्यव्रतका भंगाभंग घटित होता है। क्योंकि इस व्रतका धारण करनेवाला श्रावक किसी वेश्याको कुछ भाडेरूप द्रव्य देकर किसी नियतकाल तक स्वीकार करता है और उतने ही समयतक अपनी स्त्रीके समान कल्पना करके उसके साथ सहवास करता है। इसलिये उसमें बुद्धिकी कल्पनासे 'स्वस्त्री' ऐसी अपेक्षा होने और उसे अल्पकाल तक स्वीकार करनेसे सार्वकालिक व्रतका भंग नहीं होता है। परन्तु वास्तवमें उसे स्वस्त्री नहीं कह सकते, इस लिये व्रतका भंग भी होता है। तथा इसीप्रकारसे जिसका पिता पति आदि कोई स्वामी नहीं है, ऐसी स्वतंत्र दुश्चरित्रा स्त्रीके साथ समागम करना भी भंगाभंग रूप अतिचार होता हैं। क्योंकि उसका कोई स्वामी न होने तथा बुद्धिसे नियत काल पर्यन्त स्वस्त्री कल्पना करनेसे व्रतका अभंग और यथार्थमें स्वस्त्री न होनेसे व्रतका भंग होता है। ये दोनों प्रकारके अतीचार केवल स्वदारसंतोषी श्रावकको ही होते हैं परस्त्रीत्यागीको नहीं। क्योंकि कुछ द्रव्य देकर ग्रहणकी हुई अपरिग्रहीत इत्वरिका वेश्यारूप होनेसे अथवा स्वामीके विना अनाथ होनेसे परस्त्री

---

१ संस्कृत टीकाकारोंका यह मत है, अथवा नहीं, हम नहीं कह सकते। परन्तु वर्तमानमें जो भाषाटीकायें प्रचलित हैं, उन सबमें यही अर्थ किया है। पं० आशाधरजीके कथनसे तो ऐसा जान पडता है कि, तत्त्वार्थके टीकाकारोंका भी यही मत होगा।

नहीं गिनी जाती। इसीप्रकार परस्त्रीत्यागीके भी वेश्यासेवन अतीचार होता है। परन्तु इस विषयमें अनेक आचार्योंका ऐसा मत है, कि–परस्त्रीत्यागी श्रावकके अपरिगृहीत कुलांगना स्त्रीको सेवन करना अतीचार है। क्योंकि जिसका कोई स्वामी नहीं है, ऐसी अनाथ (अपरिगृहीत) स्त्री परस्त्री नहीं हो सकती और सेवन करनेवाला भी ऐसी ही कल्पना करके उसको सेवन करता है, कि यह परस्त्री नहीं है। इसलिये व्रतका भंग नहीं होता परन्तु लोकमें उसे परस्त्री कहते हैं, इसलिये व्रतका भंग हुआ। इसप्रकार भंगाभंग रूप होनेसे अतीचार है। तत्त्वार्थसूत्रमें इत्वरिका परिगृहीतागमन और इत्वरिका अपरिग्रहीतागमन ऐसे दो अतीचार माने हैं, सो ऊपरके कथनमे संगृहीत होते हैं। ''

इस निरूपणको पढकर बहुतसे लोग अकांडतांडव करने लगे, तो आश्चर्य नहीं है। परन्तु इससे अप्रसन्न होनेवाले वे ही लोग होंगे, जो अतीचारको एक बिलकुल साधारण दोष समझते होंगे। उन्हें सोचना चाहिये कि, इत्वरिकागमनको किसी विद्वान्‌ने पुण्य कर्म नहीं कह दिया है। सब ही उसकी गणना पापमें करते हैं। क्योंकि अतीचार एक पाप ही है। पुण्य नहीं है। उन्हें आचार्योंकी जुदी २ अपेक्षाओंका मनन करना चाहिये। व्रतके १०० अंशोंमेंसे एक अंशभंगको भी अतिचार कहते हैं और ९९ अंशोंके भंगको भी अतीचार कहते हैं परन्तु वास्तवमें ९९ अंशका भंग होना अनाचारके बराबर ही है इत्वरिकागमन भी९९वां अंशभंग है ! इसलिये कोई परस्त्री त्यागी ऐसा न समझ ले कि–इत्वरिकाके सेवनमें थोडासा पाप है–यदि ऐसा समझ इत्वरिकासेवनमें रत होंगे तो उनको बडा भारी दोषका भागी होना पडैगा।

भंगाभंगदोषोंकी घटना भलीभांति समझमें आनेके लिये हम यहां दो चार अतिचारोंका और भी उल्लेख करके इस लेखको समाप्त करते हैं !

---

१ संसारमें अपनी स्त्रीके सिवाय दो प्रकारकी स्त्रियां हैं, एक परस्त्री और दूसरी वेश्या ! इन दोनोंके त्यागकी अपेक्षासे व्रत भी दो प्रकारके हैं। जो दोनोंका त्याग करता है, वह स्वदारसंतोषी और जो केवल परस्त्रीका त्यागी होता है, वह परस्त्री त्यागी । **सापरदारनिवृत्तिः स्वदारसंतोष नामापि** श्रीसमन्तभद्रके इस वाक्यसे भी दो व्रत सिद्ध होते हैं । परस्त्रीत्यागव्रतका लक्षण श्रीसोमदेवसूरिने भी इसी प्रकार किया है ! **वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्रतज्जने । माता स्वसातनूजेति मतिर्ब्रह्मगृहाश्रमे ॥**

धनधान्य–गणिम धरिम मेय और परीक्ष्य के भेदसे धन चार प्रकारका है। सुपारी जायफलादिको गणिम, केशर कपूरादिको धरिम, तेल घी नमक आदि को मेय और रत्न वस्त्र आदिको परीक्ष्य कहते हैं और चावल, जौ, मसूर, गेंहूं, मूंग उडद, तिल चना आदि सत्रह प्रकारके धान्य होते हैं सो अपने घरके धनधान्य बिकजानेपर अथवा किसी कारणसे खर्च हो जानेपर दूसरे खरीदनेकी इच्छासे किसीको खरीदनेका बचन देकर जबतक अपने सब धान्यादि बिक न जावे, अथवा खर्च न हो जावें, तबतक उनको उसीके घरमें रखना परिग्रहपरिमाण व्रतका धनधान्य अतीचार है। क्योंकि उन धनधान्यादिको अपने घरमें न रखनेसे व्रतका पालन और परिणामोंसे उनका संग्रह करनेसे भंग इसप्रकार भंगाभंग दोष घटित होते हैं।

कुप्य—सोनेचांदीके सिवाय लोहे कांसे तांबे सांसे आदि धातुके पदार्थ मिट्टीके वर्तन, तथा लकडीके रथ गाडी हलादि पदार्थोंको कुप्य कहते हैं। इन पदार्थोंका परिमाण करके कारणवश अधिक होनेपर उन सबका समावेश अपनी नियमित संख्यामें करलेना, जैसे दो वर्तनोंको एक जोडी मानना, अथवा छोटे २ अनेक वर्तन मिलाकर बडे २ बनाना, अथवा नियत समयके अनन्तर वापिस करनेकी इच्छासे अन्यत्र रखना, यह सब परिग्रहपरिमाणव्रतका कुप्य नामका अतिचार है। क्योंकि ऐसा करनेसे पदार्थोंकी संख्याका अविघात और परिणामोंसे विघात होता है। इसलिये भंगाभंगरूप अतिचार है।

दासीदास—(गवादौ गर्भतः)—गाय भैंस शुक सारिका दासी आदिस्वीकार किये हुए नियमित संख्यारूप परिग्रहमें गर्भधारण कराकर उसके निमित्तसे स्वीकृत परिमाणका अतिक्रम करना पांचवां अतिचार है। किसी पुरुषके एक वर्षमें दो पशु रखनेका परिमाण है। उसके दो गाये हैं। यदि वह तत्काल ही गर्भधारण करावेगा, तो वर्षके भीतर ही दो पशु और बढकर संख्याका अतिक्रम हो जावेगा। ऐसा समझकर तीन या चार महीने बाद गर्भधारण कराना, जिससे कि वर्षके बाद प्रसूति होवे, यह गवादौ गर्भतः अथवा दासीदास नामका अतिचार है। इसमें बाहरसे दो ही पशु दिखलाई देते हैं, इसलिये व्रत पालन और गर्भमें दो पशु अधिक होनेसे व्रतभंग, इसप्रकार भंगाभंगरूप अतीचार होता है।

विरुद्धराज्यातिक्रम—जब कि, किसी राजाका छत्रभंग हुआ हो. अथवा उसपर किसी बलवान राजाने आक्रमण किया हो, जिससे वह प्रजाकी रक्षा भलीभांति न करसकता हो और प्रजा भयभीत हो गई है, ऐसे समयमें मर्यादा का (कानूनका) उल्लंघन करना, कीमती वस्तु कम कीमतमें लेना विरुद्ध राज्यातिक्रम है ! परस्पर द्वेष रखनेवाले राजाओंकी भूमि तथा सैन्य सम्बन्धी व्यवस्थाका उल्लंघन करनेको भी विरुद्ध राज्यातिक्रम करते हैं। जैसे उन दोनों राज्योंमें रहनेवाले मनुष्योंमेंसे एकका दूसरे राज्यमें जाना और दूसरेका पहले राज्यमें आना अथवा किसीको भेजना वा बुलाना, किसी मनुष्यके एक राज्यसे दूसरे के राज्यमें जाना दूषित नहीं है. परन्तु वह राजाकी आज्ञानुसार नहीं जाता है किसी दुष्ट हेतुसे जाता है., तथा लोकमें भी ऐसा मनुष्य दंडित होता है. इसलिये अचौर्यव्रतका भंग होता है! परन्तु एक राज्यसे दूसरेमें जाने वाला समझता है. कि मैने कुछ साक्षात चोरी नहीं की है, मैं केवल व्यापारके लिये आया हूं इसप्रकार यह अपने व्रतोंकी रक्षा करनेमें भी तत्पर रहता है ! तथा कीमती वस्तुको कम कीमतमें खरीदनेवाला भी समझता है कि–मैं यह व्यापार करता हूं; किसीका घर नहीं फोडता हूं ! और ऐसे पुरुषको लोकमें भी चोर नहीं कहते हैं, इसलिये उसके व्रतका भंग भी नहीं होता है । इस प्रकार अचौर्यव्रतका भंग और अभंग करनेमे विरुद्धराज्यातिक्रम भी अतीचार नाम को पाता है।

आशा है कि पाठकगण इन थोडीसी पंक्तियोंसे अतीचारका अभिप्राय समझकर हमारे परिश्रमको सफल करेंगे ! अलमतिपल्लवितेन विद्वत्सु—

देवरी (सागर)
२–१–१९०९ **नाथूराम प्रेमी।**

महासभामें बेकानूनी।

पाठक महाशयो ! आज एक युग बीतगया हमलोगोंमें एक **महासभा** है जिसके स्थापक स्वर्गीय पंडित छेदालालजी आदि जैन धर्मके विद्वान् वा धर्मात्मा गण थे वा हैं। और उस महासभाका मुख्य उद्देश संस्कृत वा धार्मिक विद्याकी की उन्नतिके लिये एक महाविद्यालय, जगहँ २ पाठशालायें, तथा सभायें

स्थापन करकें जिनधर्मकी रक्षा करना था। इसीकारण इस मुख्य उद्देशके अनुसार उसका नाम '**भारतवर्षीय श्रीजिनधर्मसंरक्षिणी दिगम्बर जैनमहासभा**' रक्खा गया था। तदनुसार धर्मकी रक्षाकेलिये महाविद्यालियादि स्थापन हुये और सुरू २ में इसी उद्देशके अनुसार कारवाई होने लगी परंतु कुछ दिनोंके पश्चात् धर्मविद्या वा धर्माचरणशून्य अंगरेजी विद्याके भक्त बाबू लोगोंने अपने **बाबूधर्मकी** रक्षा करनेका उपाय न देखकर उसकी रक्षाके लिये कमर कसकर महासभामें सामिल होकर श्रीजिनधर्मकी रक्षाको गौण करके मुख्यतासे बाबू धर्मरक्षाके लिये कूटनीतिसे उपाय करने लगे अर्थात् जो जो कारवाई करते रहे वह प्राय: बेकानूनी करते रहे किंतु प्रगटतामें समस्त भाइयोंको नियमानुसार बताते रहे जिससे आजतक किसीनें चूं तक नहीं किया। हमारी समाजमें चारप्रकारके मनुष्य हैं एक तो संस्कृत धार्मिक विद्याके विद्वान्, दूसरे सेठ धनाढ्य वा रईस, तीसरे अंगरेजी विद्याके विद्वान, चौथे सर्व साधारण। सो संस्कृत वा धार्मिक विद्याके विद्वान् तो महासभामें बे कानूनी वा बाबूधर्मरक्षिणी कारवाइयें देखकर उससे विरक्त होगये। धनाढ्य रईसगण अहोरात्र विषयभोगोंमें ही मग्न रहते हैं उन्हें धर्म वा जातिकी रक्षासे क्या संबन्ध? धर्म वा जाति भाड़में जाय वा समुद्रमें डूब जाय उन्हे क्या परवाह है उनको तो अहोरात्र विषयभोग मिलने चाहिये। रहे हमारे सरीखे साधारण भाई सो बाबूधर्मरक्षिणी सभामें उनकी सुनाई ही नहीं होती तब वे बोले ही क्यों? इसकारण हमारे बाबूओंने श्रीजिनधर्मसंरक्षिणी महासभाको सहजहीमें बाबूधर्मरक्षिणी बना डाला कारवाई तो सब बाबूधर्मके लिये ही होती रही परंतु महासभाके नाममें **श्रीजिनधर्मसंरक्षिणी** विशेषण गत वर्षसे बिना प्रस्ताव पास किये ही उडा दिया था जिससे जैनमित्र और जैनहितैषीमें उजर हुआ तो हमारे परम

१ खडे २ मूतना, देशका उत्तमवेश छोडकर कोट बूट पटलून आदिपहिरना, जातिपातिका झगडा उठाकर सबको एकाकार करना, बालविधवावोंका पुनर्विवाह कर करकें उनको सदासुहागिन (व्यभिचारणी) बना देना, और धार्मिक संस्कृत विद्याकी उन्नतिसे जाति धर्मकी रक्षा कदापि नहिं होसक्ती जो कुछ उन्नत्ति होगी वह अंगरेजी विद्याकी उन्नतिसे ही होगी क्योंकि एकमात्र यही विद्या रत्नत्रयमार्ग और रोटी देनेवाली है, संस्कृत वा धार्मिकविद्या तो भिकमंगोंको बढानेवाली है इत्यादि २ बाबूलोगोंके धर्म हैं।

सुयोग्य महामंत्री साहबने मनमाना कागजीअधिवेसन करके अबकी बार धर्मा-त्मा विद्वानोंके मगजसे निकले हुये मुख्यतासे धर्मकी उन्नतिसे ही उन्नति होगी इस परमतत्त्वको बतानेवाले पवित्र विशेषणको उडा दिया गया और अब उस महासभाका नाम **भारतवर्षीयदिगंबरजैनमहासभा** कर दिया गया है जिससे अनुमान होता है कि महाविद्यालयका जो रुपया संस्कृत और धार्मिक विद्याकी उन्नतिके लिये धर्मात्मा भाइयोंनें दिया है वह रुपया अब शीघ्र ही बाबू धर्मरक्षिणी अंगरेजी विद्याकी उन्नतिके लिये लगादिया जायगा क्योंकि अब प्र-त्यक्षतया बे कानूनी कार्रवाइ होने लगी, जिसकी ओर कोई भी विद्वान् वा धनाढ्य कुछ भी लक्ष्य नहीं करते हैं, महा सभामें बाबू लोगोंने आजतक क्या क्या वे कानूनी कार्रवाई की हैं उनके प्रकाश करनेका तो इस समय हमारे पत्र में स्थान नहीं है इस समय दो एक ताजा बेकानूनी कार्रवाई मात्र दिखाकर महा सभाके सभासदों और धर्मात्मा भाइयोंका इस ओर लक्ष्याकर्षण करना चाह-ते हैं !

पाठक महाशयो! यह आम सभाओंका नियम है कि–जो प्रस्ताव समस्त देशके विद्वान, धर्मात्मा, सभासद और प्रतिनिधियोंके वादविवादपूर्वक वार्षिक अधिवेशनपर पास किया जाता है, उस प्रस्तावको साधारण आवश्यकीय कार्योंका निवाहकरनेकेलिये वर्षमें कईबार होनेवाली प्रबंधकारिणी कमेटीको प्रत्यक्ष वा मनमाने परोक्ष अधिवेशनमें लोट देनेका अधिकार नहीं है ! कदाचित वार्षिक अधिवेशनमें हाजिर होनेवाले सभापति, सभासद, प्रतिनिधि, विद्वान् धर्मात्मा आदि सबकी ही बुद्धिमें विक्षिप्तपना आगया हो और कोई प्रस्ताव महा-सभाके उद्देश्यके विरुद्ध पास हो गया हो तो उस प्रस्तावपर अगले वार्षिक अधि वेसनपर ही पुनर्विचार होकर नापास किया जा सकता है. यदि ऐसा नियम किसी सभामें न हो तो फिर उस सभाका वार्षिक साधारण अधिवेशन होना ही व्यर्थ है। क्यों कि उसमें जो जो प्रस्ताव होंगे, उसके सभापति मंत्री वा उपमंत्री प्रत्यक्ष वा मनमाना कागजीअधिवेसन करकें जब जी चाहा लोटदेंगे और अपनी इच्छानुसार जो चाहा सो प्रस्ताव पास कर लेंगे। फर्ज करो कि हमारी महसभामें समस्त देशके समस्त सभासद और प्रतिनिधि वा साधारण सभासदोंने बाद वि-बादसे भलेप्रकार परिमार्जित करकें यह प्रस्ताव पास करदिया कि–" **महा-विद्यालयकेलिये वर्त्तमानमें जो चंदा हुआ है वह केवल मात्र**

संस्कृत वा धार्मिक विद्याकी उन्नति करनेके लिये ही हुआ है–इसको सेकंडलेंगवेजकी बतौर एक घंटे अंगरेजी वा अन्य मुनीमी आदि लौकिक विद्या सिखानेके सिवाय अंगरेजी हाईस्कूल आदिकी स्थापना वगेरह अंगरेजीविद्याकी उन्नतिमें कदापि न लगाया जाय " अगर प्रबंधकारिणी कमेटीको महासभाके साधारण अधिवेसनमें पास हुये प्रस्ताओंको लोटा देनेका आधिकार होगा तो अंगरेजी विद्याके भक्त हमारे बाबूगण–दूसरे ही दिन इस प्रस्तावको इस प्रकार लोट देंगे कि–" **महा विद्यालयके लिये जो धन संग्रह हुआ है वह संकृत वा धार्मिकविद्याकी उन्नतिके लिये हुआ है परंतु अबसे वह अंगरेजी विद्याकी उन्नतिमें ही लगाया जाय चूंकि–उदर पोषण करनेवाली यही एकमात्र विद्या है संस्कृत और धार्मिक विद्यासे उदरपोषण नहीं होता** " तो कहिये पाठक महाशय उनको कौन रोक सकता है ? इसलिये साधारण सभाके प्रस्तावोंको प्रबंधकारिणीसभा कदापि नहिं लोट सकती ऐसा नियम होना ही चाहिये । परंतु हमारे महामंत्री साहब इस नियमको रखना नहीं चाहते । इसीलिये आपने कुंडलपुरके बडे भारी अधिवेशनमें पास हुए कई प्रस्ताओंको अपने मनमाने कागजी अधिवेशनमें लोट पोट दिया है उनमें एक प्रस्ताव स्याद्वादपाठशालासंबंधी जो पास हुआ है उसको तो बिलकुल ही लोट दिया है । महासभाके प्रस्तावानुसार स्याद्वादपाठशालाकी प्रबंधकारिणी कमेटीने जो जो प्रस्ताव स्वीकार करके महासभाके पास स्वीकारताके लिये भेजे थे, हमारे सुयोग्य महामंत्री साहबने उनका कुछ भी आदर नहिं करके उनके विरुद्ध स्याद्वाद पाठशालाके स्थापकोंकी कीर्त्ति धूलमें मिलानेवाला स्याद्वादपाठशालाको मटियामेट करनेका प्रस्ताव अपने मनमानें कुल्हडीमें गुड फोडनेवाले कानपुरी अधिवेंसनमें कर डाला है । जिसके विषयमें अन्यत्र लिखा है । यहां इतना ही कहना चाहते हैं कि यह कार्रवाई सर्वथा नियमविरुद्ध है। हमारी भोली भाली जैनसमाजके धर्मात्मा वा विद्वान् तो पहिलेसे विरक्त हो गये और इसप्रकारकी बेकानूनी अन्यायरूप कार्रवाई होगी और होती रहैगी तो फिर महासभामें कोई भी भाई सामिल नहीं होगा ।

पाठक महाशयो ! ता. ३१ दिसंवरको कानपुरमें जो उक्त अधिवेसन हुआ है वह सर्वथा ही नियमविरुद्ध है । पाठक महाशयो ! जरा देरके लिये बाबूधर्म

राक्षिणी महासभाकी मनमानी पास की हुई नियमावली और १६ जनवरीके **जैनगजट**को खोलकर अपने सामने रखिये—

नियमावलीमें १४ वां नियम यह है-**इस सभाकी एक प्रबन्धकारिणी सभा होगी जिसके सभासदोंका चुनाव प्रति तीसरे वर्षपर साधारणसभाके अधिवेशनमें** (वार्षिक अधिवेशनपर) **होगा** ।

नियमावलीका १६ वां नियम है कि-**इस सभाके प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रीतियोंसे अधिवेशन हुआ करेंगे और कोरम ११ का होगा** ।

अब १६ जनवरीका जैनगजट खोलकर देखिये कि हमारे सुयोग्य महामंत्री साहबने कानपुरमें जो ३१ दिसंबरको प्रबन्धकारिणी कमेटीका १ प्रत्यक्ष अधिवेशन किया है उसके सभासदोंकी हाजिरीपर नजर डालियेगा तो कुल ६ सभासदोंकी हाजरी पाइयेगा । जिसमें १ श्रीमंत सेठ मोहनलालजी २ बाबू चंपतरायजी ३ बाबू अजितप्रसादजी ४ बाबू शीतलप्रसादजी ५ हकीम कल्याणरायजी ६ लाला रामस्वरूपजी ये ६ महाशय थे । इनमें सिवाय श्रीमंत सेठ मोहनलालजी के तीन तो बाबू धर्मकी रक्षाकरने वाले बावू हैं और दो उनकी हांमें हां मिलानेवाले हैं अर्थात् इस ६ की संख्यामें श्रीजिनधर्मसंरक्षिणी पक्षके एक ही सभासद हाजिर थे ।

पाठक महाशयो ! नियमावलीके अनुसार तो प्रबंधकारणी कमेटीका उक्त अधिवेशन किसी प्रकार भी बाकायदा नहीं हो सक्ता है परंतु सुयोग्य सुचतुर महामंत्री साहेबने इस बेकानूनी अधिवेशन को भी बाकायदा दिखा दिया है आप या कोईभी भाई जैनगजटमें सभासदोंकी हाजिरी देखेंगे तो पहिली बैठकमें १८ दूसरीमें १९ और तीसरीमें २२ वा २३ सभासदोंकी हाजिरी पाइयेगा इनमेंसे तीन सभासद तो श्रीमान् कानूनबाज हाकिम सुयोग्य महामंत्री साहेबने अधिवेशनसे पहिले ही बनाकर संख्या बढाली और १४ सभासद कागजी एवजी नामोंसे हाजिर कर लिये गये थे ।

---

१ कुंडलपुरके अधिवेशनमें पास हुई नियमावलीमें कोरम १३ का था परंतु सुयोग्य महामंत्री बाबू चंपतरायजीने अपने मनमाने कागजी अधिवेसनमें उसको लोटाकर ११ का ही कोरम रक्खा है ।

अब हम आपसे तथा महामंत्री वा सहायक महामंत्री श्रीमंत सेठ मोहन लालजी साहेबसे पूछते हैं कि—

१ प्रथम तो दोमहीने पीछे श्रवणबेलगुलमें महासभाका वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था–फिर इस कुल्हडीमें गुडफोडने सदृश अधिवेशन करनेकी क्या जरूरत थी? जो जो महत्त्वके प्रस्ताव वादविवाद पूर्वक विचार करके पास करने थे, वे तो आपने ६ सभासदोंकी हाजिरीमें ही पास कर डाले फिर हजारों लाखों रुपया खर्च करके सब देशके सर्वप्रकारके सभासदोंकी हाजरीवाले महासभाके अधिवेसनमें क्या करते?

२ दूसरे–इस अधिवेशनकी अतिशय आवश्यकता ही थी तो इसप्रकार नियम विरुद्ध ६ सभासदोंकी हाजिरीमें ही अधिवेशन क्यों किया गया?

३। यदि कोई महाशय कहै कि—१४ सभासद पत्रद्वारा एवजी नामेसे हाजिर हुये थे इनको कोरममें क्यों नहीं सामिल करते? बेशक सामिल कर सकते थे परंतु नियमावलीमें इसप्रकारके कागजी एवजीनामेसे हाजिर होकर कोरम पूरा करकें मनमानी कार्रवाईका नियम कहां है सो बताइये?

४। यदि आप किसी न किसीप्रकार इसको नियमानुसार सिद्ध भी करदें तो हमें बताइये कि—जिस एक सभासदको १० सभासदोंने एवजी नामा भेज दिया तो वह एक सभासद १० सभासदोंकेसे हृदय बनाकर दश प्रकारसे खंडन मंडन करैगा वा सम्मति देगा अथवा अपने एकही हृदयसे? यदि एक ही हृदयसे सम्मति निकलैगी तो उसको १० जनोंकी सम्मति कैसें मानी जा सकती है? अगर वे १० सभासद हाजिर होते तो संभव था कि उसमेंसे कमसेकम ४–५ सभासद तो उस एवजी नामावाले सभासदके विरुद्ध अवश्य कहते और ऐसी अवस्थामें यह भी संभव था कि उन ४–५ सभ्योंके खंडन मंडनको सुनकर सब सभासद उन्हींकी सम्मतिमें सम्मत हो जाते तो पेश किया हुआ अन्याय रूप प्रस्ताव कदापि पास नहीं हो पाता। परंतु इसप्रकार एवजी नामेकी कार्रवाईसे अन्यायरूप प्रस्ताव वा महामंत्रीकी इच्छानुसार प्रस्ताव भी पास हो सक्ता है। यदि ऐसे एवजीनामेसे हाजिर होनेका नियम रक्खा जायगा तो एकदिन ऐसा भी होगा कि ५१ सभासदोंमेसे ५० सभासद महामंत्रीकों ही एवजीनामा भे-

जदेंगे और महामंत्री साहब खुशीके साथ अपने बंगलेपर बैठे हुये बाबूधर्मरक्षाके मनमाने प्रस्ताव पास करलेंगे तो उन्हे कौन रोक सकता है ?

५। प्रबंधकारिणी सभाके सभासद वा उपलक्षणसे स्थायी कार्याध्यक्ष प्रति तीसरे वर्ष महासभाके वार्षिक महा अधिवेशनमें चुननेका नियम है। महामंत्रीसाहबने वार्षिक अधिवेसन तो दूर रहै प्रबंधकारिणी कमेटीके अधिवेशनसे पहिले ही लाला घमंडीलालजीको सभासद तत्पश्चात् उन्हें बाबूदेवकुमारजीके स्थानमें स्थायी सभापति तथा बाबू महावीर सहाय पांडे और कानपुर निवासी बाबू नवलकिशोरजीको कौनसे नियमसे सभासद बना लिये ?

६। जब कि-प्रबंधकारिणीके सभासद बनानेका कमसे कम ३१ तकका नियम है तो क्या जरूरत है कि ५१ से कम सभासद रहने ही नहिं चाहिये दो कमती हो गये तो उनकी जगह दूसरे दो बाबू होने ही चाहिये ?

७। यह जो ३१ दिसंबरको मनमानी बेकायदा कमेटी हुई थी जो कि हमारे भोले भाले सभासदो वा जैनी भाईयोंको जैनगजटमें धोकेबाजीसे बाकायदा बताई गई है उसकी कार्रवाई ता १६ जनवरीके जैनगजटमें छपी है उसके नीचें प्रकाश करनेंवालेका नाम "**द: सभापति कमेटी झन्नूलाल**" ऐसा छपा है। अब हम पूछते हैं कि-ये झन्नूलाल सभापति कमेटी दालभातमें मूसरचन्दकी तरह कहांसे कूद पडे ? हमने पुराने सभासदोंकी तथा १६ तारीखके जैनगजटके अनुसार उपस्थित सभासदोंकी हाजिरीमें इनका नाम ढूंढ डाला परंतु कहीं भी इनका नाम नहिं मिला। यदि कोई कहै कि ये साधारण देखनेवाले तमासगीर थे तो महासभाकी प्रबंधकारिणी सभाकी ऐसी महत्त्वकी कार्रवाई महामंत्री वा सहायक महामंत्रीके नामसे क्यों नहीं छापी गई ? झन्नूलालके नामसे क्यों छापी गई और उसके नामसे पहिले '**सभापति कमेटी** ऐसा विशेषण क्यों लगाया गया ? यदि इस कार्रवाईके छापनेमें गलती हो तो उसके जुम्मेवार कौन है ? आश्चर्य तो इस बातका है कि-जैनगजटके सुयोग्य एडीटर बाबू जुगलकिशोरजीने भी विना महामंत्री वा सहायक महामंत्रीकी सहीके

---

१ सभाओंकी जो कुछ कार्रवाई होती है वह महामंत्री वा सहायक महामंत्रीको सहीसे ही छपती है सभापति वगैरहकी सहीसे नहीं। जैनगजटके संपादकको चाहिये कि-महामंत्री वा सहायक महामंत्रीके हस्ताक्षर देखे विना महासभा संबंधी कोई भी कार्रवाई कभी न छापा करें।

यह कार्रवाई कैसें छाप दी ? इसप्रकारकी कार्रवाई करनेसे महासभाका टिकाव कैसें होगा–आशा है कि इन सब प्रश्नोंका सविस्तर उत्तर जैनगजटमें छपाकर सर्व साधारणमें प्रगट करके सबके चित्तको शान्त करेंगे । अपूर्ण ।

श्रीस्याद्वादपाठशाला और महाविद्यालय ।

पाठक महाशयो ! हमारे पवित्र सनातन जैनधर्म अथवा जैन जातिकी इसकालमें बडी भारी अवनति होगई है । इसको इस अवनतदशासे निकालकर उन्नत अवस्थामें लाना चाहिये क्योंकि इस समय समस्तमतावलंबियोंको अपने २ धर्म और जातिकी उन्नति करनेके लिये राज्यकी तरफसे पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है । इस लिये हमारी समाजके हितैषी विद्वानोंने एक महासभा और उसकी शाखा प्रशाखा सभायें नियत करकें यह निश्चय किया कि–धार्मिक विद्याकी अवनतिसे ही हमारे धर्मकी ऐसी बूरीदशा होगई है और उसके साथ २ लौकिक व्यापारिक विद्याकी भी अवनति हो गई है इसकारण–सबसे पहिले धार्मिक विद्याकी (संस्कृत विद्याकी) उन्नति और उसके साथही लौकिकविद्याकी उन्नति करना चाहिये ऐसा निश्चय होजानेपर धार्मिक विद्याकी उन्नतिके लिये तो एक महा विद्यालय और बडे २ शहरोंमें पाठशालायें स्थापन की गई । और लौकिक विद्याके लिये जहां २ अंगरेजी कालेज हैं वहां बोर्डिंगहाउस स्थापन करने आदि-उपाय होने लगे । परन्तु कुछ दिनोंके बाद धार्मिकविद्याके विद्वानों और अंग्रेजी विद्याके विद्वानोंमें मतभेद हो गया अर्थात् हमारे धार्मिकविद्वानोंका तो यह मत रहा कि जो कुछ उन्नति होगी वह मुख्यतासे धार्मिक विद्याकी उन्नति करनेसेही होगी और हमारे बाबू लोगोंने निश्चय कर लिया कि धार्मिक विद्याकी उन्नतिसे किसीका पेट नहीं भरता वह तो भिखमंगे तैयार करनेवाली जंगली विद्या है । –इस समय तो सबसे पहिले उदरपोषनेवाली अंगरेजी विद्या है । इसकारण येनकेन प्रकारेण अंग्रेजी विद्याकी उन्नति ही करना चाहिये । इस विद्याकी उन्नति होनेसे सबको हर विषयमें आजादी (स्वतंत्रता) प्राप्त होती है अर्थात् बाबूधर्मकी रक्षा होती है इसकारण उन्होंनें महासभाको अपने अधिकारमें लेकर तथा जैन यङ्मेन्सयेसोसियेसन स्थापन करकें हर तरहसे अंग्रेजी विद्याकी उन्नतिके

लिये प्रयत्न करने सुरू कर दिये और प्रधानतया धार्मिक विद्याकी उन्नतिके लिये जो महाविद्यलय स्थापन किया गया था उसके द्वारा धार्मिक विद्याकी उन्नति करनेमें सिथलता डालदी। उसके स्थान बदलनेके लिये अनेक प्रकारसे आन्दोलन किया गया परंतु हमारे बाबू लोगोंनें किसीकी भी नहीं सुनी। अंतमें अपनी प्यारी अंग्रेजी विद्याकी (जो प्रधानतया विदेशी गुलामी सिखानेवाली है) उन्नतिकी इच्छासे उसे सहारन पुरमें तबदील किया और वहां हमारे बाबू लोगोंका प्रबल जोर बढ जानेसे एक अंग्रेजी कालेज वा स्कूल स्थापन करनेका प्रस्ताव पास किया गया जिसमें अंग्रेजी विद्याकी तरक्की के लिये तो ७००) रुपये मासिक और संस्कृत वा धार्मिक विद्याको सिखानेकेलिये सेकंडलेंगवेजकी तरह सिर्फ ७५) रु. माहवारी खर्च करनेकी तजबीज हुई! परंतु धार्मिक विद्याकी उन्नति चाहनेवालोंको बाबू लोगोंकी पालिसी पहिलेहीसे मालूम थी कि "**कुछदिन बाद यह धार्मिक विद्याकी उन्नतिके लिये धर्मात्मा भाइयोंका दिया हुआ रुपया धार्मिकविद्यामें खर्च न होकर म्लेच्छविद्यामें ही खर्च होगा" और धार्मिक विद्याकी उन्नतिका कार्य बंध हो जायगा तो यह धर्म वा जाति शीघ्र ही अवनतिरसातलको पहुंच जायगी**" इस कारण कई महाशयोंके विचारसे नैयायिक ब्रह्मचारी गणेश प्रसाद और बाबा भागीरथजी वर्णीने अग्रगण्य होकर बीडा उठाया और हमे भी उत्साहित किया कि यदि इस गिरीहुई संस्कृतविद्याकी (धर्मिक विद्याकी) उन्नतिका कोई उपाय नहीं करेंगे तो जैनसमाजको बडी भारी हानि उठानी पडेगी इसलिये आप यदि इसमें सहायता करेंगे तो हम लोक कृतकार्य हो सक्ते हैं लाचार हमने भी अपना कार्य प्राय: बंध करकें–उक्त दोनों महाशयोंके पास पहुंचकर निश्चय किया कि संस्कृतविद्याकी उन्नतिके लिये एकमात्र स्थान **काशी ही** है इसलिये यहांपर एक पाठशाला स्थापन की जायगी तो अशातीत लाभ होगा। तब हम लोग धर्म और जातिके सच्चेहितैषी देवप्रकृति बाबू देवकुमराजीसे मिले तो उन्होंने पूर्णतया सहायता देना स्वीकार किया। यद्यपि बाबू लोगोंके अनेकपत्र इस कार्यके विरुद्ध उक्त बाबूसाहबके पास आये थे तथापि उक्त बाबूसाहब उनके बहकानेमें नहीं आये और हरतरहसे उत्साहित होकर काशीमें एक सभा करकें काशी निवासी भाइयोंकी पूर्ण सहायता व सम्मति पाकर दानवीर शेठ माणिकचंद ही राचंदजी जे. पी. की अध्यक्षतामें वीरनिर्वाण संवत् २४३१ ज्येष्ठ शुद्ध १० (ता० १२ जून सन १९०५) के दिन शुभमुहूर्तमें उक्त पाठशाला स्थापन करदी

जिसका नाम **'श्रीस्याद्वादपाठशालाकाशी'** रक्खा गया और जिसके चालक वा रक्षक उक्त बाबूसाहब ही बने तथा विशेष उन्नतिकी इच्छासे उसके संरक्षक दानवीरसेठ माणिकचंदजी बनाये गये। सो दोनों ही महाशयोंने अनन्यपरिश्रम करकें इसको आशातीत उन्नतिमें ले आये। दानवीरसेठजी तो इसकेलिये २५०००) हजार रुपये एकत्र करकें चिरस्थायी बनानेको कटिबद्ध हो गये सो १५०००) हजार तो लिखवा लिये गये आशा है कि दश हजारका प्रबंध और भी हो जायगा। इसप्रकार परिश्रमकरनेसे आपकी चारोंओर कीर्तिकौमुदी फैलगई क्योंकि पाठशालाको स्थापन हुये अगले जेठमें ४ वर्ष होजायगे जिसकी पढाई और प्रबंधिका उत्तमता देखकर जो जो विद्यार्थी उच्चकक्षाकी न्याय व्याकरणकाव्य विद्या पढना चाहते थे वे प्राय: सब ही इसी पाठशालामें आ गये और बडे हर्षकी बात है कि गतवर्ष की परीक्षामें सबसे बडे क्लिष्ट ग्रंथ अष्टसहस्री और प्रमेयकमलमार्त्तंडमें भी दो विद्यार्थियोंने दरभंगाराज्यके राजपंडित महामहोपाध्यायश्री चित्रधरजीमिश्रको परीक्षा देकर बंबई प्रान्तके परीक्षालयसे उत्तीर्णपत्र प्राप्त किये हैं। अर्थात् काशी पाठशालामे आशातीत उन्नति देख जिस महाविद्यालय के स्थान बदलनेको बहुत कुछ प्रार्थना की गई थी और एक भी नहीं सुनी गई थी वह महाविद्यालय भी झख मारके गत अधिवेसनपर काशी पाठशालाकी शरणमें भेजा गया। जिसके लिये महासभाने यह प्रस्ताव किया कि— **'महाविद्यालयकी दशा सहारनपुरमें खराब हो रही है और वहां उन्नतिको प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिये उसका स्थान परिवर्तन करना अत्यन्त आवश्यकीय है। बहुसम्मतिसे पास हुआ कि महाविद्यालय काशीको तबदीलकर दिया जावे और उसका नाम व कोश स्याद्वदपाठशालाकाशीसे पृथक रक्खे जावें इसके मंत्री बाबू अर्जुनलालजी सेठी जयपुर नियत किये जावें और एक आसिस्टन्ट सेक्रेटरी पेड रखे जावें जो काशीमें रहे।"**

इस प्रस्तावके अनुसार महाविद्यालय काशीको भेजदिया गया अर्थात् महाविद्यालयकी अवनति होते २ कुल ७ विद्यार्थी रह गये थे सो उन्हे काशीकी स्याद्वाद पाठशालामें भेज दिया। वे पाठशालाके अध्यापकोंसे ही पढने लगे अर्थात् महाविद्यालयसे धार्मिक विद्याकी उन्नतिके लिये प्राय २२५ रुपये मासिक खर्च होता था सो अंगरेजी विद्याके लिये बचाकर प्राय: स्याद्वादपाठशालाके ही खर्चमें साझा कर

लिया। लाचार स्याद्वादपाठशालाने भी महासभाकी आज्ञा और महाविद्यालको सादर स्वीकार करके खर्चकी तंगी देखकर अपनी प्रबंधकारणीकमटीमें महाविद्यालयके लिये नीचें लिखा प्रस्ताव पास किया—

प्रस्ताव नं. ६—चूंकि महाविद्यालय काशीमें आ गया है और उसके विद्यार्थी स्याद्वादपाठशाला काशीके विद्यार्थियोंके साथ रहते वा पठनपाठन करते हैं इसकारण यह जरूरी समझा गया है कि दोनों कार्य सुगम और कम खर्चमें चलें और कौमके रुपयेका सदुपयोग (महाविद्यालयके फंडका बचाहुआ रुपिया स्कालरसिपदेकर नये २ विद्यार्थि संग्रहकरने आदिमें खर्च) **हो, इसलिये यह कमेटी नीचे लीखे प्रस्ताव पास करती है और महासभाको स्वीकारताके लिये भेजती हैं—**

(क) महाविद्यालयभंडारके कोशसे स्याद्वादपाठशालाको नीचें लिखी सहायता मिलना चाहिये—

१। अध्यापक सुपरिन्टेन्डेन्ट और अन्यकर्मचारी गणोंकी तनखाह आधी।

२। जो विद्यार्थी महाविद्यालयमें इस समय मौजूद हैं अथवा महासभाद्वारा आवें उन सबका भोजन वस्त्रादि खर्चके हिसाबसे जोडकर लिया जावे और महाविद्यालय वा स्याद्वादपाठशालाके विद्यार्थीयोंका भोजन एकसा रखा जावे तथा रसोई खाने आदिका प्रबंध सब एकमें रहे। मासिक बिल मासके ८ दिनके भीतर बनाकर मंत्री पाठशाला और महा मंत्री महासभाको भेजकर वसूल करें। अर्थात् इससमय चार अध्यापक सोलह २ और एक २२) तथा एक २८) रुपये और सुपरिन्टेन्ट ४०)रु. रसोइया ६) रु. चपरासी ५) रु. मजदूरन २) मेहतर २) रुपया मीजान कुल १४०) रु. मासिकका अमला (खर्चा) जिसका आधा ७०) रु. माहवारी और विद्यार्थियोंके भोजनका ओसत ८) माहवारीके हिसाबसे ७) विद्यार्थियोंका ५६) रुपया इसप्रकार १२६) रुपये मासिकके लगभग महासभाको देना होगा।

(ख) महासभाकी प्रबंधकारिणी कमेटी स्याद्वादपाठशालामें यदि किसी कार्यमें तबदीली कराना उचित समझैगी तो उसको अधिकार है कि वह अपनी सम्मति स्याद्वादपाठशालाकी प्रबंधकारिणी सभामें भेजै। वह प्रबंधकारिणी सभा अपने मेम्बरोंकी बहुसम्मतिसे विचार कर स्वीकार करेगी। यदि सम्मति न पडेगी तो महासभाके महामंत्रीसे पत्रव्योहार करके निर्णय करैगी।

इसप्रकार प्रस्ताव पास करकें महासभाकी सेवामें भेजा गया था परंतु खेद और और आश्चर्य है कि हमारे सुयोग महामंत्री बाबू चंपतरायजीने हजारों भाइयोंकी महासभामें विद्वानोंके द्वारा पास हुये प्रस्तावानुसार काशी पाठशालाकी प्रबंधकारिणी कमेटीसे पास हुये इस योग्य प्रस्तावका सिर्फ १ वर्षके लिये मान्य करकें अगले वर्ष शीघ्र ही अपने घरमें सिर्फ ६ सभासदोंकी हाजा रीमें २२ का कोरम बताकर महासभाकी बाकायदा प्रबंधकारिणी कमेटीकी तीन बैठक बनाके स्याद्वादपाठशाला और उसके स्थापक वा सहायक महाशयोंकी कीर्तिको धूलमें मिलानेवाला स्याद्वादपाठशालाका नाम निशान मिटानेवाला प्रस्ताव पास किया है। अर्थात् ता. ३१ दिसंबरको कानपुरमें जो कमेटीकी गई थी उसमें महासभा और काशीपाठशालाके प्रस्तावोंको अस्वीकार करकें जो प्रस्ताव किया है उसका अभिप्राय यह है कि स्याद्वादपाठशालाको महाविद्यालयमें मिला दिया जाय अर्थात् उसका सब रुपया महाविद्यालयके भंडारमें जमा कर दिया जाय और पाठशालाकी कमेटीको तोडकर सब काम महाविद्यालयकी कमेटीके सुपुर्द किया जाय किंतु पाठशालाकी कमेटीके मेंबर भी उसमें सामिल रहै और पाठशालाका नाम उडाकर " **श्रीस्याद्वादद्दिगम्बरजैनमहाविद्यालय** नाम रक्खा जावे और आइंदैको इसी नामसे चंदा वसूल किया जावै।

यद्यपि हम भी महाविद्यालय और पाठशालाको सामिल करनेमें सहमत थे परन्तु बाबू देवकुमारजीकी संरक्षामें होता तो हमें इष्ट था क्यों कि बाबुसाहबकी संरक्षामें (मन्त्रीत्वपदमें) एकत्र होनेमें धार्मिक विद्याके विपक्षी बाबू महाशयोंकी कुछ भी नहीं चलती और महाविद्यालयका ५० हजार रुपिया भी धार्मिकविद्याकी उन्नतिमें ही लगता रहता परन्तु खेद है कि बाबूसाहब अचिरकालमें ही अपनी पालीपोषी पाठशालाको आनाथा करके चल बसे। अब यदि बाबू साहब चंपतरा-

यजीके प्रस्तावानुसार मिलायी जायगी तो हमको पूर्णतया विश्वास है कि—कुछ दिन बाद स्याद्वादपाठशालाका रुपया भी अंगरेजी विद्याकी उन्नतिमें लगाया जायगा और जिसप्रकार महासभाके नाममेंसे " **श्रीजिनधर्मसंरक्षिणी** " विशेषण निकालदिया गया उसीप्रकार '**श्रीस्याद्वाद**' शब्द भी निकालकर स्याद्वादपाठशालाका नाम और उसके स्थापक संरक्षक बाबूदेवकुमारजी आदिकी विमल कीर्तिका लोप करदिया जाय तो आश्चर्य नहीं। इसलिये हम स्याद्वादपाठशालाके संस्थापक, सहायक और पाठशालाकी कमेटीके मेम्बरोंसे सविनय प्रार्थना करते हैं कि—यह प्रस्ताव कदापि स्वीकार नहिं किया जावै। जो प्रस्ताव महासभाकी आज्ञानुसार फंड और कमेटी जुदी २ रखनेका पाठशालाकी प्रबंधकारिणी कमेटीने पास किया है उसीके अनुसार ७ विद्यार्थियोंका खर्च १२५)तथा आगेको महाविद्यालयके तरफसे भरती किये हुये विद्यार्थी आवें तो प्रत्येक विद्यार्थीका ८) रुपया माहवारी खर्चा बढाकर मासिक बिलका पैसा प्रतिमास महासभा देती रहे तो कोई हानि नहीं है। स्याद्वादपाठशालाके वर्तमान मंत्री बाबू–जैनेन्द्रकिशोरजीके पास उक्त प्रस्ताव कमेटीसे पास करानेके लिये आया हुआ है उसके लिये बाबु साहब बडी पसोपेसमें हैं कि–अब क्या किया जावै सो हम बाबूसाहबको सम्मति देते हैं कि " यह प्रस्ताव महासभाकी बाकायदा प्रबधकारिणी कमेटीमें पास नहीं हुआ है इस लिये हम अपने यहांकी प्रबंधकारिणी कमेटीमें पेश नहीं कर सकते " ऐसा लिखकर प्रस्ताव वापिस कर दिया जाय। अगर आप इस प्रस्तावको स्वीकार कर लेंगे तो नीचे लिखी हानियें होंगी।

१। उक्तप्रकारसे धार्मिक विद्याकी हानि।

२। महाविद्यालय काशी पाठशालामें न मिलाकर यदि बुंदेलखंड वगेरह देशमें स्थान बदला जाता तो महाविद्यालयके रुपयोंसे अधिक विद्यार्थियोंको धार्मिकविद्याका लाभहोनेसे धर्मकी विशेष उन्नति होती और महाविद्यालयका रुपया सार्थक होजाता सो काशीपाठशालामें मिलानेसे नहीं होगा क्योंकि महाविद्यालयमें बालबोध कक्षासे लगाकर शास्त्री कक्षातक पढाई होना चाहिये सो बालबोध और प्रवेशिकाके विद्यार्थी दूरदेश काशीमें कदापि नहिं आ सकते। हमारी समझमें महाविद्यालय बुंदेलखंडके सागर दमोह खुरई आदिमें होता तो आशातीत लाभ हो सक्ता है क्योंकि इस देशमें कमखर्चमें स्कूलोंमें पढे हुये सदाचारी सुचतुर विद्यार्थियोंकी बहुलता है।

३। जब अधिक विद्यार्थी धर्मशास्त्र पढेंगे तो धर्मकी द्विगुण उन्नति होती सो काशीपाठशालामें सामिल करनेपर वा काशीमें ही जुदा रखनेसे नहिं हो सकैगी।

४। महाविद्यालय काशीमें रहनेसे उसको उच्चकक्षाके विद्यार्थियोंका मिलना असंभव है क्योंकि प्राथमिक विद्याके विद्यार्थी काशीमें पढनेको आवैंगे नहीं। प्राथमिक शिक्षाके विद्यार्थी बुंदेलखंडमें महाविद्यालयके रहनेसे ही तैयार हो सके हैं और प्राथमिकशिक्षा होनेसे महाविद्यालयको भी उच्चकक्षामें पढनेवाले विद्यार्थी मिल सकते हैं सो महाविद्यालयको काशीमें रखनेसे वा पाठशालामें मिलानेसे यह बडी भारी हानि होगी और मूले नष्टे कुतःशाखाकी कहावत चरितार्थ होगी।

५। यदि ऐसा होगा तो अन्यान्य उच्चकक्षाकी पाठशालाओंको भी उच्चकक्षाके पढनेवाले विद्यार्थियोंकी प्राप्ति सुगमतासे हो सकती है परंतु काशीमें महाविद्यालयके रहनेसे महाविद्यालय, काशीपाठशाला और बंबई विद्यालयको उच्चकक्षाके विद्यार्थी नहीं मिलेंगे जब विद्यार्थीही नहीं मिलैंगे तो इनका अस्तित्व रहना असंभव होगा।

६। महासभासे समस्त देशोंके जैनसमाजका एकसा सत्त्व होनेसे सब जगहके समाजोंको महासभासे लाभ पहुचाना परमकर्तव्य है सो महासभाका महाविद्यालय यदि प्राथमिक शिक्षाके प्रचुर विद्यार्थी तैयार न करके सब देशकी पाठशालाओंको लाभ नाहिं पहुचावैगा तो महासभाके उद्देश्यमें हानि होगी। और धार्मिकविद्याकी सब जगह बडी भारी अवनति होनेसे महासभाका होना न होना बराबर है।

७। स्याद्वादपाठशालाका तो यह नियम है कि वह काशीमें ही रहैगी—अन्यत्र उसका स्थान नहीं बदला जा सकता क्योंकि उसका नाम **श्रीस्याद्वादपाठशालाकाशी** है परंतु महाविद्यालयमें मिलानेसे महाविद्यालयका स्थान मथुरासे सहारनपुर, सहारनपुरसे काशी और काशीमें यदि किसीप्रकार भी न्यूनता देखी जायगी तो उसका स्थान लाहौरमें भी हो सकता है। उस समय काशीपाठशालाके स्थापक, सहायक तथा उन्नतिके लिये अतिशय परिश्रम करनेवाले दानवीर सेठ माणिकचंदजी जे. पी तथा स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी आदिका नाम, कीर्ति वगेरह जो कुछ शेष रहैगा वह सबही धूलमें मिल जायगा। वर्तमान सहायकोंके हृदयको बडी भारी चोट पहुंचैगी। बलके योग्य तो यह है कि पाठशालाके नामकी आदिमें बाबू देवकुमारजीका नाम रखकर उनका नाम वा कीर्ति चिरस्थायी रखते उसकी जगह महासभाके सुयोग कर्मचारी उनके साथ २ आरा काशी आदिके समस्त भाइयोंकी कीर्तिको भी उठाये देते हैं। यदि ऐसा किया जायगा तो महासभा

और महासभाके कार्यकर्ता तथा स्याद्वादपाठशालाके कार्यकर्ताओंका बडा भारी बदनाम होगा।

इस प्रकारकी और भी अनेक हानिये हैं बुद्धिमानोंके लिये इतनी ही काफी है आशा है कि इन हानियोंको विचारकर इस प्रस्तावको काशी पाठशालाकी प्रबंध-कारिणी सभाके सभासद कदापि स्वीकार नहीं करैंगे। और महासभाके कार्याध्यक्षोंसे भी प्रार्थना है कि इस प्रस्तावके लिये काशी पाठशालाके मंत्रीको तंग न करके इस प्रस्तावको मुलतबी रखकर जो प्रस्ताव जनरल सभामें (महासभामें) पास किया है उसी माफक रहने देंगे।

अब हमारे पाठक महाशयोंके चित्तमें यह प्रश्न उठैगा कि महाविद्यालयका रुपया संस्कृतमें न लगकर अंगरेजीमें ही क्यों लगैगा इसका उत्तर यही है कि बाबू चंपतरायजीकी ऐसी ही इच्छा है कि—जब जी चाहैंगे प्रस्ताव पास करके फंड एक कर दिया जायगा अर्थात् अंगरेजी विद्याके फंडमें मिला कर और कालेजोंमें जैसे सेकेंडलेंगवेज संस्कृत पढाई जाती है उसी माफक संस्कृत वा धार्मिक विद्या पढाई जायगी। इस बातको प्रमाण करनेके लिये हम बाबू चंपतरायजीकी १ चिट्ठी जैनमित्रमें बाबू बनारसीदासजीके द्वारा छपाई हुई "**बाबू चंपतरायजीकी करतूतमेंसे** यहां उद्धृत कर देते हैं जिसको ध्यानसे पढकर विचारनेसे आपको हमारा उपर्युक्त लिखना यथार्थ मालूम होगा।

नकल ता. ११ फर्वरी सन १९०६ के पत्रकी जो कि–बाबू चंपतरायजीने बाबू बनारसीदासजीके पास भेजा था—

डियर बाबूसाहब ! जयजिनेन्द्र !

खत आपका मिला अहवाल मालूम हुआ मैं खुद इस बातको तसलीम करता हूं कि—जब महाविद्यालयका मुहूर्त हुआ था उस वक्त भी जैनकालिज खोला जाना करार दिया था और उसके उसूल ऐसे ही रक्खे गये थे कि जिसमें संस्कृत और इंगलिसकी तालीम हो डेप्युटेसन पार्टी भी कालिजके ही वास्ते अपील पढ २ कर रुपया लाई है मगर आप अपनी कौमकी हालतको नहीं देखते क्या हाल है, **लोग** (पंडितगण) **मजहबकी आडमें शिकार खेल रहे हैं** इस वक्त आपको मालूम नहीं है कि–क्या क्या चेमे गोईयां हो रहीं हैं **इसका इंतजाम भी तो सरेदस्त हिकमत अमलीसे** (अर्थात् धोकेबाजीसे) **करना जरूरी है**। अव्वल तो यह शिगोफा है कि—बाज साह-

वानने जो अपने वायदेमें यह शर्त लगाई है कि अगर सहारनपुरमें कालिज या हाईस्कूल जारी हो तो हम इस कदर रकम देंगे इसकी बाबत् खुद शेठ माणिचंदके यहां कमेटी हुई थी, मुखालिफ लोगोंने कहा कि–यह महासभा नहीं है प्रान्तिक-सभा है जो सहारनपुरको मखसूस करती है क्योंकि अभीतक जो रुपया जमा हुआ उसमें किसीकी शर्त नही थी कि अगर फलां मुकाम पर जैनकालिज होगा या हाई-स्कूल या महाविद्यालय होगा तो हम इस कदर देवेंगे मगर मैं खूब जानता हूं कि ये सब रोड़ा अटकानेवालोंके खयालात हैं। मुझे करीब २ तमाम हिंदके जैनियोंका तजुर्बा है सहारनपुरके जिलेके मुआफिक न अंगरेजी तालीम कहीं जैनियोंमें है न इस कदर काम करनेवाले और दातार हैं फिर इससे उमदा मुकाम और कौन हो सकता है? दूसरी बात उस आपके ७००) रुपयेके बजटसे उठी है जिसमें महाविद्यालयके वास्ते सिर्फ ७५) रुपया माहवारीका मुकार्रर किया था उससे लोगोंको यह मौका मिला कि " साहब महाविद्यालयकी तालीम तो खतम हुई अब सिर्फ इंगलीस तालीम होगी और सरमायेका रुपया इंगलिस तालीममें खर्च होगा। इस उमूलको पढकर **गोपालदासने पेतराज** मैंने भी सुना है कि छांपा है। **पस इन लोगोंके मुह बंद करनेके वास्ते जरूरी है कि इस वक्त आलान किया जावै** कि जो रुपया इस वख्ततक जमा है उसका महाविद्यालयकी तालीममें वदस्तूर सर्फ होगा वो रुपया ही क्या है उसका सूद तो उसको किफायत भी नहीं करैगा और न उस कदर रुपयासे हाईस्कूल जारी हो सकता है फिर हमको उस आलानमें क्या हर्ज मालूम होता है। यह जरूर है कि दो फंड नहीं रह सके और न रहेंगे। चाहे जब रिज्योल्यूसन पास करके मिला देना अपना अखत्यार होगा मगर सरेदस्त जबान बंद करनेको यह हिकमत (धोकेबाजी) जरूर अमलमें लाने लायक है कि जिसका मैंने नोटिस[1] भी भेज दिया है। चंपतराय ११–२–०६.

प्रकाशनेवाला—**बनारसीदास एम्, ए.** वकील, सहारनपुर।

आशा है कि पाठक महाशय इस पत्रके अभिप्रायको और उर्दूशब्दोंके अर्थ-को ध्यानसे पढकर बाबूलोगोंकी गूढ पालिसीको याद रक्खैंगे।

१। यह नोटिस सायद जैनगजट अंक ८ वर्ष ११ में छपा है।

जैनहितैषीके चढे हुये अंक।

हमलोग स्वास्थ्यरक्षाकेलिये बाहर चले गये थे भाई नाथूराम प्रेमीके पिताका परलोक होनेसे अभीतक नहीं आ पाये तथा छापखानेवालोंके छापनेमें प्रमाद करनेसे जैनहितैषीके दो अंक चढगये इस कारण पाठक महाशय क्षमा करें। अब पांचवां और छट्टा अंक दोनों एक साथ वैशाख वदीमें भेजेंजायगे तबतक पाठक महाशय धैर्यधारण करेंगे आगेको फिर देरी न होगी।

पत्रोंका जबाब।

अनेक महाशय पवित्र केशर और शुर्मा तथा विना छापी पुस्तकोंकी फरमायसें भेज देते हैं वे सब पत्र प्रायः रद्दीमें डाल दिये जाते है. क्योंकि जो शुरमा तथा पुस्तकें तैयार नहीं है तो कहांसे भेजेंगे और केशर तो स्वदेशी पवित्र कहीं मिलती ही नही है। यहांके कई जैनी महाशयोंने स्वदेशी पवित्र केशरका इश्तहार दे रक्खा है परंतु वे प्रोफेसर गज्जरसे परीक्षा नहीं कराते हैं. कशमीरके वा अमृतसरके आढतियेने जैसी भेज दी उसीपर विश्वास करके पवित्र केशर मान लेते हैं परंतु हमको उसके असली होनेमें संदेह है। इसकारण हम उनसे भी लेकर नहीं भेज सक्ते इस लिये केशरकी फरमायसें रद्दीमें डाल दी जाती हैं। और जबाबीकार्ड वा जबाबके लिये टिकट आये विना प्रायः जबाब भी हम नहीं देते।

मोक्षशास्त्र और नित्यपूजा।

बालबोधिनी भाषाटीकासहित–मोक्षशास्त्र–अर्थात् तत्त्वार्थसूत्र पहिली बारका छपा हुआ तथा नित्यपूजा संस्कृतभाषा पहिली बारकी छपी नहि रही थी। अनेक ग्राहकोंकी फरमायस पूरी नहिं कर सके थे। दोनों अब छप गये सो जिनको चाहिये मंगा लेवें। नित्यपूजाके दाम ।=) थे सो अबके ।) कर दिये गये।

बिनामूल्य दौलतविलास।

जो महाशय "**तिय कपटकलाकी खान जान मत राचो धीधारी**" **तिय०** इस टेकवाला दौलतरामजीका बनाया हुआ ६ कडीका पद तथा जैनपद संग्रह प्रथम भागमें छपे हुये पदोंके सिवाय कोई नया पद लिखकर वैशाख वदी ५ तक भेजेंगे उनको बडे अक्षरोंमें छपा हुआ दौलतरामजीका पदसंग्रह प्रथमभाग बिनामूल्य भेजा जायगा।

पन्नालाल बाकलीवाल,
पो. गिरगांव, (बंबई.)

Reg. No. B. 719.

विविध समाचार ।

हम बडे भारी शोक के साथ प्रकाशित करते हैं कि, जयपुरके प्रसिद्ध हिन्दीहितैषी **मि० जैन वैद्य** एफ. टी. एस. एम. आर. ए. एस. का ता० १८ अप्रैल को स्वर्गवास हो गया. आप जैनसमाजके एक रत्न थे.

अन्तरीक्षपार्श्वनाथ तीर्थपर जो श्वेताम्बरी और दिगम्बरी लोगोंमें मारपीट हो गई है, उसके मुकद्दमे चल रहे हैं. दोनों पक्षके हजारों रुपये बरबाद हो रहे हैं. ये गृहकलह न जाने कब शान्त होंगे.

हुबळी (धारवाड) में चैत्रसुदी ६ को दानवीर शेठ माणिकचन्दजीके द्वारा एक **जैनबोर्डिंगस्कूलकी** स्थापना हो गई. हुबलीमें एक हायस्कूल है. उसीमें पढनेवाले जैन विद्यार्थी उक्त बोर्डिंगमें रहेंगे. अनुमान १०००) के नकद चन्दा हो गया. दानवीर शेठजीने भी १०००) दिया. श्रीयुक्त चौगुले वकील, बाबू शीतलप्रसादजी आदिके प्रभावशाली व्याख्यान हुए.

दिगम्बर जैन प्रान्तिकसभा बम्बईके मंत्री मि० लठ्ठे प्रेमानन्द एल. सी. ई. इलकरंजीके निजामके **डिपुटी कलेक्टर** बनाये गये हैं. इसकी खुशीमें बम्बईके हीराबागमें एक सभा की गई थी, और उसमें परीक्ष महाशय का अभिनन्दन किया गया था.

खेदका विषय है कि, फीरोजाबाद जैनपाठशालाके अध्यापक सज्जनोत्तम **पं० धूरीलालजीका** चैत्र सुदी ११ को परलोकवास हो गया. आप बडे ही सदाचारी और धर्मज्ञ थे.

गत सन् १९०८ में यूनैटेडस्टेट्सके धनवानोंने उच्च प्रकारकी शिक्षा के लिये २३९१२७७३६२ डालर दान किया है. जिस देशके लोग विद्याके लिये इतनी उदारता दिखलाते हैं, उस देशपर लक्ष्मी देवीकी प्रसन्नता क्यों न हो?

जैनप्रकाशक कहता है कि, मरठेके दो जैनियोंने **ईसाईधर्म** ग्रहण कर लिया है. जैनधर्मकी विद्याको तालोंमें बन्द करके रखनेवालो ! सुनो, कैसा दुखदाई समाचार है.

सागर (सी. पी.) में **सत्तर्कसुधातरंगिणी** नामकी एक जैन पाठशाला स्थापित हुई है. सुनते हैं, उसके लिये बारहहजार रुपयेकी सहायता प्राप्त हो चुकी है. बडी खुशीकी बात है.

सुप्रसिद्ध ऐलिक क्षुल्लकधारी **श्रीपन्नालालजी** महाराज जैनबिद्री मूडबिद्रीकी यात्रा करके बम्बईमें पधारे हैं, शोलापुर आदि स्थानोंमें आपके दर्शनके

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र ।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

पंचम भाग	फाल्गुण, चैत्र, बैशाख श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३५ ।	अंक ५-६-७

भोली सरला ।

जीवनकी जितनी मनोहर आशायें हैं, उन सबका उद्गमस्थान विवाह है। संसारमें विवाहके समान महत्वका विषय, जिसपर आगामी जीवनकी बडी लंबी चौड़ी इमारत खडी की जाती है, और कोई नहीं है । आजकलके लोग विवाहको जिस प्रकार पुतला पुतलियोंका खेल समझते हैं, हमारे नवयुवक बाबू अजितप्रसाद [illegible]ा नहीं समझते थे । उनका विचार था कि, जब कोई अच्छी सुशीला, [illegible]द्धिमती, स्त्री मिलेगी, तब ही विवाह करेंगे, नहीं तो आजन्म कुँवारे ही रहेंगे । [illegible]रे रहनेमें उन्हें कुछ दुःख न था । क्योंकि एक तो वे साहित्यकी सेवामें [illegible] तल्लीन रहते थे, दूसरे अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेका उन्हें अच्छी [illegible] अभ्यास था । परन्तु उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई ! विवाह होनेके थोडे ही [illegible]न पीछे उन्हें निराशाके समुद्रमें डूब जाना पड़ा । कालेजमें पढ़ते समय [illegible]होंने अपने हृदयपटलपर अपनी भावी स्त्रीका जैसा लोकोत्तर चित्र खींच [illegible]ा था, विवाहिता सरला उस चित्रकी समानता किसी भी अंशमें नहीं [illegible] सकती थी । संस्कृत कवियोंके मतके अनुसार स्त्रीमें जो २ गुण होना [illegible]हिये, उनके सम्पादन करनेकी शक्ति सरलामें नहीं पाई गई । इसलिये वह अपने नवशिक्षित पतिकी कठिन परीक्षामें नापास हो गई। परन्तु इतना हम

अवश्य कहेंगे कि, परीक्षामें नापास होनेका दोष सरलाका नहीं था । उसमें मुख्य दोष अजितप्रसादका ही समझना चाहिये । क्योंकि जब उम्मेदवारकी तयारी करानेवाला ही सुस्त हो, तब उम्मेदवार क्या करे ? परन्तु संसारमें **जबर्दस्तके बीस विस्वे** होते हैं । तद्नुसार अजितप्रसादके अपराधका दंड बेचारी सरलाको भोगना पड़ा । परीक्षामें नापास होनेका निश्चय होते ही अजितप्रसादका हृदय सरलाकी ओरसे एकाएक हट गया । उन्हें अपना घर बनके समान दिखने लगा । पुत्रके हृदयकी यह उदासीनता देख अजितप्रसादकी माता घबड़ा गई ।

सरला अपने पीहरको गई । गुप्त वार्तायें जाननेके लिये अतिशय उत्सुक हुई उसकी सहेलियां तत्काल जुड़ आईं । और प्रश्नपर प्रश्न करनें लगीं । परन्तु उनका उत्तर देना सरलाके लिये सरल नहीं था । वह उत्तर देती भी क्या ? "मेरी स्थिति क्या है ?" यह वह स्वयं भी तो नहीं जानती थी । अजितप्रसादके मुंहसे जब कभी एक शब्द भी नहीं निकलता था, तब फिर उसमें अच्छे और बुरेका वह क्या निर्णय करती ? । सरला कुछ उत्तर नहीं देती है, यह देखकर उसकी चतुर तथा चपल सहेलियां अधिकाधिक खोद खोद कर पूछने लगीं । इससे सरला और भी अकबकायी । ऐसी छोटी २ बातें ये मुझसे क्यों पूछती हैं, इसका भेद उसे नहीं मालूम पड़ता था । उसकी सहेलियां संसारके सभी विषयोंको जानती थीं और अपने २ संसार आनन्दके साथ चलाती थीं । सरला सोचती थी कि ये, इतना पूछती हैं, और मैं कुछ उत्तर नहीं देती हूं, इससे ये अपने मनमें क्या कहेंगीं ? क्या इनके इतनें प्रश्नोंमेंसे मैं एकका भी उत्तर नहीं दे सकती हूं ? ये मेरी प्यारी सहेलियां हैं, इससे यह तो मैं जानती हूं कि, ये हंसीके लिये नहीं पूंछती होंगीं । फिर मैं उत्तर क्यों नहीं देती ? इनके पूछताछ करनेका कुछ और आभिप्राय तो नहीं है ? सरलाको इस प्रकार चुप तथा विकल्पोंमें पड़ी देखकर उसकी सखियां असली बात ताड़ गईं । उन्हें इस नवीन जोड़ेकी अनबनसे बहुत दुःख हुआ । इसलिये वे आपसमें सरलका सम्बन्धमें कुछ सहानुभूतिसूचक बातें करने लगीं । उन सब बातोंको सरला विना कुछ कहे सुनती रही । वह समझ गई कि, अपनेमें किसी बातकी कमी है और वह बात इन सबके ध्यानमें आ गई है । कमी क्या है, सो उनकी बात-

चीतसे सहजही समझमें आती थी । अपने विषयमें पतिकी उदासीनता किस स्त्रीके ध्यानमें नहीं आती ? और ऐसी कौन स्त्री है, जो इस उदासीनतासे उदास न हो ?

अजितप्रसादके घरमें इने गिने तीन आदमी थे । अजितप्रसाद, अजितप्रसादकी मा और सरला । बहूके बुलानेके लिये माका जी बहुत चाहता था । परन्तु पुत्रके डरके मारे उसे बुलानेका साहस नहीं होता था । अजितप्रसादने साफ कह दिया था कि, यदि वह आवेगी, तो मैं कहीं अन्यत्र चला जाऊंगा । बेचारी मा घबड़ा गई । सांप छछूंदरकी दशा हुई । बहू पीहरमें कब तक रहेगी ? पहलेके समान अब वह छोटी नहीं है । घरकी लक्ष्मी घरमें नहीं है, यह सुनकर लोग क्या कहेंगे ? मैं अब क्या करूं ? लड़केके आगे कोई उपाय नहीं चलता है । उधर सरलाके माबापको इस बातकी चिन्ता हुई कि, लड़कीका बुलावा नहीं आता है । लड़की माबापके कितनी ही प्यारी हो, तो भी वे उसे निरन्तर अपने पास नहीं रखना चाहते हैं। लड़की अपने घर द्वारमें आनन्दसे रहै और महिने पन्द्रह दिनके लिये आकर सबसे मिल भेंट जावै, यही उनकी इच्छा रहती है । अजितप्रसाद जैसे स्वतंत्र और संस्कृत पुरुषको अपनी पत्नीका वियोग असह्य नहीं होताहै । उसकी ओरसे कोई बुलावा नहीं आता है । इतना ही नहीं राजी खुशीका समाचार भी नहीं आता है, इससे भला उन्होंने क्या समझा होगा ? अवश्य ही उन्होंने समझा होगा कि, जमाई (दामाद) और लड़कीमें कुछ अनबन रहती है । इस चिन्ताने सरलाके माता पिता रात दिन सूखने लगे ।

एक दिन अजितप्रसादकी मौसी उनके घर आई । उसे सरलाके देखनेकी बड़ी भारी लालसा थी । इसलिये यह बात उसने अपनी बहिनसे कही । तब लाचार होकर माने अपने बेटेके साम्हने डरते डरते कहा कि, बेटा ! बहूको क्या तब बुलावेगा, जब मेरी बहिन भी तालियां पीटने लगेगी ? अजितके चित्तपर इस बातका कुछ असर हुआ । वह सोचने लगा, अपने घरके छिद्र लोगोंको मालूम होवें, यह बात सचमुचमें अच्छी नहीं है । आखिर उसने सरलाको बुलानेकी स्वीकारता दे दी । परन्तु सरला छह महीनेके पीछे जिसदिन अपने घर आई, उसदिन अजितप्रसाद मासे कह गये कि, आज संध्याको उसे जहांकी तहां पहुंचा देना और आपने अपना सारा दिन अपने मित्रोंके यहां पूरा किया । सरला अपने पीहरको चली गई होगी, ऐसा समझकर आप संध्याको घर

आये । और अपने सोनेके कमरेमें प्रवेश करने लगे कि, वहां बैठी हुई सरला उठकर कौनेमें खड़ी हो गई । उसे देखते ही बाबू साहबकी तबियत भन्ना गई। आप बिना कुछ बोले चाले एक आराम कुर्सीपर लेट गये । उस समय सरलाने बड़ा भारी साहस करके बडी कठिनाईसे पूछा, "शरीर तो ठीक है ?' बाबू साहबने दया करके उत्तर दिया "ठीक है !" बस विद्वानपतिकी इतनी ही कृपासे अपढ़ सरलाने अपना अहोभाग्य समझा ।

दूसरे दिन सासका जी कुछ अस्वस्थ है, यह देखकर सरलाने पूछा, "आपके अच्छे होने तक मैं यहीं रहकर आपकी सेवा करूं ? क्या ऐसा नहीं हो सकेगा ? सासने एक लम्बी स्वास लेकर कहा " नहीं हो सकेगा क्यों ? बेटी ! यह घर तेरा नहीं है, तो और किसका है ? "

सास यह उत्तर देते तो दे चुकी, परन्तु बहूको रख छोड़नेका मुझे क्या अधिकार है ? यह विचार उसके साम्हने तत्काल ही आ गया । बहूको आये हुए आज दूसरा ही दिन है । इतनेहीमें लड़केने अपना समय जिस तरह से निकाला है, उसका चित्र बुढ़ियाकी दृष्टिके साम्हने उपस्थित हो गया । " आज कलके छोकरोंके साम्हने किसीका स्यानपन नहीं चलता है । कभी अधिकारके ख्यालसे एक दो बातें की जावें, तो उनकी भी उपेक्षा करनेमें उन्हें क्षति नहीं मालूम होती है ।" इस अनुभवसिद्ध विचारने अजितप्रसादकी माके हृदयमें खलबली मचा दी । उस समय उसे स्वयं अपने पूर्व संसारका स्मरण हो आया । अपनी और अपनी बहूकी स्थितिमें उसे जमीन आसमानका अन्तर मालूम होने लगा । मैं स्वयं कितनी स्वरूपवती थी और यौवनावस्थामें मेरे अंगके गुण कितने और कैसे थे, इसका उसे स्मरण हुआ । और ऐसी दशामें भी मेरा संसार कैसे आनन्दसे परिपूर्ण रहा, इसकी याद आनेसे बहूके विषयमें उसे बहुत कष्ट होने लगा । उसने विचार किया, अब यह दुख नहीं देखा जाता है। इससे छुटकारा पानेका कुछ इलाज करना ही चाहिये। बहूमें है भी किस गुणकी कमी? घरसम्बधी कामकाज अन्य स्त्रियोंकी नाई प्रायः इसे भी करना आते हैं । परन्तु इन घरके कामोंके करनेकी योग्यतासे आजकलके पढ़े लिखे लड़कोंका क्या सम्बन्ध ? अन्तके विचारसे बुढ़ियाको एक नई बात सूझी । उसने बहूसे पूछाः–' बेटी ! क्या तुझे कुछ पढ़ना, लिखना नहीं आता है ?

सरलानें स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर दिया " नहीं ! मुझे नहीं आता " इस उत्तरसे लड़केके वर्तावका थोड़ासा कारण बुढ़ियाके ध्यानमें आ गया, इसलिये उसने तत्काल ही पीहरमें जाकर लिखना पढ़ना सीखनेके विषयमें बहूको सिखापन दिया । सरलाने भी अपनी अनवनका कारण समझ लिया । उसी दिन उसने अवसर पाकर अजितप्रसादसे प्रार्थना की कि, मुझे कुछ लिखना पढ़ना सिखानेकी कृपा करें, तो अच्छा हो । परन्तु बाबूसाहबने साफ जवाब दे दिया कि, मुझे अवकाश नहीं है । इसके दूसरे दिन वह अपने पीहरको चली गई । उसे एक दिनकी जगह दो दिन और दो रात्रि रखनेके कारण बुढ़ियाको अपने बेटेसे बहुत कुछ बातें सुनना पड़ीं ।

इसी बीचमें अजितप्रसाद नावालिगसे बालिग हुए । उनके रक्षकोंने उनके पिताके वसीयतनामेके अनुसार उनकी सम्पतिकी क्या व्यवस्था हुई, वह सब उन्हें समझा दी । उससमय उन्हें मालूम हुआ कि अपना जीवननिर्वाह करनेके लिये परिश्रम करनेकी बिलकुल जरूरत नहीं है । यूनीवर्सिटीपर उनकी अप्रसन्नता पहलेहीसे थी । क्योंकि उसने उन्हें दो तीन बार नापास कर डाला था, इससे उन्होंने कालिज छोड़कर यूनीवर्सिटीसे अपना पूरा २ बदला ले लिया !

अजितप्रसादने कालेज छोड़ दिया । परंतु उनकी संसारमें प्रख्यात होनेकी इच्छा बलवती बनी रही । अपनी प्रतिभापर उन्हें पूरा पूरा भरोसा था । प्रयत्न करनेसे साहित्यके साम्राज्यमें उच्चासन प्राप्त करना मेरे लिये दुष्कर नहीं है । ऐसा उन्हें विश्वास था । उसी समयसे वे साहित्यके एकनिष्ठ सेवक बन गये । जिससे थोड़े ही दिनोंमें उनका नाम साहित्यके गगनमंडलमें चन्द्रमाकी नाई चमकने लगा । अजितप्रसाद नामी लेखकोंमें गिने जाने लगे ।

पीहरमें पहुंचकर सरला आशा–सुखका आस्वादन करने लगी । अभीतक स्त्रीके सम्पूर्ण सुखोंकी जड़स्वरूप पतिका प्रेम मुझे क्यों प्राप्त नहीं हुआ, मेरे आराध्य देव मुझपर दृष्टिपात क्यों नहीं करते हैं, सेवाकरनेके अधिकारसे मैं क्यों वंचित की गई हूं, इसका कारण वह अच्छी तरहसे समझने लगी । नहाने धोनेसे शरीरका सौन्दर्य नहीं बढ़ सकता है, परन्तु प्रयत्न करनेसे विद्याका लोकोत्तर सौन्दर्य प्राप्त हो सकता है, इसका उसे विश्वास हो गया । गुणोंके आकर्षणके आगे रूपका क्या मूल्य है?

पीहरमें लिखना पढ़ना सिखानेके लिये सरलानेएकदिन अपने पितासे कहा। जिसने अबतक एकदिन भी हाथमें पुस्तक लेनेकी इच्छा प्रगट नहीं की थी, वही लड़की अपने पतिके एक दिनके तिरस्कारसे उद्विग्न होकर पढ़ने लिखनेके विषयमें ऐसी उत्कट इच्छा प्रगट करती है, इससे सरलाके मातापिताको बहुत आश्चर्य हुआ। सरलाके पुस्तकप्रेमको देखकर लोग चकित हो गये। उसके हाथसे घड़ी भरको भी पुस्तक नीचे नहीं आती थी। छह महीनेमें जितनी विद्या सीखी जाती है, सरलाने उतनी विद्या केवल दो महीनेमें सीख ली। इसके पश्चात् उसने कुछ कठिन कठिन पुस्तकें बांचनेका प्रारंभ किया। पतिका प्रेम प्राप्त न होनेकी अपेक्षा मरना अच्छा है। यह विचार उसके मनमें अच्छी तरहसे ठँस गया। इसीलिये वह अपने भावी सुखसम्पादनकी उत्कट आशासे जीतोड़ परिश्रम करने लगी।

साहित्यसेवाका भी बड़ा कठिन व्यसन है। एक वार साहित्यसेवाका शौक लगा कि, फिर उससे पिंड छुड़ाना मुश्किल हो जाता है। अजितप्रसाद साहित्यसेवामें आकंठ निमग्न हो गये थे। उसके सिवाय उन्हें दूसरा काम ही नहीं था। रात्रिके ५-६ घंटे छोड़कर बाकी सब समय नई २ पुस्तकोंके अवलोकन तथा ग्रन्थ लिखनेमें जाता था। इसतरह दिनपर दिन और महीनेपर महीने बीतने लगे। बुढ़िया माने बहूके बुलानेके लिये कई बार पूछा, परन्तु कोमल साहित्यकी सेवा करनेवाले पाषाणहृदय पुत्रने कभी अपनी सम्मति नहीं दी! आखिर एक दिन बुढ़ियाने दुखी होकर कह दिया "भैया! अब मुझसे यह घरकी रखवाली नहीं होती है। तू अपनी बहूको ले आ और अपनी गृहस्थी चला। मैं अपने भगवानका भजन करूंगी। इसके सिवाय जो विवाह हो गया है. सो अब मिट नहीं सकता है। लड़कीके माबाप उसे अब कबतक अपने गलेसे बांधे रहेंगे?" उस दिन अजितप्रसादके जीमें थोड़ासा विवेक उत्पन्न हुआ कि, स्त्रीकी पालना करनी. यह उसके पतिका धर्म है। इसके सिवाय उसके प्रेमका शासन अपनेपर चलने देना, तथा दूसरे विषयोंमें उसे अपना भागीदार बनाना भी अनुचित नहीं है। घरके कामकाज तो विना स्त्रीके हो ही नहीं सकते हैं। इस विषयमें उसीका सर्वाधिकार होना चाहिये। इस विचारसे बाबू साहबको अपनी पूर्वकृतिपर कुछ समयके लेये पश्चात्ताप हुआ। सरलाके बुलानेके विषयमें उन्होंने स्वीकारता दे दी।

पूरे एक सालके पीछे सरला सासरे में आई। उसे आशा थी-कि अबकी वार प्राणनाथके वर्तावमें कुछ फर्क पड़ेगा। परंतु उस आशाके पूर्ण होनेका उसे कोई चिन्ह नहीं दिखलाई दिया। "मैं लिखना पढ़ना सीख गई हूं" अजितप्रसादको इस खुशखबरीके सुनानेका सरलाने पक्का विचार कर रक्खा था। परन्तु जब उसने अपने विद्वान पतिको देखा कि उनके साम्हने ढेरकी ढेर पुस्तकें रक्खी रहती हैं. और वे उन्हें रातदिन पढ़ा करते हैं, तथा लिखते २ ढेर-के ढेर कागजोंकी रद्दी कर डालते हैं, तब उसे अपनी थोडीसी विद्याके विषयमें लज्जा उत्पन्न हुई। उनके अगाध ज्ञानसागरके आगे अपनी इस विन्दु दो विन्दु विद्याकी बात में किस मुंहसे कहूं? ऐसा विचार करके सरलाने अपना विचार बदल डाला। उसके हाथसे यह एक बड़ी भारी भूल हो गई। आये हुए सुखके दिन उसने अपने हाथसे आगे ढकेल दिये।

संसार चलने लगा। परंतु पुरुष स्त्रीमें जो ३६ के अंक का सम्बन्ध था, वह जैसाका तैसा बना रहा। उस सम्बन्धमें नीचेसे ऊपर तक उदासीनता ही उदासीनता दिखती थी। पहलेकी अपेक्षा इतना फर्क अवश्य ही पड़ गया था कि. अब दूसरे लोगों तक इस अनबनका समचार नहीं पहुँचने पाता था। अपने ग्रहछिद्रोंको छुपानेकी पुरुष और स्त्री दोनों ही कोशिश करते थे। सरला अनेक बहाने बनाकर यह प्रदर्शित करनेका प्रयत्न करती रहती थी कि मुझपर पतिका अतिशय प्रेम है और सुशिक्षित बाबू साहब मौका पड़नेपर अपने मित्रोंसे ऐसी चर्चा करते थे, जिससे प्रगट होता था कि, आप अपनी स्त्रीके कष्टको जरा भी नहीं सह सकते हैं। परंतु दोनोंके अतरंगमें धधकती हुई अनबनकी आग सर्वज्ञदेवके सिवाय और किसीके गोचर नहीं थी। सरला सोचती थी, हाय! मैं मूर्ख क्यों हुई? इस जीवनसे तो मृत्यु अच्छी है। मेरे समान अभागिनी और कौन होगी, जो अपने पतिकी सेवा करने-को भी तरसती हूं। सचमुच यह मेरे किसी बड़े भारी पापका फल है, जो मैं अपने पतिके प्रेम, सुख और कृपा तीनोंसे वंचित रहती हूं। इसके सिवाय मेरे कारणसे उन्हें भी संसारका सुख नहीं मिलता है। न मैं उनके गले बंधती और न उन्हें यह शून्य जीवनका दुख उठाना पड़ता। हाय! विधाता कैसा उलटा है, जो ऐसे विद्वानोंके पल्लेसे मुझ जैसी मूर्खाओंको बांध देता है। यदि मैं पंडिता होती, मेरे माता पिताओंने मुझे पढ़ाया होता, तो आज मेरे सुखका

और मेरे प्राणनाथके सुखका पारावार नहीं रहता । कभी कभी सरला यह भी विचारती थी कि, क्या सब ही विद्वानोंको विदुषी स्त्रियाँ मिल जाती हैं ? मुझ सरीखी अपढ स्त्रियां क्या किसीके भी घर नहीं आतीं ? और क्या मैं ऐसी मूर्ख हूं, जो उनकी कृपासे कुछ भी नहीं पढ़ लिख सकूं । विमलप्रसादने तो अपनी स्त्री नर्मदाको सुनते हैं, घरहीमें पढ़ाया था । परन्तु सरलाके ये प्रश्न कभी किसीने नहीं सुने और न किसीने उनका उत्तर दिया । अजितप्रसाद सोचते थे, मूर्ख स्त्रीके साथ प्रेम करनेकी अपेक्षा तो आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करना अच्छा है । विद्वान पुरुष मूर्खका संसर्ग करके केवल अपनी मूर्खता ही प्रगट नहीं करता है. किन्तु विद्यादेवीका अपमान भी करता है । विना सुशिक्षित स्त्रीके पाये किसने सुख पाया है और किसने अपनी कीर्ति बढ़ाई है ? स्त्रीसंग्रहका मुख्य फल सुन्दर गुणवान और यशस्वी पुत्रकी प्राप्ति करना है । सो ऐसी संतानकी उत्पत्ति क्या कभी मूर्ख स्त्रियोंके उदरसे हो सकती है? कभी नहीं । यदि कौशल्या, कैकयी, सुभद्रा, अंजना, आदि स्त्रियां अपढ़ होतीं, तो क्या उनके गर्भसे रामचंद्र, भरत, अभिमन्यु, हनुमान जैसे जगत्प्रसिद्ध पुत्र हो सकते थे ? अजितप्रसाद सदा इसी पंडिताईके तर्क-वितर्कोंमें रहते थे । परंतु यह कभी नहीं सोचते थे कि, स्त्रीको पढ़ाना–अपने समान गुण प्रकृतिकी बनाना भी तो पुरुषका धर्म है ! लोग विद्याके मदमें कभी २ अंधे हो जाते हैं । उन्हें अपना भारीसे भारी दोष नहीं दीखता है, पर दूसरोंका जरासा भी दोष असह्य हो जाता है ।

(४)

अजितप्रसादपर एकाएक दैवकोप हुआ । उन्हें शीतलाकी भयंकर बीमारी हुई । सारा शरीर व्रणमय हो गया और वेदनाके मारे उनका खाना पीना सब छूट गया । सरलाकी सास बड़ी ही भोली थी । उसनेसरलासे कहा, बेटी ! इस रोगमें छुआछूतका बहुत डर होता है । इसलिये तू चार दिनके लिये अपने पीहरको चली जा, तो अच्छा हो । अबकी बार सरलाने साफ कह दिया कि " मैं इस समय घर छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगी । पतिसेवा करनेका जो मेरा धर्म है, उसका मैं शक्तिभर पालन करूंगी । "

सरला किसीकी भी न सुनकर पतिकी सेवा सुश्रूषा करने लगी । वेदनामें तड़फते हुए अजितप्रसाद देखते थे कि, सरला उनकी ओर करुणा और स्नेह

दृष्टिसे निहारती हुई खड़ी है। जब वे देखते थे, तभी सरलाके सरल नेत्रोंको अपनी ओर लगे पाते थे। न वह कभी रोती थी और न कभी बैठकर थकावट मिटाती थी। साहित्यसमुद्रके पार पहुंचे हुए बाबू साहबको उस समय सरलाके मुखपर एक अनिर्वचनीय भक्ति और प्रेमकी छटा दीखती थी। इससे उनके हृदयमें आनंद, दुःख, आशा, आशंका, आदि परस्परविरुद्ध मनोविकार उत्पन्न होते थे। सरला यह समझकर कि मुझे प्राणपतिकी सेवा करनेको मिलती है, आनन्दसागरमें मग्न रहती थी। थोड़े ही दिनोंमें अजितप्रसादका रोग शांत होने लगा। वेदना भी कम होने लगी। इससे तो सरलाके सुखका कुछ पार ही नहीं रहा।

एक दिन अजितप्रसादने जब उनका चित्त कुछ स्वस्थ था, अपने पलंगके पास किसीको खड़ा देखकर पूछा कौन है? इस प्रश्नको सुनकर आनन्दके अतिरेकसे सरलाका कंठ भर आया। बड़ी कठिनाईसे, बड़ी देरमें उसके मुखसे अस्पष्ट शब्दोंमें निकला — "आपकी दासी!" नाम सुनकर अजित-बाबूकी मुखचर्यामें जो अंतर पड़ा, उसे देखते ही विचारी सरलाकी आंखोंसे आंसूके दो तीन बिन्दु नीचे गिर पड़े!

धीरे २ अजितप्रसाद बिलकुल अच्छे हो गये। शीतलासे उनके प्राण तो बच गये, परन्तु नेत्र चले गये। अजितप्रसाद अंधे हो गये!

(५)

यद्यपि **यश** यह शब्द बिलकुल छोटा है, परंतु इसमें जितनी आकर्षण शक्ति है, उतनी शायद ही किसी पदार्थमें होगी। पाप भी मनुष्यको अपनी ओर उतना नहीं खींचता है, जितना यश खींचता है। मद्यमें भी उतनी उन्माद-क शक्ति नहीं है, जितनी यशमें है। जिसपर एक वार भी यशोदेवीकी कृपा हो जाती है, वह उसका विना मोलका दास हो जाता है। फिर उसे यशोदेवी-की अवकृपा जरा भी सहन नहीं हो सकती है। यशके खो जानेपर उसे दुनियांमें जीतेकी अपेक्षा मरना ही अच्छा दीखता है। अंधे होनेपर अजित-प्रसाद अपने यशके मार्गसे च्युत हो गये। अंधेरो साहित्यसेवा कैसे हो सकती है? दिनों दिन उनका समय अधिकाधिक दुःखमें जाने लगा। उन्हें एक जगह-से दूसरी जगह दश कदम जानेके लिये भी नौकरको दश वार बुलाना

पड़ता था। कोई वस्तु चाहना हो, तो उसके लिये जब तक कोई लाके न दे देवे, बाट देखनी पड़ती थी। परन्तु इस दशासे उन्हें जो दुःख होता था, वह साहित्यसेवा छूटनेके दुःखके आगे किसी गिनतीमें नहीं था। अजितप्रसादको अपना जीवन भारी हो गया। जब इस परतंत्रस्थितिसे जीवनका हेतु ही सिद्ध नहीं होता है, तब जीना ही किस लिये? इसका अन्त कर लेना क्या बुरा है? सज्जनोंकी आस्था यशरूपी शरीरमें होती है, क्षणभंगुर शरीरमें नहीं होती। ऐसे विचार उनके मनमें वारंवार आने लगे। अपने दुःखकी निराशाकी और संतापकी समाप्ति करनेका दूसरा मार्ग उन्हें नहीं सूझता था। आखिर उन्हों ने आत्महत्या करनेका ही निश्चय किया! अभिमानी तथा कीर्तिके अभिलाषी पुरुष निराश होनेपर अन्तमें इसी मार्गको ग्रहण करते हैं। वे कषायके वशमें ऐसे अंधे हो जाते हैं कि, आत्महत्या जैसे घोर पापको देखते हुए भी नहीं देखते हैं।

आत्माहत्या करनेका निश्चय कर चुकनेपर अजितप्रसादकी प्रकृतिमें विलक्षण अन्तर पड़ गया। उनकी वृत्ति अतिशय चंचल तथा शंकायुक्त बन गई। वे निरन्तर इसी विचारमें मग्न रहने लगे कि, अपने जीवनका अन्त किस प्रकारसे कर डालना। उनकी चर्याका यह विचित्र फेरफार तो सरलाकी समझमें आ गया। परन्तु इसका असली कारण उसकी समझमें नहीं आया। वह बड़ी उलझनमें पड़ी। अजितप्रसादके मनकी बातको वह अच्छी तरहसे नहीं समझी थी, इसलिये उसने खूब सचेत होकर उसका गूढ अभिप्राय समझनेकी ओर चित्त लगाया।

एक दिन अजितप्रसाद अपने सोनेके कमरेमें अकेले लेटे हुए थे। उस समय किसी चीजकी जरूरत होनेसे उन्होंने कईबार नौकरको आवाज लगाई, परन्तु किसीने भी उत्तर नहीं दिया। इससे उन्हें बहुत बुरा लगा। विषादके आवेशमें उससमय उनके मुंहसे अचानक निकल, गया "दूसरेके भरोसे रहनेकी अपेक्षा आत्महत्या कर लेना ही अच्छा है" सरलाने यह सब घटना पासकी कोठरीमें खडे खड़े देखी। क्योंकि वह उस समय पतिके हृदयकी बात जाननके लिये जान बूझकर यह सब लीला देख रही थी। आज उसने अपने पतिके अन्तरंगकी बात स्पष्ट जान ली। प्राणनाथ अपने जीवनसे ऐसे उदास हो गये हैं, इसका विचार

करते ही उसका शरीर कांपने लगा। उस समय उसे रोनेके सिवाय और कुछ न सूझ पड़ा। सरला सिसक सिसक कर रोने लगी।

उस दिनसे सरलाकी अजितप्रसादपर विशेष देखरेख रहने लगी। घरद्वारके प्रायः सब ही काम काज छोड़कर वह आठों पहर सोनेके कमरेके आसपास रहकर पतिपर नजर रखने लगी। सरलाका समीप रहना अजितप्रसादको अब भी अच्छा नहीं लगता था। इसलिये वह कमरेमें जाते समय इस तरहसे जाती थी कि, उनको जरा भी आहट नहीं मिलती थी। अजितप्रसादका स्वभाव दिनपर दिन चिड़चिड़ा होने लगा। जरा २ सी बात पर वे अपना सिर पत्थरसे मारने लगे। इससे सरलाके हृदयपर बड़ी चोट लगती थी, परन्तु बेचारी विधिकी गति समझकर चुपचाप सहती थी। और पतिसेवामें जरा भी अन्तर नहीं पड़ने देती थी।

(६)

इस प्रकारसे एक महीना बीत गया। वैशाखके महीनेमें एक दिन खूब जोरकी आंधी चली और रातको घनघोर घटा छा गई। मूसलधार पानी बरसने लगा। चारों ओर अंधकारका अटल राज्य जम गया। बीचबीचमें बादलोंकी प्रचंड गर्जना होने लगी और बिजली तड़प तड़पकर संसारकी अस्थिरताको सूचित करने लगी। अजितप्रसादने विचार किया, आत्महत्या करनेके लिये यह मौका अच्छा है। यदि इस समय मैं छतपरसे कूंद पड़ूंगा, तो कोई नहीं देखेगा, और मेरा मनोरथ अनायास सिद्ध हो जावेगा। विचारको काममें लानेके लिये विलम्ब करना अच्छा नहीं है, ऐसा समझकर अजितप्रसाद अपने स्थानपरसे उठे और टटोल २ कर छतपर जानेका प्रयत्न करने लगे। द्वार खुला था। उसे उलांघकर वे उसी तरहसे छतके किनारेपर जा पहुंचे। और ज्यों ही कूंदनेके लिये नीचेको झुकना चाहे, त्यों ही उन्हें किसीने पीछेसे पकड़ लिया। अजितप्रसाद सर्वथा निराश हो गये। अपनी आशाका भंग होनेके कारण संतापित होकर उन्होंने पकड़नेवालेका हाथ जोरसे झिड़क दिया और पूछा, कौन है?

अतिशय मधुर और कोमल स्वरमें 'सरला!' ऐसा उतर सुनकर अजितप्रसाद आग बबूला हो गये और बड़े क्रोधसे बोले, " चांडालिनी! मेरे जीवनके सारे सुखपर पानी फेरकर भी तू निश्चिन्त नहीं हुई है!। मैं इस दुःखसे छुटकारा पानेके लिये मरना चाहता हूं, सो मरने भी नहीं देती है?

सरला ज्यों त्यों करके अजितप्रसादको घरमें ले आई और सूखे कपडेसे उनका शरीर पोंछकर रोते रोते पूछने लगी, " ऐसा रोमांचित करनेवाला कृत्य करनेका विचार आपने क्यों किया था ? "

अजितप्रसादने उत्तर दिया, "इस नेत्रहीन आयुका भार अब मुझसे नहीं सहा जाता है, इसलिये ।

सरलाने पूछा, आपकी आयु सुखपूर्वक किसतरह बीत सकती है ? क्या आप यह मुझे बतलाओगे ।

अजित—साहित्यसेवासें ही मेरी आयु सुखपूर्वक बीत सकती है । और कोई उपाय नहीं है ।

सरला— फिर आप साहित्यसेवा क्यों नहीं करते है ?

अजित-(कुपित होकर) अन्धे से साहित्यसेवा कैसे हो सकती है ? मैं अंधा हो गया हूं, इसलिये आज तू भी मेरी हँसी करनेको तयार हो गई है !

सरला-नाथ ! जरा मेरी बात सुन लीजिये । आवश्यकता हो, तो आपकी सहायता करनेकेलिये मैं तयार हूं ।

अजित-(कुपित होकर) तू सहायता करेगी ? तू क्या सहायता करेगी ?

सरला— "आप जो पुस्तक बांचनेके लिये कहेंगे, वह मैं बांच दूंगी और जो लिखनेके लिये कहेंगे, वह लिख दूंगी। मेरी इतनी प्रार्थना आप स्वीकार करें, यही मैं आपसे भिक्षा चाहती हूं।" यह कहते २ सरलाका कंठ भर आया । वह अपने नेत्रहीन पतिके पैरोंपर सिर रखकर उन्हें अपने अनिवार्य अश्रुजलसे धोने लगी। आगे कुछ भी न बोल सकी। बोलनेकी जरूरत भी नहीं रही। उस दिन अजितप्रसाद भी सरलहृदया सरलाको अपने हृदयसे लगाकर बहुत देरतक रोये । पाठकोंसे यह कहने की आवश्यकता नहीं होगी कि, यह रोना दुःखका नहीं सुखका था। अजितप्रसादके शुष्क जीवनमें यह सुख पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ था।

* * * * * *

अजितप्रसादकी साहित्यसेवाका एक नया हिस्सेदार बन गया । बाबू अजितप्रसादके जितने नामी २ लेख प्रकाशित होते हैं, वे सरलाके सुनाये हुए

ग्रन्थोंसे तथा परस्परके विद्याविनोदसे निर्माण होते हैं। उन सबकी 'कापी' सरल ही करती है।

× × × × ×

अपने विद्वान पतिकी कृपाको पाकर सरला अपनेको स्वर्गकी देवी समझती है। वह स्वप्नमें भी कभी यह विचार नहीं करती है कि, मेरा पति अन्धा है। पतिकी प्राणप्रणसे सेवा करना ही वह अपना परमधर्म समझती है। बाबू अजितप्रसादको भी सब प्रकारका सुख है। एक दुःख है, तो इस ख्यालका कि सरलाको मेरी मूर्खतासे बहुत कष्ट झेलना पड़ा। [एक मराठी लेखके आधारसे]

कलिमें ग्रन्थ बड़े उपकारी।

(श्रीश्रुतपंचमी पर्वके उपलक्षमें)

राग—आसावरी जोगिया।

कलिमें ग्रन्थ बडे उपकारी।
देवशास्त्र गुरु सम्यक सरधा। तीनों जिनतें धारी ॥कलिमें०
तीन बरस वसु मास पंद्रदिन,चौथाकाल रहा था।
परम पूज्य महावीर स्वामि तव, शिवपुर राज्य लहा था ॥१
केवलि तीन पांच श्रुतकेवलि, पीछें गुरुनि विचारी।
अंगपूर्व अब हैं न रहेंगे, बात लिखी थिरधारी ॥ २
भविहितकारन धर्मविथारन, आचारजों बनाये।
बहु तिन तिनकी टीका कीन्हीं, अद्भुत अरथ समाये ॥ ३
केवलि श्रुतकेवलि यहां नाहीं, मुनिगन प्रगट न सूझैं।
दोऊ केवलि आज यही हैं, इनहीको मुनि बूझैं ॥ ४
बुद्धि प्रगट करि आप वांचिये, पूजा वंदन कीजै।
दरव खरच लिखवाय सुधाय सु, पंडितजन बहु दीजै ॥ ५
पढ़तें सुनतें चरचा करतें, है संदेह जो कोई।
आगम माफिक ठीक करैं कैं, देख्यो केवलि सोई ॥ ६

तुच्छबुद्धि कछु अरथ जानकै, मनसों व्यंग उठाये ।
अवधिज्ञानिश्रुतज्ञानी मानो, सीमंधर मिलि आये ॥ ७

यह तो आचारज है सांचो, ये आचारज झूठे ।
तिनके ग्रन्थ पढ़ें नित बन्दें, सरधा ग्रन्थ अपूठे ॥ ८

सांच झूठ तुम क्यों करि जानो, झूठ जानि क्यों पूजो ।
खोट निकाल शुद्ध करि राखो, और बनाओ दूजो ॥९

कौन सहामी बात चलावै, पूछैं आनमती तो ।
ग्रन्थ लिख्यो तुम क्यों नाहिं मानों, ज्वाब कहा कहि जीतो ॥ १०

जैनी जैनग्रन्थके निन्दक, हुंडासर्पनि जोरा ।
द्यानत आप जान चुप रहिये, जगमें जीवन थोरा ॥ ११

(द्यानतपदसंग्रहसे उद्धृत)

सुभाषित श्लोक।

एक लक्ष्मीका भक्त कहता है:—

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छतां
शीलं शैलतटात्पतत्त्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्त्वर्थोस्तु नः केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥

अर्थात्—जाति रसातलको चली जाय, गुणोंके समूह उससे भी नीचे चले जावें, शील पर्वतसे गिरकर नष्ट हो जाय, कुटुम्बके लोग आगमें जल जावें शूरत्वरूपी शत्रुपर वज्र गिर पड़े। हमें इससे कुछ मतलब नहीं है। हमको केवल धनसे काम है, जिसके विना सारे गुण तिनकेके समान हैं।

एक सन्तोषी मनस्वी कहता है:—

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां
नैवाङ्घ्रिपा फलभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ।
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपपन्नान्
कस्माद्भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥

अर्थात्—क्या मार्गमें वस्त्र नहीं मिलते हैं? क्या फलोंसे लदे हुए वृक्ष भिक्षा नहीं देते हैं? क्या नदियोंमें पानी नहीं रहा है? क्या वनकी गुफाओंके द्वार बंद हो गये हैं? और क्या शरणागत लोगोंकी जिनेन्द्र भगवान रक्षा नहीं करते हैं? फिर ये कविलोग धनके मदसे अन्धे हुए धनवानोंकी सेवा किसलिये करें? भावार्थ यह है कि, जब खाने पीने पहनने और रहनेका निर्वाह सब जगह हो सकता है, तब घमंडी धनवानोंकी खुशामद करनेकी क्या आवश्यकता है?

एक दुखी निर्धन कहता है:—

अर्था न सन्ति न च मुंचति मां दुराशा
त्यागान्न संकुचति दुर्ललितं मनो मे ।
याञ्चा च लाघवकरी स्ववधे च पापम्
प्राणाः स्वयं व्रजत किं परिदेवनेन ॥

अर्थात्—धन है नहीं, आशा मुझे छोड़ती नहीं, त्याग (दान)से मेरा दुर्ललित मन संकुचित नहीं होता, याचना करनेसे लघुता प्रगट होती है और आत्महत्या कर लेनेमें पाप है। ऐसी अवस्थामें हे प्राणो! तुम स्वयं ही शीघ्रतासे क्यों नहीं निकल जाते!

विषापहारस्तोत्र ।

(महाकवि श्रीधनंजयकृत संस्कृतस्तोत्रका अनुवाद ।)

११

अपर देव हों चाहे जैसे, पापसहित अथवा निष्पाप ।
उनके दोष दिखानेसे ही, गुणी कहे नहिं जाते आप ।
जैसे स्वयं सरितपतिकी अति, महिमा महत दिखाती है ।
जलाशयोंके लघु कहनेसे, वह बड़ाई नहिं पाती है ॥

१२

कर्मस्थितिको जीव निरन्तर, विविध थलोंमें पहुंचाता ।
और कर्म इन जगजीवोंको, नानागतिमें ले जाता ॥

११

यों नौका नाविकके जैसा, इस गहरे भवसागरमें।
जीवकर्मका नेतापन यों, बतलाया कर कृपा हमें ॥

१३

गुणके लिये लोग करते हैं, अस्थिधारणादिक बहुदोष।
धर्महेतु पापोंमें पचते, पशुवधादिको कह निर्दोष ॥
त्यों ही सुखको निज तन देते, गिरिपातादि दुःखमें ठेल।
यों जो तव-मतबाह्य मूढ़ वे, बालू पेल निकालें तेल ॥

१४

विषनाशक मणिमंत्ररसायन, औषधिके अन्वेषनमें।
देखो तो ये भोले प्राणी, फिरें भटकते वन वनमें ॥
समझ तुम्हें ही मणिमंत्रादिक, स्मरण न करते सुखदायी।
क्यों कि तुम्हारे ही हैं ये सब, नाम दूसरे पर्यायी ॥

१५

अपने मनमें हे जिनेश तुम, नहीं किसीको लाते हो।
किन्तु जिस किसी भाग्यवानके, मनमें तुम आ जाते हो।
वह निज करगत कर लेता है, सकल जगतको निश्चयसे।
तव मनसे बाहिर रहकर भी, अचरज है रहता सुखसे ॥

१६

"त्रिकालज्ञ त्रिजगतके स्वामी," ऐसा कहनेसे जिनदेव।
ज्ञान और स्वामीपनकी, सीमा निश्चित होती स्वयमेव ॥
यदि इससे भी ज्यादा होती, काल जगतकी गिनती और।
तो उसको भी व्यापित करते, ये तव दोनों गुण सिरमौर ॥

१७

अगमरूप जिनभूप! तुम्हारी, करता हरि सेवा प्यारी।
सो उपकारी नहीं तुम्हें, उसहीको देती सुख भारी ॥

१७

जैसे सूरजके सम्मुख, छाता करना आदरसे देव ।
करनेवालेहीको होता, सुखकर आतपहर स्वयमेव ॥

१८

कहां तुम्हारी वीतरागता, कहां सौख्यकारी उपदेश ।
हो भी तो कैसे बन सकता, इन्द्रियसुखविरुद्ध आदेश ॥
और जगतकी प्रियता भी तब, कैसे संभव हो सकती ।
यों प्रभु ! दिखै ज्ञानमें तेरे, उलटापन जो सो न रती ॥

१९

तुम समान ऊंचे निर्धनसे, परिगृहविरहितसे स्वयमेव ।
जो फल मिल सकता है सो नहिं, धनद आदि धनिकोंसे देव ॥
जलविहीन ऊंचे गिरिवरसे, नाना नदी निकलती है ।
किन्तु विपुल जलभरे जलधिसे, नहीं एक भी झरती है ॥

२०

त्रिभुवन सेवाका नियोग, पालन करनेको सुरपतिने ।
दृढ विनयसे धारा इसने, प्रातिहार्य पाया उसने ॥
किन्तु तुम्हारे प्रातिहार्य वसुविधि है सो कैसे आया ।
उस ही कर्मयोगसे अथवा, हे जिन ! तुमने भी पाया ॥

[असमाप्त.]

---

१ छत्र छतरी । २ जो सुखका उपदेश देगा, वह इन्द्रिय सुखरूप लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध कैसे बोलेगा ? ३ रत्ती भर भी नहीं-बिलकुल नहीं । ४ कुबेर आदि ५ प्रतिहारीपना-चोपदारी, पहरेदारी । ६ भगवानके छत्र चामर आदि आठ प्रातिहार्य । ७ तीनलोक द्वारा की हुई सेवाके कर्मसे अथवा पूर्व जन्मके किये हुए पुण्यकर्मके योगसे । ८ इस श्लोकका भाव जैसा चाहिये वैसा समझमें नहीं आया । यदि कोई विद्वान समझानेकी कृपा करें. तो अच्छा हो ।

सुभाषितरत्नखण्ड।

(श्रीअमितगतिकृत धर्मपरीक्षासे संगृहीत)

१. मित्रं तमाहुः सुधियोऽत्र पथ्यं यः पावने योजयते सुधर्मे ।	विद्वान लोग उसको उत्तम मित्र कहते हैं, जो पवित्र उत्कृष्ट धर्ममें लगा देता है ।
२. न धर्मकार्ये रचयन्ति सन्तः कदाचनालस्यमनर्थभूतम् ।	सज्जनपुरुष धर्म कार्योंमे अनर्थका करनेवाला आलस्य कदापि नहीं करते हैं।
३. संसारतो न परमस्ति निषेधनीयं निर्वाणतो न परमस्ति जनार्थनीयम् ।	संसारसे अधिक कोई निषेध करने योग्य नहीं है, और मुक्तिसे अधिक कोई प्रार्थनीय नहीं है ।
४. नरेण क्रियते सर्वमिष्टसंयोगकांक्षिणा ।	इष्ट संयोगकी आकांक्षा करनेवाला सब कुछ करता है ।
५. व्याक्षिप्तचेतसा भूरि गतः कालो न बुध्यते ।	जिनका चित्त विक्षिप्त रहता है, उन्हे अपना जाता हुआ समय नहीं दिखता।
६. संविभागं विना साधोर्भुञ्जते न हि सज्जनाः ।	साधुओंका विभाग किये विना सज्जन पुरुष भोजन नहीं करते हैं ।
७. बुभुक्षाग्लानचित्तानां कौतुकं हि पलायते ।	जिनका चित्त भूखसे क्लेशित होता है, उन्हें कौतुक अच्छे नहीं लगते ।

८. परचिन्ताप्रसक्तानां पापतो न परं फलम् ।

जो पराई चिन्तामें लवलीन रहते हैं, उन्हें पापके सिवाय और कुछ फल नहीं मिलता ।

---

९. इष्टेभ्यो वस्तुनि प्राप्ते गणना क्रियते नहि ।

अपने प्यारेसे वस्तु प्राप्त करनेमें द्रव्यादिकी गिनती नहीं की जाती है ।

---

१०. प्रशस्तं क्रियते कार्यं विभ्रान्तमतिभिः कदा ।

विभ्रान्त बुद्धिवालोंसे उत्तम कार्य कब होते हैं ?

---

११. कङ्कणे सति करव्यवस्थिते नादरं विदधतेऽब्दके बुधाः ।

हाथमें पहने हुए कंकणके देखनेके लिये बुद्धिमान लोग सूक्ष्मदर्शक काचक आदर नहीं करते हैं ।

---

१२. नागनाथभवनादुपैति कः शेषमूर्द्धमणिरश्मिरञ्जितः ।

नागभवनसे शेषनागके मस्तककी मणिको कौन प्राप्त कर सकता है ?

---

१३. कारणेन रहितेन रुष्यते पन्नगेन न पुनर्मनीषिणा ।

विनाकरणके सांप भी रोष नहीं करता, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है ?

---

१४ केवलं हि परकार्यमीक्षते दूषणं जगति नात्मनो जनः ।

लोग केवल दूसरोंके दोष देखते हैं, अपने नहीं ।

---

१५. जीवितव्येपि सन्देहो दुष्टमध्ये निवासिनाम् ।

दुष्ट पुरुषोंमें रहनेवालोंके जीवनमे भी सन्देह रहता है ।

---

१६. वालिशो जायते प्रायः खण्डितोपि न पण्डितः ।

मूर्ख लोग खंडित होनेपर भी पंडित नहीं होते हैं अर्थात् हानि उठाकर भी नहीं चेतते हैं ।

---

१७. सरसायां हि लब्धायां विरसां को निषेवते ।	सरसा (रसीली) स्त्रीको पाकर विरसा (फूहर) स्त्रीका सेवन कौन करे ?
१८. शीलवन्त्यो न कुर्वन्ति भर्तृवाक्यव्यतिक्रमम् ।	जो शीलवान स्त्रियां होती हैं, वे अपने पतिके वचनोंका कदापि उल्लंघन नहीं करती हैं ।
१९. अनन्यसदृशाकारं स्त्रीरत्नं को हि मुञ्चति ।	जिसके रूपकी समता करनेवाला कोई दूसरा नहीं है, ऐसे स्त्रीरत्नको कौन छोड़ सकता है ?
२०. वञ्चना हि सहजा वनितानाम् ।	स्त्रियोंमे ठगाई स्वाभाविक गुण है ।
२१. सामिषे किं गले लग्नो मीनो याति न पञ्चताम् ।	मांसपिण्डसहित कांटेके गलेमें लगनेपर भी क्या फंसी हुई मछली मरती नहीं है ?
२२. योजयन्ति न कं दोषं जितेभर्तरि योषितः ।	वागजालसे हारे हुए पतिपर स्त्रियां क्या क्या दोष नहीं लगाती ?
२३. प्रेम्णो विघटने शक्ता रामा सङ्घटने पुनः ।	स्त्रियां प्रेम जोड़ सकती हैं, और तोड़ भी सकती हैं ।
२४. एकद्रव्याभिलाषित्वं वैराणां कारणं परम् ।	एक ही द्रव्यके लिये दो चार पुरुषोंकी अभिलाषा शत्रुताका कारण होती है ।

२५. सुखाय जायते कस्य वक्रो दुष्टनिविष्टधीः।	दुष्टबुद्धिवाले वक्र पुरुष किसको सुख पहुंचाते हैं ? किसीको नहीं।
२६. यो वितनोति परस्य हि दुःखं कं न सदोषमुपैति वराकः।	जो दूसरोंको दुःख देता है, वह कौन २ से दोषोंको प्राप्त नहीं होता।
२७. स्वैरिणीनां महाराज्यं शून्ये वेश्मनि जायते।	सूनें घरमें स्वेच्छाचारिणी स्त्रियों-का महाराज्य हो जाता है।
२८. विविक्ते युवतिं प्राप्य वि-रागं कः प्रपद्यते।	एकान्त स्थानमें युवती स्त्रीको पाकर कौन ऐसा है, जो वैरागी बना रहै ?
२९. एकान्तेऽन्यस्त्रियं प्राप्य प्रायः क्षुभ्यन्ति मानवः।	परस्त्रीको एकान्त स्थानमें पाकर मनुष्य प्रायः चलचित्त हो जाता है।
३०. उपदेशो बुधैर्व्यर्थः प्रदत्तो मूढचेतसाम।	मूर्खोंको बुद्धिमानोंका दिया हुआ उपदेश व्यर्थ जाता है।
३१. निजदुरीहितकंपितचेतसे शुभमतिर्न कदाचन कुप्यति।	जिसका चित्त अपने ही पापकार्योंसे कंपित रहता है, शुभमतिवाले पुरुष उसपर कभी कोप नहीं करते हैं।
३२. भास्वरं भास्वतस्तेजः कौ-शिको मन्यते तमः।	प्रकाशमान सूर्यके प्रकाशको उल्लू अंधकार ही समझता है।
३३. अज्ञानहस्ते पतितं महार्घं पलायते रत्नमपार्थमेव।	मूर्खके हाथमें पड़ा हुआ रत्न भी व्यर्थ जाता है।

३४. विद्यते धिषणा शुद्धा हालिकानां कुतोऽथवा।	हल जोतनेवालोंके शुद्ध बुद्धि कहां ?
३५. निर्विवेका न कुर्वन्ति प्रशस्तं क्वापि स्वैरिकाः।	स्वेच्छाचारी अविवेकी पुरुष कोई भी अच्छा कार्य नहीं करते ?
३६. उपकारो वरिष्ठानां कल्पवृक्षायते कृतः।	बड़े पुरुषोंका उपकार करना कल्पवृक्षके समान होता है।
३७. यमोऽपि वञ्चते नूनं वणिजैः सत्यमोचिभिः।	सत्यको छुपानेवाले वनियोंसे यमराज भी ठगाया जाता है।
३८. अज्ञाने वर्तमानानां जायते न सुखांशिका।	अज्ञानमें रहनेवालोंको सुखका लेश भी प्राप्त नहीं होता है।
३९. मनोभिलषिताशेषफलप्रदायिनी कुतो हि संवृत्तिरपास्तचेतसाम्।	मनोवांछित फलोंकी देनेवाली एकता मूर्ख पुरुषोंमें कहांसे हो ?
४०. पराभवः क्वापि न सह्यते जनैः।	मनुष्य अपना पराभव सहन नहीं कर सकते।

(शेष फिर कभी)

विविध विषय।

आर्य समाजका धर्मोत्साह।

आर्य समाजके सिद्धान्त चाहे जैसे हों, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, उसके अनुयायियोंका धार्मिक उत्साह और कर्तव्यपरायणता सभी लोगोंके लिये अनु-

करणीय है। गुरुकुल-कांगड़ा और लाहोरका दयनान्द एंग्लो वैदिक कालेज उनके विद्याप्रेमके सच्चे नमूने हैं। कुछ दिन पहले फर्रुखाबादमें उनके गुरुकुलका वार्षिकोत्सव हुआ था, जिसमें गुरुकुलकी सहायताके लिये अपील की गई थी। उसका प्रभाव इतना पड़ा कि, तत्काल ही लगभग तीनलाखकी जायदाद और रुपया चन्दा एकत्र हो गया। मथुराके कुमार हुकमसिंहने अपना एक लाख ३२ हजार की सारी जायदाद अर्पण कर दी। इतना ही नहीं किन्तु उन्होंने अपना सारा जीवन भी गुरुकुलकी सेवाके लिये अर्पण कर दिया। आगराके एक रईसने कन्याओंके लिये गुरुकुल खोलनेके हेतु ८० हजार रुपयेकी संपत्ति और लाला द्वारिकाप्रसादने अपनी ७० हजार की जायदाद दे दी। इनके सिवाय पं० भगवानदीनने जो २'५०) मासिक वेतन पाते थे, और एक बी-ए० महाशयने अपना सारा जीवन आर्यसमाजकी सेवाके लिये उत्सर्ग कर दिया। जबतक जैनसमाजमें ऐसे दाता और स्वार्थत्यागी तथा सच्चे धर्मसेवक उत्पन्न न होंगे, तब तक हमारी संस्थाओंकी न तो आर्थिक दशा अच्छी होगी और न वे संतोषकारक पद्धतिसे चल सकेंगी। आर्यसमाजमें शिक्षितोंका समुदाय अधिक है, और हमारे यहां अशिक्षितों का। जबतक शिक्षाके संस्कारसे हमारे हृदय उज्ज्वल न होंगे, तबतक उनमें सच्चे उत्साह और स्वार्थत्यागको स्थान नहीं मिल सकेगा।

श्रुतपंचमी पर्व।

श्रुतपचमी पर्व बिलकुल समीप आ गया है! इस लिये हम गतवर्षके समान इस वर्ष भी उसकी याद दिलाते हैं और-आपने पाठकों, सहयोगियों, उपदेशकों तथा सभा सुसाइटियोंके संचालकोंसे प्रार्थना करते हैं कि, इस पर्वकी लुप्त हुई प्रथाको फिरसे प्रचलित करनेके लिये शक्तिभर प्रयत्न करें. वर्तमान समयमें इस पर्व के समान उत्तम पर्व और दूसरा नहीं है. जैनधर्मकी सच्ची उन्नति करनेवाला यही एक पर्व है. जैनधर्मकी डूबी हुई विद्याका उद्धार इसी पर्वसे होगा और भंडारमें सड़ते हुए लक्षावधि ग्रन्थोंकी व्यवस्था इसी पर्वके प्रचालित होनेसे होगी. गतवर्ष हमने श्रुतपंचमी पर्वकी कथा तथा विधानादिकी १००० पुस्तकें मुफ्तमें बांटी थी, सो वे पुस्तकें सब भाइयोंके पास मौजूद होंगी. जिन भाइयोंके पास न होवें, वे हमारे यहांसे साढे तीन आनेके

टिकट भेजकर मंगा लेवें. सहयोगियोंसे प्रार्थना है कि, वे अपना थोड़ासा स्थान इस विषयके आन्दोलनके लिये अवश्य खर्च करें. जिन २ स्थानोंमें यह उत्सव हो–वहांके भाइयोंको इसका समाचार अखबारोंमें अवश्य छपा देना चाहिये, जिसमें हम मालूम कर सकें कि, गतवर्षकी अपेक्षा इस पर्वका प्रचार कुछ अधिक हुआ या नहीं.

जैनग्रन्थोंका संग्रह ।

इस समय यदि कोई उदार पुरुष प्रयत्न करे, तो जैनियोंके हजारों नहीं बल्कि लाखों ग्रंथ संग्रह किये जा सकते है. इस समय यहां एक राजपूतानाके पंडितजी आये हैं, वे कहते हैं कि, हमारे आसपासके ग्रामों और नगरोंमें सैकड़ों घर ऐसे है, जिनके पूर्व पुरुष अच्छे विद्वान और संग्रह करनेवाले थे। परन्तु अब उनके पदपर निरक्षरभट्टाचार्य विराजमान हैं. जो अपने पूर्व पुरुषोंके संचय किये हुए उन ग्रन्थरत्नोंको बहुत थोडेसे लालचसे दे सकते हैं । पंडितजीने अनेक लोगोंको ऐसे ग्रन्थ मिट्टीमोल दिला भी दिये हैं । थोड़े दिन पहले आदिपुराणकी एक संस्कृतटीका जो ६० हजार श्लोकके अनुमान थी, कोई एक अंग्रेज खरीद ले गया था. यह सुनकर किसको अफसोस नहीं होगा कि, जिन ग्रन्थरत्नोंकी जैनियोंके यहां ऐसी कदर है कि, वे उन्हें कूड़ा कचरा समझकर घरसे टालना चाहते हैं. उसीको एक विदेशी भिन्नधर्मी गोरा छातीसे लगाकर ले जाता है ! जैन ग्रन्थोंकी अविनयपर अपरिमित रोना रोनेवाले क्या इसे अविनय नहीं कहेंगे ? दानवीर शेठ माणिकचन्दजीकी ओरसे कर्नाटक प्रान्तकी मर्दुमशुमारी करनेके लिये एक सज्जन नियत किये गये हैं। उनकी रिपोर्टोंसे मालूम होता है कि, उक्त प्रान्तमें अपरिमित जैनग्रन्थ रक्खे हुए है ! वहां तलाश किया जावे, तो जैनियोंके प्राय: प्रत्येक घरमें १०–५ प्राचीन ग्रन्थ मिल सकते हैं. अभी उन्होंने दो घरोंके ग्रन्थोंकी सूची बनाकर भेजी हैं. एक घरमें ६४ ग्रन्थ हैं. और दूसरेमें ९७ हैं. इनमें संस्कृत ग्रन्थोंके सिवाय तामिल भाषाके मूल ग्रन्थ और संस्कृत ग्रन्थोंकी तामिल टीकायें भी हैं. पहले ६४ ग्रन्थ एक पार्वती नामकी महिलाके अधिकारमें हैं और दूसरे किसी एक शेठजीके. ये दोनों घर कुंभकोणम

(तंजौर) नामके स्थानमें हैं. इस नगर के अन्यान्य घरोंमें भी ऐसे सैकड़ों जैनग्रन्थ रक्खे हुए हैं. इस प्रकारसे मर्दुमशुमारीके साथ २ यदि ग्रन्थोंकी सूची बनवानेका भी शेठजी प्रयत्न करें तो बहुत अच्छा हो. और कुछ नहीं, तो हमें इतना तो मालूम हो जावेगा कि, वहां कितने और कौन २ जैनग्रन्थ मिल सकते हैं. कभी न कभी किसी उदार धनवानकी इस ओर भी दृष्टि पड़ेगी. जिस जातिमें लाखों रुपये मंदिर तथा प्रतिष्ठा आदि पुण्य कार्योंमें लगानेवाले उत्पन्न होते हैं, उसीमें कभी न कभी सरस्वती मांदिरोंकी प्रतिष्ठा करनेवाले भी उत्पन्न होंगे. क्योंकि **कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी**-काल अनंत है. और पृथ्वी बहुत बड़ी है.

जैनधर्मविद्याप्रसारकवर्ग-पालीताणा।

जब हमारे यहांके धर्मात्मा जैनग्रन्थोंका प्रकाशकार्य रोकनेके लिये जमीन आसमान एक कर रहे हैं, तब श्वेताम्बरी सज्जनोंका उक्त जैनविद्याप्रसारक वर्ग अपने ग्रन्थोंका प्रसार करनेके लिये अपरिमित परिश्रम कर रहा है। इस समय उसकी दो सालकी रिपोर्ट हमारे साम्हने है, जिसका आकार रायल साइजके कोई १४ फार्मका है ! गत तीन बर्षोंमें उसने सब मिलाकर ५६ पुस्तकें छपाकर प्रकाशित की हैं जिनकी छपाईमें १३ हजार रुपयेके करीब खर्च हुआ है. पुस्तक छपाने तथा बंधानेके लिये उक्त वर्गने निजका प्रेस तथा बाइडिंग खाता भी खोल रक्खा है। जिससे बहुत किफायतके साथ छपाईका काम होता है। पुस्तकें जो छपाई गई हैं, वे वर्तमान समयके लिये बहुत उपयोगी और सरल हैं. स्त्रीशिक्षा तथा जैनविद्यार्थियोंकी पाठ्य पुस्तकें वर्गने स्वयं बनवाकर छपाई हैं, इनमेंसे कई एक पुस्तकें हमने देखी हैं, और उन्हें पसन्द भी की हैं. बहुतसे प्राचीन ग्रन्थोंका भी गुजराती अनुवादसहित उद्धार किया गया है. इस कार्यके लिये तमाम श्वेताम्बरी यतियों और श्रावकोंकी सहानुभूति है. यति लोग ग्रन्थ बनाने तथा प्रचार करनेमें सहायता देते हैं, और श्रावक लोग धनसे सहायता पहुंचाते हैं इन तीन वर्षोंमें श्रावकोंने इस परमोपयोगी खातेको २५ हजार रुपयेके करीब सहायता में दिये हैं. जिस समाजमें पुस्तकके उद्धारकार्यमें इस प्रकार सहायता मिलती है, उसकी उन्नति क्यों नहीं होगी ? श्वेताम्बर

समाजको इस खातेसे सबसे बड़ा लाभ यह है कि, लोगोंको बहुत ही थोड़े दामोंपर पुस्तकें मिलती हैं. वह दिन धन्य होगा, जब हमारे यहां भी इसी प्रकारका कोई उत्तम खाता स्थापित होगा. और प्रतिवर्ष सैकड़ों ग्रन्थ प्रकाशित होकर छपाईके भावपर लोगोंके घर २ में विराजमान होने लगेंगे. न जाने सरस्वती माता हमारे भाइयोंको यह सुबुद्धि कब देगी ?

जैनधर्मविद्याप्रसारक वर्गकी ओरसे पालीताणामें एक जैनबोर्डिंग स्कूल भी खोला गया है, जिसका फंड कोई एक लाख रुपयेके अनुमान है. इसके सिवाय एक अनाथालय और एक मासिकपत्र भी इस खातेकी ओरसे बहुत उत्तमताके साथ चल रहा है. हम इस वर्गकी उन्नति हृदयसे चाहते है.

अजयगढ़में जैनमूर्तियां ।

अजयगढ यह स्थान अजयगढ़ रियासतकी राजधानी है। इसके एक ओर अनुमान ३/४ मील ऊंचे पहाड़पर एक किला है. पहाडपर जाते ही एक ओर दो जलकुंड बने हुए हैं, जिन्हें लोग **गंगा यमुना** कहते हैं, ये कुंड उत्तरीय भागमें अवस्थित हैं, और पहाड़की गुरुतर शिलाओंसे ढके हुए हैं. जिनके आधार और विशेषकर शोभावृद्धिके लिये पाषाणके सुदृढ स्तंभ लगाये गये हैं, जिससे ये छोटे २ कुंड सभामंडप जैसी छटाको धारण करते हुए जलमंडपकी योजना दिखा रहे हैं. ऊपर एक शिलालेख है, जिसमें इनके बननेका वर्णन और १२४८ विक्रमाब्द लिखा हुआ है.

थोडी दूर आगे किलेके दरवाजेमें प्रवेश करते ही दो भारी २ शिलाओंमें उकीरी हुई अनुमान ५० के जैनमूर्तियां एक दिवालमें पद्मासन लगी हुई हैं जिनमें शिलालेख आदि कुछ भी नहीं हैं. किलेके भीतरी दरवाजेमें प्रवेश करते ही एक शिलामें कुछ लेख है. लेखके ठीक नीचे लक्ष्मीदेवीकी मूर्ति और ताले कुंजीका आकार बना हुआ है. लोग कहते हैं कि इसके नीचे बहुतसा धनभंडार रक्खा है. उक्त रियासतके अधिकारी महाराजा सा० ने इस लेखके पढ़ानेके लिये बहुत प्रयत्न किये. परन्तु उसमें सफलता नहीं हुई. लेखके अक्षर बहुत साफ हैं, परन्तु उसकी लेखनशैली दूसरे लेखोंसे बिलकुल निराली है.

किलेके भीतर प्रवेश करते ही एक कोठी है. जहांपर विविध प्रकारकी रण सामग्री रक्खी है. आगे थोड़ी दूर जानेसे पहाड़की मध्यवर्ती तलहटीमें एक भोहिरा है, जिसके दरवाजेमें **भूतेश्वर महादेव** हैं. कहते हैं कि, चन्देल राजाकी बेटी रंगमहलके तालाबसे जो कि यहांसे दो मील दूर है. इस भीतरी मार्गसे भूतेश्वरकी पूजा करनेको आती थी। यहां एक विचित्र बात अबतक सुनी जाती है कि, आधी रातके पीछे यदि कोई मनुष्य पूजा करनेके लिये इस विचारसे जावे कि, मैं पहले पहुंचकर पूजा कर लूंगा, तो उसको वहांपर तुरन्तके तोड़े हुए फूल पहलेहीसे चढ़े हुए मिलते हैं.

भूतेश्वर से $\frac{1}{2}$ मीलके फासलेपर एक छोटा सा तालाब है, जो अत्यन्त गहरा है. कहते हैं कि इसकी थाह नहीं मिलती है। इतने ऊंचे पहाड़पर पानीका ऐसा गहरा होना आश्चर्यकी बात है. इसके एक तटपर **अजयपार** नामक देवताका एक मंदिर है. यहांके लोगोंमें इनकी मान्यताका प्राधान्य है. तालावकी दूसरी ओर पासकी गिरी हुई चौकोर दीवारीके भीतर श्री शान्तिनाथ तीर्थंकरकी ३ खड्गासन प्रतिमायें विराजमान हैं. मूलनायककी प्रतिमाकी अवगाहना १५ फूट और शेषकी १०-१० फुट है. प्रतिमाओंका आसन तीन २ फुट नीचे दब जानेसे शिलालेख डूब गया है. परन्तु यहांकी अन्यान्य खंडित प्रतिमाओंके लेख पढ़नेसे इनका निर्माणसमय १२ वीं शताब्दीमें प्रतीत होता है. इसीके बगलमें एक पाषाणस्तंभ है, जिसमें हजारों प्रतिमायें उकीरी गई हैं. यह स्तंभ अपनी गुरुताके कारण आधेके लगभग जमीनमें धँस गया है. खुली जगह होनेके कारण इन पूज्य प्रतिमाओंपर वर्षाऋतुका पानी पड़ा करता है. और गँवार लोग जाकर अविनय किया करते हैं. पूजन प्रक्षालादिका कोई भी प्रबंध नहीं है. इसके आगे कोई १॥ मीलके फासलेपर एक दरवाजेके पास सैकड़ों खंडित अखंडित प्रतिमायें पड़ी हुई हैं.

यद्यपि इस किलेमें कोई विशेष दर्शनीय इमारतें नहीं हैं, तो भी रंगमहल, मोतीमहल आदिमें पत्थरोंकी कारीगरी और बृहस्पतिकुंड आदि वन्यस्थान देखने योग्य हैं. यह और कालिंजरके दोनों किले चन्देल राजाओंने अपनी वीरक्रीडा और गौरव स्थापनके लिये एक ही समयमें बनवाये थे.

नोट—अन्तमें हम अपनी जातिके धनिक सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि, इस किलेकी प्रतिमाओंके पूजन प्रक्षालका तथा विनयरक्षाका कुछ प्रबन्ध करनेकी उदारता दिखलावें. जीर्णोद्धार जैसे महापुण्यकार्योंका फल कौन नहीं जानता है. ये सब हमारे प्राचीन गौरवके चिन्हस्वरूप हैं. इनकी रक्षा करना प्रत्येक जैनीका कर्तव्य है. अलमतिविस्तरेण.

अजयगढ़ }
६-४-०९ }

बाबू प्रियचन्द डायरेक्टर

जैनसाहित्य और यूरोपीय विद्वान।

यूरोप निवासियोंके आचार और विचार चाहे जैसे हों, पर इसमें सन्देह नहीं है कि, उनके जैसा विद्याप्रेम दूसरे देशके लोगोंमें नहीं है. आज सारी पृथ्वीमें उनकी जो विजयदुंदुभी बजती है, यथार्थमें पूछो, तो यह इसी विद्याप्रेमका प्रसाद है. आज उनकी अंग्रेजी, जर्मन आदि भाषाओंका भंडार इतना बढ़ा हो गया है कि, उसे सुनकर लोगोंको आश्चर्य होता है. वहांसे आप किसी पुस्तकविक्रेतासे उसकी दूकानका सूचीपत्र मंगाइये, तो आप उसकी गुरुता और विस्तार देखकर घबड़ा जावेंगे. किसी किसी दूकानदारके यहां तीन तीन सौ चार चार सौ सूचीपत्र हुआ करते हैं, और उन प्रत्येक सूचीपत्रोंमें एक एक विषयकी तीन तीन चार २ हजार पुस्तकें रहती हैं छोटेसे छोटा और बड़ेसे बड़ा शायद ही ऐसा कोई ऐसा विषय होगा, जिसके विषयमें उक्त भाषाओंमें लेख तथा ग्रन्थ न लिखे गये हों. कोई नवीन पुस्तक निकलती है कि, उसकी हाथों हाथ लाखों पुस्तकें बिक जाती हैं. इतना बड़ा साहित्य होनेपर भी वहांके विद्वान संतुष्ट नहीं हैं. हजारों विद्वान ऐसे हैं, जो रातदिन पुस्तकचिन्तामें लगे रहते हैं, और किसी एक नवीन विषयपर पुस्तक लिखकर अपना जीवन सफल समझते हैं. जिस देशमें जिस प्रान्तमें ये लोग प्रवास करते हैं, वहांके धर्म, समाज, जाति, व्यवहार, इतिहास, भाषा आदि सबही विषयोंको ये बड़ी बारीकीसे देखते हैं और उसका परिचय अपने देशवासियोंको कराते हैं. इन लोगोंका जबसे यहां आवागमन शुरू हुआ है, तबसे क्या धर्म, क्या इतिहास, क्या भाषा, क्या रीति रिवाज, सबही विषयोंपर

इन्होंने सैकड़ो ग्रन्थ लिखे हैं और बराबर लिखते चले जाते हैं. यहांके वैदिक धर्मका परिचय तो इन लोगोंको बहुत दिनसे है, और इस धर्मके विषयमें इनके मोक्षमूलर, बुल्हर, वेबर, जैकोबी आदि विद्वानोंने सैंकड़ों ही ग्रन्थ लिख डाले हैं, कई विद्वानोंने तो इसी धर्मकी आलोचनामें अपने जीवन व्यतीत कर दिये हैं, परन्तु जैनधर्मके विषयमें इन्हें थोड़े ही दिनोंसे परिचय हुआ है.

जहांतक हम जानते हैं, जैनधर्मकी चरचा प्राच्य देशोंमें सन १८८७ से शुरू हुई है, जब प्रोफेसर बुल्हरने "**हिन्दुस्थानमें एक जैननामका पंथ**' इस नामकी पुस्तक प्रकाशित की थी. इसी पुस्तकको पढ़कर वहांके बहुतसे विद्वानोंका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और तबसे अबतक कई विद्वान जैनसाहित्यका अभ्यास कर रहे हैं. इन विद्वानोंने अबतक बहुतसे जैनग्रन्थ इंग्लिश जर्मन आदि भाषाओंमें अनुवाद करके छपाये है और छपानेके लिये प्रयत्न कर रहे हैं.

अभीतक जितने जैनग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उनमें एक दोको छोड़कर प्रायः सब ही श्वेताम्बर सम्प्रदायके हैं. दिगम्बरी ग्रन्थोंपर अभीतक या तो उनका ध्यान ही आकर्षित नहीं हुआ है, या उन्हें दिगम्बरी ग्रन्थ प्राप्त नहीं हो सकते हैं. अथवा श्वेताम्बरी विद्वानोंसे उन्हे ग्रन्थोंके अनुवाद वगैरहके कार्यमें जैसी सहायता तथा सहानुभूति मिलती है, वैसी दिगम्बरी विद्वानोंसे नहीं मिली है.

भावनगरकी जैनधर्मप्रचारकसभा इटलीके मि० एल. स्वाली पी. एच. डी. नामक पंडितसे प्राकृत--संस्कृतका एक कोष बनवा रही है. इसके सिवाय श्रीहरिभद्रसूरिका योगबिन्दु, और स्थानांगसूत्र इन दो ग्रन्थोंकी आवृत्ति भी वह उक्त विद्वानके द्वारा छपवा रही है. उत्तराध्ययनसूत्र प्रोफेसर जैकोबीके द्वारा छपाया जा रहा है. अहमदाबादके वकील मि० केशवलाल डाह्याभाई जैकोबी आदि विद्वानोंके द्वारा अपने सम्पूर्ण आगमग्रन्थ (सूत्र) सम्पादन करनेके विषयमें तथा जैनसाहित्यके विषयमें यूरोपके विद्वानोंने अभीतक कौन २ ग्रन्थ तथा लेख प्रकाशित किये हैं, उनका एकत्र संग्रह करनेके लिये पत्रव्यवहार कर रहे हैं. इन दो उदाहरणोंसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि, श्वेताम्बर समाजकी यूरोपीयन विद्वानोंके साथ पूरी २ सहानुभूति है.

आचारांगसूत्र, हेमचन्द्रका जीवनचरित्र, सम्यक्त्वकौमुदी, कालिकाचार्य-कथानक,आदि चार पांच ग्रन्थोंके सिवाय अभीतक यूरोपमें कौन २ ग्रन्थ छपे हैं, उन सबकी सूची तो हमारे पास नहीं है. तौ भी जान पड़ता है कि, वहां बहुतसे ग्रन्थ छप गये हैं. क्योंकि जे हेर्मेस हर्टल नामके साहबने अपनी चिट्ठीमें जो कि उन्होंने मि० केशवलालको लिखी है, वहांके प्रकाशित हुए केवळ कथाविषयके १२ ग्रन्थोंके नाम लिखे हैं. इससे जान पड़ता है कि, अन्यान्य विषयोंके कहीं इससे ज्यादा ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके होंगे. उन कथा ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार हैं:—

१ **पञ्चदंड छत्रप्रबंध** (मूल और जर्मन अनुवाद) प्रो० वेबरने सन् १८७७ में प्रकाशित किया.

२. **छठे अंगकी ज्ञातृकथा** (जर्मनी अनुवाद)

३. **देवेन्द्रसूरिकृत प्राकृत चुनी हुई कथायें और-व्याकरण**-सन् १८८६ में प्रो० जैकोबी द्वारा प्रकाशित.

४. **सगरकी कथा** (नागरी लिपिमें) सन् १८८९ में मि० फिक द्वारा मुद्रित.

५. **आवश्यक कथायें** (मूल रोमन लिपिमें) सन् १८९७ में मि० ल्यूमन्न द्वारा.

६. **मेरुतुंगकृत प्रबन्धचिन्तामणि**-(अंग्रेजी अनुवाद) सन् १९०१ में मि० टानी द्वारा.

७. **कथाकोष** (अंग्रेजी अनुवाद) सन् १८९५ मि० टानी कृत.

८. **जगडूचरित** (नागरी लिपि) प्रो० बुल्हर द्वारा सन् १८९२ में.

९. **सिंहासन द्वात्रिंशतिका**--प्रो० वेबर द्वारा सन् १८७८ में.

१०. **माधवानल कथा**--पी. इ. पवालिनी द्वारा सन् १८९४ में.

११. **उत्तमचरित्र कथानक** (मूल रोमन लिपिमें, अनुवाद जर्मनमें) आल ब्रेकट वेवर द्वारा सन् १८८४ में.

१२. **चंपकश्रेष्ठी कथानक**—(मूल और जर्मन अनुवाद) सन् १८८३

सन् १९०६ में जो जैनग्रंथ तथा लेख यूरोपमें प्रकाशित हुए हैं उनमेंसे मुख्य२ के नाम ये हैं; जैनधर्म का विकाशक्रम, जैनियोंका अहिंसासूत्र, योगरीति, जैन-निबंध, आबू पर्वतपरके नेमिनाथ मंदिरके शिलालेख, गिरनारके जैन और बौद्ध शिलालेख सचित्र, उपमितिभवप्रपंचाकथा (इटालियन भाषा), समरादित्यसंक्षिप्त, अमितगतिकृत सुभाषितरत्नसंदोहके विषयमें निबंध, हेमचन्द्र वृत्तान्तकी समालोचना, पंचतंत्रोद्धार आदि.

कुछ दिन पहले सुभाषितरत्नसंदोह जो कि दिगम्बराचार्य श्रीअमितगतिका बनाया हुआ है, डाक्टर स्किट्मने जर्मन अनुवाद सहित छपाया है । इसका एक अनुवाद पहले और भी किसी यूरोपीय भाषामें हो चुका है.

ऊपरके लेखसे पाठक जान गये होंगे कि, यूरोपीयन विद्वानोंमें जैनधर्मके अध्ययन करनेकी और उसका तत्त्व अपने देशवासियोंको समझानेकी लालसा बढ़ रही है. और यह लालसा आगे बढ़ती ही जावेगी. ज्यों ज्यों उन लोगोंका जैनधर्मसम्बधी ज्ञान बढ़ता जावेगा, त्यों २ वे इस विषयमें और अधिक ध्यान देवेंगे. अभीतक जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उनमें श्वेतांम्बर ग्रन्थोंकी ही बहुतायत है. तौभी ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि, दिगम्बर ग्रन्थोंकी ओर उनका ध्यान नहीं जावेगा. जहांतक हमारा ख्याल है, वे बहुत जल्दी हमारे सम्प्रदायकी ओर झुकेंगे. सुभाषितरत्नसंदोहका अनुवाद हमारे ग्रन्थोंकी ओर लक्ष्य जानेका प्रारंभ बतला रहा है.

जबतक यूरोपके विद्वानोंको जैनधर्मका परिचय थोडा था, बल्कि ऐसा कहिये कि, नहीं था, उस समय उन लोगोंका ख्याल था कि, जैनधर्म यह एक बौद्धधर्मकी शाखा अथवा रूपान्तर है. परन्तु जबसे उन्होंने जैनग्रन्थोंका अध्ययन करना शुरू किया है, तबसे उनके विचार बदलने लगे हैं, और उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की है. यूरोपके विद्वानोंमें यह एक बड़ा भारी गुण है कि, वे दुराग्रह करना नहीं जानते हैं. नई बात मालूम होनेपर वे अपनी पुरानी भूलको स्वीकार कर लेते हैं. इस विषयमें हम मि० जोहन्नेस हर्टलकी चिट्ठीका कुछ भाग यहां उद्धृत करते है.

---

१ इस ग्रन्थके प्रथमभागका हिन्दी अनुवाद हमनें तयार किया है । आगामी वर्षमें वह प्रकाशित हो सकेगा। बड़ा ही अपूर्व ग्रन्थ है ।

"जर्मनीमें जैनधर्म बहुत समय तक अज्ञात रहा है. जैनधर्म और उसके साहित्यका परिचय यहांपर सबसे पहले मृत प्रो० बुल्हर, प्रो० बेवर, प्रो० ल्यूमन्न, और हर्मन जैकोबीने कराया है. अब भी जर्मनीमें थोडेसे पंडित ऐसे हैं, जो जैनधर्म-साहित्यका अभ्यास करते हैं. थोडे वर्ष पहले जैनधर्मके विषयमें मुझे बहुत थोडा परिचय था और उस समय इसके विषयमें मेरे बुरे ख्याल थे क्योंकि मैंने ब्राह्मण और बौद्ध साहित्यका अभ्यास किया था, और इससे मैंने रिमार्क किया था कि, बौद्ध साहित्य ब्राह्मण सहित्यकी अपेक्षा बहुत हलका है. यूरोपमें हिन्दुस्थानके साहित्य विषयमें जो इतिहास प्रगट हुए हैं, उनमें बहुत थोड़े लोगोंने जैन साहित्यके विषयमें बहुत थोड़ा विचार किया है. उसमें भी पहलेके लेखकोंने प्रतिपादन किया है कि, जैनधर्म बौद्धधर्मके पीछे हुआ है. परन्तु अब मेरा वह मत जो इन पंडितोंके लेखोंसे हुआ था, सर्वथा बदल गया है. और मैं ज्यों २ जैनधर्मके साथ परिचय होता जाता हूं, त्यों त्यों उसे अधिक चाहता हू. जैनधर्ममें व्याप्यमान हुए सुदृढनीति, प्रामाणिकताके मूलतत्त्व, शील और सर्व प्राणियोंपर प्रेम रखना इन गुणोंकी मैं बहुत प्रशंसा करता हूं. **जैन पुस्तकोंमें जिस अहिंसा धर्मकी शिक्षा दी है, उसे मैं यथार्थमें श्लाघनीय समझता हूं.** ईसाई धर्ममें कहा है कि, "अपने प्यारे लोगोंपर और अपने शत्रुओंपर भी प्यार करना चाहिये" परन्तु यूरोपमें यह प्रेमका तत्त्व सम्पूर्ण जातिके प्राणियोंकी ओर विस्तृत नहीं हुआ जर्मनीमें ऐसी बहुतसी सभाये हैं, जो गरीब प्राणियोंका दुःख कम करनेके लिये धन खर्च करती हैं परन्तु ये सभायें अभी निकली हैं और धर्मके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखती है. (पर जैनधर्म यह कार्य हजारों वर्षोंसे करता है) जैन साहित्यमें आश्चर्यके साथ मुझे यह मालूम हुआ कि, जैनियोंमें सुंदर और चातुर्यपूर्ण कथाकार हो गये हैं. सबसे पहले जब मैंने प्रो० बुल्हरकृत **हेमचन्द्रका जीवनचरित्र** बांचा, तब मुझे उक्त महापंडितके पारशिष्ट पर्वका अभ्यास करनेकी भी आवश्यकता हुई. और उससे मैंने निश्चय किया कि, मैं अपना सारा समय जैनकथासाहित्यके अभ्यासमें व्यतीत करूंगा. जब मैंने रिपोर्टोंपरसे विशेष करके प्रो० बुल्हर, भांडारकर, और पिटर्सनकी रिपोर्टोंपरसे जाना कि, जैनभंडारोंमें हस्तलिखित पुस्तक पड़े पड़े सड़ रहे हैं

तब मैं आश्चर्यचकित हो रहा. मैंने विचार किया कि, ये ग्रन्थ उत्तम और विवेचनापूर्ण आवृत्तिमें नहीं छपते हैं, यह अवश्य ही शोचनीय है."

उपर्युक्त चिट्ठीसे पाठकोंको अनेक बातें मालूम हो जावेंगी. एक तो यह कि, जैनधर्मके विषयमें विद्वानोंके हृदयमें जो भ्रान्ति बैठी हुई थी, वह एक प्रकारसे निकल गई है. दूसरी यह कि, यूरोपके विद्वान जैनसहित्यको ऐसा अच्छा समझते हैं कि उसके अवलोकनमें अपना सारा जीवन व्यतीत कर देना चाहते हैं. तीसरे उन्हें जैनग्रन्थोंके भंडारोंमें पडे पडे सडनेपर आश्चर्य और अफसोस होता है? (पर हमें जरा भी अफसोस नहीं होता है !) सच है, हीराकी परीक्षा जौहरीही कर सकता है. गंवार तो उसे पत्थर समझकर घरके कौनेमें डाल रखता है. हीराकी इसतरह अवज्ञा होते देख किसे आश्चर्य और अफसोस नहीं होगा ?

इस लेखको पढकर हमारे बहुतसे पाठक कहेंगे कि, ये यूरोपीयविद्वान जो कार्य कर रहे हैं, उससे जैनधर्मका उपकार होनेकी अपेक्षा हानि अधिक होगी. क्यों कि हमारे ग्रन्थोंके गूढ रहस्योंको वे न जानकर अर्थका अनर्थ कर डालेंगे. इस बातको हम भी मानते हैं. परंतु वे यह कार्य आपलोगोंके उपकारके लिये नहीं करते हैं उनका सब प्रयत्न अपने देशवासियोंको जैनधर्मका परिचय कर देनेके लिये है. उनकी ज्ञान तृष्णा ऐसी बढी चढी है कि, वे उसका संवरण नहीं कर सकते हैं. पहले उसमें भले ही निष्फलता हो, परंतु एक बार दो बार चार बार फिरफिरसे करके वे हरएक विषयमें सफलता प्राप्त करते हैं. अभी उन्हें स्वयं इस बातका विश्वास नहीं है कि, हमारे अनुवाद किये हुए ग्रंथ जैनियोंको पूरा २ संतुष्ट कर सकेंगे. तो भी कार्यमें लगे जाते हैं. यथार्थमें पूछा जावे, तो यह कार्य हमारी समाजके ग्रेज्युएट जैनियोंका है. उन्हें अपने ग्रन्थोंका अंग्रजी अनुवाद करके उन लोगोंकी तृष्णा को शान्त करना चाहिये । परन्तु यहां तो उलटी गंगा बह रही है । जैनी ग्रेज्युएट जिनका यह धर्म है, और जिनके देशकी भाषामें पुस्तके हैं , वे इस आशामें रहते हैं कि, यूरोपीय देवता इन ग्रन्थोंको अंग्रेजीमें करके प्रसादरूपमें यहां भेजते, तो हम आनन्दसे वाह वाह करते हुए उन्हें मस्तकपर चढ़ाते ! इसे समयकी ही खूबी कहनी चाहिये कि, हमारे यहांके विद्यार्थी अपनी मातृभाषा धर्मभाषाको भूलकर पार्शियन, जर्मन, इटालियन आदि भाषाओंको पढ़कर जन्म सफल मानते हैं और यूरोपके नामी विद्वान संस्कृत प्राकृत भाषाओंके अध्ययन-

को कीर्तिका कारण समझते हैं. इस तरह जब हम अपने कर्तव्यको भूले हुए हैं, तब दूसरोंकी बुरी भली कृतिपर आक्षेप करनेका हमको क्या अधिकार है?

यह बात हम अच्छी तरहसे मानते हैं कि, साहित्यकथादिके ग्रन्थोंको छोड़कर आचारादि शास्त्रोंका आशय समझनेमें समर्थ होना यूरोपवालोंके लिये संभव नहीं है. परन्तु इतना कहे बिना भी नहीं रहा जाता है कि, ग्रन्थसम्पादनकार्य वे जैसी योग्यता और सत्यनिष्ठतासे करते हैं, हमारे देशके पंडितोंके द्वारा वैसा सम्पादन नहीं हो सकता है. ऐसा नहीं है कि, हमारे यहांके पंडित कर नहीं सकते हैं. नहीं कर सकते हैं. उनसे अच्छा कर सकते हैं. परन्तु करते नहीं है. इस विषयमें जितना परिश्रम वे लोग करते है, हमारे यहांके विद्वान उसका दशांश भी नहीं करते हैं. प्रो० जोहेन्नस हर्टल नामके विद्वानने पंचतंत्र ग्रन्थका सम्पादन और अनुवाद कोई दो वर्षसे किया है, और उसके लिये उन्होंने लगभग १०० के हस्तलिखित प्रति संग्रह करके उन सबका बारीकीसे अन्वेषण किया है. इस उदाहरणसे पाठक सोच सकते हैं कि, वे लोग कितना साहित्य एकट्ठा करके कितने परिश्रमसे ग्रन्थ तयार करते है. उनकी इसी कार्यकुशलतापर मोहित होकर देशमें सैकड़ों ब्राह्मण और जैनी पंडितोंके होते हुए भी भावनगरकी जैनसभा योगविन्दु और स्थानांगका सम्पादन एक गोरे विद्वानसे करा रही है. संस्कृत प्राकृतका कोष भी उन्हीसे बनवा रही है.

हमारे देशके विद्वान ग्रन्थसम्पादनका काम बहुत उत्तमतासे नहीं करते हैं. इसका कारण यह भी है कि, उन्हे परिश्रमफल पूरा नहीं दिया जाता है. इसलिये जीविकानिर्वाहके प्रपंचके कारण वे बहुत समयमें करने योग्य कार्यको थोड़े समयमें करना चाहते है. उनके चित्तकी स्थिरता भी दारिद्र्यके दूसरे कारणोंसे नहीं हो सकती है, और विदेशी विद्वानोंको भरपूर परिश्रमफल मिलता है. इसके सिवाय जिन देशोंमें वे रहते हैं, वहांकी सरकार भी उन्हें आर्थिक सहायता पहुंचाती है. इसीलिये वे एक छोटेसे कार्यको निराकुल होकर वर्षोंमें पूर्ण करते है. जिससे वह बहुत उत्तमतासे होता है. जैसा परिश्रमफल विदेशियोंको दिया जाता है, यदि वैसा ही देशी विद्वानोंको दिया जावे, तो हम कह सकते हैं कि, वे विदेशियोसे भी अच्छा काम करके बतला सकते हैं. परन्तु ऐसा हो कैसे कह सकता है? क्योंकि काम करानेवालोंको तो यह विश्वास है कि, ये लोग काम अच्छा नहीं करते हैं, इसलिये थोड़ा धन

देना चाहते हैं, और विद्वान सोचते हैं कि, इससे प्राप्ति थोड़ी होती है, इसलिये काममें अधिक समय कैसे लगावें. इस प्रकार अन्योन्याश्रय हो रहा है. इसी भूलके कारण आज यह समय उपस्थित हुआ है कि, हमारे धर्मकी पुस्तकें इसाई लोग संशोधन करके कीर्ति लाभ कर रहे हैं. यह देशके विद्वानों और धनवानों—दोनोंके लिये लज्जाकी बात है.

इस परस्थितिका एक और भी कारण है. विदेशी विद्वानोंके पास ग्रन्थसम्पादनका साहित्य बहुत अधिक रहता है, और नहीं हो, तो वे कोशिश करके एकट्ठाकर लेते हैं, जिस ग्रन्थकी हमको एक प्रति भी मुश्किलसे प्राप्त होती है, उस ग्रन्थकी वे वीसों प्रति एकट्ठी कर सकते हैं अभी एक जैनग्रंथ छपानेके विषयमें एक महाशयने जर्मनीके प्रसिद्ध पंडितको लिखा था. उसके उत्तर में उन्होंने लिखा था कि, इस ग्रन्थकी आठ प्रतियां तो हम यहांकी लायब्रेरियोंसे प्राप्त कर सकेंगे. शेषके लिये आपको प्रबंध करना पड़ेगा. हमारे यहां दो एक सरकारी लायब्रेरियोंको छोड़कर एक भी ऐसा पुस्तकालय नहीं है, जिसमें लुप्तप्राय ग्रन्थ तो बड़ी बात है, साधारण प्रचलित ग्रन्थ भी मिल सकें और न कोई ऐसे पुस्तकालयोंकी जरूरत समझता है. जिन लोगोंके हाथमें प्राचीन पुस्तकालय हैं, उनसे किसी पुस्तकके दर्शन करानेके लिये भी कहो, तो वे नहीं करावेंगे परन्तु उन्हींके पास कोई अंग्रेज आवेगा, तो चटसे विनाकुछ कहे इच्छित ग्रन्थ दे देंगे.

सारांश यह है कि, इस परस्थितिके कारण हम सब कुछ करनेके लिये समर्थ होनेपर भी कुछ नहीं कर सकते हैं, और जिस प्रकार सुईसे लेकर बड़ीसे बड़ी चीजके लिये विदेशियोंका मुंह ताकते हैं, उसी प्रकारसे इस विषयमें भी उन्हीके आश्रित होते जाते हैं. यदि कुछ दिन और यही दशा रही, तो आगे हमारे धर्मकी व्यवस्था भी पादरी लोग देवेंगे और हम उसे शिरोधार्य करने लगेंगे.

यूरोपीय विद्वान जैनसाहित्यके विषयमें जो कुछ प्रयत्न कर रहे हैं, उसके लिये हम उनकी निंदा नहीं करते हैं, वह उनके विद्याप्रेमका उत्कृष्ट आदर्श है. उसके लिये उनकी जितनी प्रशंसा की जावे, उतनी थोड़ी है. परन्तु साथही इसमें सिवाय इसके कि "हमारे धर्मकी चरचा विदेशी लोग करते हैं" हमारे लिये कोई खुशीकी बात नहीं है. बल्कि यदि हम समझदार हैं, तो हमारे लिये लज्जाका विषय है कि, हमारा जो परमकर्तव्य है, उसे भूलकर हम दूसरोंसे कराते हैं।

अलमतिविस्तरेण—

श्रुतपंचमी पर्वके प्रति।

(१)

हे श्रुतपंचमिपर्व तुझे सिर, वारंवार नवाता हूं।
कलिमलहर तेरे सम अधुना, नहीं किसीको पाता हूं।
धर्मवृक्षकी डालीं पते, पोवैं अन्य पर्व सारे।
किन्तु मूलका सिंचन तूही, करनेवाला है प्यारे॥

(२)

पडे सिसकते हुए धर्मको, तूही हाथ लगावेगा।
कर सचेत उसके तनमें फिर, नवबलपौरुष लावेगा।
बडे बडे भी पंडित जिसको, नहीं जानते कैसा है।
उसको ही प्रतिमुख प्रतिगृहमें, कर देगा तू ऐसा है॥

(३)

स्यादवादकी धुजा आज जो, नहीं कहीं दिखलाती है।
पडी हुई तहखानोंमें, सड़ रही धूप नहिं पाती है॥
वही धुजा तेरे प्रसादसे, जगह जगह फहरावेगी।
एकान्तिक लोगोंके चितपर, भयकी छाया डालेगी॥

(४)

केवल ढाइ हजार वर्षसे, निकला है यह नकली धर्म।
नास्तिक बौद्धोंका रूपान्तर, इसमें कोई नहीं सुकर्म॥
जो सुधर्म ऐसा कहलाता, वह तेरे प्रतापसे मित्र।
आस्तिक और अनादिकालका, कहलावेगा परमपवित्र।

(५)

जब इस जैनजातिपर तेरी, दया मया हो जावेगी।
तब घर घर जिनवाणीकी, प्यारी लीला दिखलावेगी।
बालक वृद्ध युवक नारी नर, वाणीमय हो जावेंगे।
गावेंगे गुण वाणीका, वाणीको ही सिर नावेंगे॥

(६)

वाणीका मुखकमल ओजमय, उसी समय प्रफुलित होगा।
जीर्ण शीर्ण दुर्बल शरीर सब, यथापूर्व सुललित होगा।
मनोहारि नव वसनोंसे, वेष्टित होकर शोभित होगा।
नयी नयी रचनाके गहने, धारण कर दुगुणित होगा॥

(७)

तब चूहोंका लीलागृह, तज देगी माता जिनवाणी।
स्वास्थ्ययुक्त ऊंची जगहोंमे, वास करेगी महाराणी ॥
दीमक दुखी सदाको होगी, कीट वियोगी होवेंगे।
विद्याजीवी प्रमुदित होकर, भ्रमतम अपना खोवेंगे ॥

(८)

इससे प्यारे पर्व हमारे! विनतीपर चित दे करके।
नगर नगर औ ग्राम ग्राममें, जाना मित्र कृपा करके।
सब लोगोंको दे सुबुद्धि, वाणीका भक्त बना देना।
तुझे पुण्य होगा अति भारी, धन्यवाद भी ले लेना।

जिनवाणीका सेवक—
नाथूराम प्रेमी।

शास्त्रीयचर्चा।

२

द्विदलविचार।

जैनधर्ममें जो अनेक प्रकारके अभक्ष्य पदार्थ बतलाये हैं, उनमें एक द्विदल-पदार्थ भी है. परन्तु जैनियोंमें जिसप्रकार द्विदलके छोड़नेवाले बहुत हैं, उसी-प्रकारसे उसको यथार्थरूपसे न जाननेवाले भी बहुत हैं. इस विषयमें जुदे २ लोगोंके जुदे २ विचार देखे जाते हैं. हम चाहते हैं कि, शास्त्रोंके आधारसे उन सबका निर्णय हो जावे, और कोई एक बात निश्चय हो जावै. यह लेख हम इसी अभिप्रायसे लिखते हैं. आशा है कि, पाठकगण इस विषयमें शांततासे विचार करेंगे, और यदि कोई बात विरुद्ध दीख पड़ैगी तो उसका सप्रमाण निराकरण करेंगे.

श्रीसागारधर्मामृतके भोगोपभोग प्रकरणमें इस विषयका एक श्लोक है. हम उसे यहांपर टीकासहित उद्धृत करते हैं;—

आमगोरससम्पृक्तं द्विदलं प्रायशोऽनवम्।
वर्षास्वदलितं चात्र पत्रशाकं च नाहरेत्॥

टीका—नाहरेत् न भक्षयेत् दयापरः किं तत् द्विदलं मुद्गमाषादि धान्यं किं विशिष्टं आमगोरससम्पृक्तं आमेन अनग्निपक्वेन गोरसेन क्षीरेण दध्ना अक्वथित-

क्षीरोद्भवदधिसंभूतेन तक्रेण च संपृक्त मिलितं तद्धि बहुजन्त्वाश्रितमागमे श्रूयते । तथा नाहरेत् किं तत् द्विदलं किं विशिष्टमनवं पुराणं कथं प्रायस प्रायोग्रहणात्पुराणस्यापि चिरकालकृष्णीभूतकुलत्थादेरदृष्टजन्तुसम्मूर्च्छनस्याप्रतिषेधः । तथा नाहरेत् किं तत् द्विदलं किं विशिष्टमदलितमकृतद्विधाभावं कदा वर्षासु प्रावृषि हि मुद्गादीनामन्तःप्ररोहस्यायुर्वेदप्रसिद्धत्वात् त्रससम्मूर्च्छनस्य च दृष्टत्वेन संभाव्य मानत्वादभोज्यत्वमेतेन विरूढानामपि तेषां निषेध उक्त स्यात् । (तथा नाहरेत् किं तत्पत्रशाकं पत्ररूपं हरितकं न तु फलादिरूपं । तत्र तद्बहुजन्तुभूयिष्टत्वात् कदा अत्र वर्षासु तदा त्रसस्थावरसंसक्तबहुत्वात्पत्रशाकस्याल्पफलत्वाच्च)

इसका **अभिप्राय** यह है कि, जो लोग दयाधर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं, उन्हें कच्चे गोरससे मिले हुए द्विदल अन्नको नहीं खाना चाहिये. मूंग उड़द आदि धान्योंको द्विदलान्न अर्थात् दो दालवाले अन्न कहते हैं. और अग्निके विना पकाये हुए दूधको, दहीको तथा विना औटाये हुए दूधको जमाये हुए दहीसे जो बनाई जावे उस छांछको, कच्चा गोरस कहते है .ऐसे कच्चे गोरससे मिले हुए द्विदल अन्नको नहीं खाना चाहिये. क्योंकि आगमसे सुनते हैं कि, ऐसे मिश्रणमें अनेक सूक्ष्म जीव उत्पन्न हो जाते हैं. इसी प्रकारसे प्रायः पुराने द्विदलोंको नहीं खाना चाहिये. अर्थात् चना मूंग उडद आदि दो दालवाले अन्न यदि पुराने रक्खे हुए हों, तो उन्हें भी नहीं खाना चाहिये. क्योंकि उनमें बहुत करके जीव हो जाते हैं । प्रायः कहनेसे सूचित होता है कि, कुलथी आदि द्विदल बहुत समयके रक्खे हुए हों और काले भी पड़ गये हों परन्तु यदि उनमें सम्मूर्च्छन जीव नहीं दिखलाई देते हों–नहीं हों, तो उन्हें खानेमें दोष नहीं है. वर्षाऋतुमें ऐसे द्विदलान्नोंके खानेका भी निषेध है, जिनकी दाल न बनाई गई हो. क्योंकि यह बात आयुर्वेदसे सिद्ध है कि, मूंग आदि धान्योंमें भीतरी अंकुर रहते हैं. तथा प्रत्यक्षमें भी उनमें त्रस और सम्मूर्च्छन जीवोंकी उत्पत्ति देखी जाती है. ऐसा कहनेसे यह भी प्रगट होता है कि मूंगादि द्विदलोंमें (विना दलेमें) अंकुर न निकले हों, तो भी उन्हें नहीं खाना चाहिये. (वर्षाऋतुमें पत्तोंवाला शाक नहीं खाना चाहिये. क्योंकि उसमें भी बहुतसे जीव होते हैं. पत्तोंवाला कहनेसे फलरूप शाक खानेमें दोष नहीं है, ऐसा सिद्ध होता है. पत्तेवाले शाक अर्थात् मैथी आदिकी भाजीपर त्रस और स्थावर जीवोंका बहुत सम्बन्ध रहता है तथा ऐसे शाकोंमें हिंसा बहुत होती है, और फल थोड़ा होता है, इसलिये इन्हें अभक्ष्य कहा है.)

उपर्युक्त टीकासे द्विदलके सम्बन्धमें जितनी शंकायें होती हैं, प्रायः उन सबका समाधान हो जाता है. बहुतसे लोगोंका ऐसा ख्याल है कि, बादाम, चिरौंजी (चारोली), पिस्ता, तथा ककड़ी, करेला, खरबूजा, तोरई आदिके बीजोंका भी गोरसके साथ मिश्रण होनेसे विदलका दोष होता है. परंतु यह केवल लोगोंकी अत्युक्ति है. टीकाकारने द्विदलके साथमें धान्य शब्द देकर स्पष्ट कर दिया है कि, दो दलवाले धान्यहीसे द्विदलका दोष होता है. अन्य बदाम, पिस्ता आदि फलोंके मेलसे नहीं. इसी प्रकारसे बहुतसे महाशय केवल छांछ और दहीसे ही द्विदल मानते हैं. परन्तु उक्त प्रमाणसे दूधके साथ मिलानेसे भी द्विदलका दोष प्रगट होता है. द्विदलके विषयमें बड़ी भारी बेसमझी यह हो रही है कि, कच्चे गोरसके समान पक्के गोरसमें भी मिला हुआ द्विदलान्न अभक्ष्य समझा जाने लगा है. परन्तु पंडितप्रवर आशाधरजी इस विषयमें स्पष्ट कहते हैं कि, कच्चे गोरसमें मिला हुआ ही द्विदल अभक्ष्य है. छांछके लिये जो पृथक् विशेषण दिया है, उससे यह अभिप्राय है कि, कच्चे छांछमें बेसन मिलाकर कढ़ी बनानेमें कुछ दोष नहीं है, यदि वह छांछ पक्के दूधके जमाये हुए दहीका हो, और मर्यादाके भीतर का हो तो. छांछकी मर्यादा चार प्रहरकी कही है.

वर्षाऋतुमें विना दला हुआ द्विदल अन्न और पुराना द्विदल अन्न भी खानेके योग्य नहीं हैं. द्विदलका दोष बतानेवालोंको इन दो विशेष बातोंपर भी ध्यान देना चाहिये.

द्विदलके विषयमें क्रियाकोषके कर्त्ता पं० किशनसिंहजीका मत कुछ और ही है. उन्होंने द्विदलसे केवल अन्नका ग्रहण नहीं करके यावन्मात्र द्विदल पदार्थोंका ग्रहण किया है. इसके सिवाय उन्होंने और भी बहुतसी बातें पंडितप्रवर आशाधरजीके मतसे विरुद्ध लिखी हैं. पाठकोंके अवलोकन करनेके लिये हम क्रियाकोषका द्विदल प्रकरण यहां उद्धृत कर देते हैं:—

* * * * मूंग मटर अरहडिए धान ।
मोठ मसूर उडद अरु चणा । चौला कुलथ आदि गण घणा ॥
इतने नाजतणी व्है दालि । उपजै बेलथकी सानालि ॥
खरबूजा काकड़ी तोरई । टींडसी पेठो पलवल लई ॥
सैम करेला खीरातणा । बीजा विधि फल कीजै घणा ॥

तिनकी दाल थकी मिलवाय। दही छांछिसों विदल कहाय ॥
मुखमें देत लाल मिल जाय। उतरत गलै पंचेन्द्री थाय ॥
नाज बेलितैं उपजै जोय। सो अकाष्ट गनियो भव लोय ॥
छालतणा फल बीजह जान। तिनकी दाल होय सो मान ॥
छांछि दही मिलि विदल हवंत। यों निहचै भाष्यौ भगवंत ॥
चारौली पिसतारु बदाम। वोल्या बीज सांगरी नाम ॥
इत्यादिक तरु फलके माहिं। बीज दुफारा मींजी थाहिं ॥
छांछि दहीसों भेलिरु खाय। विदल दोष तामैं उपजाय ॥
गलें उतरतां मिलि है लाल। पंचेन्द्री उपजै ततकाल ॥
ऐसो दोष जानि भवि जीव। तजिए भोजन विदल सदीव ॥

पंडित किशुनसिंहजीने यह प्रकरण किस ग्रन्थके आधारसे लिखा है, हम नहीं कह सकते हैं. और न अन्य किसी ग्रन्थमें हमने विद्लके विषयमें ऐसा विधान देखा है. ऐसी अवस्थामें जब तक कि कोई सज्जन कोई आर्षग्रन्थका प्रमाण उपस्थित न करैं, तबतक हम सरस्वतीपुत्र पंडित आशाधरजीके वचनोंको आमान्य नहीं ठहरा सकते हैं. पंडित आशाधरका जीवनचरित्र हम विद्वद्रत्नमाला नामक लेखमें बहुत शीघ्र प्रकाश करनेवाले हैं. उस समय पाठक समझेंगे कि, वे कैसे असाधारण विद्वान थे. उन्होंने सागरधर्मामृत विक्रम संवत् १२८५ में बनाया है. जब कि तेरह और बीसके झगड़ेका सूत्रपात भी नहीं हुआ था. श्रावकाचारका ऐसा विस्तृत ग्रन्थ आजतक शायद ही कोई दूसरा बना होगा. इतनेपर भी यदि कोई महाशय उनके वचनोंको न माने. और पंडित किशुनसिंहजीकी चौपाइयोंको आर्षवाक्य समझैं, तो उनका इच्छा. हम उनसे विवाद नहीं करना चाहते हैं.

हम पहले कह चुके हैं कि, यह लेख हमने निर्णय बुद्धिसे लिखा है. कोई महाशय ऐसा न समझ लें कि, शिथिलाचारके पोषणके लिये अथवा किसी पक्षकी पुष्टिके लिये लिखा है. हम यह भी नहीं चाहते कि, कोई भाई हमारे इसी विचारके अनुसार चलने लगें. नहीं, जिसने जो अच्छा समझा है, उसे उसीके अनुसार चलना चाहिये. हम तो आचार्योंके आशयोंको जिस रूपमें हमने समझा है, उसी रूपमें प्रगट करते हैं. जो लोग कच्चे और पक्के दोनों प्रकारके गोरसके साथ द्विदल नहीं खाते हैं, वे कुछ बुरा नहीं करते हैं, अच्छा ही करते हैं. क्योंकि

जितना २ अधिक त्याग है, उतना २ विशेष फलदायक है. परन्तु उस त्यागको उन्हें "भोगोपभोगकी वस्तुओंका जितना त्याग हो, उतना ही अच्छा है" इस ख्यालसे करना चाहिये. इस ख्यालसे नहीं कि पक्के गोरसमें मिला हुआ भी द्विदल अभक्ष्य है. क्योंकि इस ख्यालसे उनकी अतत्त्वश्रद्धा समझी जावेगी. जो पदार्थ जैसा है, उसे उससे विपरीत समझना अतत्त्वश्रद्धान है.

आशा है कि, हमारे इस लेखपर पाठकगण निष्पक्ष होकर विचार करेंगे, और यदि कुछ विपरीत होगा, तो शांतितासे सूचित करेंगे. कटाक्षोंका उत्तर देनेकी हममें सामर्थ्य नहीं है. अलमतिविस्तरेण.

समालोचना ।

श्रीकुलभूषणदेशभूषणचरितसुधा—यह एक मराठी भाषाका काव्य है. अनुमान ३०० आर्या छन्दोंमें कुलभूषण देशभूषण मुनिका चरित इसमें गुम्फित किया गया है. मराठी भाषाके कवित्वकी सच्ची समालोचना हम नहीं कर सकते हैं क्योंकि मराठी हमारी मातृभाषा नहीं है. तो भी हमको इसके पढ़नेसे आनन्द प्राप्त हुआ. कवितामें प्रसाद गुण है. अनुप्रास तथा यमककी भी त्रुटि नहीं है. अन्वय सरल है. संस्कृत शब्दोंका प्रयोग अधिकतासे है. इसके रचयिता मिरजगांव (नगर) के रा. रा. दत्तात्रय भिमाजी रणदिवे हैं. आपका कवितापर बड़ा प्रेम है. आजकल मराठीके प्रायः सभी जैनपत्रोंमें आपकी मनोहर कविता प्रकाशित हुआ करती हैं. हम आपके उत्साहकी प्रशंसा करते हैं. पुस्तककी न्योछावर चार आने हैं ग्रन्थकर्ताके पास ही पुस्तक मिल सकेगी.

गुप्तरहस्य— एक बंगला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है. एक स्त्रीके खूनका पता डिटेक्टिव (जासूस) ने किस खूबीसे लगाया है, उसीका वर्णन इस छोटीसी कहानीमें है. पढ़नेसे थोडी देरके लिये मन बहल जाता है. भाषामें अनेक जगह बंगालीपन झलकता है. एक जगह लिखा है, " पुरानी शतरंजी जो लाखों मन धूलसे भरी हुई थी, उसीपर हमारी प्रतिष्ठा की. " बड़ी विलक्षण शतरंजी थी ! पुस्तकका मूल्य दो आना है. बाबू राधारमणगुप्त मछरहट्टा बनारसके पाससे यह पुस्तक मिल सकती है. आपही इसके अनुवादक और प्रकाशक हैं.

जैनप्रकाशक—यह मासिकपत्र जैनयंगमन्‌सेएसोसियशन और शिक्षाप्रचारकसमितिकी आज्ञानुसार देवबंद सहारणपुरसे प्रकाशित होने लगा है इसके सम्पादक जैनगजटके भूतपूर्वसम्पादक बाबू सूरजभानुजी वकील हैं. वार्षिक मूल्य १।) है. रायल अठपेजीके ३२ पृष्ठ निकलते हैं. अभी तक तीन अंक प्रकाशित हुए हैं. उन्हें देखकर पत्र होनहार मालूम होता है. सरल भाषामें अच्छे उपदेशकजनक लेख लिखते हैं. धर्मात्माओंका ग्राहक बनकर सहायता करना चाहिये. इसकी विशेष समालोचना हम आगेके दो चार अंक देख कर करेंगे.

संशयतिमिरप्रदीप (निर्णयचन्द्रिका) पं० उदयलाल काशलीवाललिखित और श्रीगेंदालाल जैन बड़नगर मालवा) द्वारा प्रकाशित. मूल्य ॥।) यह पुस्तक दूसरी बार छपी है. पहली बारकी अपेक्षा अबकी बार संशोधित और परिवर्द्धित होकर तिगुनी हो गई है. अनेक नवीन विषय भी बढ़ाये गये हैं. महर्षियोंका उद्देश्य पंचाभृताभिषेक, गन्धलेपन, पुष्पपूजन, नैवेद्यपूजन, दीपपूजन, फलपूजन, पुष्पकल्पना, कलशकारिणीचतुर्दशी, सम्मुखपूजन, बैठीपूजन, श्राद्धनिर्णय, आचमनतर्पन, गोमयशुद्धि दान, सिद्धान्ताध्ययन, मुंडन, रात्रिपूजन शासन देवता, ये २० विषय लिखे गये हैं, और उनका प्राचीन शास्त्रोंके प्रमाण देकर निर्णय किया है. अवकाश मिलनेपर हम इसकी विशेष समालोचना करेंगे. अभी तो इतना ही कहेंगे कि, इन विषयोंका निर्णय चाहनेवाले पुरुषोंको इसे एक बार अवश्य पढ़ना चाहिये. अच्छा होता, यदि इस आवृत्तिमें पुस्तकका नाम कुछ दूसरा ही रक्खा जाता. क्योंकि यह पुस्तक पहलीसे निराली ही हो गई है. मूल्य कुछ कम होता, तो अच्छा होता. इसका सिद्धान्ताध्ययनसम्बधी लेख कुछ विचारणीय है. हमारी समझमें सिद्धान्तका अर्थ सूत्ररूप परमागम होना चाहिये. गोमठ्सारादि ग्रन्थोंकी गणना सिद्धान्त ग्रन्थोंमें नहीं है. इस विषयकी एक दन्तकथा भी प्रसिद्ध है. वह इस प्रकार है कि, एक दिन श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती महाधवलसूत्र पढ़ रहे थे, उसीसमय श्रीचामुंडराय मंत्री वहांपर आ पहुंचे. सो उन्हें देखते ही आचार्य महाराजने परमागमको ढंकके रख दिया. यह देखकर मंत्री महाशयने कहा, महाराज ! ग्रन्थ क्यों बन्द कर दिया ? मै तो इसीके सुननेकी लालसासे आया हूं. सैद्धातिकदेवने उत्तर दिया, इसके

पढने सुननेका तुम्हें अधिकार नहीं है. हां! यदि तुम इसका अभिप्राय जानना चाहो, तो तुम्हें बतला दूंगा. इसके पीछे आचार्य महाराजने चामुंडरायके पढनेके लिये गोमठसारग्रन्थका निर्माण किया था. इससे सिद्ध है कि, गोमठसारादि ग्रंथोंके पढनेका श्रावकोंको निषेध नहीं है. पंडितप्रवर आशाधरने भी सिद्धांतका अर्थ "**सिद्धान्तस्य परमागमस्य सूत्ररूपस्य**" ऐसा किया है.

शुद्ध शक्कर—बेडकीहाल जिला बेलगांवमें कोई ५० हजार रुपयेकी पूंजीसे एक शक्करका कारखाना खुला है, इसके मालिक दो जैनी महाशय हैं. गन्नेके रससे शक्कर बनाई जाती है. कारखाना एंजिनसे चलता है. शुद्ध पदार्थोंसे शक्कर साफ की जाती है. ऐसा उसके मालिक कहते हैं. हमारे पास शक्करका थोडासा नमूना आया था. उसे हमने बहुत पसंद किया. बहुतही अच्छी शक्कर है. खानेमें गन्ने जैसाही स्वाद आता है. जिन भाइयोंको जरूरत हो इस ठिकानेसे नमूना मंगा सकते हैं. "शेठ ताराचन्दजी बेडकीहाल-(बेलगांव)."

ज्ञानसूर्योदय नाटक।

इस अंकके साथ ज्ञानसूर्योदय नाटकके ३२ पृष्ठ हम इसलिये रवाना करते हैं कि, पाठकगण उन्हें पढकर यह जान सकें कि, यह नाटक किस ढंगसे बना है, और कैसा है. हमको स्वयं इस की प्रशंसा करनेकी आवश्यकता नहीं है. जिन भाइयोंको इसको पूरा पढनेका शोक हो, उन्हें एक पत्र लिखकर हमारे यहांसे वेल्यूपेबिल द्वारा मंगा लेना चाहिये. इसकी न्योछावर सिर्फ आठ आना रक्खी गई है. प्रतियां बहुत थोड़ी छपाई हैं, इसलिये शीघ्रता करनी चाहिये. यह ग्रन्थ हमारे यहां पूरा बंधा हुआ मिलेगा. कोई भाई इन ३२ पृष्ठोंको छोडकर शेषका न मंगावें. अधूरा नहीं भेजा जाता है.

मुफ्तमें

उन लोगोंको ज्ञानसूर्योदय मुफ्तमें भी भेज दिया जावेगा, जो जैनहितैषीके इस वर्षके तीन नवीन ग्राहक बनाकर अपने नामसे वेल्यूपेबिल मंगावेंगे. ये ग्राहक वे ही महाशय बनवा सकेंगे, जो पहलेहीसे ग्राहक हैं. जो ग्राहक नहीं हैं, उन्हें आपके सहित चार ग्राहक बनाना चाहिये. नवीन ग्राहकोंको उपहारका

अपूर्व ग्रन्थ प्रवचनसार भी भेज दिया जावेगा. परन्तु जैनहितैषीके इस वर्षके पिछले ३ अंक जो हमारे पास नहीं है, नहीं भेजे जावेंगे. ग्राहकोंका मूल्य इसी वर्षके अन्तमें १२ अंक पूरे हो चुकनेपर खतम हो जावेगा.

सुखसाधन।

जैनहितैषीके गत २ रे तीसरे अंकमें जो सुखसाधन नामकी पुस्तक प्रकाशित करना शुरू की थी, वह अब आगे नहीं छापी जावेगी. क्योंकि कलकत्तेके भारतमित्र प्रेसमें वह पूरीकी पूरी छपकर प्रकाशित हो चुकी है. हमको यह बात पहले मालूम न थी, यदि होती तो कभी न छपाते. पाठक इसके लिये हमको क्षमा करें. यह एक बंगला पुस्तकका अनुवाद था. इसकी थोडीसी प्रतियां हमने विक्रीके लिये मंगानेका प्रबंध किया है. आनेपर सूचना दी जावेगी. मूल्य ॥|) है.

क्षमा प्रार्थना।

इस साल जैनहितैषीका शुरूसे ही कुछ ऐसा सिलसिला विगडा है कि, कोई भी अंक समयपर नहीं निकल सके, और दूसरा तीसरा तथा ये तीन अंक एक साथ निकालना पड़े. इसके लिये हमारे बहुतसे ग्राहक अप्रसन्न हो गये हैं, और हमको भी खेद हुआ है. परन्तु क्या किया जावे, हमको विवश होकर ऐसा करना पड़ा है. विघ्न और बाधाओंके आगे किसीका भी जोर नहीं चलता है. ऐसा समझकर पाठकोंको हमपर क्षमा करना चाहिये. आगेके अंक यदि कोई बाधायें उपस्थित न हुई, तो हम बराबर समयपर निकालनेका प्रबन्ध करेंगे. तौ भी यदि किसी अंकके निकालनेमें विलम्ब हो, तो पाठकोंको व्याकुल नहीं होना चाहिये और बारंबार चिट्ठियां लिखनेका परिश्रम नहीं उठना चाहिये. जिस समय अंक निकलता है, उस समय सबके पास भेजा जाता है. दूसरोंके पास पहुँच जानेपर भी यदि किसीके पास न जावे, तो अवश्य ही सूचना देनी चाहिये.

जो लोग समयपर न निकलनेके कारण हितैषीसे नाराज हैं, उनसे हमारी यह प्रार्थना है कि, जैनहितैषीमें जो लेख निकलते हैं, वे प्रायः संग्रह करनेयोग्य हमेशाके पढ़ने योग्य होते हैं. समाचारपत्रों सरीखे पुराने होनेपर फेंक देने लायक नहीं होते हैं. इसलिये यदि वह विलम्बसे भी निकलै. तो भी ग्राहकोंकी

कुछ हानि नहीं है. साल भरके १२ अंक पूरे निकलनेपर ही उनका मूल्य अदा होगा. पहले नहीं. जिस समय हितैषीकी आर्थिक अवस्था अच्छी हो जावेगी और उसके पूरे साधन हो जावेंगे, उस समय ऐसी शिकायतें नहीं रहेंगी. अभी इसकी ग्राहकसंख्या इतनी थोड़ी है कि, उससे हमको बहुत बडा घाटा उठाना पडता है. जो महाशय इसको समयपर पाकर प्रसन्न होना चाहते हैं, उन्हें कृपा करके इसके ग्राहक बढानेकी कोशिश करनी चाहिये. अलम्

मैनजर.

नये छपते हुए ग्रन्थ।

१. **पार्श्वाभ्युदय काव्य**—श्रीजिनसेनाचार्यकृत. केवलप्रस्तावना छपना बाकी है.

२. **भगवतीआराधनासार**—महानग्रंथ वचनिका सहित. १५ दिनमें तयार हो जावेगा. न्योछा० ४)

३. **प्रद्युम्नचरित्र** भाषावचनिका—असाढके अंततक तयार हो जावेगा. न्योछावर ३) होगी.

४. **त्रिवर्णाचार** सोमसेनकृत—मराठी टीकासहित छपना शुरू हुआ है.

५. **पदसंग्रह** तीसरा चौथा और पांचवां भाग छप रहे हैं. तीसरा भाग ज्येष्ठके अन्तमें और बाकी असाढके अन्तमें तयार होंगे.

६. **ज्ञानसूर्योदयनाटक** नई तर्जका— १५ दिनमें तयार हो जावेगा.

जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालयमें मिलनेवाले शुद्ध छपे हुए जैनग्रंथ.

*ऐसे फूलके चिन्हवाली ५ पुस्तकें लेनेपर १ विनान्योछावरके दी जायगी.

*__धर्मपरीक्षा वचनिका__—मनोवेग पवनवेगकी मनोहर कथा ... १)
*__पार्श्वपुराण चौपईबंध__—बंबईका छपा खुले पत्रोंमें ... ... १।)
__बनारसीविलास__ और बनारसीदासजीका मनोहर जीवनचरित्र ... १॥)
*__भूधरजैनशतक__—उपदेशमय सवैय्या कवित्त ... ... ≈)॥
*__नित्यनियमपूजा संस्कृत और भाषा__—फिरसे छपी ... ... ।)

*भाषापूजासंग्रह—दूसरी बार छपा ... ... १)
चतुर्विंशतिपूजा—कविवर वृंदावनजीकृत (शुद्धपाठ) ... ...१)
*दशलक्षणपूजा—और प्राकृतकी दशजयमाला अर्थसहित ... ।)
*भक्तामर भाषा और मूल—दोनों एकसाथ ... ... ‐)
*भक्तामरस्तोत्र—अन्वय, अर्थ, भावार्थ और हिंदी कवितासहित ... ।)
* वृंदावनविलास—वृंदावनजीकी समस्त कविताका संग्रह ... ॥)
*जैनपदसंग्रह प्रथम भाग—पं० दौलतरामजीकृत बडे अक्षर ... ।=)
* जैनपदसंग्रह दूसरा भाग—पं० भागचंदजीके समस्त पद " ...।=)
* जैनपदसंग्रह तीसरा भाग—पं० भूधरदासजीके समस्त पद छपते हैं
* जैनपदसंग्रह चौथा भाग—पं० द्यानतरायजीके समस्त पद छपते हैं०
* जैनपदसंग्रह पंचम भाग—पं० बुधजनकृत (छप रहा है)
* जैनबालबोधक प्रथम भाग—पन्नालालकृत ।) और पूर्वार्ध ... ‐)॥
* जैनबालबोधक द्वितीय भाग— " ... ...॥)
* रत्नकरंडश्रावकाचार सान्वयार्थ—" ... ... ।)
* द्रव्यसंग्रह—अन्वय अर्थ भावार्थसहित ... ... ।=)
* मोक्षशास्त्र—(तत्त्वार्थसूत्र) मूल शुद्ध पाठ ... ... =)
* मोक्षशास्त्र—बालबोधिनी भाषाटीकासहित दूसरी बार छपा ... ॥।)
* मनोरमा उपन्यास—बाबू जैनेन्द्रकिशोरजीकृत ... ... ॥)
ज्ञानसूर्योदयनाटक—खेलने योग्य नई तर्जका ... ... ॥)
* निर्वाणकांड दोनों तथा महावीरस्वामीकी पूजा ... ...)॥।
* पंचमंगल शुद्धपाठ—रूपचंदकृत जिल्दबँधा ... ... ‐)
* आलोचनापाठ भाषा—शुद्धपाठ ... ...)॥
* सामायिकपाठ भाषा—पं० महाचंद्रजीकृत ... ...)॥
* कल्याणमंदिरभाषा – तथा एकीभावस्तोत्र भाषा... ...)॥।
* श्रुतावतार कथा—श्रुतस्कंधविधानादिसहित ... ... ≡)
* आरतीसंग्रह—जिसमें ११ आरती हैं ... ...)॥।
* अर्हत्पासाकेवली—कविवर बाबू वृंदावनजीकृत ... ... =)
* शीलकथा—बंबईकी छपी ... ... ।‐)
* दर्शनकथा—" ... ... ।‐)
* छहढाला—दौलतरामजीकृत बडे अक्षरोंमें छपा. ... ... ‐)

* **छहढाला**—बुधजनकृत बडे अक्षरोंमें छपा. ... ... -)
* **छहढाला** बावन अक्षरी ... ... -)
* **दर्शनपाठ**—दौलतराम बुधजनकृत दर्शनसहित ... ... -)
* **जैनबालगुटका** अर्थात् इष्टछत्तीसी अर्थसहित ... ...)॥
* **मृत्युमहोत्सव**—सदासुखजीकृत वचनिका सहित ... ... -)॥
* **शिखरमाहात्म्य भाषा** वचनिका ... ... -)॥
* **अकलंकस्तोत्र**—श्रीअकलंकदेवके जीवनचरित और भाषाकवितासहित ≡)
* **रत्नकरंडश्रावकाचार**—बडा पं० सदासुखजीकृत वचनिका ... ५)
* **प्रवचनसारपरमागम**—कवित्तबंध वृंदावनजीकृत ... ... १।)
* **दिया तले अंधेरा**—एक मनोहर कहानी ... ... =)
* **सदाचारीबालक**—एक बालककी दुख भरी कहानी ... ... =)

ज्ञानार्णवजी—भाषाटीकासहित ... ... ४)
पंचास्तिकाय—मूलगाथा संस्कृत छाया टीका तथा भाषाटीकासहित १॥)
जैनसिद्धांतदर्पण—भाषा वचनिका पं० गोपालदासजीकृत ... १)
सुशीला उपन्यास दोनों भाग—देखने लायक उपन्यास ... ... १।)
बृहद्द्रव्यसंग्रह संस्कृत टीका तथा भाषाटीकासहित ... ... २)
सप्तभंगीतरंगिणी भाषाटीका सहित (न्यायका ग्रंथ) ... ... १)
सुखानन्द मनोरमा नाटक (थिएटरमें खेलनेयोग्य) ... ... १)
परमात्मप्रकाश—भाषाटीकासहित अध्यात्मग्रन्थ ... ... ।=)
पुरुषार्थसिद्ध्युपाय छोटी भाषाटीका ... ... ।)
बारहभावना—बाबू जैनेन्द्रकिशोरजी कृत ... ... ।)
स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा—भाषाटीकासहित ... ... १।)
आत्मख्याति समयसार भाषावचनिका जयचन्द्रकृत ... ... ४)

* **हिंदीकी पहिली पुस्तक** पन्नालालबाकलीवालकृत ... =)॥
* **हिंदीकी दूसरी पुस्तक**— ,, ... ।)
* **हिंदीकी तीसरी पुस्तक** ,, ... ।=)
* **नारीधर्मप्रकाश** (स्त्रियोंके पढने लायक) ,, ... ≡)
* **कातंत्रपंचसंधि**—भाषाटीकासहीत ,, ... =)

अंजनासुंदरी नाटक—कन्हैयालाल श्रीमालकृत ... ... ॥)
मनमोहिनी उपन्यास बाबू सूरजभानजी कृत बहुत शिक्षादायक ।)

नमः सिद्धेभ्यः

श्रीवादिचन्द्रसूरिविरचित

ज्ञानसूर्योदय नाटक।

(भाषानुवाद)

[**स्थान**—रंगभूमि। नांदी मंगलपाठ पढ़ता हुआ आता है।]

भाषाकारका मंगलाचरण।

रोला।

ज्ञानसूर्यको उदय कियो अति सदय हृदय करि।
सौख्य शांतियुत किये जगतजन, मोहतिमिर हरि॥
मुक्त किये भवि-भ्रमर खोलि संपुट सरोज विधि।
नमो नमो जिनदेव देव देवनिके बहुविधि॥ १॥

मूलकर्त्ताका मंगलाचरण।

वीर–सवैया (३१ मात्रा)

पंचवरनमयमूर्ति मनोहर, विशद अनादि अनन्त अनूप।
महिमा महत जगतमें सुविदित, प्रनमों ओंकार चिद्रूप॥

---

१ मूलग्रन्थकर्ताका मंगलाचरण संस्कृतमें इसप्रकार है;—

अनाद्यनन्तरूपाय पञ्चवर्णात्ममूर्तये।
अनन्तमहिमाप्ताय सदौङ्कार नमोस्तु ते॥ १॥
तस्मादभिन्नरूपस्य वृषभस्य जिनेशितुः।
नत्वा तस्य पदाम्भोजं भूषिताखिलभूतलम्॥ २॥

तत्स्वरूप श्रीवृषभजिनेश्वर, तिनके चरनकमल सुखदाय।
सकल भूमितलके भूषनवर, नमो तिनहिं विधियुत सिर नाय॥
भूतलवासी भ्रान्त नरनिको, भूरि भूरि सुखदायनि सार।
भवभ्रमभंजनि श्रीजिनभाषा, भजों सदा भवनाशनहार॥
पुनि वंदों गुरुदेव चरनवर, भक्तिभारयुत वारंवार।
जिनके गुरुग्रन्थनिकी रचना, बुधजन-मन-विकसावनहार ३

(सूत्रधारका प्रवेश ।)

सूत्रधार—अधिक विस्तारकी आवश्यकता नहीं है। हमको **श्रीब्रह्मकमलसागर** और **ब्रह्मकीर्तिसागरने** आज्ञा दी है कि, " समस्त द्वादशांगरूप समुद्रके चन्द्रमा, **सरस्वतीगच्छके** शृंगार-हार, श्रीमूलसंघरूपी उदयाचलसे उदित हुए सूर्य, त्रिविद्याधरच-क्रवर्ती और अपने करकमलोंको चमकती हुई मयूरपिच्छिकासे शो-भित रखनेवाले, दिगम्बरशिरोमणि **श्रीप्रभाचन्द्रसूरिके** शिष्य और हमारे गुरु **श्रीवादिचन्द्रसूरिने** जो **ज्ञानसूर्योदय** नामका नाटक बनाया है, वह समस्त सभ्यजनोंके समक्ष खेला जावे" और इस समय कुतूहल देखनेके लिये सबका चित्त भी ललचा रहा है। इसलिये यदि आप लोगोंकी इच्छा हो, तो उक्त नाटक खेल-कर दिखलाया जावे।

सभासदगण—नटाचार्य! आपका खेल देखनेके लिये हम

भूपीठभ्रान्तभूतानां भूयिष्ठानन्ददायिनीम्।
भजे भवापहां भाषां भवभ्रमणभञ्जिनीम्॥ ३॥
येषां ग्रन्थस्य सन्दर्भः प्रोस्फुरीति विदो हृदि।
ववन्दे तान् गुरून् भूयो भक्तिभारनमच्छिराः॥ ४॥

---

1 तीन विद्या—व्याकरण, न्याय, और सिद्धान्त।

सब यों ही उत्कंठित हो रहे थे। इतनेपर आप स्वयं दिखानेके लिये उत्सुक हैं! फिर क्या चाहिये? कहा भी है;—

पीन करन जाको चहैं, करि अति दूर पयान।
घर आयो पीयूष सो, छांड़हिं क्यों बुधिवान॥ २॥

(सूत्रधार सभाको हर्षित देखकर नेपथ्यकी ओर देखता है और नटीको बुलाता है।)

सूत्र०—आओ! आओ! प्रिये! देखो, तो आज ये सभ्यगण कैसे हर्षित और उपशांतचित्त हो रहे हैं?

(नटीका प्रवेश)

नटी—लीजिये, मैं यह आ गई! कहिये क्या आज्ञा है? आपके वचन सुनकर तो मेरे हृदयमें एक आश्चर्य उत्पन्न हुआ है।

सूत्र०—कैसा आश्चर्य्य?

नटी—यही कि, ये सब सभ्यगण नानाप्रकारके बुरे व्यापारोंके भारसे लद रहे हैं, तथा इनका चित्त सदा अपने स्त्री पुत्रोंका मुख निरीक्षण करनेमें उलझा रहता है, फिर भलाँ, ये उपशान्त चित्त कैसे हो गये?

सूत्रधार—प्रिये! लोगोंका चित्त स्वभावसे तो प्रायः शान्त ही रहता है, परन्तु कर्मके कारणसे कभी भ्रान्तरूप हो जाता है। और कभी उपशान्त हो जाता है। तुमने क्या यह नहीं सुना है कि, "जिस **रामचन्द्रने** अपनी प्यारी स्त्री **सीताके** मोहसे व्याकुल होकर **रावणसे** युद्ध किया था, और उसे मारा था, वही

---

१ दूरं गत्वा हि ये लोकाः पीयूषं हि पिपासवः।
गृहागतं हि तत्केषां न भवेत् पेयतास्पदम्॥

रामचन्द्र पीछे स्वस्थ शान्त और परिपूर्णबुद्धि होकर वैरागी हो गया था।" पूर्वकालमें **जम्बूस्वामि, सुदर्शन, धन्यकुमार** आदि महाभाग्य भी पहले संसारका आरंभ करके अन्तमें शान्त होकर संसारसे विरक्त हो गये हैं। उसी प्रकारसे इस समय ये सभासदगण अपने पुण्यके उदयसे उपशान्तचित्त हो रहे हैं। अतएव इस विषयमें आश्चर्य और सन्देह करनेके लिये जगह नहीं है।

नटी—अस्तु नाम। अब यह बतलाइये कि, इन सभ्यजनोंका चित्त किस प्रकारकी भावनासे अथवा किस प्रकारके दृश्यसे रंजायमान होगा?

सूत्रधार—आर्ये! वैराग्य भावनासे अर्थात् विरागरसपूर्ण नाटकके कौतुकसे ही इन लोगोंका चित्त आह्लादित होगा। शृंगार हास्यादि रसोंका आचरण तो आज कल लोग स्वभावसे ही किया करते हैं। उनका दृश्य दिखलानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उनसे मनोरंजन भी नहीं होगा। क्योंकि जो भावना–जो दृश्य अदृष्टपूर्व होता है, अर्थात् जो लोगोंके लिये सर्वथा नवीन होता है, वही आश्चर्यकारी और हृदयहारी होता है। किसीने कहा भी है कि;—

अदृष्टपूर्वं लोकानां प्रायो हरति मानसम्।
दृश्यश्चन्द्रो द्वितीयायां न पुनः पूर्णिमोद्भवः॥

अर्थात्—जिस चीजको पहले कभी न देखी हो, लोगोंका मन प्रायः उसीसे हरण होता है–उसीके देखनेके लिये उत्सुक होता

है। देखो, दोयजके चन्द्रमाको सब कोई देखते हैं, परन्तु पूनोंके चन्द्रको कोई नहीं देखता है[1]।

सूत्रधार—(रंगमंडपमें) "इस चैतन्यस्वभाव और अनाद्यनंत आत्माके **सुमति** और **कुमति** नामकी दो मानिनी स्त्रियां हैं। इन दोनोंसे प्रेम करके—दोनोंमें आसक्त रहकर इसने दो कुल उत्पन्न किये हैं। पहला कुल जो सुमतिसे उत्पन्न हुआ है, उसमें **प्रबोध, विवेक, संतोष** और **शील** ये चार पुत्र हैं, और दूसरा कुल जो कुमति महाराणीके गर्भसे हुआ है, उसकी **मोह, काम, क्रोध, मान** और **लोभ** ये पांच सुपुत्र शोभा बढ़ाते हैं।"

नटी—हे आर्यपुत्र[2]! आत्मा यदि पहले सुमतिमें आसक्त था, तो फिर कुमतिमें कैसे रत हो गया?

सूत्रधार—प्रिये! बलवान कर्मके कारणसे सब कुछ हो सकता है। देखो, शास्त्रमें कहा है कि;—

लब्धात्मवृत्तोऽपि हि कर्मयोगाद्
भूयस्ततो भ्रश्यति जीव एषः।
लब्धाः स्वकीयप्रकृतेः समस्ता-
श्चन्द्रः कलाः किं न मुमोच लोके॥

अर्थात्—"यह जीव अनेकवार आत्माके स्वभावकी प्राप्ति कर-

---

१ शुक्लपक्षकी दोयजको जब चन्द्रमा निकलता है, तब १५ दिनके बाद निकलता है. अर्थात् उसके पहले अँधेरे पाखमें उसके दर्शन नहीं होते हैं। इसलिये अदृष्टपूर्व होनेके कारण उसे सब देखते हैं। परन्तु पूर्णिमाके चन्द्रमाको कोई नहीं देखता। क्योंकि उसके पहले १५ दिनसे वह हररोज दिखा करता है। रोज २ दिखनेसे उसमें प्रीति नहीं रहती है।

२ पूर्वकालकी स्त्रियां अपने पतिको 'आर्यपुत्र' कहकर सम्बोधन करती थीं।

के भी—आत्माके स्वरूपमें लवलीन होकर भी कर्मके योगसे भ्रष्ट हो जाता है । चन्द्रमा अपनी स्वाभाविक सोलह कलाओंको पाकर भी इस लोकको नहीं छोड़ता है, और फिर २ स्वरूपसे भ्रष्ट होकर एक दो तीन आदि क्रमसे उन कलाओंको पानेका प्रयत्न करता है।" इसी प्रकारसे सुमति सरीखी स्त्रीको पाकर भी आत्मा कुमतिसे प्रीति करनेको उद्यत हुआ होगा।

"आत्माने इस प्रकार दोनों कुलों सहित राज्य करते हुए बहुत काल व्यतीत कर दिया। अनन्तर कुमतिकी ठगाईमें फँसकर वह मोहको राज्य और कामको यौवराज्यपद देनेके लिये तैयार हुआ।"

नटी—आर्य! वह आत्मा प्रबोधादि पुत्रोंको राज्य क्यों नहीं देता है?

सूत्रधार—कुमतिके वशमें पड़कर पुरुष ऐसा ही करते हैं।

नटी—ओह! क्या स्त्रियोंके अविचारित वचन ज्ञानवान आत्मा भी मान लेता है?

सूत्र०—जी हां! आजकल सब लोग स्त्रियोंके कहे अनुसार ही काम करते हैं। (मुसकुराता है)

नटी—क्या पूर्वकालमें भी किसीने स्त्रीके कहे अनुसार काम किया है? मेरी समझमें तो किसीने नहीं किया होगा।

सूत्र०—नहीं! किया है, सुनो,—

रोला।

वचन मानि दसरथने, कैकयिके दुखदाई।
भक्तिवान अभिराम राम, रघुकुलदिनराई॥

---

१ ग्यारहवें गुणस्थानमें यथाख्यात चारित्रको पाकर भी जीव गिर पड़ता है।

दिये हाय! पहुँचाय, घोर भीषण वनमाहीं।
लघुसुत भरतहिं राज्य, दियो को जानत नाहीं॥

जिस प्रकार दशरथने कैकयीके कहनेसे राम जैसे पुत्रको वनमें भेज दिया, उसी प्रकार आजकल भी बहुतसे राजा स्त्रियोंके वचनोंमें लगकर बड़े २ कुकार्य करनेवाले हैं। वे स्त्रियोंके वचनोंको ही प्रायः ब्रह्मवाक्य समझते हैं।

नटी—हाय! धिक्कार है, ऐसे राजाओंको, नाथ! क्या प्रजाके लोग भी राजासे इस विषयमें कुछ निवेदन नहीं करते हैं?

सूत्र०—नहीं, प्रिये! लोग क्या कहें? वे भी तो राजाका अनुकरण करनेवाले होते हैं। लोकमें भी यह वाक्य प्रसिद्ध है कि, "**यथा राजा तथा प्रजा**" अर्थात् जैसा राजा होता है, वैसी ही प्रजा होती है। राजाके धर्मात्मा होनेपर प्रजा धर्मात्मा, राजाके पापी होनेपर प्रजा पापिनी, और राजाके सम होनेपर प्रजा सम होती है। सारांश यह है कि, सब राजाका अनुकरण करते हैं। अतएव किसीकी भी अनुमति न मानकर और प्रबोध शील संतोषादिकी अवज्ञा करके आत्मा मोहादिको ही राज्य देवेगा।

(बड़बड़ाता हुआ विवेक रंगभूमिकी ओर आता है।)

विवेक—पापी सूत्रधार! तूही अपनी इच्छासे लोगोंके सम्मुख मोहादिका राज्य स्थापित करता है। अरे! तुझे यह नहीं मालूम है कि, हम लोगोंके जीते जी ये मोह कामादि कौन हो सकते हैं?"

सूत्र०—(दूरसे आता हुआ देखकर) प्रिये! देखो, यह समस्त शास्त्रोंका पारगामी **विवेक** अपनी प्राणप्यारी **स्त्री मति**के कंधेपर करकमल रक्खे हुए और मेरे वचनोंको तृणके समान तुच्छ मानता

हुआ आ रहा है । जान पड़ता है, अपनी बातचीत सुनकर इसे कुछ कोप उत्पन्न हुआ है । ऐसी अवस्थामें अब यहांसे चल देनेमें ही भलाई है । आओ चलें— [दोनों जाते हैं]

(विवेक और मतिका प्रवेश)

विवेक—अरे नीच! तूने यह बिना विचारे क्या कह दिया था? भला, मेरे जीतेजी कुमति क्या कर सकती है? और बेचारा मोह किस खेतकी मूली है? सूर्यके प्रकाशमें अंधकार क्या कर सकता है?

इसके सिवाय,—

माधवी ।

सुगुरूनके सुन्दर शासनमें,
'रुचि' राचि रही सहचारिनि जैसे ।
अरु 'शांति' सलौनी 'जितेंद्रियता,'
उर 'जीवदया' सुखकारिनि तैसे ॥
वर तत्त्वप्रसूत 'प्रतीति' सखी,
'जिनभक्ति' सती 'शुभध्यान' हु ऐसे ।
सब साधन आज सुसाज रहे,
तब राज विमोहको होयगो कैसे ॥

मति—प्यारे! मैंने, एक बात सुनी है कि, राजा मोह अपने मंत्रीपदपर कलिकालको नियुक्त करना चाहता है । और कलिकाल महा पापी है । यदि यह समाचार सच हुआ तो अपना बड़ा भारी अकल्याण होगा ।

विवेक—सखि! नहीं, यह झूठी शंका न जाने तेरे चित्तमें

कहांसे समागई है । मेरे **संयम** मित्रके **यम**, **नियम**, **आसन**, **प्राणायाम**, **प्रत्याहार**, **ध्यान**, **धारणा**, **समाधि** आदि अनेक सहायक हैं । उनके आगे बेचारे कलिकालकी क्या चल सकती है? एक संयम मित्र ही ऐसा है कि, उसके होते हुए किसीके भी भयको स्थान नहीं मिलता है । और दूर क्यों जाती हो, मैं क्या कुछ कम हूं? मेरा भी पुरुषार्थ तो सुन ले;—

चौबोला ।

विमलशील नहिं जरा मलिन भी, होने दिया कभी सपने ।
रावणकेद्वारा सीताने, कीचकद्वारा द्रोपदिने ॥
ऐसे ही श्रीजयकुमारने, नमिनृप-पतिनीके छलसे ।
ब्रह्मचर्य अपना रक्खा सो, समझो सब मेरे बलसे ॥

मति—हे आर्यपुत्र! आपका कथन सत्य है । तथापि जिसके बहुतसे सहायक हों, उस शत्रुसे हमेशा शंकित ही रहना चाहिये ।

विवेक—अच्छा कहो, उसके कितने सहायक हैं? **कामको शील** मार गिरावेगा । **क्रोधके** लिये **क्षमा** बहुत है । **संतोषके** सम्मुख **लोभकी** दुर्गति होवेहीगी । और बेचारा **दंभ-कपट** तो **संतोषका** नाम सुनकर ही छूमंतर हो जावेगा ।

मति—परन्तु मुझे यह एक बड़ा भारी अचरज लगता है, कि, जब आप और मोहादिक एक ही पिताके सहोदर पुत्र हैं, तब इस प्रकार शत्रुता क्यों?

विवेक—प्रिये! सुनो;—

वसन्ततिलका ।

प्रायः प्रसिद्ध गुणवान तथा विवेकी ।
भूम्यर्थ ही बनत हैं रिपु छोड़ नेकी ॥

देखो उदाहरण भ्रान्ति नहीं रहै ज्यों ।
बाहूबली-भरत भ्रात लड़े कहो क्यों ? ॥

इसके सिवाय आत्मा कुमतिमें इतना आसक्त और रत हो रहा है कि, अपने हितको भूलकर वह मोहादि पुत्रोंको इष्ट समझ रहा है । जो कि पुत्राभास हैं, और नरकगतिमें ले जानेवाले हैं ।

मति—आर्यपुत्र! क्या पुत्र भी पिताको दुःख देते हैं?

विवेक—हां! अत्यन्त दुःख देते हैं । वे बेचारे इसका स्वप्नमें भी विचार नहीं करते हैं? कि पिताको दुःख देनेसे पाप होता है । कुलांगार–हठी **कंसने** मथुरा नगरीको सेनासे घेरकर अपनी माता और पिता **उग्रसेनको** कैद करके अतिशय दुःख दिया था, यह कौन नहीं जानता है ?

(नेपथ्यमें काम कहता है—)

काम—अरे पापी विवेक! क्यों हम लोग तो सब स्वामीको दुःख देनेवाले हैं, और तुम सुख देनेवाले हो! वाह! अपना तो मुँह ठहरा! अरे दुष्टमति! तू यह नहीं जानता है कि, मेरे रहते ही मनुष्योंको सुख हो सकता है, अन्यथा नहीं । जो लोग हमसे उत्पन्न हुए सुखोंको छोड़कर–सुखकी लालसासे अन्यत्र भटकते हैं, वे जलसे भरे हुए सरोवरको छोड़कर मृगतृष्णाके वश मरुस्थलोंमें भटकते फिरते हैं ।

विवेक—प्रिये! यह काम मोहके बलको पाकर बलवान वीर बन रहा है । किन्तु जबसे **श्रीनेमिनाथ** भगवानने ताड़ना की है, तबसे बेचारा यत्र तत्र भ्रमण ही किया करता है । मैं तो इसका मुंह देखना भी अमंगलीक समझता हूं । इसलिये अब यहां ठहरना ठीक नहीं है । [दोनों जाते हैं]

(काम और रतिका प्रवेश।)

काम—ओह! विवेक बड़ा निरंकुश हो गया है। यह मेरा माहात्म्य नहीं जानता है, इसीलिये न जाने क्या बककर चला गया।

रति—प्रभो! आपका क्या माहात्म्य है? कहिये, मैं भी तो सुन लूं।

काम—संसारमें जितने मनुष्य कुमार्गगामी होते हैं, वे सब मेरी ही कृपासे होते हैं। मेरा इससे अधिक और क्या माहात्म्य सुनना चाहती हो? सुनो,–पूर्वकालमें **पद्मनाभिने द्रोपदीके** लिये **अर्ककीर्तिने सुलोचनाके** लिये और **अश्वग्रीवने स्वयंप्रभाके**[1] लिये जो बड़े २ युद्ध किये हैं तथा **ब्रह्मा**जीने अपनी पुत्री **सरस्वतीके** साथ, **पराशर** महर्षिने **मछलीके** पेटसे उत्पन्न हुई **योजनगंधाके** साथ, और **व्यास**जीने अपनी भाईकी स्त्रियोंके[2] साथ जो रमण किया है, सो सब मेरे बाणोंसे हत–आहत होकर किया है। और भी शैवमतमें कहा है कि[3]; मेरे बाणोंसे आहत होकर **सूर्यदेव कुन्तीपर, चन्द्रमा** अपने गुरुकी स्त्री **तारापर,** और **इन्द्र गौतम**ऋषिकी स्त्री **अहिल्यापर** आसक्त हुआ था। अतएव हे कान्ते! मनुष्य, मुनि, और देवोंके पराजय करनेके कारण मैं त्रै-

---

१ ज्वलनजटितकी पुत्री।

२ व्यासजी जिस **योजनगंधाके** उदरसे पैदा हुए थे, उसके गर्भसे पीछे राजा **सान्तनुके** वीर्यसे **चित्रांगद** और **विचित्रवीर्य** नामके दो पुत्र हुए थे। ये दोनों जब निःसन्तान मर गये, तब वंशकी रक्षाके लिये व्यासजीने उनकी स्त्रियोंके (भ्रातृबधुओंके) साथ संभोग किया था, ऐसी **महाभारतमें** कथा है।

३ **सूर्यः कुन्तीं विधुर्नारीं गुरोः शक्रश्च गौतमीम्।**
अयासीदिति वा प्रायो मद्धिकारहता जनाः॥

लोक्यविजयी वीर हूं। और प्रबोधादिके वश करनेके लिये तो एक स्त्री ही बस है। यह कौन नहीं जानता कि;—

तब लों ही विद्याव्यसन, धीरज अरु गुरु-मान।
जब लों वनितानयनविष, पैठ्यो नहिं हिय आन॥

रति—परन्तु आर्यपुत्र! उन्हें यम नियमादिकोंका भी तो बड़ा भारी बल है!

काम—(हँसकर) मेरे अतिशय प्यारे मित्र सप्तव्यसनोंके साम्हने उन बेचारोंका कितनासा बल है। मेरे मित्रोंका प्रभाव सुनो-"द्यूतव्यसनसे **युधिष्टर**, मांससे **बक** राजा, मद्यपानसे **यदुवंशी**, वेश्यासेवनसे **चारुदत्त**, शिकारसे राजा **ब्रह्मदत्त**, चोरीसे **शिवभूति**, परस्त्रीसेवनसे **रावण**, इस प्रकार संसारमें एक एक व्यसनके सेवनसे अनेक प्रतिष्ठित पुरुष नष्ट हो गये। फिर सबके युगपत् सेवनसे तो ऐसा कौन है, जो बचा रहेगा?" इससे हे प्रिये! इस विषयमें तू कुछ खेद मत कर।

रति—मैंने सुना है कि, राजाने आज कोई गुप्तमंत्रणा की है। क्या यह सच है?

काम—हां! मेरे साम्हने ही वह मंत्रणा की गई थी।

रति—उसे क्या मैं नहीं जान सकती हूं?

काम—सुनो, राजाने कहा था कि, **प्रबोध** आदि पुत्र ज्येष्ठ हैं, और बलवान हैं, इसलिये न्यायमार्गसे प्राप्त हुए राज्यके वे ही स्वामी हैं। परन्तु प्रिये! यह पृथ्वी वीरभोग्या है। जो वीर होगा,

---

१ तावद्गुरवो गण्यास्तावत्स्वाध्यायधीरजं चेतः।
यावन्न मनसि वनितादृष्टिविषं विशति पुरुषाणाम्॥

वही इसका उपभोग करेगा। योग्यताका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है।

रति—यह ठीक है, परन्तु सहायकोंके बिना उनका जीतना भी तो कठिन है। इस विषयमें वहां क्या विचार हुआ है?

काम—उस समय **मोह**की बल्लभा स्त्री **माया**ने कहा था कि, "**हरि, हर,** और **ब्रह्मा** ये तीनों बलवान हैं, और मुझपर प्रीति रखते हैं। इसलिये उन्हें अपने पक्ष पोषक बनाना चाहिये।" यह सुनकर मोहने कहा था कि, "देवी! इस कार्यको तुमहीं अच्छी तरहसे सम्पादन करोगी।" तब माया यह कहकर वहांसे उसी समय चली गई थी कि, "महाराजकी जो आज्ञा होगी, वही मैं करूंगी। मैं हरि हर ब्रह्मादिके पास जाकर समस्त कार्य निवेदन करके, और उन्हें अपने पक्षमें दृढ़ करके कार्य साध लाऊंगी।"

रति—पीछे माया क्या काम करके आई थी?

काम—न मालूम पीछे क्या हुआ, चलो चलकर देखें।

[दोनों जाते हैं परदा पड़ता है।]

अथ द्वितीय गर्भाङ्कः।

स्थान—मोहका राजभवन।

(मोह और उसके दंभ आदि कर्मचारी बैठे हुए हैं। फाटकपर लीलावती नामकी दासी खड़ी है। विलास प्रवेश करता है।)

विलास—लीलावति! मुझे मायाने भेजा है। इस लिये तू जाकर मोह महाराजको सूचित कर।

लीलावती—(भीतर महलमें जाकर) हे देव! विलास आया है।

राजा—(सहर्ष उठकर) लीलावति! विलासको शीघ्र भेज।

लीलावती—(विलासके पास आकर) आइये महाशय! राजकु-लसे वार्तालाप कीजिये ।

विलास—महाराजा मोहराजकी जय हो! जय हो! जय हो!

मोह—प्रिय विलास! कहो क्या समाचार है?

विलास—महाराज! जगन्मोहिनी मायाको देखते ही हरि हर और ब्रह्माने इस प्रकार स्वागत करते हुए कहा—

मत्तगयन्द ।

"भौंहनतैं द्वितियाको मयंक, विलोकनतैं अरविन्द पलाया।
दंतनतैं मुकतानकी पंकति, आननतैं वर इन्दु लजाया॥
बेणीसों व्याल,उरोजसों चक्र,तथा कटितैं हरि भाजि छुपाया।
ऐसी अनूपम रूपकी खानि!, पधारहु! आवहु! मानिनिमाया॥

आज किस उद्देश्यसे यहां आनेकी कृपा की । बहुत दिनोंके पश्चात् तुम्हारे दर्शन हुए हैं । कहो, कुशल तो है? और यह तो कहो, आजकल दुर्बल क्यों हो रही हो? यदि कोई कार्य हो, तो कहो?" इसके पश्चात् उन तीनों देवोंने अपने आसनसे उठकर मायाके रूपमें अतिशय अनुरक्तचित्त होकर नानाप्रकारके विभ्रम विलास करनेवाली उस मायाका आलिंगन कर लिया । इधर प्रेममयी माया भी आनन्दसे उनकी गोदमें जा बैठी ।

दम्भ—क्यों जी! जब मायाका आलिंगन कर लिया, तब उन्हें अपने शीलभंगका क्या कुछ भी भय नहीं हुआ?

विलास—(मुसकुराकर) महाशय! जिस पदार्थका अस्तित्व होता है, उसीका विनाश होता है । असत् पदार्थका विनाश कहीं भी नहीं सुना है । उनके जब आकाश पुष्पके समान ब्रह्मचर्य्यका

अत्यन्त अभाव ही है, तब उसका नाश होना कैसे कहा जा सकता है? फिर भय किस बातका।

दंभ—अरे पापी! असत्य मत बोल! विष्णुका शील प्रसिद्ध है। सुनते हैं, एकबार बालब्रह्मचर्यके प्रभावसे उन्हें यमुनाने मार्ग दिया था।

विलास—मेरी समझमें तो ऐसा कहना "**मेरी माता और वंध्या**" कहनेके समान स्ववचनव्याघातक है। क्या यह तुमने नहीं सुना है कि,—

वृन्दावनको कुंज जहँ, गुंजत मंजु मलिन्द।
सघन-पीन-कुच-युवतिसँग, रमत रसिक गोविन्द॥

दंभ—अजी! गोविन्द गोपिकाओंमें आसक्त होनेपर भी ब्रह्मचारी थे।

विलास—निस्सन्देह! इसीलिये तो आपका वाक्य स्ववचनविघातक है।

दंभ—अस्तु, और यह भी तो कहो कि, माया उनमें एकाएक कैसे अनुरक्त हो गई?

विलास—स्त्रीके आसक्त होनेमें क्या देरी लगती है? देखो; "स्त्रियोंका चित्त स्वभावसे ही चंचल होता है, फिर समय पड़नेपर तो पूछना ही क्या है? जो विना मद्यपान किये ही नृत्य करता है, वह नशेमें चूर होनेपर क्या न करेगा?"

मोह—दंभ महाशय! इस समय इस विषयान्तरको जाने दीजिये। अच्छा विलास! फिर क्या हुआ?

विलास—स्वामिन्! हरि हर और ब्रह्मासे मायाने कहा "मोह

राजा आपके बलसे ही प्रबोधादिके साथ युद्ध करना चाहता है। इसलिये आप निर्वाहपर्यन्त अर्थात् जबतक विजय न हो, तबतक उसके पक्षमें रहें।" यह सुनकर ब्रह्मादि देवोंने कहा, "हम स्वीकार करते हैं। प्रिये! हम लोग तो स्वभावसे ही प्रबोधादिके मारनेवाले हैं और फिर अब तो आपकी आज्ञा हुई है! हे देवि! **मोह, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य, राग, द्वेष, असत्य, अहंकार, दंभादि** हमारे आजके मित्र नहीं हैं, बहुत पुराने हैं। हमारे भक्तजन भी उनसे गाढ़ प्रेम रखते हैं। इसलिये निश्चय समझ लो कि, हम सब मोहादिकका पक्ष करके **प्रबोध-शील-संतोषादिको** जड़से उखाड़कर फेंक देंगे।" यह सुनकर मायाने हर्षित हो घर आकर मुझे आपके समीप भेजा है।

(विलास जाता है। अहंकारका प्रवेश)

अहंकार—(प्रणाम करके) स्वामिन्! आप आज कुछ चिन्तातुर जान पड़ते हैं? नीतिशास्त्रमें कहा है कि, "पुरुषोंके लिये एक सत्त्व ही प्रशंसनीय पदार्थ है, पक्षका ग्रहण नहीं। देखो, बाहुबलिने सत्त्वका अवलम्बन करके भरत चक्रवर्तीको पराजित किया था।"[1] और भी किसीने कहा है कि[2], "सूर्य अकेला है। उसके रथके एक पहिया है। सारथी भी एक पैरसे लंगड़ा है। सर्पोंकी लगाम है। घोडे भी कुल सात ही हैं, और आकाशका निरालम्ब

---

१ श्लाघ्यं सत्त्वं सदा नृणां न तु पक्षाग्रहः क्वचित्।
दोर्वली सत्त्वमालम्ब्य किं जिगाय न चक्रिणं॥

२ रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्ततुरगाः।
निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि॥
रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः।
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे॥

मार्ग है तौ भी वह प्रतिदिन अपार आकाशके पार जाया करता है। इससे सिद्ध है कि, महापुरुषोंके कार्यकी सिद्धि उनके सत्त्वमें (तेजमें) रहती है। उपकरणोंमें—सहायक वस्तुओंमें नहीं रहती है। अर्थात् जो सत्त्ववान होता है, वही अपने अभीष्टकी सिद्धि कर सकता है।" इसके सिवाय आप जिन लोगोंको पक्षकार बनानेका प्रयत्न करते हैं, वे स्वयं निर्बल हैं। देखिये, मैं उन सबकी कलई खोले देता हूं। पहले **कृष्णजी**को ही लीजिये ! बेचारे **जरासंध** राजाके पुत्र **कालयमन**के डरके मारे सैन्यसहित **सौरीपुर**से भागकर समुद्रके किनारे आ रहे थे। और **रुद्र** महाराज तो उनसे भी बलहीन तथा मूर्ख हैं। आपने एक बार सारी बुद्धि खर्च करके **भस्मांगद**को वरदान दे दिया था कि, तू जिसपर हाथ रक्खेगा वह तत्काल मर जावेगा। सो जब **भस्मांगद**ने **पार्वती**पर मोहित होकर आपहीपर वह कला आजमानेका प्रयत्न किया, तब बेचारे नाँदिया—गुदड़ी (कंथा)—और पार्वतीको छोड़कर भागे और किसी तरहसे अपनी जान बचा पाये। **ब्रह्मा**जीकी तो कुछ पूछिये ही नहीं। एकबार ईर्षासे **इन्द्र**का राज्य लेनेके लिये आपने बनमें ध्यान लगाकर तपस्या करना प्रारंभ किया था। परन्तु इन्द्रकी भेजी हुई **रंभा**—तिलोत्तमाने अपने हाव भाव विभ्रम विलासोंसे और सुन्दर गायनसे क्षणमात्रमें तपसे भ्रष्ट कर दिया। भला, जब ये स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकते हैं, तब दूसरोंकी क्या सहायता करेंगे? इसलिये इनका भरोसा छोड़कर अपने सत्त्वका अवलम्बन करना ही समुचित है। मैं अकेला ही उन प्रबोधादिकोंके जीतनेके लिये बहुत हूं। सुनिये,—

वीर सवैया (३१ मात्रा)

मेरे सम्मुख कौन निशाकर, कौन वस्तु है तुच्छ दिनेश।
राहु केतुकी बात कहा है, गिनतीमें नहिं है नागेश॥
सत्य कहूं हे मोहराज! नहिं, डरों जरा है कौन यमेश।
केवल भौंहोंके विकारसे, जीतों मैं सुरसहित सुरेश॥

और भी—

तौलों विद्याभ्यास अरु, विनय-धर्म-गुरुमान।
जौलों नहिं धारण करूं, मैं अपनो धनुबान॥

राजा—प्रिय अहंकार! ठीक है, मैं तुम्हारे बलसे जीतनेकी अभिलाषा रखता हूं। परन्तु समुदाय कठिन होता है। हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि, यदि निर्बल पुरुष भी बहुत हों, तो बड़े बलवानको निश्चयपूर्वक पराजित कर डालते हैं। छोटी २ होनेसे क्या अगणित चींटियां सर्प्पको परास्त नहीं कर डालती हैं? अस्तु अब चलो, यहांसे सबके सब **वाराणसी** नगरीको चलें। वहांसे अपने इच्छित कार्यकी मंत्रणा करेंगे।

[सब जाते हैं परदा पड़ता है।]

इति श्रीवादिचन्द्रसूरिविरचिते श्रीज्ञानसूर्योदयनामनाटके प्रथमोऽङ्कः।

अथ द्वितीयोऽङ्कः।

प्रथमगर्भाङ्कः।

स्थान—प्रबोधका राजभवन।

[सम्यक्त्व आदि सामन्त बैठे हुए हैं। सत्यवती दासी एक ओर खड़ी हुई है। उपदेश चर (राजदूत) प्रवेश करता है।]

उपदेश—राजन! कुछ सुना?

प्रबोध—नहीं तो!

उपदेश—हरि हर और ब्रह्मा मोहके सहायक हो गये हैं।

प्रबोध—मोहादिके साथ भला उनका परिचय कैसे हुआ?

उपदेश—महाराज! परिचय क्या हरि हरादिक तो उनमें तन्मय हो रहे हैं। बल्कि मायाकी ठगाईके जालने तो उन्हें और भी परस्पर बद्ध कर दिया है।

प्रबोध—तब तो वे भी शत्रु हो गये!

उपदेश—स्वामिन्! मोहादि तो ठीक ही हैं। परन्तु हरि हरादि तो उनकी अपेक्षा भी अधिक द्वेष रखने लगे हैं।

सम्यक्त्व—आयुष्मन्! चिन्ता न कीजिये। दयाको बुलवाइये।

प्रबोध—(दासीसे) सत्यवति! दयाको बुला ला।

सत्यवती—जो आज्ञा!

(जाती है. परदा पड़ता है।)

द्वितीय गर्भाङ्कः।

स्थान—अन्तःपुर।

[दया उदास बैठी हुई है, इतनेमें सत्यवती आती है।]

सत्यवती—दये! राजकुलमें तुम्हारा स्मरण हुआ है।

दया—(आश्चर्यमें) क्या प्रभुने मेरा स्मरण किया है? भला तू मुझसे झूठ क्यों बोलती है?

सत्यवती—तुम ऐसा क्यों पूछती हो कि, प्रभुने मेरा स्मरण किया है? तुम्हारे विना तो उन्हें कहीं जरा भी सुख नहीं है!

दया—सत्यवति! ऐसी झूठी बातें बनाकर भला तू मुझे क्यों व्यर्थ रंजायमान करती है?

सत्यवती—यदि झूठ कहती हूं, तो अब प्रत्यक्ष चलकर देख लेना। इस समय अधिक कहनेसे क्या? जैसे गृहस्थ लक्ष्मीके लोभको धारण करके समय व्यतीत करता है, उसी प्रकारसे महाराज तुझे हृदयमें धारण करके रात्रि दिन पूर्ण करते हैं।

[दया बड़ी उत्कंठाके साथ सत्यवतीके साथ चलती है। परदा पड़ता है।]

तृतीय गर्भाङ्कः।

स्थान—राजभवन।

द्वारपर सत्य पहरा दे रहा है। सत्यवतीके साथ दया प्रवेश करती है]

सत्य०—भगवति! महाराज एकान्तमें बैठे हुए तुम्हारा मार्ग निरीक्षण कर रहे हैं। इसलिये उन्हें शीघ्र चलकर संतुष्ट करो।

दया—महराजकी जय हो! जय हो! सर्व प्रकारसे बढ़ती हो! हम जैसी स्त्रियोंका आज किस कारणसे स्मरण किया गया?

प्रबोध—आओ, प्यारी! तुम्हारे विना मेरी सम्पूर्ण क्रियायें व्यर्थ हो रही हैं। कहा भी है;—

सुवृत शील संतोष अरु, वर विवेक सुविचार।
तुव विन सारे विफल हैं, तुही सदा सुखकार॥

[दयाका अधोदृष्टि करके लज्जित होना]

प्रबोध—प्रिये! तुम हमारे घरमें प्रधान हो, केवल स्त्री नहीं हो।

सम्यक्त्व—दये! संसारसमुद्रके सेतुस्वरूप श्री अरहंतदेवके चरणोंके समीप जाकर ये समस्त समाचार निवेदन करो। क्यों कि उनकी सहायताके विना अपनी जीत होना कठिन है।

दया—आप जो आज्ञा देंगे, वही होगा।

[दया जाती है और श्रीजिनेन्द्रदेवके समीप जाकर फिर प्रवेश करती है]

दया—महाराज! सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो गये।

प्रबोध—प्रिये! कहो, किस प्रकारसे हुए?

दया—किसी विद्वानका कथन है कि,—

भाग्य उदयसों मनुजके, सुरगन होत सहाय।
ताके उलटे होत हैं, स्वजन हु दुर्जनराय॥

राजा—अस्तु, बात क्या है, स्पष्ट कहो न?

दया—प्रभो! मैंने यहांसे अयोध्या जाकर प्रातःकाल ही धर्मोपदेशरूपी प्रकाशके द्वारा जगतके जीवोंका अज्ञानांधकार उड़ानेवाले श्रीअरहंत भगवानका एक चित्त होकर इस प्रकार स्तवन किया कि,—

प्रभाती।

जगजन[1] अघहरन नाथ, चरन शरन तेरी।
एकचित्त भजत नित्त, होत मुक्ति चेरी॥ टेक॥
होती नहिं विरद चारु, सरिता सम तुव अपार,
जनम मरन अगिनि शांति, होति क्यों घनेरी॥ १॥
कीनों जिन द्वेषभाव, तुमतैं तिन करि कुभाव,
रवि सनमुख धूलि फैंकि, निज सिरपर फेरी॥ २॥
शिवस्वरूप सुखदरूप, त्रिविधि-व्याधिहर अनूप,
विनकारण वैद्यभूप, कीरति बहु तेरी॥ जगजन०॥३॥

---

१ इस प्रभातीमें मूलके दो गाथाओंका और गद्यका आशय मात्र लिया गया है। इसके सिवाय इच्छानुसार नवीन शब्दोंका समावेश भी किया है।

स्तुति करनेके पीछे सर्वज्ञदेवने मुझसे कहा, "हे भगवति हे जगत्परोपकारिणी दये! आज किस कारणसे इस ओर आगमन हुआ?" तब मैंने कहा, "भगवन्! आपने मुझको शीलको संतोषको और प्रबोध राजाको आगे करके मुक्तिनगरमें प्रवेश किया था। परन्तु अब यह पापात्मा मोह हरिहरादिकी सहायता पाकर सपरिवार राजा प्रबोधको और सारे संसारको अपने अधिकारमें करना चाहता है। इससे महाराज प्रबोधको बहुत कष्ट हो रहा है। आप कष्टके नष्ट करनेवाले हैं, इसलिये जो अच्छा समझें उचित समझें, सो करें।" यह कहकर मैं चुप हो रही।

प्रबोध—पीछे क्या हुआ?

दया—मुझसे अरहंत भगवानने कहा कि, "हे देवि! प्रबोधादिके उपकारको हम कभी नहीं भूलेंगे। हम उन सबके स्थानभूत हैं, और हमारे भक्त भी उनके ठिकाने हैं। अतएव हमारे सबके सब भक्तजन प्रबोधादिके साथ शीघ्र ही परिवारसहित आवें। कुछ भी विलम्ब न करें।" सर्वज्ञकी उक्त आज्ञा सुनकर मैं यहां दौड़ी हुई आई हूं। सो अब शीघ्र ही चलनेकी तयारी कीजिये। [राजा प्रबोधका सैनासहित अयोध्याको प्रस्थान]

[सब जाते हैं, परदा पड़ता है]

चतुर्थ गर्भाङ्क।

स्थान—राजा मोहकी सभा।

[अहंकार दंभादि सामन्त बैठे हुए हैं। कलिकाल प्रवेश करता है]

कलि—महाराज! कुछ सुना भी?

मोह—नहीं तो!

कलि—कार्य कठिन हो गया।

मोह—सो क्यों?

कलि—प्रबोधादिने अरहंतको अपने पक्षमें कर लिये हैं! (कांपते हुए) इस बलाढ्य पक्षसे मेरा तो हृदय कांप रहा है।

अहंकार—आपने अपने हरिहरादि सहायक बना लिये तो क्या? और अरहंतदेव उनके पक्षमें पहुंच गये, तो क्या? आप मुझे आज्ञा दीजिये। फिर देखिये, मैं अकेला ही जाकर सबको समाप्त करता हूं कि, नहीं?

मोह—तुम अकेले ही कैसे सबको जीत लोगे?

अहंकार—आर्य! सुनिये, विना किसीकी सहायताके ही एक अग्नि सारे संसारको भस्म कर सकती है। इससे स्पष्ट है कि, पुरुषका मंडन-भूषण एक सत्त्व अर्थात् तेज ही है।

दम्भ—भाई! इस तरह उद्धतताके वचन मत कहो। कुछ विचार करके कहो।

कलि—दम्भ महाशय ठीक कहते हैं। राजनीतिमें कहा है कि;—निर्बल भी मनुष्य यदि पक्षसहित हो, तो उसे शूरवीर नहीं जीत सकता है। देखो, यद्यपि सिंह बलवान है, परन्तु पक्षवान (पंखेवाले) किन्तु-बलहीन हंसको नहीं मार सकता है।

राजा—तुम ठीक कहते हो। अस्तु यह तो कहो कि, प्रबोधादिने अरहंतदेवको अपने पक्षमें कैसे कर लिये?

कलि—दयाके प्रयत्नसे!

राजा—तो अब क्या उपाय करना चाहिये?

कलि—उन लोगोंके दलमें एक दया ही सबसे बलवती है। इसलिये मेरी समझमें क्रोधकी प्रियतमा हिंसाके द्वारा उसका हरण

कराना चाहिये । बस, फिर सब काम सिद्ध हो गया समझिये । उसको जीत ली, कि, सबको जीत लिया । नीति भी यही कहती है कि—,

विक्रमशाली नर विना, बल निर्बल है जाय ।
सैन्यसहित हू 'करन' विन, जय न लही 'कुरुराय' ॥

अर्थात् जिस सैन्यमेंसे सारभूत सर्व शिरोमणि पुरुष चला जाता है, वह आखिर निर्बल हो जाता है । देखो, "कुरुवंशी राजा **दुर्योधन** एक **कर्ण** योद्धाके मर जानेसे विजय लक्ष्मीको नहीं पा सका ।" इसके सिवाय दयाके हरण होनेपर उसकी माता भी अतिशय दुःखी होवेगी, और उसके दुःखसे दयाकी छोटी बहिन शांति भी खेद खिन्न हो जावेगी । अतएव महाराजको अनायास ही विजय प्राप्त होगी ।

राजा—असत्यवति[1]! कोपकी स्त्री हिंसाका तो बुला लाओ ।

असत्यवती—जो आज्ञा ।

[असत्यवती जाती है, और कुछ देर पीछे जाज्वल्यमान विकराल लाल तथा पीले नेत्रोंसे घूरती हुई एक हाथमें धर्मको नष्ट करनेवाली तीखी तलवार, तथा दूसरे हाथमें रक्तपान करनेके लिये खप्पर सजाये हुए और पहले ही चारों ओर दयाकी खोज करती हुई हिंसा असत्यवतीके साथ प्रवेश करती हैं ।]

राजा—आओ, श्रीमति हिंसे! आओ और जितनी जल्दी हो सकै, जाकर दयाका हरण कर लाओ, जिससे मेरा कुल स्वस्थ हो । जब तक दया जीती रहेगी, तबतक हम अपनी कुशलता नहीं देखते हैं ।

---

१ एक दासी ।

हिंसा—जो आज्ञा । मैं स्वभावसे ही संसारको पीड़ित करनेवाली हूं । फिर श्रीमानकी आज्ञा पानेपर तो कहना ही क्या है?

[भयंकर व्याघ्रीके समान हिंसा मोहराजपर कटाक्ष फैंकती हुई अतिशय कोमल दयारूप हरिणीकी खोजमें जाती है परदा पड़ता है.]

पञ्चमगर्भाङ्कः ।

स्थान—क्षमाका घर ।

[क्षमा रो रही है और शान्ति उसके पास बैठी है ।]

क्षमा—हे प्यारी बेटी! अपनी इस अभागिनी माताको छोड़कर तू कहां गई? हाय कमलनयनी! हाय कुन्दकलिकाके समान सुन्दर दन्तपंकतिवाली! तेरे विना अब मैं कैसे जीऊंगी? हाय, यह धर्मवृक्षकी जड़ किसने उखाड़के फेंक दी! हाय मेरा सर्वनाश हो गया !

शान्ति—(अंचलसे क्षमाके आँसू पोंछती है) माता ! चिन्ता तथा आकुलता मत करो । आपकी बेटी सुखपूर्वक होगी ।

क्षमा—बेटी! विधाताके प्रतिकूल होनेपर सुख कैसे मिल सकता है—

जानकीहरन वन रघुपति गमन औ,
मरन नरायनको बनचरके[1] वानसों ।
वारिधिको बंधन मयंकअंक क्षयीरोग,
शंकरकी वृत्ति सुनी भिक्षाटनवानसों[2] ॥

---

१ जरत्कुमार भीलके बेषमें थे । २ भीख मांगनेकी आदतसे ।

कर्ण जैसे बलवान कन्याके गर्भ आये,
बिलखे वन पांडुपुत्र जूआके विधानसों।
ऐसी ऐसी बातें अविलोक जहां तहां बेटी!
विधिकी विचित्रता विचार देख ज्ञानसों॥

खबर उड़ रही है कि, मोहने दयाका घात करनेके लिये हिंसाको भेजा है। इससे मेरा चित्त चिन्तासे व्यथित हो रहा है।

शांति—माता, यदि तुम्हारे चित्तमें ऐसा संदेह है, तो चलो, दयाका शोध करें कि, वह कहां है? यदि किसी दर्शनमें (मतमें) उसका पता लग जावे, तो अच्छा हो।

[दोनों चलती हैं]

[मार्गमें एक चौराहेपर खड़ी होकर]

शान्ति—(विस्मित होकर) मा! यह इन्द्रजालिया सा कौन आ रहा है।

क्षमा—नहीं, बेटी! यह इन्द्रजालिया नहीं है।

शान्ति—तो क्या मोह है?

क्षमा—(बारीकीसे देखकर) हां! अब मालूम हुआ। बेटी! यह मोह नहीं है, किन्तु मोहके द्वारा प्रचलित होनेवाला बुद्धधर्म है।

शान्ति—तो माता! इसीमें देखो, कदाचित् मेरी प्यारी बहिन मिल जावे।

क्षमा—अरी बावली! मेरे उदरसे जिसका जन्म हुआ है, और तेरी जो बहिन है, उसकी क्या बुद्धागममें मिलनेकी शंका करना ठीक है?

शान्ति—कदाचित् किसी प्रयोजनके वश आ गई हो, तो एक मुहूर्त मात्र खड़े होकर देखनेमें क्या हानि है?

[बुद्धागमका प्रवेश]

बुद्धागम—(बुद्ध भक्तोंको उपदेश करता है।) संसारमें जितने पदार्थ हैं, ऐसा प्रतिभासित होता है कि, वे सब क्षणिक हैं। नवीन २ उत्पन्न होते हैं, और पूर्व पूर्वके विनष्ट होते जाते हैं। अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थ सर्वथा क्षणस्थायी हैं। एक पदार्थ पहले क्षणमें उत्पन्न होकर दूसरे क्षणमें नष्ट हो जाता है। जैसे दीपककी शिखा एकके पश्चात् एक उत्पन्न होती और नष्ट होती जाती है। जो शिखा अभी क्षणमात्र पहले थी, वह नहीं रहती है, उसके स्थानमें दूसरी उत्पन्न हो जाती है। अतएव प्यारे शिष्यो! जीवसमूहका घात करनेवालेको, मांसभक्षण करनेवालेको, स्त्रियोंके साथ स्वेच्छाचारपूर्वक रमण करनेवालेको, मद्यपायीको, और परधन हरण करनेवालेको कोई पाप नहीं लगता। क्योंकि आत्मा भी अन्य पदार्थोंकी नाई क्षणक्षणमें बदलता है। इससे जो आत्मा कर्म करता है, वह जब दूसरे क्षणमें रहता ही नहीं है, तब किसका पुण्य और किसका पाप?

शान्ति—भला, विचारवान पुरुष इस असंभव बातको कभी

---

१ विभान्ति भावाः क्षणिकाः समग्राः
परं सृजन्ते हि विनाशवन्तः।
शिखेव दीपस्य परां सृजन्ती
स्वतः स्वयं नाशमुपैति सा द्राक्॥ १॥

२ ततो घ्नतां जीवकुलं न पापं
समश्नतां मांसगणस्य पेशीः।
दारान् यथेष्टं रममाणकानां
पिबन्तु मद्यं हरतां परस्वम्॥ २॥

मान सकते हैं? जो समवायकारण (उपादानकारण) पूर्वमें किसी धर्म-युक्त रहता है, वही अपरकार्यका आरंभक होता है । किन्तु जो समवायिकारण सर्वथा नष्ट हो जाता है, वह दूसरे कार्यका आरंभक नहीं हो सकता है । जैसे मिट्टीका पिंड सर्वथा नष्ट होकर घट उत्पन्न करनेका समवायिकारण नहीं हो सकता है। किन्तु पिंड पर्यायको छोड़कर घट पर्याय धारण करता है, और मृतिकापना दोनों अवस्थाओंमें मौजूद रहता है । इसके सिवाय जो सर्वथा क्षणिक होता है, वह एक ही क्षणमें दो कार्योंका कर्त्ता नहीं हो सकता है । क्योंकि स्थिति और उत्पत्ति दो कार्य दो क्षणोंमें होते हैं।

क्षमा—नहीं! क्षणिक मतानुयायी बौद्ध ऐसा नहीं कहते हैं । वे उत्पत्ति और विनाशको युगपत्—एक ही क्षणमें मानते हैं ।

शान्ति—यदि ऐसा है, तो उनके कार्यकारणभाव ही घटित नहीं होगा। क्योंकि पदार्थके पूर्वकालमें रहनेवाले धर्मको (पर्यायको) कारण कहते हैं, और उत्तर (आगामी) कालमें रहनेवाले धर्मको कार्य कहते हैं । इससे हे माता! यह क्षणिक मत जिसमें मिथ्या क्षणिक कल्पना की गई है, और इस लिये जो यथेच्छाचारी है, योग्यताका स्थान नहीं है । परन्तु माता! मुझे यह जाननेकी आकांक्षा है कि, यह मत कब और कैसे चला?

क्षमा—सुन शास्त्रकारोंने कहा है कि;—

सिरि पासणाहतित्थे सरऊतीरे पलासणयरत्थो ।
पिहितासवस्स सिस्सो महासुदो बुद्धिकीत्तिमुणी ॥
तिमिपूरणासणेया अह गयपवज्जावओ परमभट्टो ।
रत्तंवरं धरित्ता पवट्टियं तेण एयंतं ॥

मज्जं ण वज्जणिज्जं दव्व दवं जहा जलं तहा एदं।
इदि लोये घोसित्ता पवट्टियं सव्वसावज्जं॥
मंसस्स णत्थि जीवो जहा फले दहियदुद्धसक्करए।
तम्हा तं वंछित्ता तं भक्खंता ण पाविट्ठा॥
अण्णो करोदि कम्मं अण्णो तं भुंजदीदि सिद्धंतं।
परिकप्पिऊण लोयं वसकिच्चा णिरयमुववण्णो॥ ५॥

अर्थात् **श्रीपार्श्वनाथ** भगवानके तीर्थमें, **सरयू** नदीके तीर, **पलाशनगर**के रहनेवाले **पिहितास्रव** गुरुके शिष्य, महाश्रुतके धारी, **बुद्धिकीर्ति** मुनिने मछलीका मांस अग्निमें भूनकर खा लिया। जिससे दीक्षाभ्रष्ट होकर उसने लाल वस्त्र धारण कर लिये, और यह एक एकांतरूप रक्तांबरमत (बौद्धमत) चलाया। " मद्य (शराब) वर्जनीय नहीं है। जैसे जल द्रव्य बहनेवाला है, उसी प्रकार यह भी है।" उसने लोकमें इस प्रकार घोषणा करके सावद्य अर्थात् हिंसायुक्त मतकी प्रवृत्ति की। मांसमें जीव नहीं है। जैसे फल, दही, दूध, शक्कर आदि पदार्थ हैं, उसी प्रकार मांस भी है। अतएव उसकी वांछा करनेवाला तथा उसे भक्षण करनेवाला पापिष्ठ नहीं हो सकता है। इसके सिवाय कर्मका करनेवाला कोई अन्य है और उसका फल कोई अन्य ही भोगता है। यह वात अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी है। इस प्रकार परिकल्पना करके और लोगोंको वशमें करके वह बुद्धिकीर्ति नरकको गया।

शान्ति—(घृणासे) धिक्कार है, ऐसे धर्मको।

क्षमा—बेटी! मैंने तो पहले ही कहा था कि, ऐसे पापिष्ठोंके घर मेरी पुत्री नहीं होगी। अस्तु, चलो अब यहांसे चलें।

[दोनों थोड़ी दूर चलती हैं, कि साम्हनेसे याज्ञिक सिद्धान्त प्रवेश करता है]

शान्ति—माता! यह स्नान किये हुए कौन आया? क्या बगुला है?

क्षमा—नहीं प्यारी! यह 'राम राम' जपनेवाला है।

शान्ति—तो क्या तोता है?

क्षमा—नहीं, मनुष्याकार है। सारे शरीरमें तिलक छापे लगाये है। हाथमें दर्भके (दूबाके) अंकुर लिये है। और कंठमें डोरा (यज्ञोपवीत) डाले हुए है।

शान्ति—तो क्या दंभ है?

क्षमा—नही, दंभ नहीं है, किन्तु उसके आश्रयसे संसारको ठगनेवाला याज्ञिक ब्राह्मण है।

शान्ति—माता! यहां एक घड़ीभर ठहर जा, तो दयाको इसके पास भी देख लें। कदाचित् शीघ्रतासे यहां आ रही हो।

[दोनों एक ओर जाकर खड़ी हो जाती है]

याज्ञिक—(यज्ञभक्तोंको उपदेश देता है) मनु महाराजने कहा है कि,—

यज्ञार्थं पशवः सृष्टा स्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञो हि भूत्यै सर्वेषां तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥
औषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणो नराः।
यज्ञार्थं निधनं नीताः प्राप्नुवन्त्युच्छ्रितां गतिं॥

अर्थात् विधाताने पशुओंको स्वयं ही यज्ञके लिये बनाया है। और यज्ञ सम्पूर्ण जीवोंके लिये विभूतिका करनेवाला है। अतएव

---

१ मनुस्मृतिके पांचवें अध्यायका ३९ वाँ ४० वाँ श्लोक।

यज्ञमें जो जीव वध किया जाता है, वह अवध अर्थात् अहिंसा है। यज्ञके लिये जो औषधियां, पशुओंके समूह, वृक्ष, तिर्यंच, पक्षी, और मनुष्य मारे जाते है, अर्थात् जिनका हवन किया जाता है, वे उत्तमगति अर्थात् स्वर्गको प्राप्त होते हैं। और भी कहा है कि,—

“सोमाय हंसानालभेत वायवे बलाकाः इन्द्राग्निभ्यां क्रौञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय नक्रान् वसुभ्यः ऋक्षानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्याय न्यङ्कून्[१], मित्रवरुणाभ्यां कपोतान् वसंताय कपिञ्जलानालभेत ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीन् शरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककरान् शिशिराय विकिरान् समुद्राय शिशुमारानालभेत पर्जन्याय मण्डूकान् मरुद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय चक्रवाकान्।”

“सुरा च त्रिविधा-पैष्टी गौडी माध्वी चेति।
सुत्रामणौ सुरां पिबेत् सोमपानं च कुर्यादिति॥”

अर्थात् “**चन्द्रमा**की तृप्तिके लिये हंसोंका, **वायुके** लिये बगुलोंका, **अग्नि** तथा **इन्द्रके** लिये क्रौंचोंका, **मित्रदेवके** लिये मद्गुओंका (जलकाकों का,) **वरुणके** लिये नक्रोंका (नाकोंका,) **वसुके** संतोषके लिये रीछोंका, **रुद्रके** लिये मृगोंका, **आदित्यके** लिये न्यंकू मृगोंका, तथा **मित्र** और **वरुणके** लिये कबूतरोंका हवन करना चाहिये। **वसन्तके** लिये कपिजल (तीतर) **ग्रीष्मके** लिये कल-

---

१ मूल संस्कृत पुस्तकमें इस शब्दकी टिप्पणीमें “जलचारीजीवविशेषः” ऐसा लिखा है, परन्तु कोषोंमें न्यंकूको मृगोंका एक भेद लिखा है यथा— “**मृगभेदारुरुन्यङ्कुरङ्कुगोकर्णशम्बराः**” इति हैमः।

बिंक (चिड़ा), **वर्षा**के लिये तीतर, **शरद्**के लिये वर्तिका[1] (बतक), **हेमन्त**के लिये ककर, और **शिशिर**के लिये विकिर अर्थात् पक्षी मात्र हनन करना चाहिये । **समुद्र**के लिये शिशुमार (एक जातिकी मछली), **पर्जन्य**के (मेघके) लिये मेंडक **मरुत्**के लिये मच्छ, **मित्र**के लिये कुलीपय और **वरुण**के लिये चक्रवाकका होम करना चाहिये ।" और.—

"मदिरा तीन प्रकारकी है । पैष्टी, गौड़ी, और माध्वी । सो सुत्रामण यज्ञमें सुरा पीना चाहिये, और सोमपान करना चाहिये ।"

[शान्ति मूर्छित होती है]

क्षमा—(कानोंको हाथसे बन्द करके) प्यारी बेटी! उठ, यहां एक मुहूर्त मात्र ठहरना भी उचित नहीं है । क्योंकि ऐसे हिंसक वचनोंके सुननेसे पूर्वका संचय किया हुआ भी पुण्य नष्ट हो जाता है ।

शान्ति—(उठकर) मातः! जो सोमपान करते है, उनके गंगा स्नानसे क्या और " **ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यम् ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्**" इस प्रकार गायत्रीमंत्रका पाठ करनेसे क्या?

क्षमा—निस्सन्देह, इनका धर्माचरण बड़ा भयानक है । इनके संसर्ग करनेसे लोगोंके समीप पुण्य कर्म तो खड़ा भी नहीं रहता होगा ।

शान्ति—क्या ये पापी इन प्रसिद्ध वचनोंको नहीं जानते हैं कि,—

---

१ भाषाकारोंने इसका अर्थ बटेर पक्षी लिखा है ।

थे तीन ३ चार ४ हजार भव्यात्मा उपस्थित हुए थे. धर्मवृद्धि भी खूब प्रभावना हुई. तीन दिन तक बड़ा भारी उत्सव किया गया. नवीन बनकर तयार किया हुआ श्रीजीका रथ निकाला गया. जयपुरके प्रसिद्ध नर्तक और गायकोंके नृत्य गान पूजन पाठ तथा सभा व्याख्यानादि हुए. वैशाख सुदी चतुर्दशीको आपने यहांपर केशलोंच करके शरीरके निर्ममत्वको मूर्तिमान करके दिखला दिया. स्वामीजीके उपदेशसे सैकड़ों लोगोंने नानाप्रकारकी त्याग मर्यादायें की. एक जैन औषधालयके लिये करीब आठ हजार रुपयेके चन्देका भी प्रबन्ध हो गया.

जरूरी नोटिस।

बम्बईके **श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालयसे** तथा **जैनहितैषी कार्यालयसे** चिट्ठी पत्री लेन देन रखनेवालोंको सूचना दी जाती है कि, अभी तक जो वे पंडित पन्नालालजी बाकलीवालके नामसे पत्रव्यवहार वगैरह किया करते थे, सो अब आयन्दा न करैं क्योंकि वे बम्बई छोड़कर देशाटनके लिये रवाना होते हैं. उनकी सब डांक डांकखानेकी मार्फत उनके पास जहां वे जावेंगे, वहां पहुंचा करेगी. इसलिये आयन्दा कोई भी भाई उनके नामसे पत्रव्यवहार न करैं. जो करैंगे, उनकी तामीलीमें विलम्ब होनेके अथवा तामीली न होनेके हम जिम्मेवार नहीं होंगे. नीचे लिखे ठिकानेसे पत्रव्यवहार करनेसे चिट्ठी पत्रीकी तामीली बराबर हुआ करेगी।

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

गिरगांव—बम्बई.

दो महान ग्रन्थ।

श्री आत्मख्यातिसमयसार—पं० जयचन्दजी कृत भाषा वचनिका सहित और **श्रीभगवती आराधनासार** भाषा वचनिका ये दो

Reg. No. B. 719.

ॐ

मासिक पत्र।

देवरी निवासी श्रीनाथूरामप्रेमीद्वारा सम्पादित।

पांचवां भाग	ज्येष्ठ— वीर नि० संवत २४३५।	अंक ८

पहले इसे पढ़िये।

इस अंकके १००० नमूने धर्मात्मा [illegible] सज्जनोंकी सेवामें भेजे जाते हैं, और प्रार्थनाकी जाती है कि, इसे देखकर अवश्य ही ग्राहक बनें और उपकारक अपूर्व ग्रन्थ श्री प्रवचनसार [illegible] एक कार्ड लिखकर मंगा लेवें। ऐसा अच्छा ग्रन्थ इस तरह सुभीतेसे फिर नहीं मिलेगा। [illegible] अंक और प्रवचनसार [illegible] भेज दिया जावेगा। यह मौका हाथसे नहीं जाने देना चाहिये।

ठिकाना ठीक लिखो।

सुनते हैं कि बहुतसे भाई [illegible] श्री पं० **पन्नालालजी बाकलीवालके** नामसे चिट्ठियां भेजा करते हैं। इस नामकी चिट्ठियां सीधी उनके पास चली जाती हैं, जिनसे उनकी तामील नहीं होती है। अब सब भाइयोंको चाहिये कि, सब प्रकारके जैनग्रन्थ मंगानेके लिये तथा जैनहितैषी सम्बन्धी पूंछतांछ करनेके लिये नीचे लिखे पतेसे ही पत्र व्यवहार किया करें।

चिट्ठी लिखनेका पता—

मैनेजर-जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय- पो० गिरगांव-बम्बई.

कर्नाटक छापखाना, मुंबई.

नवीन पुस्तकें।

भगवती आराधनासार भाषा वचनिका पं० सदासुखजीकृत. इस ग्रन्थका प्रमाण १६००० श्लोक (१२७६ पृष्ठ) हैं. पुरानी भाषामें ज्यों-का त्यों छपाया गया है. इसमें मुनिधर्मका बडे विस्तारके साथ कथन है. बडाही अपूर्व ग्रन्थ है. दक्षिण प्रान्तके दो धर्मात्मा शेठोंने इसका उद्धार कराया है, इस-लिये न्योछावर बहुत ही थोडी अर्थात पांच रुपया रक्खी गई है. इतनेपर भी भादों तक चार रुपयामें दिया जावेगा. साथमें मजबूत बेष्टन और गत्ते दिये जावेंगे.

आत्मख्यातिसमयसार—यह महान ग्रन्थ भी हाल ही छपा है. पं० जयचन्द्ररायजीकृत पुरानी भाषा वचनिका ज्योंकी त्यों छपाई गई है. इसकी श्लोकसंख्या ग्यारहहजार है. न्योछावर चार रुपये हैं.

आत्मानुशासन—महान ग्रंथ पं० टोडरमलजी कृत वचनिका सहित-इसको छपे हुए बहुत दिन हो गये. अभी कहीं मिलता नहीं था। हमारे पास थोडीसी प्रतियां एक जगहसे आई हैं. न्योछावर २) दो रुपया.

जैनतीर्थयात्रा—इसे बाबू ज्ञानचंद्रजीने दूसरी बार छपाई है. अबकी वार पहलेसे दूनी बड़ी हो गई है. बडे आकारके २०४ पृष्ठ हैं. तीर्थयात्राके सिवाय सम्मेदशिखर, तथा गिरनारजीके नकशे, नानाप्रकारके दर्शनपाठ, सम्मेद शिखर गिरनार और निर्वाणक्षेत्रपूजा, तीर्थ करनेवालोंके लिये जरूरी बातोंका उपदेश, दवाईयोंके सैकडों नुसखे आदि अनेक विषयोंका संग्रह किया है. मूल्य १)

बाईस परीषहसंग्रह—इसमें भगवतीदास, रतनचन्द, नंदलाल, और भूधरदासजीकी बनाई हुई चार प्रकारकी छंदबद्ध परीषहोंका संग्रह है ≈

राजुलके नौ पाठ—इसमें विनोदीलालकृत ब्याहला तथा प्रश्नोत्तर, यति नयनसुखदास कृत बारहमासा. बाबूज्ञानचन्दकृत रुदन. चन्दनलालकृत राजुलकी वैराग्यभावना. विनोदीलालकृत राजुलपच्चीसी. नैनसुखदासकृत उर्दू बारहमासा. डूंगरमलकृत प्रश्नोत्तर और विनोदीलालकृत नवमंगल इस प्रकार नेमि राजुलके नौ पाठ हैं। स्त्रियोंके बडे कामके हैं। न्यो. ।≈)

जैनवनितारागिनी—यह पुस्तक बुन्देलखडकी स्त्रियोंके बडे कामकी है. इसमें विवाहआदियोंमें गाने लायक जैन गारीं, बुंदेला वगैरह स्त्रियोंके अच्छे २ गीत संग्रह किये गये हैं. निर्लज्ज होकर घृणित गालियां गानेके बदले इन शिक्षादायक गालियोंके गानेका प्रचार करनेकी बडी जरूरत है. मूल्य दो आना.

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र ।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

पंचम भाग	जेष्ठ-श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३५।	अंक ८

साहिबी हवस।

प्रथम परिच्छेद ।

" मालूम नहीं आज ऐसी क्या बात हुई है, जो आप आनन्दके मारे फूले नहीं समाते हैं। प्यारे ! मुझे भी तो बतलाओ, क्या है ? " पतिका पैर घरमें पडते ही कलावतीने खड़े होकर हंसते २ पूंछा ।

" तुम इतनी उत्कंठासे क्यों पूंछती हो ? "

" पहले आप अपनी हंसीका कारण बतला देवें, तब मैं अपनी उत्कंठाका कारण बतलाऊंगी ! "

" यह खूब कही ! "

" खूब कैसी ? हररोज तो मुझे देख चुकनेपर आपके मुंहपर हंसीकी छटा विराजमान होती थी. और आज आप बाहरहीसे हंसते हंसते आ रहे हैं— "

" तो क्या तुम मुझे घरहीमें दिखती हो ? बाहिर नहीं दिखती हो ! "

कलावती लज्जित हो प्रेमकटाक्ष फेंकती हुई बोली, " अच्छा क्षमा कीजिये मेरी भूल हुई ' **रहती हूं मनमें, नैनोंमें, वैनोंमें अन्तर बाहिर** ।' खैर

इसे जाने दीजिये, मुझे यह बतलाइये कि, आज क्या आनन्द घटना हुई है?"

"अच्छा, पहले तुम ही बतलाओ कि, क्या समझी हो—अनुमानही-से सही!"

"मैं समझ तो गई हूं, परन्तु अभी नहीं बतलाऊंगी। पहले आप ही बतलावें!"

"नहीं प्यारी! पहले तुमही बतलाओ!"

"मैं तो नहीं बतलाऊंगी।"

"नहीं! तुम्हें बतलाना पड़ेगा!"

"तो यह क्या आप मुझपर हुक्म करते हैं? विचार तो कीजिये कि, आप कौन हैं और मैं कौन हूं!"

"अरे वाह!"

"वाह! वाह! क्या करते हो? इधर देखो, मैं रानी हूं, और आप प्रजा—'

"अच्छा तो महारानी साहिबाके चरण कमलोंमें मलिन्दायमान होकर प्रार्थना की जाती है कि, कृपाकरके इस सेवकके मनमें जो कुछ आनन्दका कारण हो, प्रगट किया जावे।"

कलावती हंसती हंसती बोली, "चलो जी! मुझे ऐसी बेमौके हंसी अच्छी नहीं लगती है। बात क्या है, सो मुझे जल्दी क्यों नहीं बतला देते हो?"

"परन्तु तुमने क्या तर्क किया है, सो तो मैं जान लूं पहले!"

"जाओ, मैं नहीं बतलाऊंगी!"

"नहीं! टालटूलसे काम नहीं चलेगा। वह तो श्रीमतीजीको बतलाना ही पड़ेगा।"

"यदि मेरा तर्क ठीक नहीं निकला, तो आप हंसेंगे।

"हंसूंगा, तो तुम्हें दांत दिखेंगे—"

"तब तो मेरा मरना हो जावेगा—"

"क्या हर्ज है? मैं जिलानेकी दवाई भी तो जानता हूं, तत्काल जिला लूंगा!" ऐसा कहकर बाबू ज्ञानचन्दजीने स्नेहाकुल होकर कलावतीके हरिणीसरीखे चंचल नेत्रोंका एक चुम्बन ले लिया।

३

कलावती बाबू साहबका हाथ झिड़ककर और कुछ दूर हटकर गम्भीरमुद्रासे बोली, "यह क्या जी! मरनेके पहले ही दवाई होने लगी?"

बाबू ज्ञानचन्दजी गंभीरतासे बोले, "बुद्धिमान वही है, जो आनेवाली आपत्तियोंका प्रतीकार पहले हीसे कर रखता है।

कलावती बोली, "आपकी इस दूरदर्शिता के बदलेमें मैं आपको thanks (थैंक्स) देती हूं।"

रोगीसे केवल थैंक्स पालेनेसे डाक्टरका निर्वाह नहीं हो सकता है। कुछ मिहनताना भी मिलना चाहिये। ऐसा कहते २ ज्ञानचन्दने मिहनताना भी वसूल कर लिया! और कलावतीको अपनी ओर खींचकर कहा, अब मुझे सच सच बतला दो, कि तुम क्या समझी हो? मुझे तुम्हारा अनुमान जाननेकी बहुत उत्कंठा हो रही है।"

इस प्रकारसे उक्त तरुण जोड़ेका प्रणयविनोद और भी बहुत समय तक होता रहा। परन्तु हम उसे यहां लिखना नहीं चाहते। वह लिखनेके योग्य भी नहीं है। इतना ही कह देना उचित समझते हैं कि, अंतमें कलावतीकी जीत हुई। ज्ञानचन्द हार गये। उन्होंने अपने मनकी बात कहना स्वीकार कर लिया। परंतु उसमें एक शर्त कर ली। वे बोले, अच्छा, मैं आनन्दकी बात सुनाता तो हूं, परन्तु पीछेसे तू यह कहे बिना कभी नहीं रहेगी कि, यही बात मैंने समझी थी। इसलिये तू जो कुछ समझी है उसे पहलेसे एक कागजपर लिख रख फिर मैं अपनी बात कहता हूं।

कलावतीने यह शर्त मंजूर की। एक कागजके टुकड़ेपर कुछ लिखकर और उसे लिफाफेमें बन्द करके उसने अपने हाथमें ले लिया। फिर पूछा, लीजिये अब कहिये—"

ज्ञानचन्द मुसकुराके बोले आज—थियेटरमें "**भूलभुलैया**" नाटक होने वाला है। उसे देखनेके लिये आज अपन दोनों चलेंगे। ऐसा मैंने विचार किया है। मैं उसीके आनन्दमें मग्न होता हुआ आया था।

पतिके मुंहसे नाटक देखनेकी बात सुनते ही कलावतीको जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन करनेकी जरूरत नहीं है। परदेमें कैद रहनेवाली स्त्रियोंको

कौतुक तमाशे देखनेका बड़े भारी सौभाग्यसे मौका मिलता है । ऐसे मौकेपर उन्हे आनन्द नहीं होगा, तो और कब होगा ? ज्ञानचन्दके मुंहसे यह आनन्ददायी समाचार सुनते ही कलावती अपने हाथका लिफाफा पतिके हाथमें देकर हंसती हंसती बोली–अच्छा, अब इस कागजको पढ़ लीजिये । देखिये, मैंने यही बात लिखी थी कि नहीं ?

ज्ञानचंद्र अपनी प्रिय पत्नीकी (मनकी बात जान लेनेकी बुद्धिकी) आश्चर्यपूर्वक मन ही मन प्रशंसा करते हुए बड़ी उत्सुकतासे लिफाफा खोलकर कागज बाँचने लगे । उसमें लिखा हुआ था कि—

" इस विषयमें मेरा कुछ भी अनुमान नहीं चलता है। आपकी उत्सुकता बढ़ानेके लिये मैंने झूठमूठ ही कह दिया था कि, समझ गई । दूसरेकी मनकी बात क्या कोई जान सकता है ?'

कागज बांचते ही ज्ञानचंद्र खिलखिलाकर हंस पड़े । कलावती भी अपनेको कृतकृत्य समझकर हंसने लगी । दोनोंके विनोदका फिर प्रारंभ हो गया । आखिर ज्ञानचंद्र बोले, " रानी साहबा ! तुम तो झूठ बोलनेमें कमाल करने लगी हो । यह आदत छुटानेके लिये आज तुम्हें कुछ सजा देनी पड़ेगी । "

" रानी साहिबाको सजा ? अच्छा कहिये क्या सजा देने का विचार किया है।"

"तुम्हें मेम साहब बनना पड़ेगा । "

"वाह ! वाह ! खूब हंसी सूझी है । "

"हंसी नहीं, आज तुम्हें सचमुच ही मेम बनाऊंगा । तुम्हारे अपराधकी इससे अच्छी सजा और कोई नहीं दिखती है ।

" छिः मैं कभी मेम नहीं बनूंगी ! मेरा कोई प्राण ले लेवे, तो भी मैं मेमकी पोशाक नहीं पहनूंगी ।

" परंतु तुम्हें मेम बननेमें इतना डर क्यों लगता है ? अपनेको वहां पहिचानेगा ही कौन ? सब लोग यही समझेंगे "कि यह कोई यूरोपियन अथवा अधगोरी है.' तुम्हें मेमकी पोशाक कैसी सोहती है, यह देखनेकी मुझे बहुत दिनसे लालसा लग रही है । तुम्हारे लिये मैं एक सूट हाल ही खरीदके ले आया हूं । थिये-

टरमें जाके पतिको एक ओर बैठना और स्त्रीको एक ओर घूंघट घालके बैठना, इसमें नाटक देखनेका भला क्या मजा है? बहार तो तब आती है, जब पति पत्नी एकत्र हाथमें हाथ डाले हुए बैठते हैं। सो तुम्हारी इतनी हिम्मत है नहीं कि, इस हमेशाकी पोशाकमें एक साथ बैठकर नाटक देख सको। इसलिये मैं साहब बनूं, और तुम मेम बन जाओ। फिर दोनों नाटक देखनेके लिये चलें और बॉक्समें चिपटकर बैठे हुए नाटकका मजा लूटें। ऐसा करना जरा ढिटाईका काम है, परन्तु ऐसी ढिटाई किये विना मनुष्यको सुख नहीं मिल सकता है। आनन्द नहीं आ सकता है। जिस समय तुम मेम साहिबाकी पोशाक धारण करने लगोगी, उस समय समझती हो, अपनेको कितना आनन्द प्राप्त होगा? हाथसे हाथ मिलाकर राजमार्गपर स्वतंत्रतासे चल सकेंगे, बायसिकलपर बैठकर हवा खानेको जा सकेंगे, अपनी ओर कोई ऊंचा सिर करके नहीं देख सकेगा, सब लोग अपना अदब करनें लगेंगे, पोलिसके सिपाही सलामी बजाने लगेंगे — "

ज्ञानचन्दका यह साहिबीपुराण और भी विस्तृत होता जाता था। परन्तु कलावतीको बिलकुल नहीं रुताथा, इस लिये वह बीचमें ही रोककर बोली, "आज आप कहीं भांग खाके तो नहीं आये हैं? जो मेरी इसतरह फजीहत करनेको उतारू हुए हैं। चलो जी! मुझे आपकी यह हंसी अच्छी नहीं लगती है!"

कलावतीको समझानेके लिये बाबू साहिबने नाना प्रकारकी युक्तियां दीं, सैंकडों उपाय किये, विनती की, हा हा खाई, अनेक आशायें दिलासायें दीं, और अन्तमें कुछ डांट दपट भी दिखलाई। सारांश जितनी उनमें शक्ति थी, उसके अनुसार सब कर छोड़ा, परन्तु कलावती किसी भी प्रकारसे मेम बननेको राजी नहीं हुई। पहले तो वह इसे केवल हंसी ही समझी थी। परन्तु जब बाबूसाहबने ट्रंक खोलकर मेम सा० की सारी पोशाक दिखलाई, तब तो कलावतीको निश्चय हो गया। वह किंकर्तव्यविमूढ सरीखी हो रही।

इधर ज्ञानचन्द बड़े संकटमें पडे। "आज साहब और मेम दोनों मिलकर नाटक देखनेको जावेंगे" इस प्रकारका विलक्षण भूत उनके सिरपर सवार हुआ था, और इसी लिये वे रुपये खर्च करके " लेडला वाईट

वे " नामक कंपनीसे सूट भी खरीद करके लाये थे। परन्तु कलावतीने उनकी वह बात स्वीकार नहीं की–उनकी उतनी सी हवस पूरी नहीं की। उस हवसके लिये पागल हुए ज्ञानचंद्र अन्य उपाय न देखकर आखिर कलावती-के चरणोंपर गिर पड़े और "बाहर नहीं तो न सही, परन्तु घरकी घरमें तो एकबार मेमकी पोशाक धारण करके मेरे नेत्रोंको सफल करो," इस प्रकार अतिशय आग्रह करने लगे। कलावतीने भी बहुत कुछ टालटूल करके लजाते लजाते—हंसते हंसते–हां–न–करते २ आखिर लाचार होकर घरमें मडम बननेकी बात स्वीकार कर ली।

कलावतीने बैठकखानेके दरवाजे खिडकियां और झरोखे आदि सब अच्छी तरहसे बन्द करके पहले बाबू साहबसे साहब बननेके लिये कहा। जब वे 'हाफकास्ट' बन चुके, तब वह अपने सोनेकी कोठरीमें गई और भीतरी संकल चढ़ाकर मेमकी पोशाक करने लगी। कलावतीने बहुतसी मेमोंको देखा था, परन्तु वे पोशाक किसतरह करती हैं, इसका उसे आजतक कुछ भी परिचय नहीं था। अन्दाज ही अन्दाजसे उसने जैसे तैसे पोशाक पहन ली। मेम तो बन चुकी, परन्तु उस विचित्र वेषमें बाहर निकलनेको उसका साहस नहीं होता था। वह कभी अपनी पोशाककी ओर देखती थी और कभी इधर उधर देखकर लज्जाके मारे अपने हाथसे अपनी आंखे बन्द करके रह जाती थी। कुछ समयतक यही लीला होती रही। इधर बैठकखानेमें साहब मेम साहबाके दर्शनोंके लिये उत्सुक हो रहे थे। बहुत देर हो गई, अभीतक मेम साहबा परदेसे बाहर नहीं आई, यह देखकर साहब बहादुर कोठरीका दरवाजा खटखटाकर उतावली करने लगे। परंतु मेम साहबा द्वार खोलनेके लिये राजी नहीं हुई। जब देखा कि अब किसी तरह छुटकारा नहीं हो सकता है, तब उन्होंने एक हाथसे मुंह ढंककर शरमाते शरमाते संकल खोली और चटसे बाहर निकलकर एक कौनेकी शरण ले ली! मेम साहबाकी वह विचित्र पोशाक देखते ही हमारे उल्लू बने हुए साहबको जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन हमसे नहीं हो सकता है? उससे ठीक उलटी दशा बेचारी मेम साहबाकी हुई थी। वह जिस कौनेमें जाकर भीतमें मुंह छुपाकर बैठी थी, व-हांसे खिसककर जरा भी यहां वहां नहीं हुई थी। अंतमें साहब ही उसको बल-पूर्वक हाथ पकड़कर बैठकखानेमें खींच लाये और एक विशाल आयनेके (दर्पणके)

सम्मुख खड़े होकर आपने साहबी जोड़ेको कौतुक दृष्टिसे देखने लगे मेम साहिबा नाककी नथ, मस्तकका बैंदा, कानोंके कर्णफूल, गाउन, सिरका टोप उघड़े पैर आदि परस्पर विरुद्ध स्वांगोंसे किस प्रकार विलक्षण दीखती थीं, उसका यथार्थ चित्र हमसे क्या किसी कुशल चित्रकारसे भी नहीं खींचा जा सकता है। हां! चतुर पाठक पाठिका अपने हृदयपटलपर अपनी कल्पनाशक्तिसे ही खींचकर देखना चाहैं, तो देख सकते हैं। हमको विश्वास है कि वे उसे प्रत्यक्षके समान अनुभवन कर सकेंगें।

ज्ञानचंद्र कलावतीका हाथ जोरसे हिलाकर (शेकहेंड करके) बोले, "गुड मॉर्निंग मेम साहिब?"

कलावती भी हंसते हंसते बोली "गुड मॉर्निंग साहिब!,,

दर्पणमें अपने विचित्र वेषका प्रतिविम्ब देखकर उस जोड़ेको स्वयं इतनी हंसी आई कि, हम कह नहीं कह सकते। ज्ञानचंद्रका तो हंसते २ पेट दुखने लगा। उन्हें स्वयं ऐसा मालूम होनेलगा कि, हम मनुष्य नहीं, कोई पिशाच हैं। आखिर हंसी थंभनेपर कलावती खिसियाकर बोली, "प्यारे, तुम्हें मेरी गलेकी कसम है, जो तुम मुझे इस पोशाकमें नाटक देखने को ले जाओ। मेरे तो प्राण निकल जावेंगे। इन भूतों जैसी पोशाकमें भला घरसे बाहर किससे निकला जावेगा? सब लोग हंस हंस कर फजीहत कर डालेंगे। मैं इस तरहसे कभी नहीं जाऊंगी। मुझे वह आपका नाटक नहीं चाहिये!"

ज्ञानचंद्रने कहा, "इसके लिये मैंने एक युक्ति सोच रक्खी है। अपन दोनों यहांसे अपनी देशी पोशाकमें चलेंगे। और ग्रांटरोड स्टेशनपर जाकर वहांसे बांदराका टिकट लेंगे। वहां सेकेंडक्लासका एक कम्पार्टमेंट रिजर्व करके उसमें बैठकर चर्चगेट स्टेशनपर उतरेंगे। सो बीचमें सेकेंडक्लासके डब्बेमें अपनेको पोशाक बदलनेका मनमाना मौका मिलेगा।"

कलावतीने इस के लिये भी बहुत टालटूल की। परंतु ज्ञानचंद्रने हरतरहसे समझा बुझाकर उसको राजी कर ली। निश्चय हो गया कि, आज रात को दोनों साहबी पोशाकमें नाटक देखनेके लिये जावेंगे।

द्वितीय परिच्छेद ।

रातके सात बजनेके पहले ही ज्ञानचन्द्र साहब बनकर और कलावतीको साथ ले ग्रांटरोड स्टेशनपर जा पहुंचे । गाड़ी इनके आनेकी राह ही देख रही थी । इन्हें लेकर वह वायुवेगसे दौड़ने लगी। पन्द्रह वीस मिनिटके भीतर ही बांदरा स्टेशन आ गया। ज्ञानचन्द्रने दो प्रहरको स्वयं स्टेशनमाष्टरसे मिलकर बांदरासे चर्चगेट स्टेशन तकके लिये एक सेकंडक्लासका कम्पार्टमेंट रिजर्व करा लिया था। यह जोड़ा उसीमें जाकर विराजमान हो गया। नियमित समयपर वह गाड़ी भी चल पड़ी। स्टेशन छूटते ही ज्ञानचंद्र डब्बेकी खिड़की वगैरह बन्द करके अपने हाथसे कलावतीको मेमकी पोशाक पहनाने लगे। और चर्चगेट स्टेशन पहुंचनेके पहले २ उन्होंने ज्यों त्यों करके मेम साहबको तयार कर दीं। इस पोशाकमें कलावतीको बहुतसे हिन्दुस्थानी जेवरोंको उतार देना पड़ा । मस्तकके सौभाग्य चिन्हको भी थोड़ी देरके लिये छुट्टी दे देनी पड़ी। और ऐसा करनेमें कलावतीको जो मरणप्राय दुःख हुआ, जैसी रुलाई छूटी, जो टालटूल करना पड़ी, उसका वर्णन करनेका हमको अवकाश नहीं है । क्योंकि वह देखो, चर्चगेट स्टेशन दिखने लगा है। विलक्षण उतावली, मनकी चमत्कारिक स्थिति और यूरोपियन पोशाकका ऊपराऊपरी परिचय, आदि कारणोंसे कलावतीके हाथसे इस यूरोपियन पोशाकमें बड़ी ही भद्दी और हास्यास्पद भूलें रह गई थीं, यह कहनेकी जरूरत नहीं है । उसमें भी अभाग्यसे दाहिने पैरका बूट बांये पैरमें और बांयेका दाहिनेमें चढ़ा लेनेसे सारी पोशाकको जो शोभा प्राप्त हुई थी, वह तो देखने ही योग्य थी। उतारे हुए सब कपड़े और जेवर वगैरह एक ट्रंकमें रखकर बन्द करते २ चर्चगेटका स्टेशन आ गया। साहबने मडम साहबको हाथका आश्रय देकर नीचे उतारा। प्लेटफार्मपर कुली खड़ा था। उसने दौडकर डब्बेमेंसे ट्रंक (पेटी) उतारके सिरपर रख लिया। सब लोग स्टेशनसे बाहर निकलने लगे ।

कलावतीको एक तो बूट पहनकर चलनेका अभ्यास ही नहीं था, दूसरे वे उलटे सीधे पहन लिये गये थे, और तीसरे मडम साहबकी पोशाक पहिनकर वह लज्जाके मारे जमीनमें गड़ी जाती थी. इससे वह एक एक पैर ऐसे मजेसे रखती थी कि, दर्शकोंका उसके देखनेके सिवाय दूसरा कुछ सुहाता ही नहीं था। उस समय

साहब बहादुरने अपने हाथका आसरा दे रक्खा था, नहीं तो मेम साहब कभी की प्लेटफार्मकी जमीन सूंघने लगी होतीं। जैसे तैसे स्टेशनके बाहर होकर एक किरायेकी गाड़ीपर बैठकर कलावतीने मुश्किलसे अपने पतनशील शरीरकी रक्षा की। उस समय उनके जीमें जी आया। साहब भी उसी गाड़ीपर बैठ गये।

गाडीवालेने बडे अदबसे पूछा, "साहब! कहां जाना होगा? " साहब सिर्फ " बोरीब्येंडर! " इतना जबाब देकर मेमसाहबसे कुछ अंग्रेजीमें बोलने लगे। साहबकी वह अंग्रेजी मेम साहबा समझतीं थीं कि नहीं; अथवा थोडी बहुत अंग्रेजी समझनेकी शक्ति होनेपर भी उससमय उसके समझने योग्य उनके चित्तकी स्थिति थी कि नहीं, यह तो हम ठीक २ नहीं कह सकते हैं। परन्तु घरसे बाहर होनेके पहले ही साहबने जो " मुंहसे एक भी हिंदुस्थानी शब्द नहीं निकालना " इस विषयमें सख्त ताकीद—नहीं २ प्रार्थना कर दी थी, और उसे मेम साहबने स्वीकार भी कर ली थी, वह हमको अच्छी तरहसे याद है। कलावतीके ' आल राइट ' ' यस यस ' ' नो नो ' आदि शब्द बीचबीचमें सुन पड़ते थे और बाबू साहबका अंग्रेजीके सीधे २ शब्दोंमें कुछ बड़-बड़ाना भी सुन पडता था।

साहब बननेके लिये व्याकुल हुए हमारे बाबू साहबने जेवर कपड़े वगैरह एक पेटीमें रखनेकी युक्ति निकाली अवश्य थी, "परन्तु ट्रंक रक्खा कहां जावेगा" यह कल्पना भी उनके मगजमें नहीं आई थी। स्टेशनसे रवाना होते समय उन्हें इस बातकी चिन्ता हुई। ट्रंक अपने साथ थियेटरमें ले जाना बन नहीं सकता है। हां! गाडीवालेके जिम्मे करके जा सकते हैं, और इतनी देर अपने लिये खड़े रहनेका उसको ज्यादा पैसा देना पड़ेगा, इसकी भी कुछ परवाह नहीं है। परन्तु इसका विश्वास कैसे किया जावे? यदि ट्रंक लेकर रफू चक्कर हो गया तो? मतलब यह कि, दूसरा कोई उपाय नहीं रहनेसे " मैं यह ट्रंक स्टेशनमास्तरको सोंपकर अभी वापिस आता हूं." मेम साहबासे ऐसा कहकर साहब बहादुर विना कुछ सोचे समझे साहबी अकडमें गाडीसे उतरकर लौट पड़े। पोर्टर भी ट्रंक लेकर साहबके पीछे २ चल पड़ा।

साहबके स्टेशनमास्तरके पास पहुंचते ही अहमदाबाद जानेवाली डांक गाडी आ पहुंची। स्टेशनमास्तर उसकी व्यवस्था करनेमें मग्न हो गये। जबतक वह गाड़ी चली न गई, तबतक मास्तरको हमारे साहबसे बातचीत करनेकी फुरसत

ही न मिली। साहबको चुप होकर बैठना पड़ा। जब मास्तर फुरसतमें हुए, तब साहबने अपनी बात उनके कानपर डाली। उन्होंने उत्तर दे दिया, "यह काम मेरा नहीं है, आप हैड पार्सल क्लर्कसे कहिये।"

हैड पार्सल क्लर्क बड़े ही सुस्त मिजाजका आदमी था। उस समय एक साधा जोड़ लगानेमें आपका मगज गरम हो रहा था। साहबको बड़ी भारी जल्दी थी। परंतु क्लर्कसाहब केवल हाथसे "ठहर जाओ" कहकहकर आश्वासन दे रहे थे, ऊपरको गर्दन उठाकर देखते भी नहीं थे। सारांश यह कि, क्लर्ककी कृपासे साहबको बहुत समय तक खडा रहना पडा। आखिर उसने कहा, "चार आना लाओ" साहबने एक चौअन्नी निकालकर दी। क्लर्क रसीद लिखनेका उद्योग करने लगा। टेबिलका यह खन खोला, वह खोला, बहुत देरतक इधर उधर देखा, परन्तु पेन्सिल का पता ही नहीं चला। आखिर साहबने अपने पाकटकी पेन्सिल निकाल कर दी। अब कार्बन पेपरकी जरूरत हुई। थोडी देर उसीकी खोजमें लग गई। बडी मुश्किलसे साहबके हाथमें रसीद आई। उसे लेकर वे बडी उतावलीसे स्टेशनसे बाहर निकलकर मेमसाहबाकी गाड़ी देखने लगे। परन्तु वहां क्या था? न गाड़ीवाला था, न गाड़ी थी और न मेमसाहब ही थी। पाठकगण! इस समय हमारे साहबके हृदयकी क्या अवस्था हुई होगी, आप स्वयं उसकी कल्पना करके देखें।

बहुत समय तक तो साहबको कुछ सूझा ही नहीं। थोड़ी देरमें एक गाड़ी दिखलाई दी। "बोरीबन्दर! जल्दी! जल्दी! वन रुपी।" इतनाही कहकर आप उसमें जा बैठे। गाडीवालेने भी रुपयेके लोभसे घोडे को चौकडी कर दिया। विक्टोरिया गाडी हवासे बातें करती हुई बोरीबन्दरपर जा खडी हुई।

इस समय साडे नव बज चुके थे। नाटक शुरू हो चुका था। आज गवर्नर साहब स्वयं नाटक देखनेके लिये आये थे, इससे थियेटरमें इतनी भीड थी कि, दो दो रुपया देकर भी सबसे छोटा टिकट नहीं मिलता था। हजारों आदमी निराश हो हो कर वापिस जा रहे थे। साहबने गाडीसे एकदम उतरकर वहां जितनी गाडियां खडीं हुई थीं, उन सबको एक एक करके देखना शुरू किया। परन्तु अफसोस! उनकी मेमसाहिबा किसी भी गाडीमें दिखलाई नहीं दी। गाडीका नम्बर भी उन्होंनें याद नहीं रक्खा था। याद रखनेकी जरूरत भी क्या थी? ट्रंक रखकर एक मिनिटमें वापिस आनेके बिचारसे तो वे स्टेशनपर लौटके गये थे।

अभाग्यकी बात कि उन्हें वहां ज्यादा देर लग गई। इधर "गाडीमें मेमसाहबा बैठी हैं, बोरीबंदरका पता बतला दिया है, चलानेका हुक्म भी साहब फरमा गये हैं मेम साहबोंको अकेले आने जानेका अभ्यासभी रहता है, बल्कि मैं स्वयं बीसों मेमोंको अकेली ले गया हूं," इस विचारसे गाडीवालेने गाडी हांक दी। उसको इस बातकी कुछ चिन्ता भी नहीं हुई कि, साहब लौटके आ जावेगें, तब गाडी चलाना होगा। मेम साहबाको चाहिये था कि, गाडीवालेको साहबकी बाट देखनेके लिये रोकतीं। परन्तु हमारी देहाती मेम साहिबा गाडीके चलते ही इतनी घबडा गई, इतनी भयभीत हो गई कि, एक शब्द भी उनके मुंहसे नहीं निकला। एक प्रकारसे मूर्च्छित जैसी होकर गाडीमें पड गई। आगे उनकी क्या व्यवस्था हुई, यह जाननेके लिये पाठक उत्सुक होगें; परन्तु उसके पहले हम अपने साहब बहादुरकी खबर लेना चाहते हैं।

साहबने सब गाडियां ढूंढ डालीं। एक बार देखीं, दो बार देखीं, परन्तु मेम साहबाके दर्शन नहीं हुए। बेचारे हताश होकर सोचने लगे, अब क्या करना चाहिये। आखिर प्रत्येक गाड़ीवालेके पास "जाकर तुम कोई मेम साबको लाया है? इस प्रकार पूछने लगे। बहुतोंने कहा "नहीं लाया" परन्तु एक बोला "हां साहब! लाया!"

अब कहीं साहबका जीमें जी आया। उन्होंने गाडीको तथा घोडेको अच्छी तरहसे देखा, तो वही गाडी घोडा मालूम पडा। इस लिये बडी आतुरतासे पूछा, "कहांसे लाया? चर्चगेट स्टेशनसे?"

"हां साब चर्चीघाट इस्टेशनसे–"

"हमको उधर देखा था?"

गाडीवान साहबके मुंहकी ओर देखता हुआ बोला, "हां साब! आपके माफिक एक साब लेकको देखा था।

साहबको पक्का विश्वास हो गया कि, यही वह गाडी है। इस लिये उन्होंने अधीर होकर पूछा, "मेम साहब किदर गया?"

गाडीवानने जबाब दिया, "मेमसाब भीतर तमाशा देख रही हैं"

परन्तु यह सुनते ही साहबने समझ लिया कि, वह अपनी मेम साहबा नहीं होगी। कलावती अकेली जाकर नाटक देखने लगेगी, इतनी ढिटाई उसमें नहीं

है। इसके सिवाय टिकट खरीदनके लिये उसके पास पैसे भी नहीं हैं, अर्थात् वह थियेटरमें नहीं गई होगी, ऐसा उनका विश्वास था. परन्तु "थाली खोई जानेपर गगरीमें हाथ डालना पडता है" इस कहावतके अनुसार "चलो, भीतर तलाश तो करें." इस प्रकार सोचकर साहब टिकिट काटनेवालेके पास जाकर अंग्रेजीमें पूंछने लगे "कोई सत्रह अठारह वर्षकी, इकहरी देह, आस्मानी रंगकी पोशाक पहने और पंखोंका टोप लगाये हुए एक मडम टिकट लेनेको आई थी?"

टिकिट कलेक्टर बोला, "साहब ! मैं किस किसकी ओर नजर रक्खूं? सैकडों साहब और मेमें आती हैं। मैं ठीक २ तो नहीं कह सकता हूं, परन्तु आप जैसी कहते हैं, एक जवान मडम आई तो थीं, ऐसा कुछ कुछ ख्याल है।"

साहबने पाकटसे १०) का एक नोट निकालकर उसके हाथपर रक्खा और बडी ही नम्रतासे प्रार्थनापूर्वक कहा, "मिहरबानी करके जिस तरह हो सके, मेरी चिट्ठी उसके पास पहुंचानेकी कोई व्यवस्था कर दीजिये।"

टिकिट कलेक्टरने बहुत टालटूल की, परन्तु साहबने मडमसे मिलनेकी बहुत बड़ी भारी जरूरत बतलाकर एक और दश रुपयेका नोट उसके हाथपर रख दिया और अपना काम करनेके लिये बड़ा ही आग्रह किया। उसको भी विश्वास हो गया कि, साहबका कुछ बुरा अभिप्राय नहीं दिखता है। मडमसे उनका कुछ जरूरी काम होगा। इसके सिवाय हाथ भी गरम हो रहा था, इसलिये उसने साहस करके साहबकी दी हुई चिट्ठी पहले दर्जेमें बैठी हुई आस्मानी रंगकी पोशाकवाली अंग्रेज युवतीको जाकर दे दी। सब लोगोंके देखते हुए एक तीन कौडीका नेटिव चिट्ठी लाकर देता है, यह देखकर उस गौरांगनाकी कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी। बातकी बातमें वहां बैठे हुए गौरांग मंडलमें कोलाहल मच गया। उसमेंसे एक तामसी स्वभावके साहब एकदम उठ खड़े हुए और हमारे साहबके दूतको एक लात जमाकर उसका कान पकड़के खींचते हुए चिट्ठी भिजवानेवालेकी खबर लेनेके लिये बाहर निकले। थोडी देरके लिये स्टेजका नाटक बन्द हो गया और लोगोंके लिये यह एक नवीन ही नाटक हो गया।

तीसरा परिच्छेद ।

इधर साहब बहादुर अपने दूतकी बाट देखते हुए एक किरायेकी गाड़ीमें बैठे हुए थे। थोडी देरमें उन्होंने दूरसे देखा कि, एक साहबरूपी राक्षस लाल लाल आंखे किये हुए, और टिकटकलेक्टरके कान मलता हुआ शीघ्रतासे आ रहा है। यह भयंकर दृश्य देखकर साहबके प्राण सूख गये। उन्होंने तत्काल ही गाडीवालेको हुक्म दिया, "जल्दी चलाओ! खूब दौडाओ!"

साहबकी गाडी जहांको घोडे ले जाते थे, वहांको जाती थी। जब खुद साहबहीको मालूम नहीं था कि, कहां जा रहे हैं, तब बेचारे गाडीवालेको क्या मालूम होता? उसने एक बार दो बार पूंछा, परन्तु साहबने 'बस चलाओ' के सिवाय और कोई ठिकाना ही नहीं बतलाया। आखिर अपोलो बन्दर आ गया। आगे जानेको मार्ग ही नहीं था, इससे घोडे खडे हो गये। कुछ देरतक तो साहब गाडीमें ही स्वस्थ पडे रहे। जब समुद्रकी शीतल हवाने आकर अंगस्पर्श किया, तब शरीरमें कुछ चैतन्यता आई। "मेम गई, रुपये गये, परन्तु साहबके हाथसे प्राण तो बच गया!" यह सोचकर उस दुःखमें भी उन्हें कुछ संतोष हुआ। परन्तु वह संतोष समाधान बहुत देरतक नहीं ठहरा। तत्काल ही स्मरण हुआ, मेम साहबकी क्या दशा हुई होगी? अब उसका पता कहां और किस तरहसे लगाना चाहिये, इससे उनका हृदय शोकाकुल हो गया। बहुत समयतक वे मूकरोदन करते रहे। आखिर कुछ सोचकर उन्होंने गाडीवालेको फिर चर्चगेट स्टेशनपर ले चलनेके लिये हुक्म दिया। थोडी देरमें गाडी चर्चगेट स्टेशनपर जा पहुंची।

रात्रिके साड़े बारह बज चुके थे। जहां तहां शान्तिताका साम्राज्य हो रहा था। स्टेशनपर जो लोग थे, वे बेंचपर, कुरसीपर, टेबिलपर लुड़क रहे थे। हमारे साहब बहादुर स्टेशन माष्टरके कमरेमें जाकर उन्हें जगाने लगे। माष्टर सुशील स्वभावका था। उसे साहबकी दशापर दया आ गई, इस लिये उसने स्टेशनके सब कुलियोंको अपने कमरेमें बुलाया। साहबने अपना ट्रंक उठानेवाले कुली-को पहिचान लिया। स्टेशन मास्तरने उससे तलाश किया कि, तुझे मेमसाहब जिस गाड़ीमें बैठी थीं, उसका नम्बर तथा गाडीवालेका नाम मालूम है कि नहीं?

सौभाग्यवश वह कुली इब्राहीमखां गाडीवालेको पहिचानता था। आखिर साहब इन-आम देनेका लालच देकर कुलीको साथ ले इब्राहीमकी खोजमें निकले।

आधे घंटेमें साहबकी गाड़ी पायधूनीके पास एक अंधेरी गलीमें तबेलेके पास जाकर खड़ी हुई। इस बातकी दोनोंहीको चिन्ता थी कि इब्राहीम वापिस आया होगा कि नहीं। परन्तु सुदैवसे गाडी तबेलेमें ही थी और गाडीवाला एक चारपाईपर पड़ा हुआ खुर्राटे लगा रहा था। कुलीने इब्राहीमको जगानेके लिये बहुत उपाय किये, परन्तु उसने तो मुर्देसे बाजी लगा रक्खी थी, हिलाने डुलानेसे किसीतरह भी नहीं जगा। आखिर कुलीने उसे दो चार रद्दे लगाकर तथा दशबीस गालियां देकर पूछा, "इस साहबको पहिचानता है?"

साहबका नाम सुनते ही इब्राहीम शराबके नशेमें भी घबड़ा गया। सलाम करके बोला, "साब! आपके मेमसाबने तो आज मेरेको दशरुपया इनाम दिया है—"

साहबने उतावलीसे पूछा, "मेम साहब किडर गया?" गाडीवालेने आज और दिनकी अपेक्षा शराबके प्याले कुछ ज्यादा चढा लिये थे, इसलिये बेचारा पर-ब्रह्ममें लीन हो रहा था। उसको इस दीन दुनियांकी कुछ खबर ही नहीं थी। जो मुंहपर आता था, वही बक देता था। थोडी देरमें मौजमें आकर वह जोर जोर-से रोने लगा। उसकी यह दशा देखकर साहब बहादुरकी छाती धकधक करने लगी। उन्होंने सोचा, अवश्य ही कोई अनर्थ हो गया है, चिन्ह अच्छे नहीं दिखते हैं। कुली भी बडी उलझनमें पड़ा। आखिर उसने ज्यों त्यों करके इब्राहीमको होशमें लाकर उससे रोनेका कारण पूछा। वह बोला, "जब मैं खूब शराब पीता हूं, तब इसी तरह रोता हूं। मेरी हसीना बीबीको कोई उड़ाके लिये जाता है, ऐसी धुन बंधनेके कारण मैं रोने लगा था।

इब्राहीमकी बात सुनकर साहबको उस दुःखकी अवस्थामें भी हंस आया। परन्तु तत्काल ही उनका हृदय भर आया, और आंखोंमें आंसू झलकने लगे। जब इब्राहीम अपनी जोरूके खो जानेके ख्याल मात्रसे रोने लगता है, तब यदि हमारे साहब अपनी मडमके लापता हो जानेसे शोकविव्हल हो गये, तो क्या आश्चर्य हुआ?

साहब और कुलीके बहुत प्रयत्न करनेपर इब्राहीमने होशमें आकर—मनुष्यत्व प्राप्त करके कहा कि, मैं मेम साहबको पालवारोडके एक बंगलेमें पहुंचा आया

हूं। यह सुनकर साहबकी देहमें नवीन प्राणवायुका संचार हुआ। उन दोनोंको साथ लेकर साहबकी गाड़ी पालवा रोडके बंगलेके पास आकर खड़ी हो गई। उस समय रातके २ बज चुके थे। साहबने कुली और इब्राहीमको इनाम देकर विदा कर दिया और आप द्वारपर जाकर कुछ समय तक चुपचाप खडे रहे। घरके लोगोंको मुंह दिखलानेमें आज उन्हें बड़ी भारी लज्जा मालूम हो रही थी। बहुत देर तक स्तब्ध रहकर आखिर 'भाई साहब ! भाई साहब !' इस प्रकार धीरे २ कहते हुए किवाड खटखटाने लगे। परन्तु भीतरसे किसीने कुछ उत्तर न दिया। इससे साहबका किवाड़ खटखटाना तथा पुकारना कुछ तेज हो गया। तब लाला वंशीधरने खिड़की खोलकर पूछा, कौन है ?

सवाल सुनतेही साहबका मुंह बन्द हो गया !

"कौन है" इस प्रकार फिर पूछनेपर भी जब कुछ जवाब नहीं मिला, तब वंशीधरने खिड़की बन्द कर ली। उस समय साहबने धीरेसे कहा "मैं हूं, किवाड़ खोल दीजिये।"

"तू कौन है और इतनी रातको क्या काम है ? जा सबेरे आकर मिलना" ऐसा भीतरहीसे उत्तर मिला।

इस समय साहबके चित्तकी बुरी दशा थी। थोड़ी देर चुप रहकर वे 'कमला ! कमला !' कहते हुए फिर किवाड़ खटखटाने लगे ! कमला बाबू साहबकी छोटी सालीका नाम था।

लाला वंशीधरने तंग आकर नौकरको जगाया और हुक्म दिया, रामसींग, नीचे कोई बदमाश शरारत करता है। जाओ, उसे पुलिसको सुपुर्द करके आओ। वह सीधी तौरसे नहीं मानेगा।

इस गड़बड़में घरके सब लोग जाग गये। नौकर भी किवाड़ खोलकर और साहबको डांट डपट दिखाता हुआ पुलिसके सिपाहीको लानेके लिये चौराहे-की तरफ चला गया। दरवाजा खुला देखकर साहब जल्दीसे भितर घुस गये और कुर्सीपर नीची गर्दन करके बैठ गये।

लाला वंशीधर अचरजमें आकर साहबसे अंग्रेजीमें धमकाते हुए पूछने लगे, आप कौन हैं ? और इतनी रातको पराये घरमें क्यों घुस आये हैं।

साहब चुप !

यह देख लाला वंशीधरजीने यमराजका स्वरूप धारण करके साहबकी षोड़-शोपचारसे पूजा करनी शुरू कर दी और 'यह कोई लुच्चा बदमाश है ! इसे चौकीमें ले जाकर बिठाना चाहिये' इस प्रकार कहते हुए वे रामसींगको पुकारने लगे। इतनेमें रामसींग भी यह कहता हुआ आ पहुंचा कि, सिपाही बाहर खडा है।

साहबकी बड़ी दुर्दशा हुई। अपने दुःखकी ओर किसीका भी ख्याल नहीं जाता है। जहां जाओ वहीं फजीहत होती है ! आज यह बेवकूफी कहांसे सूझी। इसप्रकार सोचते सोचते साहबका अन्तःकरण भर आया। वे कांपते कांपते बोले, "मैं-मैं ज्ञानचंद्र हूं। घरके लोग यहां आ गये हैं क्या ?"

इतनेमें कलावतीकी छोटी बहिन साहबके पास आकर बोली, जीजा! तुम अकेले ही साहब बन लिये ? हमारी जीजीको मेम साहब बनाई कि नहीं ? आज तुम भूलभुलैया देखनेको गये थे न ? कैसा हुआ नाटक ? बड़ी जल्दी खतम हो गया! पर यह तो बतलाओ कि, तुम्हारी मेम साहिबा—(होठ दबाकर) नहीं नहीं भूल गई–हमारी कलावती जीजी कहां रह गई ?"

"यह लड़की कितनी चपल है! कोई बात क्षण भर भी इसके पेटमें नहीं ठहरती है !' कलावतीकी जेठानी कमलाके गालपर प्रेमसे एक चपत लगाकर बोली। कमलाकी चटपटी बात सुनकर सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। उस समय साहबके मुखकमलकी चेष्टा फोटू लेने योग्य बन रही थी।

अन्तमें लाला वंशीधर बोले, "ज्ञानचन्द्र! भाई तुम्हारे सिरपर भी क्या खफ्ती सवार हुई थी, बैठे बिठाये तुम्हें यह अकल कहांसे सूझी ? अच्छा हुआ, नहीं तो न जाने आज क्या अनर्थ होता ! तुम वहां ट्रंक रखनेके लिये स्टेश-नपर उलझ रहे, यहां गाड़ीवाला बोरीबन्दर पहुंच गया। बेचारी बहू कभी अकेली बाहर नहीं गई थी, इसलिये घबडाकर रोने लगी। स्टेशनके पास गाड़ी खड़ी करके गाड़ीवाला दरवाजा खोलने लगा, तब बहूने साहस करके कहा, "स्टेशनपर वापिस ले चल। साहबको साथ लिये विना तू क्यों आया? तदनुसार गाड़ीवाला फिर चर्चगेट स्टेशनपर अपनी गाड़ी ले गया। वहां तुम्हारी बहुत खोज की। परन्तु जब तुम दिखलाई नहीं दिये, तब उसको बड़ी घवड़ाहट हुई। बडा भारी सौभाग्य समझना चाहिये, जो उस समय उसे यहां आनेकी बुद्धि

बहुत सघन जंगल हो रहा है. उसमें हिन्दू और जैनियोंके बीसों प्राचीन मन्दिर हैं और उनमें अधिकतर बहुत बुरी अवस्थामें हैं. एक जैन मन्दिर बहुत बडा और पुराना है. उसके तोरणमें एक लेख ईस्वी सन् ८८३ का राजा भोजदेवके नामसे खुदा हुआ है. वहांके लोगोंका कथन है कि, देवपति और खेवपति नामके दो जैनधर्मावलम्बी भाइयोंने देवगढका किला बनवाया था, और देवगढ बसाया था. वहांके जैनमन्दिर भी जो इस समय विद्यमान हैं. इन्हीं दोनों भाइयोंने बनवाये थे. देवगढमें पहले सहरिया लोगोंका अधिकार था, फिर गौंड लोगोंका हुआ, और उनके अनन्तर गुप्तवंशी राजाओंका हुआ. इस वंशके स्कन्धगुप्त आदि राजाओंके शिलालेख वहां अब तक विद्यमान हैं. गुप्तवंशी राजाओंके पश्चात् कन्नौजके भोजवंशी और फिर उनके पश्चात् चन्देल राजाओंके अधिकारमें देवगढ आ गया था. इस वंशके राजाओंकी राजधानी महोबा थी. गुप्तवंशी राजाओंके बादके बने हुए मन्दिरोंमेंसे पहाडीके ऊपर एक बहुत बडा जैनमन्दिर है. उसके आसपास छोटे मौटे कोई ३० मन्दिर और भी हैं. ये सब मन्दिर अत्यन्त गहन जंगलके भीतर हैं. बडे मन्दिरके चारों तरफ बरंडा था, परन्तु अब एक ही तरफ रह गया है. भीतर एक बहुत बडी जिन प्रतिमा है. छोटी २ प्रतिमायें बहुत हैं. मन्दिरके भीतरी भागके दो खंड हैं. पिछले खडमें बहुत अंधेरा रहता है. मान्दिरके चारों ओर प्रदक्षिणा है. इस प्रदक्षिणामें आजकल रीछोंका निवास रहता है। यहांपर एक खंभेमें ऊपरसे नीचे तक सब तरफ गुप्तसमयके अक्षरोंमें अनेक लेख हैं. मन्दिरके साम्हने बडे २ दो स्तंभोके ऊपर एक तोरण है, जो महाराज भोजदेवके समयका अर्थात् ईसवी सन् ८८३ के लगभगका बना हुआ है. देवगढ पुरानी इमारतोंके लिये बहुत प्रसिद्ध है. दूर २ तक उसके खंडहर चले गये हैं. रास्ता बडा ही भयंकर और झाडियोंसे संकीर्ण हो रहा है. सैकडों जैनमन्दिर बिलकुल धराशायी हो गये हैं. चिन्ह मात्र मौजूद है.

सरस्वतीमें देवगढकी इमारतोंके विषयमें एक लेख प्रकाशित हुआ है. उसीका सारभाग हमने अपने पाठकोंके जाननेके लिये यहां लिख दिया है. झांसी जिलेमें जैनियोंकी बहुत बडी आबादी है. और सो भी ऐसे लोगोंकी जो मन्दिर और प्रतिष्ठाओंमें प्रतिवर्ष लाखों रुपया खर्च करते हैं! क्या उन लोगोंका ध्यान इन दुर्दशाग्रस्त प्राचीन मन्दिरोंकी ओर नहीं जाता होगा? नवीन

मन्दिर बनानेकी अपेक्षा हमारी समझमें तो प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करानेमें तथा अपने पूर्व पुरुषाओंकी कीर्तिकी रक्षा करनेमें बहुत ज्यादा पुण्य है. क्या ही इच्छा हो, यदि जाखलौनके आसपासके जैनी देवगढके बचे-खुचे मन्दिरोंकी मरम्मत कराके तथा वहांके मार्गको साफ सुथरा करके एक दर्शनीय स्थान बना देवें, और एकाध वार्षिक मेला लगानेका प्रबन्ध करके जैनधर्मकी प्रभावना सर्वसाधारणमें प्रगट कर देवें.

जैनग्रन्थावली ।

हमारे दिगम्बर जैनसमाजमें सरस्वतीकी भक्ति करनेवाले तथा सत्यमातृभक्तोंमें अपना नाम लिखानेवाले इतने दिखलाई देते हैं, जितने शायद किसी भी समाजमें नहीं होंगे ! परंतु जब विचार करके देखते हैं, तब यथार्थ दशा देखकर दुःख होता है. महासभाका तथा अन्यान्य प्रान्तिक सभाओंका दश बारह वर्षका आन्दोलन पाठशालाओंके खोलनेमें, बडे २ प्रभावशाली जल्सा करनेमें, उपदेशकोंके घूमनेमें चाहे जितना सफल हुआ हो, परन्तु सरस्वती माताकी सेवाके विषयमें तो रंचमात्र भी लाभकारी नही हुआ है. वलिक पक्षपातरहित होकर पूछा जावे, तो इन सभाओंके द्वारा सरस्वती सेवामें कुछ न कुछ व्याघात ही पहुंचा है. छपे ग्रन्थोंका प्रचार करना जो कि सरस्वती सेवाका सबसे अच्छा उपाय है, उसपर बड़े आदमियोंकी कृपाकटाक्षसे अपना प्राण धारण करनेवाली इन सभाओंकी सदासे शनिकी दृष्टि रही आई है ! गतवर्ष बडे भारी ऊहापोहके साथ यह निश्चय हो चुका था कि, महासभाका उद्देश्य छापेका प्रचार रोकनेका नहीं होना चाहिये, तो भी सुना है कि उसके अधिकारी गुप्त रीतिसे सरस्वती प्रचारको रोकनेमें कमी नहीं करते हैं. उपदेशकोंके द्वारा छापेके ग्रन्थोंके न पढनेकी प्रतिज्ञा दिलाते हैं.

हमारी समझमें सरस्वतीदेवीकी सेवा करनेके लिये छापे सरीखा दूसरा कोई साधन नहीं है. परन्तु अभी तक यह विषय बहुत लोगोंकी समझमें विवादग्रस्त हो रहा है कि, छापा योग्य है कि नहीं. अच्छा, जाने दीजिये. परन्तु इसके सिवाय सरस्वतीकी सेवाके जो और २ मार्ग हैं, उनके लिये भी आपकी सभाओंने क्या किया है ? इस बातका वर्षोंसे आन्दोलन हो रहा है कि, जैनियोंका एक बडा भारी सरस्वतीभंडार खोला जावे, और उसमें सम्पूर्ण

ग्रन्थोंकी एक २ प्रति संग्रह की जावे. परन्तु यह भी नहीं हुआ. आप कहेंगे, इस काममें धनकी आवश्यकता है, और सत्यमातृभक्त शेठ लोग इसमें रुपया लगाना उतना जरूरी नहीं समझते हैं, जितना छापेके रोकनेके लिये एक रातदिन कोसनेवाला लेखकसमूह तथा उपदेशकमंडल स्थापित करना समझते हैं. अच्छा, इसे भी जाने दीजिये. बहुत दिनसे इस विषयका भी आन्दोलन किया जा रहा है कि, महासभाके द्वारा जगह २ के सरस्वती भंडारोंके ग्रन्थोंकी एक बडी भारी सूची ही तयार कराई जावे, जिससे हम लोग जान सकें कि, हमारे पूर्वाचार्योंके बनाये हुए कितने ग्रन्थरत्न विद्यमान हैं. परन्तु इसकी भी आजतक किसी सभाके अधिकारीने जरूरत नहीं समझी. महाविद्यालयके मूलधनके झगडेमें फंसे रहनेसे अथवा और दूसरी लडाइयोंमें मुस्तेद रहनेसे किसीको अवकाश भी नहीं हुआ.

श्वेताम्बरजैनसमाज सरस्वती सेवामें किस प्रकार तन मन धनसे दत्तचित्त हैं, इस विषयका परिचय हम अपने पाठकोंको समय समयपर दिया करते हैं. श्वेताम्बरी समाजमें छापेका विरोधी कोई नहीं है. वे अपने सैकडों ग्रन्थ प्रति-वर्ष छपा छपाकर प्रसिद्ध करनेमें लगे हुए हैं. संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंकी भाषा टीकायें तयार करवा रहे हैं, और अनेक संस्थायें स्थापित करके उनके द्वारा बहुत थोडा मूल्यमें जैनग्रन्थोंको घर घर पहुंचानेका उद्योग कर रहे हैं. हालही उनकी श्वेताम्बरजैनकान्फरेंसकी ओरसे एक **जैनग्रन्थावली** नामका कोई २५० पृष्ठ (रायल आठपेजी) का बडा सूचीपत्र प्रकाशित हुआ है. उसके उन्होंने कई भाग किये हैं. पहले भागमें सम्पूर्ण आगम ग्रन्थों तथा उनकी टीकाओं वृत्तियों अवचूरियों आदिके नाम, श्लोकसंख्या, आचार्योंके नाम, रचनेका संवत् आदि सहित दिये हैं. प्रत्येक ग्रन्थके आगे जैसलमीर, लींबडी, खंभात, अहमदाबाद, कोडाय, बम्बई, पूना आदिके भंडारोंके १६ खाते देकर बतलाया है कि, वे कहां २ के भंडारोंमें मौजूद हैं. नीचे टिप्पणीमें बहुत सी ऐतिहासिक बातें बतलाई हैं. दूसरे तीसरे भागोंमें अवशिष्ट आगम, पयन्ना, जैनन्याय, फिलासोफी, तथा औपदेशिक ग्रन्थोंकी सूची दी है, और वे कहांके भंडारमें मौजूद हैं, उसका परिचय तथा टिप्पणी आदि भी पहले भागके समान दी है. दिगम्बराचार्योंके भी बहुतसे ग्रन्थोंकी सूची दी है. इस कार्यमें कान्फरेंसने परिश्रम और धनव्यय दोनों खूब किये हैं. इसके उपलक्षमें हम कान्फरेंसकी जितनी प्रशंसा करें, उतनी थोडी है.

सरस्वतीसेवाके विषयमें श्वेताम्बरसमाजका जो उद्योग हो रहा है, उसको देखकर हम कह सकते हैं कि, वह अपनी धर्मविद्याकी बहुत शीघ्र उन्नति कर लेगा. उसके विरुद्ध हमारा दिगम्बर समाज इस विषयमें जो प्रवृत्ति दिखला रहा है, उसे देखकर यह भी कहनेमें कोई संकोच नहीं मालूम पडता है कि दिगम्बर धर्मकी उन्नति होनेमें अभी बहुत विलम्ब है. जिस समाजमें छापे जैसे अतिशय उपयोगी कामका विरोध करनेवाले प्रतिष्ठित समझे जाते हैं, और सरस्वती भंडारोंकी कोई व्यवस्था नहीं की जाती है, वह समाज अपने धर्मकी क्या खाक उन्नति कर सकेगा?

सरस्वतीसेवामें दिगम्बर समाजकी प्रवृत्ति न होनेका कारण यही मालूम होता है कि, हमारे यहां अभीतक सच्चे जीसे काम करनेवाले लोग तयार नहीं हुए हैं. और जितनी सभा सुसाइटियां हैं, वे सब मानके भूखे धनिक लोगोंको संतुष्ट करनेवाली और अशिक्षित लोगोंके हाथकी कठपुतलियां हैं. इनके द्वारा किसी प्रकारकी आशा करनी बडी भारी भूल है. जबतक धर्म और जातिके लिये जीवन अर्पण कर देनेवाले दश बीस शिक्षित पुरुष इन सभाओंका पुनः संस्कार न करेंगे, और उत्साहपूर्वक काममें न लगेंगे, तबतक ऐसा ही होता रहेगा, जैसा अभीतक हुआ है. श्वेताम्बर समाजमें काम करनेवाले तयार हो रहे हैं, और धनिक लोग उनके अनुयायी हो रहे हैं. इसीलिये वे जो चाहते हैं, सो करके दिखला देते हैं.

अब हमारे यहांके नवीन वयके उत्साही युवाओंको भी काम करनेके लिये तयार होना चाहिये. और सरस्वतीसेवा जैसे अतिशय उपयोगी और प्रथमविधेय कार्योंमें अपने जीवनका कुछ भाग अर्पण करना चाहिये.

बाबू जैनेन्द्रकिशोरजीका स्वर्गवास।

हम बडे खेदके साथ प्रकाशित करते हैं कि आराके प्रसिद्ध रईस और सुलेखक बाबू जैनेन्द्रकिशोरजीका बांकीपुरमें ता. १५ मईको स्वर्गवास होगया! आपकी मृत्युसे जैनसमाजने एक अच्छा नामी लेखक और कार्य करनेवाला धर्मसेवक खो दिया। हमारे हतभाग्य समाजमें यों ही लेखकोंकी तथा समाजकी

सेवा करनेवालोंकी कमी है, तिसपरभी विधाता अपने अत्याचार करनेसे नहीं चुकता है. ' मरे हुए को मारना ' यही कहलाता है.

बाबू जैनेन्द्रकिशोरजीका जन्म वि. सं. १९२८ की भादोंसुदी ११ को हुआ था. आपके पिता बाबू नंदकिशोरलाल जमींदार अभी जीवित हैं. आप बडे ही धर्मात्मा और परोपकारी है. खेद है कि, आपको इस वृद्धावस्थामें यह असह्य पुत्र-शोक देखना पडा. बाबू जैनेंद्रकिशोरजीने अपने पितासे छुटपनसे ही धर्मशिक्षा पाई थी, जिससे उन्होंने वयः प्राप्त होनेपर खूब ही धर्मकी सेवा की और अपने पिताके मुखको उज्वल किया. बाबू साहबने हिंदी और उर्दूके सिवाय इन्ट्रेस क्लास तक अंग्रेजीकी शिक्षा भी पाई थी. अंग्रेजीमें उनकी दूसरीभाषा उर्दू फारसी थी. इसलिये उर्दूका उन्हें बहुत शौक बढ गया था. उर्दूके आप अच्छे शायर थे. आपकी कविता बडी ही मनोहर और चुभनेवाली होती थी. उर्दूके आपने कई एक नाटक भी लिखे थे, जो कई बार खेले जा चुके हैं. पीछे २ आपकी रुचि हिन्दीकी ओर झुकी और वह अन्ततक रही. सन् १८९१ में आपकी हिंदीमें सबसे पहली पुस्तक **कमलिनी** प्रकाशित हुई. उसके पश्चात् आप बराबर हिन्दी पुस्तकें लिखते रहे. अभीतक आपकी लिखी हुई कोई तीस पैंतीस पुस्तकें छप चुकी हैं. और बहुतसी छपनेको बाकी हैं. आपकी बनाई एक **खगोलविज्ञान** नामकी सचित्र पुस्तक शिक्षा विभागमें पुरस्कारके लिये स्वीकृत हो चुकी है. **सुकमाल उपन्यास, मनोरमा उपन्यास, सोमासती प्रहसन, बारहभावना, मनोवती उपन्यास, संगीत मनोरमा** आदि बहुत सी जैनधर्मसम्बन्धी पुस्तकें भी आपने लिखी हैं.

सार्वजनिक कार्योंकी ओर आपकी शुरूहीसे रुचि थी. विद्यार्थी अवस्थामें आपने एक **ट्रेनिग क्लब** नामकी सभा और **अग्रवाल स्कूल** नामका स्कूल स्थापित किया था. अग्रवाल स्कूल अभी तक अच्छी तरहसे चल रहा है. पहले आप ही उसके हैडमाष्टर और प्रधान संचालक थे. आराकी **नागरीप्रचारिणी सभा** जिन लोगोंके प्रयत्नसे स्थापित हुई है. उनमें आप भी एक थे. इस सभाकी ओरसे एक त्रैमासिक **पत्रिका** निकलती है. उसका आपने तीन वर्षतक सम्पादन किया है. आपके समयमें पत्रिकामें अच्छे २ लेख और कविताएं छपती रही हैं.

जिस समय स्वर्गवासी बाबू देवकुमारजीके द्वारा जैनगजट प्रकाश होता था. उस समय उसके सम्पादनका कार्य आपही करते थे. जैनगजटके द्वारा आपने जैन समाजकी कई वर्ष तक सेवा की है. जैनसमाज इसके लिये आपका ऋणी है. जैनगजटका सम्पादनकार्य छोडकर भी आप जैनसमाजकी सेवासे विमुख नहीं हुए थे, किसी न किसी रूपमें समाजका कार्य करतेही रहे थे. काशीकी स्याद्वादपाठशालाके मंत्रित्वका सारा कार्य आपही करते थे. पाठशालाकी ओर आपका बहुत कुछ लक्ष्य था. बाबू देवकुमारजीके स्वर्गवाससे आपके हृदयपर बडी भारी चोट लगी थी. तबसे आपको पाठशालाकी चिन्ता बहुत बढ गई थी. हमको आशा थी कि, बाबू देवकुमारजीके दान द्रव्यसे जो सरस्वतीभंडार आदि संस्थायें खुलेंगी, बाबू जैनेन्द्रकिशोरजीके द्वारा उनके संचालनमें वडी भारी सहायता मिलेगी, परन्तु अफसोस ! सरस्वतीभंडार खुलनेके पहेलही वे बाबू देवकुमारजीके पथके पथिक हो गये ! जो नहीं सोचा था, वह हो गया. कालकी गति अचिन्त्य है.

बाबू जैनेन्द्रकिशोरजीका स्वभाव बडा ही सरल मिलनसार और निष्कपट था. आपसे जो कोई एकवार मिलता था, वह आपका मित्र हो जाता था. जैनधर्मके विषयमें आपके बहुत अच्छे ख्याल थे. उसकी उन्नतिकी ओर आपका निरन्तर ध्यान रहता था. आप आराके एक अच्छे जमींदार थे. इसलिये साहित्यसेवा और जातिसेवा करनेके लिये आपको इच्छित अवकाश मिलता था. कहते हैं, आपका अधिक समय इन्हीं कार्योंमें खर्च होता था. कुछ दिनोंसे आप बीमार रहते थे. इसलिये औषधि करानेके लिये बांकीपुर गये थे. वहीं आपका शरीरपात हो गया.

श्रीजैनेन्द्रदेवसे हमारी प्रार्थना है कि, आपकी आत्माको शान्ति प्राप्त हो और आपके समान समाजकी सेवाकरनेवाले अनेक पुरुषरत्न उत्पन्न होवें. अलमतिविस्तरेण.

मि० जैन वैद्यजीका परिचय.

जयपुरनिवासी मि० जैन वैद्यजीका पूरा नाम लालाजवाहिरलालजी वैद्य था. आपका जन्म खंडेलवाल कुलमें हुआ था. वैद्य खंडेलवालोंका एक

गोत्र है. विद्यार्थी अवस्थामें आपको सहपाठी लोग मि० जैन वैद्यके नामसे पुकारा करते थे, इसलिये यह नाम आपके असली नामसे भी अधिक प्रसिद्ध हो गया.

लाला जवाहिरलालजीने अंग्रेजीकी शिक्षा एंट्रेन्स क्लास तक पाई थी, परन्तु स्कूल छोड देनेपर आपका विद्याका व्यसन इतना बढा कि, थोडेही दिनोंमें बंगला, मराठी गुजराती उर्दू आदि भाषायें सीख लीं! संस्कृत और प्राकृतका भी अपने अभ्यास कर लिया. समाचारपत्रों तथा मासिक पत्रोंके पढनेका आपको विद्यार्थी अवस्थासे ही शोक हो गया था. जिससे आपके हृदयमें देशके हित करनेकी प्रबल लालसाने अपना अड्डा जमा लिया था.

देशका हित करनेके लिये वे हिन्दी भाषाकी उन्नति करना बहुत आवश्यक समझते थे. इसलिये उन्होंने अपने जीवनमें हिन्दीकी तनमन और धनसे खूब ही सेवा की. सर्वसाधारण लोग आपको हिन्दी हितैषियोंके अगुआ समझते थे. हिन्दीकी अनेक उपकारी पुस्तकें आपने प्रकाशित करवाई और अनेक मुफ्तमें बांटी! हिन्दीके ग्रन्थकारोंको तथा स्त्री लेखिकाओंको अनेक अच्छे २ पारितोषिक दिये. हिन्दीकी अनेक सभाओं और पुस्तकालयोंकी आर्थिक सहायता पहुंचाई. बहुतसा घाटा उठाकर भी आप हिन्दीका **समालोचक** नामका प्रसिद्ध पत्र कई वर्षतक निकालते रहे.

स्वदेशीके आप बडे पक्षपाती थे. जयपुर जैसी रियासतमें भी आपने स्वदेशीकी दुकान खोली, और स्वदेशीके प्रचारका प्रयत्न किया! कांग्रेससे आपका बडा प्रेम था. कांग्रेसकी प्रदर्शनियोंमें आप अच्छी २ वस्तुएं भेजा करते थे. बम्बई और कलकत्ताकी कांग्रेसमें वे स्वागतकारिणी सभामें शामिल हुए थे.

मि. जैनवैद्यजी जैनधर्मके पक्के अनुयायी थे. संध्याको प्रतिदिन मंदिरमें जाते थे.और शास्त्रका उपदेश देते थे. भादोंके दिनोंमे वे ऐसे उपवास करते थे कि, कभी २ बीमार हो जाते थे! पहले उन्होंने **उचितवक्ता, जैन** और **जैनप्रदीप** नामके जातीय पत्र निकाले थे, परंतु वे जैनसमाजकी उदासीनतासे बहुत दिन नहीं चल सके. इतने पर भी वे जैनसमाजकी सेवा करनेसे निराश नहीं हुए थे. गतवर्ष जब मैं देवरीमें था, तब उन्होंने मुझे समाजकी स्वतंत्रतापूर्वक

सेवा करनेके लिये एक स्वतंत्र पत्र निकालनेकी आवश्यकता दिखलाई थी, और उसके लिये मुझे जयपुर आनेको लिखा था. परंतु कारणवशमें जयपुर नहीं जा सका. उस समय सम्मेदशिखरके सरकारी अत्याचारसे उनको बडा भारी जोश आया था. वे उसका प्रतीकार करनेके लिये घोर प्रतिवाद करना चाहते थे.

जैनियोंमें शिक्षाप्रचार करनेकी ओर उनका बहुत ध्यान था. जयपुरमें एक जैनकन्यापाठशाला आपके ही उद्योगसे स्थापित हुई थी. आप अनेक विद्यार्थियोंको भोजन वस्त्रकी व्यवस्था कर देते थे. हिसारका अनाथालय पहले जयपुरमें ही स्थापित हुआ था. और इसमें आपकाही उद्योग मुख्य था. अभी आप बम्बई यूनिवर्सिटीके राजिष्ट्रारसे जैन विद्यार्थियोंके लिये छात्रवृत्ति कायम करनेके बिषयमें लिखा पढी कर रहे थे. जैन जातिके इतिहासकी भी आप एक पुस्तक लिखवा रहे थे और विन्सेन्ट स्मिथकी " जैन सूर्य आफ मथुरा " नामकी पुस्तकका हिंदी अनुवाद करवा रहे थे.

जैन वैद्यजी हिंदीके अच्छे लेखक और कवि थे. **कमलमोहिनी भंवरसिंह नाटक** और **व्याख्यानप्रबोध** आदि कई पुस्तकें आपकी लिखी हुई हैं. हिन्दीके लेखकोंने उन्हें साहित्यभूषणकी उपाधि दी थी. एशियाटिक सुसाइटी बंगाल, रायल एशियाटिक सुसाइटी ग्रेटब्रिटन और आयर्लेंड, बाम्बे टेम्परन्स कौंसिल आदि कई सभाओंके आप मेम्बर थे.

सारांश यह कि, लाला जवाहिरलालजी जैन समाजके एक भूषण थे. उन जैसे साहित्यसेवक तथा हिन्दीहितैषीसे जैनसमाज का बडा भारी गौरव था. उनकी मृत्युसे समाजकी देशकी और हिन्दीकी बडी भारी क्षति हुई है. श्रीजी उनकी आत्माको सद्गति प्रदान करैं.

विषापहार स्तोत्र ।

महाकवि श्रीधनंजयकृत संस्कृतस्तोत्रका हिन्दी अनुवाद ।

(गतांकसे आगे)

२१.

निधन बिचारे तो सब ही धनिकोंको भला देखते हैं ।

पैर तुम विन श्रीमान न कोई, धनहीनोंको लखते हैं ॥
उजियालेवाले नरको, तममें रहनेवाला जैसे ।
देख सके उजियालावाला, नहिं तमवालेको तैसे ॥

२२.

निज शरीरकी वृद्धि स्वासउच्छ्वास और पलकें झपना ।
ये प्रत्यक्ष चिन्ह हैं जिसमें, ऐसा भी अनुभव-अपना ॥
कर न सकें जो तुच्छबुद्धि जन, वे क्या जिनवर ! तेरा रूप ।
इन्द्रियगोचर कर सकते हैं, सकलज्ञेयमय ज्ञानस्वरूप ॥

२३.

" उनके पिता " "पुत्र हैं उनके" कर प्रकाश यों कुलकी बात ।
नाथ ! आपकी गुणगाथा जो, गाते हैं रट रट दिनरात ॥
चारुचित्तहर चामीकरको, सचमुच ही वे विना विचार ।
उपलशकलसे उपजा कहकर, अपने करसे देते डार ॥

२४.

हुए पराजित सभी सुरासुर, किया मोहने यह आदेश ।
तीन लोकमें पटह बजाकर, हुआ लाभ यह उसे विशेष ॥
किन्तु नाथ ! वह निबल आपसे, कर सकता था कहां विरोध ।
" वैर ठानना बलवानोंसे, खो देता है जडसे खोद " ॥

२५.

तुमने केवल एक मुक्तिका, मार्ग निहारा सुखकारी ।
पर औरोंने चार गतीके, गहन पंथ देखे भारी ॥
इससे "सब कुछ देखा हमने", यह अभिमान ठान करके ।
हे जिनवर ! नहिं कभी निरखना, अपनी भुजा उठाकरके ॥

२६

रविको राहु रोकता है, पावकको वारि बुझाता है ।
प्रलयकालका प्रबल पवन, सरितांपतिको बिचलाता है ॥

---

१ आपके सिवाय ऐसा कोई भी श्रीमान नहीं है, जो गरीबोंकी ओर देखता हो । गरीब बेचारे तो सभी श्रीमानोंको अच्छा देखते हैं । २ आत्मानुभवन । ३ सुवर्ण-सोना । ४ पत्थरके टुकडोंसे । ५ बडा नगारा । ६ यह निन्दा स्तुति है । ७ समुद्रको ।

ऐसे ही भव भोगोंको, उनका वियोग हरता स्वयमेव।
तुम्हें छोड सबकी बढ़तीपर, घातक लगे हुए यों देव ॥

२७

विन जाने भी तुम्हें, नमन करनेसे जो फल फलता है
वह आरोंको देव मान, नमनेसे भी नहिं मिलता है ॥
ज्यों मरकतको काच मानकर, करगत करनेवाला नर।
समझ सुमणि जो काच गहै, उसके सम रहै न खाली कर ॥

२८

विशद मनोज्ञ बोलनेवाले, पंडित जो कहलाते हैं।
क्रोधादिकसे जले हुओंको, वे यों 'देव' बताते हैं ॥
जैसे 'बुझे हुए' दीपकको, 'बढा हुआ' सब कहते हैं।
और कपाल क्रियाको जैसे, मंगलमयी समझते हैं।

२९

नय प्रमाणयुत अति हितकारी वचन आपके कहे हुए।
सुनकर श्रोताजन तत्त्वोंके, परिशीलनमें पगे हुए ॥
वक्ताका निर्दोषपना नहिं, जानेंगे क्यों हे गुणमाल !।
ज्वर विमुक्त जाना जाता है, सहज हि स्वर परसे तत्काल ॥

३०

यद्यपि जगके किसी विषयमें, इच्छा तेरी रही नहीं।
तौ भी निर्मल वाणि तव खिरती, यदा कदाचित कहीं कहीं ॥
ऐसा ही कुछ है नियोग यह, पूर्णचन्द्र जैसे जिनदेव !।
ज्वार बढाने जलनिधिका, नहिं होता उदित किन्तु स्वयमेव ॥

(आगेके अंकमें समाप्त)

---

१ मरकत मणिको जो कांच समझ कर ले लेता है, वह उसकी अपेक्षा नफेहीमें रहता है, जो कांचको मणि समझकर लेता है। २ हस्तगत करनेवाला ३ खाली हाथ ४ मनुष्यको ज्वर (बुखार) है. या नहीं, यह उसके स्वर (शब्द) के सुननेसे तत्कालही जान लिया जाता है। ५ जब कभी. ६ समुद्रका ज्वार (बढती) बढानेके लिये चन्द्रमा नाहीं ऊगता है।

Reg. No. B. 719

ॐ

मासिक पत्र।

देवरी निवासी श्रीनाथूरामप्रेमीद्वारा सम्पादित।

पांचवां भाग	आषाढ़— वीर नि० संवत २४३५।	अंक ९

पहले इसे पढ़िये।

जिन भाइयोंको उत्तमोत्तम लेख और चटपटे उपन्यास पढने का शौक हो, उन्हें अब भी चाहिये कि इस पत्रके ग्राहक बनें और उपहारका अपूर्व ग्रन्थ श्रीप्रवचनसार एक कार्ड लिखकर मंगा लेवें। ऐसा अच्छा ग्रन्थ इस तरह मुफ्तमें फिर नहीं मिलेगा। कार्डके आते ही एकको छोडकर पिछले सब अंक और प्रवचनसार १॥) के वेल्यूपेबिलसे भेज दिया जावेगा। यह मौका हाथसे नहीं जाने देना चाहिये।

प्रद्युम्नचरित्र सरल हिन्दी भाषामें

छपके तयार हो गया।

न्योछावर २॥)

चिट्ठी लिखनेका पता—

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय—पो० गिरगांव—बम्बई.

...नोंमक छापखाना, मुंबई

माणिकविलास—कविवर माणिकचन्दजीके उत्तमोत्तम १२५ भजनोंका संग्रह। न्यो० चार आना।

जैनभजनसंग्रह—कांधला निवासी यति नयनसुखदासजीके चुने हुए १६४ बढ़ियां भजन। न्यो० छह आना।

वसुनन्दि श्रावकाचार—मूल प्राकृत ग्रन्थ श्रीवसुनन्दिआचार्य कृत है। उसे सरल हिन्दी भाषामें अर्थ सहित छपवाया है। श्रावकाचारके कथनको बहुत विस्तारके साथ वर्णन किया है। न्यो० आठ आना।

जम्बूस्वामीचरित्र—अन्तिमकेवली श्रीजम्बूस्वामीका दोहा चौपाइयोंमें श्रीजिनदासकविका बनाया हुआ चरित्र है। सरल भाषामें है। न्यो० छह आना।

निशिभोजन कथा—दो आना. **रक्षाबधंन कथा** दो आना.
रविव्रत कथा—दो आना. **स्वानुभवदर्पण** चार आना.
विनतीसंग्रह—एक आना. **समाधिशतक** दो आना।

जैनतीर्थयात्रा—इसे बाबू ज्ञानचंदजीने दूसरी बार छपाई है. अबकी बार पहलेसे दूनी बड़ी हो गई है. बड़े आकारके २३४ पृष्ठ हैं. तीर्थयात्राके सिवाय सम्मेदशिखर, तथा गिरनारजीके नकशे, नानाप्रकारके दर्शनपाठ, सम्मेद शिखर गिरनार और निर्वाणक्षेत्रपूजा, तीर्थ करनेवालोंके लिये जरूरी बातोंका उपदेश, दवाईयोंके सैकड़ों नुसखे आदि अनेक विषयोंका संग्रह किया है. मूल्य १)

बाईस परीषहसंग्रह—इसमें भगवतीदास, रतनचन्द, नंदलाल, और भूधरदासजीकी बनाई हुई चार प्रकारकी छंदबद्ध परीषहोंका संग्रह है. ≈)

राजुलके नौ पाठ—इसमें विनोदीलालकृत ब्याहला तथा प्रश्नोत्तर, यति नयनसुखदास कृत बारहमासा. बाबूज्ञानचन्दकृत रुदन. चन्दनलालकृत राजुलकी वैराग्यभावना. विनोदीलालकृत राजुलपच्चीसी. नैनसुखदासकृत उर्दू बारहमासा. डूंगरमलकृत प्रश्नोत्तर और विनोदीलालकृत नवमंगल इस प्रकार नेमि राजुलके नौ पाठ हैं। स्त्रियोंके बड़े कामके हैं। न्यो. ।-)

जैनवनितारागिनी—यह पुस्तक बुन्देलखडकी स्त्रियोंके बड़े कामकी है. इसमें विवाहशादियोंमें गाने लायक जैन गारीं, बुंदेला वगैरह स्त्रियोंके अच्छे २ गीत संग्रह किये गये हैं. निर्लज्ज होकर घृणित गालियां गानेके बदले इन शिक्षादायक गालियोंके गानेका प्रचार करनेकी बड़ी जरूरत है. मूल्य दो आना.

श्रीअजितनाथसे लेकर श्रीमल्लिनाथ तक १८ तीर्थंकरोंका और उनके मध्यवर्ती कालके चक्रवर्ती नारायण आदि पुरुषोंका चरित्र है. शेष तीर्थंकरोंका चरित्र दूसरे भागमें प्रकाशित होगा. श्रीगुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराणके आश्रयसे उक्त पुस्तक लिखी गई है. भाषा और लेखनप्रणाली अच्छी हुई है. मराठीके प्रतिष्ठित पत्र केसरीने भी इस पुस्तककी अच्छी समालोचना की है. पांगल महाशयकी इस सफलतापर हम उन्हें बधाई देते हैं. और आशा करते हैं कि, वे मराठी भाषामें जैन साहित्यकी दिनपर दिन वृद्धि करनेके लिये जी जानसे प्रयत्न करते रहेंगे.

श्रीवादिचन्द्रसूरिका पार्श्वपुराण।

हमारा अनुवाद किया हुआ ज्ञानसूर्योदय नाटक प्रकाशित हो चुका. उसमें हमने ज्ञानसूर्योदयके कर्त्ता श्रीवादिचन्द्रसूरिके विषयमें जितनी बातोंका पता लग सका, उतनी लिखी हैं. अभी तक उनके बनाये हुए पवनदूत काव्य सुभगसुलोचनचरित, और ज्ञानसूर्योदय नाटक ये तीन ही ग्रन्थ प्राप्य थे, परन्तु इस वर्षके श्रुतपंचमीके उत्सवपर श्रीयुक्त पं० पन्नालालजीको इटावेके सरस्वतीभंडारमें उनके पार्श्वपुराण नामक ग्रन्थके भी दर्शन हुए हैं. ग्रन्थ बहुत बड़ा नहीं है. केवल १५०० श्लोक हैं. परन्तु है बहुत अच्छा. ज्ञानसूर्योदयकी भूमिका वगैरह छप चुकनेपर इसकी सूचना मिली. इसलिये ग्रन्थकर्ताके परिचयमें यह बात शामिल नहीं हो सकी. हितैषीके पाठकोंके जाननेके लिये हम ग्रन्थकी प्रशस्तिके अन्तिम श्लोक यहांपर उद्धृत कर देते हैं:—

बौद्धो मूढति बौद्धगर्भितमतिः काणादको मूकति ।
भट्टो भृत्यति भावनाप्रतिभटो मीमांसको मन्दति ।
साङ्ख्यः शिष्यति सर्वथैव क...नं वैशेषिको रंकति ।
यस्य ज्ञानकृपाणतो विजयतां सोऽयं प्रभाचन्द्रमा ॥ १ ॥
तत्पट्टमण्डनं सूरिर्वादिचन्द्रः व्यरीरचत् ।
पुराणमेतत्पार्श्वस्य वादिवृन्दशिरोमणिः ॥ २ ॥
शून्याब्दे रसाब्जाङ्के वर्षे पक्षे समुज्ज्वले ।
कार्तिके मासि पञ्चम्यां वाल्मीके नगरे मुदा ॥ ३ ॥
पार्श्वनाथपुराणस्य नानाभेदार्थ वाचिनः ।
पञ्चदशशतान्यत्र ज्ञेया श्लोकाः सुलेखकैः ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिनकी ज्ञानरूपी तलवारसे घमंडी **बौद्ध** मूढ हो जाते हैं, **कणाद** दर्शनके माननेवाले गूंगे हो जाते हैं, **भट्टके** अनुयायी सेवक हो जाते हैं, भावनाके माननेवाले **मीमांसक** मन्द हो जाते हैं, **सांख्य** शिष्य हो जाते हैं, और **वैशेषिक** दीन हो जाते हैं, वे **श्रीप्रभाचन्द्र** स्वामी जयवन्ते प्रवर्ते. उनके पट्टको अर्थात् गद्दीको शोभित करनेवाले **श्रीवादिचन्द्रसूरिने** जो कि वादियोंके शिरोमणि हैं, यह पार्श्वनाथका पुराण कार्तिक सुदी पंचमी संवत् १६४० को **वाल्मीक** नामके नगरमें बनाया. इस नानाप्रकारके अर्थ बतलानेवाले पार्श्वनाथ पुराणके १५०० श्लोक हैं.

जैनियोंका इतिहास ।

अजमेरकी स्थानकवासी जैनकान्फरेंसके आमंत्रणके उत्तरमें बड़ौदाके सुशिक्षित नरेश श्रीसयाजीराव महाराजने एक पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने इस बातपर बडा जोर दिया था कि, जैनियोंको अपना इतिहास तयार करना चाहिये. जैनियोंमें विद्वान होनेपर भी इस विषयमें प्रयत्न नहीं किया जाता है. जैनधर्म बौद्ध धर्मके बहुत पीछेका है. इस भ्रमको दूर करनेका प्रयत्न किसी जैनीने नहीं किया, किन्तु एक जर्मनीके विद्यार्थी ने किया था! माननीय महाराजके कहनेका सारांश यह है कि, जैनियोंने अपने इतिहासके विषयमें स्वयं कुछ भी प्रयत्न नहीं किया है. हमारे समाजके विद्वानोंको लज्जित होना चाहिये कि, वे इतिहास जैसे जरूरी विषयके लिये कुछ भी प्रयत्न नहीं करते हैं. कई दिन पहले पूनाकालेजके भूतपूर्व प्रोफेसर काशीनाथ बापूजी पाठकसे जब मैं मिला था, तब उन्होंने कहा था कि, " आज तक जैनियोंके सम्बन्धके अंग्रेजी मासिकपत्रों तथा रायल एशियाटिक सुसाइटी आदिके मेगजीनोंमें इतने लेख निकले हैं कि, यदि उनका संग्रह किया जावे, तो लोगोंको आश्चर्य होगा. भारतवर्षके प्राचीन इतिहासमें जैनी राजाओं, जैनी आचार्यों तथा विद्वानोंके दानपत्रों, शिलालेखों और ग्रन्थोंसे बड़ी भारी सहायता मिलती है. प्राचीन कर्नाटकी भाषापर जैनियोंका बडा भारी अधिपत्य था. कर्नाटकी भाषामें जैन विद्वानोंके हजारों ग्रन्थ मौजूद है. बेंगलोरकी गवर्नमेंट बुकडिपोकी ओरसे **कर्नाटक कवि** नामकी एक पुस्तक कानडी भाषामें प्रकाशित हुई है. उसमें जितने कवियोंका चरित्र तथा परिचय दिया गया है, उनमें अधिक भाग जैनकवियोंका ही है. " पाठक महाशयने यह भी कहा कि, " जैनी लोग प्रयत्न करें, तो

उनके इतिहासकी उपलब्ध सामग्रीसे एक अच्छा इतिहास तयार हो सकता है." हम इस विषयमें जैन यंगमेन्स एसोसियेशन और उसके सभ्योंका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं. एसोसियेशन यदि इस कार्यको अपने हाथमें लेवै और अपने विद्वान ग्रेज्युएटोंकी एक छोटीसी समितिके द्वारा जैनियोंका इतिहास तयार करानेका प्रयत्न करै, तो बहुत अच्छा हो. यह कार्य जितनी सरलता और खूबीसे एसोसियेशन कर सकेगी, दूसरोंसे उतनी सरलता तथा खूबीसे नहीं हो सकेगा.

जैनपुस्तकालय।

माननीय बडौदानरेशने जैनग्रन्थोंके एक बडे भारी संग्रह करनेके विषयमें भी सूचना दी है. हम नहीं कह सकते कि, जैन समाजपर एक प्रजाप्रिय और सुशिक्षित नरेशके उक्त संदेशेका कहां तक असर होगा. अभी तक तो इस विषयमें जो कुछ आन्दोलन किया गया है, वह सब व्यर्थ गया है. श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनोंही समाजमें पुस्तकालयकी जरूरत बतलाई जा रही है. परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ है. इसका कारण हमारी समझके अनुसार तो यही है कि, जैनियोंमें पुस्तकप्रेम और जिनवाणी माताकी सच्ची भक्ति नहीं रही है. प्राचीन ग्रन्थोंके गौरवको और उनके संग्रहके लाभको वे बहुत कम समझते हैं. जब यह समय बदलेगा, शिक्षितोंकी संख्या बढ़ेगी और पुस्तकोंके गौरवको जैनी समझने लगेंगे, तब विना आन्दोलनके ही अनेक पुस्तकालय स्थापित हो जावेंगे. जिस देशमें पुस्तकोंके पठन पाठनका प्रेम है, उस देशके एक प्रसिद्ध पुस्तकालयमें पुस्तकोंके रखनेके लिये जो आलमारियां हैं, वे यदि लम्बी करके एकके बाद एक रक्खी जाती हैं, तो उनकी लम्बाई २५ मील हो जाती है! इस पुस्तकालयमें प्रतिवर्ष ५० हजार पुस्तकें संग्रह की जाती हैं! यह पुस्तकालय इंग्लेंड के बृटिशम्यूजियममें है. और जिस देशमें पुस्तक प्रेम नहीं है, वहांके यदि किसी विद्वानको जैनधर्मके किसी ग्रन्थकी जरूरत होती है, तो वह या तो जर्मनीसे मंगाता है, या इंग्लेंडके किसी प्रोफेसरसे प्रार्थना करके अपनी इच्छा पूर्ण करता है!

अन्तरीक्षके झगडेका अन्त।

अन्तरीक्षमें दिगम्बरी और श्वेताम्बरियोंका जो मारपीटका मुकद्दमा चल रहा था, उसका फैसला हो गया. श्वेताम्बरियोंके १९ आदमियोंमेंसे १० छोड दिये गये

और शेष ९ पर ४५०) जुर्माना हुआ. इसी प्रकार दिगम्बरियोंके ३ आदमी निर्दोष छोड दिये गये और शेष ५ पर पचीस पचीस रुपया जुर्माना हुआ. इस मुकद्दमेमें दिगम्बरियोंके कोई १५०००) और श्वेताम्बरियोंके कोई तीस पैंतीस हजार इस प्रकारसे कुल ५० हजार रुपये खर्च हो गये. दोनों सम्प्रदायोंके अगुओंका चित्त अब अच्छी तरहसे स्वस्थ हो गया होगा. उन्हें सोचना चाहिये कि, इन ५० हजार रुपयोंका क्या उपयोग हुआ है? यदि ये ही रुपये समाजकी विद्यावृद्धि बढानेके काममें खर्च किया जाता, जिसके विना कि, ये सब कलह कांड होते है, तो कितना अच्छा होता. उधर ५० हजार खर्च करनेपर भी इतना लाभ नहीं हुआ कि, आगेके लिये शान्ति हो जाती. तीर्थमें परस्परकी लडाईका कारण ज्योंका त्यों बना है. आज एक मुकद्दमेका फैसला हो गया, कौन कह सकता है कि, कल फिर दूसरा तयार नहीं होगा? इस मुकद्दमेसे दोनों सम्प्रदायवालोंको चेतना चाहिये और इन रातदिनके झगडोंसे मुक्त होनेका कोई प्रयत्न अवश्य करना चाहिये. शिखरजीका मुकद्दमा शान्त होता है, तो मक्सीजीका शुरू हो जाता है. मक्सीजीका समाप्त होता है, तो गिरनारजीका नम्बर आता है, और गिरनारजीके पीछे अन्तरीक्षमें कुरुक्षेत्र बनता है. सारांश यह कि, दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायका एक न एक मुकद्दमा चलता ही रहता है, और उसमें प्रतिवर्ष इतना रुपया खर्च हो जाता है, जितनेसे एक बडा भारी विद्यालय चल सकता है! जैन समाजके इस पारस्परिक कलहको देखकर दया आती है. न जाने इस अविद्यासे जैनियोंका पिंड कब छूटेगा.

आर्यसमाज और विधवाविवाह।

गत २४ जूनके **आर्यमित्रमें** लखनऊकी एक **विद्यावती सेठ** नामकी महिलाका बडा ही प्रभावशाली लेख प्रकाशित हुआ है. उसमें उसने बडी विद्वत्ताके साथ सिद्ध किया है कि, स्वामी दयानन्दने विधवाविवाहकी आज्ञा कदापि नहीं दी है. यह सब विषयी जीवोंकी पापवासनाका परिणाम है. सच्चे आर्य पुरुषोंको इस पाप प्रचारको रोकना चाहिये और भारत वर्षके पातिव्रत्य धर्मकी रक्षा करनी चाहिये. श्रीमती विद्यावतीके लेखका सार भाग हम अपने पाठकोंके जाननेके लिये यहांपर उद्धृत करते हैं:—

"भारत वर्षकी स्त्रियां अबतक भी अपने पातिव्रत्य धर्मके लिये प्रसिद्ध हैं. परन्तु कुछ स्वार्थी लोगोंने अपने सुखके लिये उनके गौरव तथा मानका कुछ भी विचार

न करके धर्म और समाजसुधारकी आडमें उनको धर्मभ्रष्ट करनेका बीडा उठाया है . विधवाविवाहकी प्रथा स्त्रियोंके सुखके लिये अथवा उन्हें व्यभिचारसे बचानेके लिये निकाली गई है. यदि किसीका यह ख्याल हो, तो वह गलत है. सुख क्या वस्तु है ? क्या विवाह से ही सुख होता है और सुखका क्या कोई दूसरा मार्ग नहीं है ? पूर्व कालके भीष्मपितामह आदि जो आजन्म ब्रह्मचारी रहे, वे क्या सुखी नहीं थे ? बात यह है कि, जिस मनुष्यकी वृत्ति जिस कार्यकी ओर झुकती है, उसको उसीमें सुख और उसके अभावमें दुःख प्रतीत होता है. पुरुष लोग स्वयं तो स्त्रीविना नहीं रह सकते हैं. चाहे वृद्ध हों, चाहे लड़के बच्चेवाले हों, मरते मरते तक विवाह करते जाते हैं. इस लिये अपने इस दुष्कर्मको अच्छा बनानेके लिये वे स्त्रियोंको भी अपने जैसा बनाना चाहते हैं, जिसमें फिर उनको कोई बुरा न कहे. परन्तु यथार्थमें इसे कुलटा स्त्रियों और कामी पुरुषोंके सिवाय कोई अच्छा नहीं कहेगा. इसी तरह विधवाविवाहसे व्यभिचार भी कम नहीं हो सकता है. क्योंकि जो सधवायें हैं, जिनके पति मौजूद है, वे भी तो व्यभिचार कराती है ! फिर उनके व्यभिचार रोकनेके लिये आप क्या उपाय करेंगे ? क्या जिन जिनको वे चाहती हैं, उन उनके साथ उनका विवाह करा दिया जावेगा ? यदि नहीं करावेंगे, तो उनके आत्माको दुःख होगा. और फिर स्त्रियोंके सुख पहुंचानेका आपका उद्योग निष्फल हो जावेगा.

स्वामी **दयानन्द सरस्वती**ने विधवाविवाहका खंडन किया है. उन्होंने कहीं भी इसकी आज्ञा नहीं दी है. वे स्त्री और पुरुष दोनोंके पुनर्विवाहको बुरा बतला गये हैं. अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुषके पुनर्विवाहके सिवाय उन्होंने भुक्तभोगियोंके पुनर्विवाहकी कहीं भी आज्ञा नहीं दी है. ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंमें क्षतयोनि स्त्री और क्षतवीर्य पुरुषोंके पुनर्विवाहका तो बिलकुल निषेध किया है. इसके सिवाय स्वामीजीने जो नियोगका विधान किया है, वह आपद्धर्म है. वह कोई अच्छा कर्म नहीं है, जिसे आर्यसमाजी बलात्कारसे अथवा लोभ दिखाकर करें. और उस नियोगका अभिप्राय केवल वंशकी रक्षा करना है, न कि पशुतुल्य कामसेवा करना. विधवा स्त्री यदि उसकी इच्छा वंश रक्षा करनेकी, हो तो, किसी विधुर (जिसकी स्त्री मर गई हो) के साथ नियोग करके गर्भ धारण कर सकती है. परन्तु फिर उससे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रख सकती है. और सो भी यह कर्म श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य नहीं बतलाया है.

जब स्वामीजी पुनर्विवाहके इतने प्रतिकूल हैं, और वेदोंसे पुनर्विवाह विहित नहीं है, तब यह पातिव्रत धर्मको डुबानेवाली रीति चलाकर आर्य नामको क्यों कलंकित करते हो ? अविद्या अंधकारमें पडी हुई स्त्रीजाति जिस अधर्मकी ओर झुकी हुई है, उसको क्या आप विधवाविवाहसे रोक सकते हैं ? क्या जिन यूरोपादि देशोंमें स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये पुनर्विवाहकी स्वतंत्रता है, वहां भ्रूणहत्या आदि अत्याचार यहांसे भी अधिक हृदयको कंपित करनेवाले नहीं होते हैं ? विचारो, सोचो, **धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः** धर्मका नाश करनेसे नष्ट धर्म मनुष्यका नाश कर देता है, और वही धर्म रक्षा करनेवालोंकी रक्षा करता है. धर्मकी आडमें आप इस पापकार्यका प्रचार कभी नहीं कर सकेंगे. सच्चा आर्य वही है, जो आर्यधर्मसे विपरीत चलनेवाले पाखंडीको द्विजकुलसे च्युत कर देवे. यदि ऐसा न होगा, तो देशका बडा भारी अकल्याण होगा. स्त्रीजाति अबला होकर भी समयपर बडी प्रबला हो जाती है. इसलिये सावधान रहिये. यदि स्त्रियोंके हाथमें यह पुनर्विवाहरूपी शस्त्र दिया गया, तो फिर आपको भारतवर्षके पातिव्रत धर्मका कहीं पता भी नहीं चलेगा. पश्चिमी देशोंकी नाई यहां भी व्यभिचार, भ्रूणहत्या, कुलका नाश, अधर्म और अशान्ति फैल जावेगी.

स्त्री जाति आपसे पुनर्विवाहके बदले यह भिक्षा चाहती है कि, आप उसके लिये धार्मिक शिक्षाका प्रबन्ध कर दें, विधवाश्रम खोल दे, जिसमें विधवायें अच्छी शिक्षा प्राप्त करके स्वयं दुःखसागरसे बचैं और अपनी प्रिय बहिनोंको भी जो अविद्या अन्धकारमें पड़ी हुई दुष्कर्ममें प्रवृत्त होकर नरकगामिनी होती हैं, पापसे बचावैं और सबको यह दिखला सकें कि, भारत भूमिकी स्त्रियां पूर्व समयमें जैसी पतिव्रता विदुषी धार्मिका और इन्द्रियोंको जीतनेवाली होती थी, अब भी वैसी ही हैं. जगह २ ऐसी पाठशालायें खोलना चाहिये, जिनमें विधवाओंको उत्तम और उच्चशिक्षा दी जावे. क्योंकि आज कलके लोग अपनी कन्याओंको सोलह वर्षसे अधिक अविवाहित नहीं रख सकते है. और विवाह हो जानेपर उन्हें उच्च शिक्षा नहीं दे सकते हैं. क्योंकि उन कन्याओंको और भी गृहस्थीके झगडे लग जाते हैं. इससे यदि हिन्दू विधवायें धार्मिक और उच्चशिक्षा पावें, तो एक तो वह अपने जीवनको कृतार्थ कर सकैं और अच्छी अध्यापिकायें भी तयार हो जावैं, जिनकी कि आज कल बहुत जरूरत है. जब ऐसी विधवास्त्रियें शिक्षित हो जावेंगी, तब वे पूर्वकालके सदृश अब भी शिक्षाका प्रबंध करेंगी और

जिस कार्यके रोकनेके लिये आप विधवाविवाहका प्रचार करते हैं, उसकी भी कुछ आवश्यकता न होगी. और भारतसे पातिव्रत धर्मका लोप भी न होगा." विधवाविवाहसे देशका उद्धार समझनेवालोंको एक तेजस्विनी आर्यमहिलाके इस लेखपर विचार करना चाहिये.

एक अपूर्व काव्य।

ज्यों २ खोज की जाती है, त्यों २ जैन विद्वानोंके बनाये हुए एकसे एक उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्राप्त होते जाते हैं. और यह श्रद्धान दृढ होता जाता है कि, जैनियोंका साहित्य कितना बड़ा है, और उसके कैसे २ रत्न कहां २ कैसी अवस्थामें पडे हुए हैं, इसका कुछ ठिकाना नहीं है. विदेशीराजाओंके अत्याचारोंसे और मध्यकालीन अज्ञान अंधकारके प्रभावसे जो ग्रन्थरत्न सदाके लिये लुप्त हो गये हैं, उनकी तो कुछ गिनती ही नहीं है परन्तु जो जीर्ण शीर्ण अवस्थामें किसी तरह अब तक बचे बचाये हैं, वे भी थोडे नहीं हैं. राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्दने अपनी इतिहासतिमिरनाशकमें आजसे २५ वर्ष पहले लिखा था कि, डाक्टर बुल्हरने अकेले बम्बई प्रान्तमें जैनियोंके १५०००० ग्रन्थोंका पता लगाया है. अफसोस है कि हमारा जैनसमाज अब तक भी अपने पूर्व पुरुषोंकी संग्रहकी हुई उक्त सम्पत्तिकी रक्षाके लिये कुछ प्रयत्न नहीं कर सका है.

बसवा जिला जयपुरके श्रीयुत पं० सुन्दरलालजीकी कृपासे हमको एक **प्राणप्रिय** नामका छोटासा काव्य प्राप्त हुआ है. काव्यका जैसा नाम है, यथार्थमें वह है भी वैसा ही. श्रीधर्मसिंहाचार्यके शिष्य मुनिरत्नसिंह उक्त काव्यके बनानेवाले है. काव्यमे कुल ४९ श्लोक हैं, और उनके आन्तिमचरण भक्तामर स्तोत्रके चौथे चरण सरीखे हैं. अर्थात् भक्तामर स्तोत्रके प्रत्येक श्लोकके चौथेचरणकी समस्या लेकर यह प्यारा काव्य बनाया गया है. भक्तामर स्तोत्रकी समस्यापूर्ति और भी कई विद्वानोंने की है, परन्तु जो खूबी जो सरसता जो मनोहरता इस काव्यमें आई है, वह किसीमें नहीं है. आश्चर्य यह है कि, भक्तामरस्तोत्र भक्तिप्रधान काव्य है. और यह शृंगारप्रधान रसकाव्य है. श्रीमती राजीमती अपनी सखियोंके साथ श्रीनेमिनाथ भगवानके पास गई है और प्रार्थना करती है कि, 'यह अवस्था दीक्षा लेनेकी नहीं है, विषयसुख सेवनका

समय है, मैं तुम्हारे वियोगमें मर रही हूं, मुझे हृदयसे लगाकर जलती हुई कामाग्निको शीतल करो, इत्यादि. अन्तमें भगवानने संसारकी असारता दिखलाकर राजीमतीको दीक्षित कर दिया है, और फिर उसने तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त किया है.

प्राणप्रिय काव्यमें बस इतना ही कथा भाग है. परन्तु कविराज रत्नसिंहने इतनेमेंही कवित्वकी पराकाष्ठा दिखला दी है. पाठकोंके मनोरंजनके लिये हम यहांपर थोडेसे श्लोक अर्थसहित प्रकाशित करते हैः—

तत्किं वदामि रजनीसमये समेत्य
चन्द्रांशवो मम तनुं परितः स्पृशन्ति।
दूरे धवे सति विभो परदारशक्तान्
"कस्तान्निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम् ॥

राजीमती कहती है, "मैं क्या कहूं. रातको चन्द्रमाकी किरणें (कर) मेरे शरीरको सब ओरसे स्पर्श करती हैं, मेरा आलिंगन करती हैं. परन्तु हे विभो! क्या किया जावे? पतिके दूर रहनेपर पराई स्त्रियोंमें आसक्त रहनेवाले पुरुषोंको स्वच्छन्दतापूर्वक संचार करनेसे कौन रोक सकता है?" देखिये, कैसा गहरा ताना है?

पूर्वं मया सह विवाहकृते समागाः
मुक्तिस्त्रिया त्वमधुना च समुद्यतोसि।
चेच्चञ्चलं तव मनोऽपि बभूव हा तत्
" किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥

अर्थात्—हे नाथ! पहले तो आप मेरे साथ विवाह करनेके लिये आये थे और अब मुक्तिस्त्रीसे विवाह करनेके लिये उद्यत हुए हो! यदि आपका मन भी इस तरह चंचल हो गया, तो क्या यह सुमेरुपर्वतका शिखर चलायमान हो जावेगा, ऐसा समझना चाहिये?

गोरोचनारुचिरगौरतराङ्गयष्टि-
मेनां विहाय कथमाचरसि व्रतं भो।
त्यक्त्वा सुधारसमहो बत भाग्यलभ्यं
" क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥

सखियां कहती हैं, "हे नेमिकुमार! इस गोरोचनके समान रुचिर अतिशय गौरवर्णी राजीमतीको छोडकर तुम क्यों व्रत धारण करते हो? भला, भाग्यसे पाये हुए सुधारसको छोड़कर समुद्रके खारे पानीको कौन पीना चाहता है?"

दोःकन्दलीग्रथितगाढतरोपगूढ-
मन्योन्यचुम्बितमुखेन सखे प्रकामम्।
सङ्गेन ते विलयमेति वियोगदुःखं
"सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥

अर्थात्—हे सखे! जिसमें भुजलताओंसे अतिशय गाढ आलिंगन और परस्पर मुखचुम्बन होगा, तुम्हारे उस यथेच्छ समागमसे—संयोगसे वियोगरूपी दुःख इस तरह विलयमान हो जावेगा, जिस तरह रातका अंधकार सूर्यकी किरणोंसे नष्ट हो जाता है.

यदि अवकाश मिला, तो हम इस काव्यको पद्यानुवाद और हिन्दी भावार्थ-सहित बहुत शीघ्र प्रकाशित करेंगे.

प्रायश्चित्त।

(१)

प्रायः पन्द्रह वर्ष पहलेके भारतवर्षमें और वर्तमान भारतवर्षमें बहुत कुछ अन्तर हो गया है. उस समय प्रत्येक विषयमें अंग्रेजोंका अनुकरण करनेमें ही शिक्षितसमाज अपनी परम उन्नति समझता था, आज वह बात नहीं रही है. इस समयका शिक्षितसमुदाय समझने लगा है कि, जब भारत-वासी अपनी प्राचीन वर्णव्यवस्था तथा धर्मव्यवस्थाको फिरसे सजीव करेंगे, तभी उनकी उन्नति होगी. पश्चिमके देशोंके आचार विचारकी हवा इस देशके लिये स्वास्थ्यप्रद नहीं है. राष्ट्रीय पक्षके प्रसिद्ध नेता श्रीयुक्त बाबू **अरविन्द-घोषके कर्मयोगी** नामक प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रका अवतार इसी लिये हुआ है. परन्तु जिस समयकी घटना हम लिख रहे हैं, उस समयकी शिक्षाने लोगोंका निजत्व नष्ट कर दिया था. शिक्षित कहलानेवाले लोग अपने देश

---

१ बंगला साहित्यकी श्रीजलधरसेन महाशय लिखित कहानीका छाया-नुवाद।

समाज धर्म आदिका अभिमान खोकर पराये बननेमें ही अपना सौभाग्य समझते थे. इस समय भी ऐसे लोगोंका अभाव नहीं है. परन्तु अब जमाना बिलकुल बदल गया है.

मेरठके डिपुटी कमिश्नर लाला बनबारीलाल मित्तल गोत्री अग्रवाल थे. परन्तु आपका यह नाम आपके कुटुम्बियोंके सिवाय बहुत थोडे लोगों को मालूम था. आप कहलाते थे. Mr. B. L. Mental. बी. एल. मेंटल. और हैट कोट, पाटलून, टाई, कलर आदि धारण करके आप अपनेको गौरागोंसे किसी भी बातमें कम नहीं समझते थे. परन्तु जिन लोगोंने आपको अपने नेत्रोंसे देखा था, तथा आपका बोलचाल सुना था, उन लोगोंने तो यह निश्चय किया था कि, आप नेटिव क्रिश्चियन हैं.

यद्यपि मेंटल साहबने अपने चरण कमलोंसे श्वेतद्वीपको पवित्र नहीं किया था, तो भी आपके साहिबी ठाट की न्यूनता इस देशके साधारण साहबों तथा देशी लोगोंकी नजरमें नहीं आ सकती थी. असली साहबीपनका लक्षण क्या है. यह बात यहांके बडेसे बडे जमींदारसे लेकर चपरासी तक नहीं जानते थे. इसके सिवाय उन्होंने जिन साहब लोगोंके साथ घनिष्ट सम्बन्ध बढाकर अपनेको धन्य मान रक्खा था, वे भी आपकी पीठ पीछे आपकी प्रशंसा किया करते थे.

डिपुटीसाहब अपने बंगलेमें, बाजारमें तथा तम्बूमें जो साहिबी स्वांग बनाते थे, उससे सर्व साधारणका कोई सम्बन्ध नहीं था. उससे उनके खानसामा तथा अन्य अर्दली लोग ही समय समयपर आफतमें पड़ते थे. परन्तु अदालतमें पहुंचकर तो आप अपने साहिबी स्वांगपर कलश चढा देते थे. उस दृश्यको देखकर मोरके पंखे लगाकर मोर बननेवाले कौएकी कहानी याद आ जाती थी. साहब बहादुर गवाही लेते समय अंग्रेजीमें प्रश्न करते थे. पेशकार उसकी हिन्दी करके गवाहको समझता था और गवाह जो उत्तर देता था. उसका फिर अंग्रेजी अनुवाद करके साहबको सुनाता था. ऐसा किये विना साहब बहादुर गवाहकी बात समझ नहीं सकते थे. देशी कस्तान तो हिन्दी भाषा अच्छी तरह समझ लेते हैं. फिर डिपुटी साहब हिन्दीको इस तरह क्यों भूल गये? इसका उत्तर एकबार स्थानीय फौजदारी अदालतके मुख्तार लाला

पारसदासजीने दिया था कि, " डिपुटी साहब बालकपनेमें गधीका दूध पीकर मनुष्य हुए हैं. माताके दूधका स्वाद उन्हें कभी नहीं मिला है."

अपने अंत:पुरमें भी डिपुटी साहबने समाजसंस्कारका दीप प्रज्वलित कर रक्खा था और उसके प्रखर प्रकाशमें उनकी गृहिणीने ओढनी चादर तथा लहंगा छोडकर गाउन और बूट धारण किये थे, परन्तु बांसकी अपेक्षा उसकी डालियां ज्यादा मजबूत होती हैं; इस उक्तिके अनुसार डिपुटी साहबकी एकलौती लाडली कन्या **सुमति** उर्फ **सोफीने** अपने बीबियाना ठाटसे पिता माताको भी परास्त कर दिया था. सईस कोचमेन अर्दली बेहरा सबही उससे '**मिस बाबा**, कहते थे. कुरसी टेबिलके विना मिस सोफीका आहार नहीं होता था और कांटे चमचेके विना मुहमे अन्नका ग्रास नही जाता था. ईसा मसीहका पवित्र उपदेश देनेवाले पादरी आदि उच्च श्रेणीके साहब लोगोंकी ललनाओंका आदर्श देखकर मिस सोफी ऐसी मेमसाहबा बन गई थी कि, उसे देखकर वे ललनायें मनही मन सोचती थीं कि, यदि साबुनके निरन्तर रगडनेसे इसका पक्का रंग बदल जाता, तो न जाने कितने मसीहके भक्त इसके प्रेममें लट्टू होकर खाक छानते फिरते.

(२)

भारतवासी बालिकायें हजार मेम बन जावें, और लेटे लेटे–बैठे बैठे नाविल (उपन्यास) पढ पढ कर दिन निकाला करें, परन्तु यौवन उनके शरीरमें अपने आधिपत्यके चिन्ह प्रगट किये विना नहीं रहता है. मिस सोफीने जब सत्रहवें वर्षमें पदार्पण किया, तब एकदिन उसकी माके हृदयमें चिन्ताका उदय हुआ. उसने कुछ रुखाईके साथ झुंझालाकर डिपुटी साहबसे पूछा, " लडकीको क्या आप अभी तक छोटी समझते हैं, जो विवाह के लिये कुछ चिन्ता नहीं करते हैं ? ,, डिपुटी साहब उस समय एक गायकी चोरीके मुकदमेंका फैसला लिखनेमें व्यस्त हो रहे थे. श्रीमतीकी झुंझलाहटसे उनके हाथमेंकी कलम छूट पड़ी. वे गाय चुरानेवाले मुजरिमसे भी ज्यादा भयभीत हो गये.

इसके पश्चात्, सोफीके विवाहके लिये वरकी तलाश होना शुरू हुई. डिपुटी साहबने बडे प्रयत्नसे विश्वविद्यालयके तीन बी. एल. और पांच एम. ए. वर तलाश किये. किन्तु सोफीने एक २ करके सबको फेल कर दिया. उसने अपनी मासे साफ कह दिया कि, एक बी. एल. तीन वर्षतक अदालतकी च-

क्कीमें जुत कर बहुत भाग्यवान होता है, तो मुन्सफीका उहदा पा सकता है और एक एम. ए. का साधारण मूल्य सौ रुपया होता है. (इस समय और भी कम) इस लिये केवल विश्वविद्यालयकी डिगरी पाये हुए यंगमेनको मैं अपने जीवनका पार्टनर (हिस्सेदार) नहीं बना सकती हूं. इससे मेरी लाइफ (जीवन) नष्ट हो जावेगी. यथासमय यह बात डिपुटी साहबके कानोंतक पहुंच गई.

डिपुटी साहबको अब अपनी दृष्टि बैरिष्टरोंकी ओर फिराना पड़ी. मेरठमें उस समय कोई बैरिष्टर नहीं थे. परन्तु कभी २ वहांके धनिक लोग अपने मुकद्दमोंमें दूसरे स्थानोंके जूनियर बैरिष्टरोंको लाते थे. यदि वे अविवाहित होते थे, तो हमारे डिपुटी साहब उन्हें निमंत्रण करके अपनी स्त्री और कन्यासे मुलाकात कराये विना नहीं जाने देते थे. परन्तु उससे बावर्चीके खर्च बढ़ने तथा अन्य सत्कार कार्योंमे धन नष्ट होनेके सिवाय डिपुटी साहबको कुछ भी लाभ नहीं होता था. अतिथि लोग उनकी सोफीके साथ सभ्यतापूर्वक करमर्दन (शेक हैन्ड) करके चले जाते थे.

अन्तमें अन्य उपाय न देखकर मि० मेंटल एक वर्षकी फर्लो (छुट्टी) लेकर कुछ दिनके लिये कलकत्तेके निवासी बनकर रहे. विलायतसे लौटनेवाले युवकोंके साथ जिन क्लबोंका विशेप परिचय रहता था, उन सबमें आने जाने लगे. विलायतसे लौटे हुए लोगोंके साथ मित्रता करके उनका निमंत्रण वगैरह भी करने लगे और इस कारण उनकी एक महीनेकी तनख्वाह दश दिनमें खर्च होने लगी. परन्तु सब व्यर्थ. विलायतसे लौटे हुए सिविलियन इजीनियर बैरिष्टर और डाक्टर तो बहुत बडी बात है. प्रोफेसरों सरीखे निरीह जीव भी मिस सोफीके साथ विवाह करनेके लिये राजी नहीं हुए. दो एक मुकद्दमोंसे खाली बैरिष्टरोंको तथा रोगी न पानेवाले डाक्टरोंको प्रलुब्ध करनेकी भी चेष्टा की गई. यद्यपि उन्होंने आंखोंके संकोचसे समक्षमें ' हां न, कुछ उत्तर नहीं दिया. परन्तु अपने मित्रोंके द्वारा कहला भेजा कि, मिस सोफीका वर्ण और समाजिक शिष्टाचार हमारे समाजमें चलाना कठिन है. मि० मेंटल हताश होकर मन ही मन क्रोधकी आगसे झुलस गये. एक वर्षकी छुट्टी शीतकालके दिनोंके समान देखते २ पूरी हो गई.

डिपुटी साहबने एक नवीन युक्ति सोची. उन्होंनें तत्कालही स्टेट्समन और डेलीन्यूजमें एक नोटिस दिया कि, "विश्वविद्यालयकी उच्च शिक्षा पाया

हुआ कोई भी युवा यदि मेरी कन्याके साथ पाणिग्रहण करेगा, तो उसे मैं वैरिष्टरी पढनेके लिये अपने खर्चेसे विलाययत भेज दूंगा। "B. C/o Manager इस ठिकानेसे दरख्वास्त भेजना चाहिये।,, तयार वैरिस्टर नहीं मिल सकते हैं. इसलिये अब किसीको वैरिष्टर बनानेसे ही सोफीका सम्बन्ध ठीक होगा, इस विचारसे डिपुटी साहबने उक्त विज्ञापन दिया था.

अबकी बार डिपुटी साहबकी आशा सफल हो गई. बेकार ग्रेज्युएटोंकी दरख्वास्तोंपर दरख्वास्तें आने लगी. सोफीने स्वयं पति चुननेका भार ग्रहण किया. डिपुटी साहबके यहां सोफीकी परीक्षामें पास होनेकी आशासे बहुतसे जेंन्टलमेन आये और अपनासा मुंह लिये चले गये. आखिर कुंजविहारीलाल गोयल एम. ए. का भाग्य प्रसन्न हुआ. बहुत कुछ सोच समझकर सोफीने उन्हें ही अपना स्वामी बनाना स्वीकार किया.

विवाह आर्यसमाज विधिसे हुआ अथवा ब्राह्मविधिसे हुआ, यह हम नहीं कह सकते, पर मि. कुंज विहारीलालके साथ मिस सोफी अर्थात् सुमति देवीका विवाह हो गया, इसमें संदेह नहीं है.

विवाह तो हो गया, परन्तु मिलन नहीं हुआ. मिसेस गोयल अपने एम. ए. पतिको स्पष्ट शब्दोंमें समझा दिया कि यद्यपि सामाजिक हिसाबसे मैंने मिसेस गोयल नाम धारण कर लिया है, परन्तु वैरिष्टर होकर आनेके पहले मेरा आपका दाम्पत्य सम्बन्ध नहीं हो सकता है. मि० कुंजविहारीने इस प्रस्ताव-का कुछ भी प्रतिवाद नहीं किया और एक पक्षके भीतर ही इंग्लेंडके लिये प्रस्थान कर दिया.

(३)

ऐसी मेमके मिजाजकी धर्मपत्नी भाग्यमें लिखी है, लाला कुंजविहारीलाल यह बात पहले नहीं जान सके थे. यदि जानते तो वे ऐसा विवाह कभी नहीं करते. यह तो उन्होंने देख लिया था कि, लड़की काली है, परन्तु दश हजार रुपयेके लोभके कारण उन्हें इस सम्बन्धमें कुछ ठगाई नहीं समझी थी. यह कौन जानता था कि, वह श्यामांगी उनके साथ दाम्पत्य सम्बध करना भी अस्वीकार कर बैठेगी ! कुंजविहारीलालका जन्म देहलीके एक प्रतिष्ठित घरानेमें हुआ था. इसलिये वे इस अपमानको सहन नहीं कर सके. परन्तु इस विषयमें उन्होंने किसीसे कुछ नहीं कहा. जहाजमें पैर देते ही कुंजविहारीलालने प्रतिज्ञा

की, कि, चाहे जो हो, मैं इसका बदला चुकाये विना नहीं रहूंगा. किस प्रकारसे बदला चुकाया जावेगा. इस का भी उन्होंने निश्चय कर लिया. इससे उनका मन कुछ संतुष्ट हुआ.

विलायतमें वैरिष्टरी पढनेके लिये खर्चकी कमी नहीं हुई. डिपुटी साहब उन्हें नियामित रूपसे २५०) मासिक भेजने लगे, कुंजबिहारीलाल खूब जी लगा कर कानून पढ़ने लगे.

सामाजिक शिष्टाचारके ख्यालसे कुंजविहारीलालने इग्लेंडमें पहुंचकर अपनी श्रीमतीको एक दो पत्र लिखे थे. उसके उत्तरमें सोफीने लिखा था, "मेरे पिताने आपको अपना कष्टसे कमाया हुआ धन खर्च करके विलायत भेजा है. इस लिये वहांपर आपका सबसे प्रथम कर्तव्य यही है कि, जी लगाकर विद्याध्ययन करें. वैरिष्टरी पास करनेके पहले मैं आपका प्रेमपत्र पानेके लिये उत्कंठित नहीं हूं. कुंजविहारीलालको यथासमय उक्त पत्र मिल गया. उसको उन्होंने बडे भारी यत्नसे अपने ट्रंकमें बंद करके रख लिया. उत्तर नहीं लिखा. सोफीने भी उन्हें और कोई पत्र नहीं लिखा. डिपुटी साहब महीनेके अन्तमें अपने कुटुम्बके कुशल समाचारोंकी सूचना दे दिया करते थे.

दो वर्षके पीछे मि० गोयल बडी भारी प्रशंसाके साथ वैरिष्टरीकी आन्तिम परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये. भारतके समाचार पत्रोंमें परीक्षाफल प्रकाशित होनेके पहले ही उन्होंने अपने श्वसुरको एक तार द्वारा यह शुभ सम्वाद भेज दिया और स्वदेश यात्राके लिये रुपये भेजनेकी भी सूचना दे दी. मि० मेंटलने उसी समय टेलीग्राफके द्वारा ५००) का मनीआर्डर भेज दिया.

दूसरी मेलमें सोफीका एक पत्र मि० गोयलके पास पहुंचा. उस समय वे इग्लेंडसे स्वदेशको रवाना होनेकी तयारी कर रहे थे. पत्रको देखते ही उन्होंने समझ लिया कि, सोफीका पत्र है. उसे दो तीन वार लौट फेरके देखा, और फिर लाल स्याहीसे बडे २ हरफोंमें लिख दिया, "Refused—A Goyal" डेड लेटर आफिसकी चौखूंटी मुहरोंसे सुसज्जित होकर जब यह पत्र सोफीके पास पहुंचा, तब उसके हृदयमें इस बातकी कल्पना भी नहीं थी कि, मेरे सुदीर्घ प्रेमपत्रकी ऐसी दुर्दशा होगी. अस्तु. डेड लेटर आफिसका बादामी रंगका लिफाफा फाड़ते ही टेढ़े२ अक्षरोंसे लिखा हुआ मि०गोयलके नामका पत्र बाहिर आ पडा. सोफीने सोचा था, इस पत्रके पहुंचनेके पहले ही मि० गोयल स्वदेशको रवाना हो गये होंगे.

इसलिये यह पत्र उन्हें नहीं मिल सका होगा. परन्तु यह भ्रम बहुत समय तक नहीं रहा. पत्रके ऊपर लाल स्याहीसे बडे २ अक्षरोंमें Refused और उसके नीचे A. Goyal की सही देखकर सोफीका माथा भन्ना गया. कुंजबिहारीलालकी वह साहबी सही अपने अक्षररूपी दांत दिखा दिखा कर सोफीको चिढ़ाने लगी—खिजाने लगी.

सोफी पत्रको लेकर शीघ्र ही अपने शयनागारमें चली गई. उसके पैरोंके नीचेकी पृथिवी घूमती थी, नेत्रोंके साम्हने अंधेरा छा गया था, और सारा शरीर पसीनेसे तर हो गया था. पत्रको बिछौनेपर डालकर वह झरोखेकी राहसे बाहरकी ओर देखने लगी. सोफीका पिता उससमय सब डिवीजनका कार्यसंचालक हाकिम था. नदीके किनारे घाटके ऊपर ही सब डिवीजन आफिसका बंगला था, प्रभातका समय था, पीली २ धूप नदीके जलमें पड़कर उसके साथ नृत्य करती हुई क्रीड़ा करती थी, नदीके किनारे सैकडों स्त्री पुरुष परस्पर विनोद वार्ता करते हुए जा रहे थे, प्रवासी लोग विदेशसे आशाकी पाशमें बंधे हुए नौकाओंके द्वारा अपने घर २ लौट रहे थे. सुन्दर फूलोंसे लदे हुए एक शिरीषके झाडपर अनेक पक्षी विचित्र प्रकारका कलरव कर रहे थे, दूर दूरके मन्दिरोंसे घंटा तथा नगारोंका नाद देवपूजाके समयकी घोषणा करता था. परंतु सोफीकी दृष्टि किसी ओरको नहीं थी. उसके कानोंमें किसीका शब्द प्रवेश नहीं करता था. वह विचार करने लगी, जिस मनोहारिणी आशाके फूलमें अपने बीस वर्षके अपरितृप्त यौवनको बंद रखके आगामी सुखके मुखकी ओर देखते हुए धैर्य धारण कर रक्खा था, हाय! भाग्यदेवताकी एक निश्वास मात्रसे वह क्षणभरमें सूख करके झड़ गया!

(४)

दो तीन महीने तक बेरिस्टर कुंजबिहारीलालका कोई भी समाचार नहीं मिला. डिपुटी साहबको बडी भारी चिन्ता हुई. लंदनसे लौटे हुए दो तीन भारतवासी युवकोंका पता संग्रह करके उन्हें कुंजबिहारीलालका संवाद भेजनेके लिये Prepaid टेलीग्राफ (जवाबीतार) दिया. उत्तर मिला कि, " कुंजबिहारीलालको लंदन छोडे हुए दो महिने हो चुके. यदि वे देशको नहीं लौटे हैं, तो समझना चाहिये कि, वे यूरोपमें भ्रमणकरके अपनी शिक्षा पूर्ण कर रहे हैं. ,, विदेश भ्रमणमें अपने कष्टसे कमाये हुए धनका अपव्यय होनेकी संभावनासे डिपुटी साहब बहुत दुखी और अप्रसन्न हुए.

अन्तमें एक दिन इंडियन डेलीन्यूजमें बांचा कि, दो दिन पहले कुंजबिहा-रीलाल गोयल नामक एक युवा मार्शेलिस से 'मिसिल' जहाजपर बैठकर बम्बई-के लिये रवाना हुआ है. इस समाचारको पढ़कर डिपुटी साहबको कुछ समाधान हुआ. वे अपने सफलमनोरथ जामाताके सत्कारके लिये स्त्री और पुत्रीके सहित बम्बईको रवाना हो गये. उस समय बडे दिनोंकी छुट्टी थी.

परन्तु बम्बईके महासमुद्रमेंसे कुंजविहारीलाल नामक रत्नको निकालना कोई सहज काम नहीं था. मि० गोयलका एक मित्र कालबादेवीरोडके एक क्लबमें रहकर कालिजमें पढ़ता था. डिपुटी साहब हैट कोटसे सुसज्जित होकर उक्त क्ल-बमें उपस्थित हुए. परन्तु वहांपर सुना कि, कुंजबिहारीलाल दो दिन पहले इसी क्लबमें आकर ठहरे थे. उनका विचार यहांपर एक सप्ताह ठहरनेका था, परन्तु कारणवश आजकी पंजाब मेलसे वे देहलीको रवाना हो गये हैं. देहलीमें उनके बडे भाई लाला अजितप्रसाद कलेक्टरी आफिसमें क्लर्क है.

डिपुटी श्वसुरके घर नहीं जाकर कुंजबिहारीलाल पहले अपने काकासे मि-लनेके लिये देहली चले गये, यह सुनते ही डिपुटी साहबपर एक वज्र सरीखा पड गया. जामाताकी कृतघ्नता स्मरण करके उनका मुंह फीका पड गया. उस समय उन्हें मालूम हुआ कि, मैंने भ्रममें पड़कर गत तीन वर्षमें साढे दश हजार रुपये पानीमें डाल दिये. उक्त रुपये मेरी कितने दिनकी कमाईके थे. तथा यदि उन्हें उस तरह बरबाद न करके मैं प्रामीसरी नोट खरीद लेता, तो उनके व्याजमें अभीतक कितने रुपये मिले जाते; जिस समय डिपुटी साहबके हृदयपटलपर इन विचारोंका उदय हुआ, उस समय वे अपनी दुर्भागिनी लडकीके कष्टको भी भूल गये.

अपनी निर्बुद्धितासे दुखी होकर डिपुटी साहब छुट्टी पूरी करके लौट आये. चलते समय जब पत्नीने पूछा कि, "जमाई कहां है? तब उनका गर्व धूलमें मिल गया। उन्होंने गंभीर स्वरसे उत्तर दिया, कि "जमाई अभी तक जहाजसे नहीं उतरे है. सोफीके मनमें उस समय किस भावका उदय हुआ था, उसको अन्तर्यामी ही जान सकते हैं.

(५)

देहलीके जिलेमें डिपुटी साहब बहुत दिन तक हाकिम रह चुके थे. वहांकी कलेक्टरीके बहुत लोगोंके साथ उनकी जान पहिचान थी. अपने एक मित्रको

उन्होंने कुंजबिहारीलालका समाचार जाननेके लिये पत्र लिखा. उसके उत्तरमें उन्हें जो संवाद मिला, उससे उनके मस्तकमें पिनलकोडकी सारी दफायें चक्कर खाने लगीं. मित्रकी चिट्ठीमें लिखा था कि, कुंजबिहारीलालने अपने भाईके घर पहुंचकर शास्त्रविधिके अनुसार प्रायश्चित्त ग्रहण किया है. वे देशी जूता पहिनते हैं. हैट कोट पाटलूनके स्थानमें टोपी अचकन और पायजामाका व्यवहार करते हैं और जहांतक बनता है, अपने घरमें विलायती वस्तुओंका प्रवेश नहीं होने देते हैं. विलायतसे लौटनेवालोंकी ऐसी शोचनीय और गिरी हुई हालत पहले कभी नहीं सुनी थी. इसलिये कुंजबिहारीलालके मस्तकमें कुछ फसाद तो नहीं हो गया है, इसका उन्हें सन्देह हो गया. अन्तमें जब उन्होंने सुना कि, कुंजविहारीलाल दूसरा विवाह करनेके लिये तयार हैं, और उनके भाई किसी सुन्दरी सुशीला कन्याकी तलाशमें हैं. तब तो उन्हें प्रायश्चित्त-प्रथा और देशी पोशाकपर बडा भारी क्रोध आया, परन्तु क्या करते ? प्रतीकारका कोई मार्ग नहीं था.

डिपुटी साहबको उसी दिन कुंजविहारलिालका भी एक पत्र मिला. हिन्दी भाषामें लिखा होनेपर भी डिपुटी साहब उसके पढनेकी उत्सुकताको न रोक सके. पत्रमें लिखा हुआ था:—

" पूज्यवर !

शास्त्रविधिके अनुसार आपने मुझे कन्या प्रदान की है, इस लिये सामाजिक प्रथासे आप मेरे श्वसुर हैं. पूजनीय हैं. इसी लिये आपको देश रीतिके अनुसार पूज्यवर लिखा है. यदि इससे विलायती शिष्टाचारका कुछ उल्लंघन हुआ हो, तो उसके लिये मैं क्षमा चाहता हूं. आपके अनुग्रहसे ही आपके कष्टोपार्जित धनकी सहायतासे मैं विलायतसे बैरिष्टर होकर आया हूं. इसलिये मैं आपका चिरकाल तकके लिये ऋणी हूं. मैं आपका यह उपकार जीवन भर नहीं भूल सकूंगा.

किन्तु मेरे वर्तमान व्यवहारसे आप कुछ असन्तुष्ट हुए होंगे. आपने मुझे कृतघ्न समझा होगा. इस लिये मैंने उचित समझा कि, अपनी निर्दोषता आपके समक्ष प्रगट करूं. मुझे आशा है कि, आप मेरे विचार पढकर मुझे अवश्य ही क्षमा कर देंगे.

आपने जब अपनी कन्याके विवाहका विज्ञापन समाचार पत्रोंमें दिया था, उस समय यदि आप विज्ञापनमें यह भी लिख देते कि, "हमारा जमाई बैरिष्टरी-परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके पहले हमारी कन्यासे कोई भी सम्बन्ध नहीं रख सकेगा" तो मैं समझता हूं, आपके दिये हुए लोभमें आकर भी कोई कुलीन पुरुष आपकी कन्यासे पाणिग्रहण करनेके लिये तयार नहीं होता. मैने भी विवाहके पहले यह बात नहीं जानकर उसी रातको जानी. आपकी सुशिक्षिता तेजस्विनी कन्याने यह बात मुझसे स्पष्ट अक्षरोंमें कह दी. परन्तु तब विवाह हो चुका था.

यदि कोई मार्ग होता, तो मैं इस विवाह बंधनसे अवश्य मुक्त हो जाता. बडे भाईकी सलाह न लेकर अपने भाई बन्धुओंके विना जाने गुप्तरीतिसे आपकी कन्याके साथ जो विवाह किया था, वह केवल विलायत जानेके लोभसे किया था. मैं एक गरीबका लडका हूं. मेरी उक्त इच्छा पूर्ण होनेका और कोई उपाय नहीं था. इसी लिये प्रयोजनसिद्धिके लिये रुपये लेकर अपनेको बेच दिया था. इसीसे मैनें आत्माका अपमान, आपकी कन्याका किया हुआ अपमान, और संसारका अपमान विना कुछ कहे हुए सहन किया था.

अपमानित होकर भी इग्लेंड पहुंचकर मैने आपकी कन्याको एक पत्र लिखा था. जिसके साथ शास्त्रकी विधिपूर्वक विवाह किया है, उसकी बुद्धिमें यदि कुछ फर्क हो, तो उसको उदार भावसे समझाकर आगामी सुखके मार्गको प्रशस्त बनानेका विचार बुरा नहीं कहा जा सकता है. स्नेहसे और प्रेमसे कोमलतासे और सहानुभूतिसे अपनी पत्नीका हृदय पूर्ण करनेकी चेष्टा करनेका मुझे अधिकार नहीं होगा, ऐसा मैं नहीं समझता था. परन्तु आपकी कन्याने मेरे पत्रके उत्तरमें मुझे जो कुछ लिखा था, उससे उस अधिकारपर पानी फिर गया है. उस पत्रको मैंने बडे यत्नसे रख छोडा था, सो आज आपकी सेवामें भेजता हूं. आपकी कन्याकी शिक्षा और शिष्टाचारका यह आदर्श आपके पास भेजनेमें मुझे संकोच होना चाहिये था. परन्तु क्या किया जावे, कारण ऐसे उपस्थित हुए हैं कि, उस संकोचको छोड देना पडा. मेरी अवस्था प्रौढ हो चुकी है. मैंने लिखना पढना भी थोडा बहुत सीखा है. मेरा सबसे बडा अपराध यह है कि, मैं दरिद्री हूं. परन्तु अपनी इस दरिद्रताका एक धनवानकी लाडली कन्याद्वारा इस प्रकार हृदयको भेदन करनेवाला तिरस्कार मैं

सिर नीचा किये हुए सहन करता रहूं और अपने जीवनको धन्य समझूं, खेद है कि इतनी उदारता मुझमें नहीं है.

आपने मेरी विलायत यात्राके खर्चके लिये जो रुपये प्रदान किये हैं, मैने उनका कौडी पाई तकका हिसाब रक्खा है. जितनी जल्दी हो सकेगा, मैं उक्त सब रुपया ४ रुपये सैकडा वार्षिक व्याज सहित चुका दूंगा. इसके लिये मै अभीसे चेष्टा कर रहा हूं.

शास्त्रके अनुसार आपकी कन्या मेरी परित्याज्य स्त्री नहीं है.मैं उसके भोजन कपडोका खर्च देनेके लिये तयार हूं. यदि वह हमारे घर आकर हिन्दू स्त्रीके समान रहनेके लिये राजी हो, हिन्दू सामाजिक और पारिवारिक नीतिका उल्लंघन न करे, तो मैं उसे प्रसन्नताके साथ अपनी गरीबीकी झोपडीमें रखनेके लिये तयार हूं. और यदि वह इस दरिद्रकी क्षुद्र झोपडीमें निवास करनेके लिये राजी न हो, अथवा अपनी शिक्षा और सभ्यताकी रुचिको छोडनेके लिये असमर्थ हो, तो मैं अपनी अवस्थाके अनुसार उसके भोजनवस्त्रका खर्च देता रहूंगा. मैं निधर्न हूं, इसलिये जिसके साथ गृहस्थधर्मका निर्वाह कर सकूंगा. जो मेरी उपेक्षा करनेका साहस नहीं कर सकेगी, ऐसी किसी साधारण गृहस्थकी कन्याका पाणिग्रहण करके संसारी बनूंगा. मेरे बडे भाई भी इसी प्रयत्न में लगे हुए हैं.

मैंने शास्त्रानुसार प्रायश्चित्त किया है. मैं विलायती पोशाक त्याग करके देशी पोशाक पहिनता हूं. और विजातीय और विधर्मी नामोंकी नकल किये हुए नामका परित्याग करके अपने माता पिताके दिये हुए **कुंजबिहारीलाल गोयल** नामसे अपना गौरव समझता हूं. आपकी गौन पहिरनेवाली कन्या जहांतक मै जानता हूं, ये सब बातें सहन नहीं कर सकेगी. परन्तु यदि वह गरीब गृहस्थकी बहूके समान साधी मोटी धोती पहिनकर अपने कुटुम्बियोंकी सेवाका भार ग्रहण करनेके लिये तयार हो, तो आपकी कन्याको ग्रहण करनेमें मुझे कोई उज्र नहीं है. यह बात आप उससे कह सकते हैं. अलमतिविस्तरेण.

आपका कृपाभिलाषी—

कुंजबिहारीलाल गोयल,

पत्र पढकर डिपुटी साहब कुछ समय तक हथेलीपर मस्तक रक्खे हुए कुछ सोचते रहे. फिर पोशाक बदलकर घूमनेके लिये बाहिर निकले. कुछ दूर चल-

कर न जाने क्या सोचकर फिर लौट आये, और अर्दलीके हाथमें पत्र देकर बोले, इसे सोफीको दे आओ.

इसके पश्चात् टेलीग्राफ आफिसमें जाकर उन्होंने देहलीको तार दिया कि "कुंजबिहारीलाल अपना दूसरा विवाह करनेका विचार एक सप्ताहके लिये बन्द रक्खें."

दो तीन घंटा नदीके किनारे भ्रमण करके मस्तकमें जब कुछ शीतलताका प्रवेश हुआ, तब डिपुटी साहब अपने बंगलेको लौट आये. धीरे २ सोफीके शयनागारमें जाकर देखते हैं कि, टेबिल पर रक्खा हुआ एक लेम्प उदासीन भावसे जल रहा है. सोफी बिछौनेपर मुँह छुपाये खूब रो रही है. उसकी माता विषण्ण भावसे उसीके पास बैठी हुई है.

कुछ भी बात न कहकर डिपुटी साहब एक चेयर खींचकर सोफीके सिरानेकी ओर बैठ गये और धीरे २ सोफीके मस्तकपर हाथ फेरने लगे. सोफी उस स्नेहयुक्त करस्पर्शसे हृदयके उद्वेगको न रोक सकी. रोते रोते उसकी हिचकी बंध गई.

डिपुटी साहबका जी उमड़ आया. वे बोले, बेटी! रोती क्यों है? तेरा तो इसमें कुछ भी दोष नहीं है. यदि कोई अपराधी है, तो वह मैं हूं. तूने अब क्या विचार किया है? सोफीने कुछ उत्तर न दिया. डिपुटी साहबने दूसरी बार कुछ और भी मृदुतासे वही प्रश्न किया! तब सोफीने धीरेसे उत्तर दिया, "मुझे देहली ही जाना पडेगा."

डिपुटी बोले, तुम्हें मेम साहब बनानेके लिये मैंने तुम्हारे जन्म दिनसे ही चेष्टा की है. हिन्दू गृहस्थकी बेटीकी, गृहस्थकी बहूकी कुछ भी शिक्षा तुम्हें नहीं दी है. ऐसी अवस्थामें कुंजबिहारीलाल जैसा चाहते हैं, उस प्रकारसे तुम चल सकोगी?

सोफीने मस्तक हिलाकर कहा. 'हां चलूंगी." दूसरे दिन सबेरे कुंजबिहारीलालके पास तार पहुंचाः—"हम लोग आते हैं, तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही होगा." इस लिये कुंजबिहारीलालको और विवाह नहीं करना पडा. विधिपूर्वक प्रायश्चित्त हो चुकनेपर श्रीमती सुमतिदेवी धोती पहिनकर मस्तकपर सौभाग्य चिन्ह धारण करके कुलीन महिलाके समान अपने कुटुम्बी जनोंकी थालीमें नाना प्रकारके अन्न व्यंजन परोसकर उन्हें सुखी करने लगी.

मि० मेंटल इस घटनाके पश्चात् न जाने क्या सोच समझकर हैट कोट छोडकर अचकन चोगा और पाजामा पहिनने लगे हैं. सुना है कि, उन्होंने सिरपर एक छोटीसी चोटी भी रख ली है. होटलका जाना आना भी अब उन्होंने छोड दिया है. और सबसे अधिक आश्चर्यका विषय तो यह हुआ कि, पन्द्रह वर्षकी सर्विसके पीछे मि० मेंटलने गवर्नमेंटसे प्रार्थना की कि, "सर्विस लिष्टमेंसे मेरा पहला नाम बदल करके लाला बनवारीलाल मित्तल दर्ज किया जावे."

शास्त्रीयचर्चा ।

(३)

प्रत्येक और साधारण ।

संसारी जीवोंके दो भेद हैं, त्रस और स्थावर. इनमें स्थावर जीवोंके-अर्थात् एकइन्द्री जीवोंके पृथ्वीकायिक, अपकायिक तेजकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पांच भेद हैं. इनमेंसे हमारा यह लेख वनस्पतिकायिक जीवोंके विषयमें है.

यद्यपि गृहस्थ धर्मका धारण करनेवाला श्रावक एक इन्द्रिय जीवोंकी हिंसाका त्यागी नहीं हो सकता है. तथापि उसका कर्तव्य है कि, जहां-तक बन सकै हिंसाके कम करनेका प्रयत्न करता रहै. वनस्पतियां यद्यपि एकेन्द्री होती हैं, तथापि उनमेंसे अनेक वनस्पतियां ऐसी हैं, जिनके सम्ब-न्धसे अनन्त एकेन्द्री जीवोंका घात होता है. इसलिये श्रावकको ऐसी वनस्पतियोंके खानेका निषेध किया गया है. श्रावकोंका कर्तव्य है कि, वे वनस्पतियोंके स्वरूपको अच्छा तरहसे समझ लेवैं, जिससे मालूम हो जावै कि, कौन वनस्पतियां खाने योग्य हैं. और कौन नहीं हैं.

वनस्पतियोंमें जो जीव होते हैं, वे दो प्रकारके हैं, एक प्रत्येक और दूसरे साधारण. प्रत्येक जीव उन्हें कहते हैं, जो एक शरीरके एक ही स्वामी होते हैं और साधारण जीव उन्हें कहते हैं, जो एक शरीरके अनंत स्वामी होते हैं. एक साधारण शरीरमें जितने जीव होते हैं, उन सबका जीवन मरण आहा-रादि ग्रहण सब एक साथ होता है एक सरीखा होता है. एक मरता है, तो

सब मरते हैं. एक जन्म लेता है, तो उसके साथ अनन्त साधारण जीव जन्म लेते हैं. इन साधारण जीवोंको निगोद[1] भी कहते है।

इन जीवोंकी अपेक्षासे वनस्पतियोंके दो भेद हो गये हैं, एक प्रातिष्ठित दूसरा अप्रतिष्ठित. जिस वनस्पतिके आश्रित साधारण शरीर होते हैं उन्हें प्रतिष्ठित कहते हैं. और जिनके आश्रित साधारण शरीर नहीं होते हैं, उन्हें अप्रतिष्ठित कहते हैं. दृष्टिगोचर वनस्पतियां जितनी हैं, वे सब प्रत्येक-शरीर हैं. अर्थात् उनमें जो जीव होते हैं, वे एक शरीरके एक ही स्वामी होते है. परन्तु जो प्रत्येक वनस्पतियां साधारणसहित होती हैं अर्थात् साधारणसे प्रतिष्ठित होती हैं, वे प्रतिष्ठित और जो रहित होती हैं, वे अप्रतिष्ठित कहलाती हैं. यहां यह भी स्मरण रखना चाहिये कि, साधारण जीव कभी स्वतंत्र नहीं रहते हैं. प्रत्येकवनस्पतिके ही आश्रयसे रहते हैं. और कोई वनस्पति भी ऐसी नहीं है, जिसमें केवल साधारण जीवोंका निवास हो, प्रत्येक जीवोंका न हो. सामान्य रीतिसे अप्रतिष्ठितप्रत्येकको प्रत्येक और प्रतिष्ठित प्रत्येकको साधारण भी कहते हैं. परन्तु यह कहना उपचार मात्रसे है. एक बात यह भी ध्यानमें रखने योग्य है कि, एक प्रत्येक वनस्पतिमें भी एक ही जीव नहीं होता है. उसमें भी अनेक जीव होते हैं. यद्यपि प्रत्येक वनस्पतिके एक शरीरका स्वामी एक ही जीव होता है, परन्तु उसके एक एक स्कन्धमें एक एक भागमें वैसे ही अनेक शरीर होते हैं. और हर एक शरीरमें एक २ जीव होता है. इस तरहसे एक प्रत्येक वनस्पतिमें भी अनेक जीव होते हैं. परंतु एक साधारण शरीरमें जितने जीव होते हैं, उनकी अपेक्षा यह संख्या बहुत ही कम है. दोनोंकी संख्यामें जमीन आसमानका अन्तर है.

प्रतिष्ठित वनस्पतियां अमुक हैं और अप्रतिष्ठित अमुक हैं. ऐसा कोई नियम नहीं है. जो अप्रतिष्ठित हैं वेही कालान्तरमें सप्रतिष्ठित हो जाती हैं. और जो प्रतिष्ठित हैं, वेहीं अप्रतिष्ठित हो जाती हैं.

---

१ निगोद जीव दो प्रकारके हैं. एक सूक्ष्म और दूसरे बादर. सूक्ष्म निगोद जीव सारे संसारमें व्याप्त हैं. स्वर्ग नरक मोक्ष आदि ऐसा कोई भी स्थान नहीं हैं, जहां सूक्ष्मनिगोद जीव न हों और बादरनिगोद जिन्हें स्थूलनिगोद भी कहते हैं, मनुष्य तिर्यंचोंके शरीरोंमें वनस्पतियोंमें तथा सातवें नरकके नीचेके भागमें पाये जाते हैं.

प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित होना निगोद जीवोंके आश्रित है. ककडीका बीज जब बोया जाता है, तब अप्रतिष्ठित होता है. परन्तु ऊग आनेपर प्रतिष्ठित हो जाता है. इसी प्रकार उसका फल जब तक कि, उसमें बीज नहीं होते हैं. नसें नहीं दिखलाई देती हैं. प्रतिष्ठित रहता है. और बीज वगैरह होजानेपर फिर अप्रतिष्ठित (प्रत्येक) हो जाता है. क्योंकि उस समय उससे निगोद अर्थात् साधारण जीवोंका सम्बन्ध छूट जाता है. सारांश यह कि, साधारण प्रत्येककी अवस्था बदलती रहती है. सदा एकसी नहीं रहती है.

संसारमें जितनी वनस्पतियां देखी जाती हैं, पूर्वाचार्योंने उनके छह भेद किये हैं–१ मूलवीज, २ अग्रवीज, ३ पर्ववीज, ४ कन्दवीज, ५ स्कन्धवीज, ६ बीजबीज और ७ सम्मूर्छन.

१. जो वनस्पतियां मूलसे (जडसे) उत्पन्न होती हैं, अर्थात् मूलही जिनके वीज होते हैं, उन्हें मूलवीज कहते हैं. जैसे अदरख, हल्दी आदि.

२. अग्रभागसे उत्पन्न होती हैं. अर्थात जिनकी कलम लगाई जाती है, अग्रभाग ही जिनके वीज होतें हैं, उन्हें अग्रवीज कहते है, जैसे उदीच्य (नेत्रवाला) आर्यक आदि.

३. जो पर्व अर्थात गांठसे उत्पन्न होती हैं, गांठें ही जिनका वीज समझा जाता है. उन्हें पर्ववीज कहते हैं. जैसे गन्ना (सांठा), बेत आदि.

४ जो कन्दसे उत्पन्न होती हैं. कन्द ही जिनका वीज अर्थात उत्पत्तिका कारण होता है, उन्हें कन्दवीज कहते हैं. जैसे आलू पिंडालू रतालू सूरण आदि.

५ जो स्कन्ध अर्थात पीडसे पैदा होती है. उन्हें स्कन्धबीज कहते हैं. जैसे ढाक (पलास–छेवला) सल्लकी (सालरि) आदि.

६ जो वीजसे पैदा होती हैं, उन्हें वीजवीज अथवा वीजरुह कहते हैं. जैसे गेहूं, चना, धान आदि.

७ जो अपने योग्य पुद्गल परमाणुओंको पाकर अनियत स्थानसें विना किसी प्रकारके वीजके होती हैं. उन्हें सम्मूर्च्छन कहते हैं. जैसे दूर्वा (दूवा) कुकर-

---

१ सम्मूर्च्छन कहनेका अभिप्राय यह नहीं है कि, दूसरी वनस्पतियां गर्भज अथवा औपपादिक होंगी. नहीं, वनस्पतियां तो सब ही सम्मूर्च्छन हैं. परन्तु उनमें जैसे मूलवीज आदि भेद किये हैं, उसी प्रकारसे सम्मूर्छन भी एक

मुता (कठफूला) आदि. बरसातमें सफेद छत्रके आकारकी जो वनस्पति होती है. उसे कुकरमुता तथा कठफूला कहते हैं.

ये सब वनस्पतियां प्रत्येक भी होती हैं, और साधारण (प्रतिष्ठित) भी होती हैं. सब दो २ अवस्थासंयुक्त होती हैं अर्थात् कन्द, मूल, गन्ना, गेंहूं आदि जितनी वनस्पतियां हैं, वे सब कभी साधारण होती हैं, और कभी प्रत्येक भी होती हैं। यथा—

मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंध बीजबीजरुहा ।
सम्मुच्छिमा य भणिया पत्तेया णंतकायाय ॥

(गोमठसार)

अर्थात् मूलज पर्वज आदि वनस्पतियां प्रत्येक भी हैं. और अनन्त काय अर्थात् साधारण भी हैं।

साधारण और प्रत्येककी पहिचान किस तरहसे हो सकती है, इसके लिये श्रीमाधवचन्द्र त्रैविद्यदेवने निम्नलिखित तीन गाथायें कहीं हैं:—

गूढसिरिसंधिपव्वं समभंगं महीरुहं च छिण्णरुहं ।
साहारणं सरीरं तव्विवरीयं दु पत्तेयं ॥ १
मूले कंदे छल्ली पवाल साल दल कुसुम फल बीजे ।
समभंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया ॥ २
कंदस्स च मूलस्स य साला खंधस्स चावि बहुलतरी ।
छल्ली साणंतजिया पत्तेयजिया तु तणुकदरी ॥ ३

भावार्थ—जिस वनस्पतिके शिरा[1], संधियां[2], और पर्व[3] गूढ हों अर्थात् बाहिर दिखलाई नहीं देते हों[4], जो तोडनेसे बराबर टूट जाती हों, तन्तु न लगा

भेद है. और उसका तात्पर्य यही है कि, ये वनस्पतियां विना किसी प्रकारके बीजके आपही आप ऊगती हैं.

१ ककडी आदिमें जो लम्बी लकीरें सरीखी होती हैं, उन्हें शिरा कहते हैं. २ दाडिम तथा नारंगी आदिमें जैसी संधियां होती हैं–जोड होते हैं, उन्हें संधि कहते हैं. ३ पर्व–गांठ जैसी गन्नेमें होती है. ४ बावीस अभक्षोंमें तुच्छ फलोंकी गणना मालूम पडता है, इसीलिये की गई है कि वे साधारण होते हैं . क्यों कि फल जबतक तुच्छ अर्थात् छोटा रहता है, तबतक उसके शिरा (नसै) संधियां और गांठें प्रगट नहीं होती हैं.

रहता हो, जिनमें सूत सरीखा तन्तु न हो, और जो काट डालनेपर भी ऊग आती हों, उन्हें साधारणवनस्पति कहते हैं, और जिन वनस्पतियोंमें इनसे बिपरीत लक्षण पाये जाते हैं, उन्हें प्रत्येक कहते हैं ॥१

मूल (जड), कन्द, छाल, प्रवाल (अंकुर कोंपल) छोटी डाली, बडी डाली, पत्ते, फूल, फल, और बीजोंके यदि तोडनेसे समान टुकडे हो जावें, तो उन्हें अनन्तकायरूप प्रतिष्ठित (साधारण) समझना चाहिये और यदि बराबर नहीं टूटें, तंतु लगे रहें, तो प्रत्येक समझना चाहिये ॥ २

जिस वनस्पतिके कन्दकी, मूलकी, क्षुद्र शाखाओंकी तथा स्कन्धकी (पीडकी) छाल मौटे दलकी हो, वह अनन्तकाय (साधारण) है और जिसके कन्दादिकी छाल पतली हो, वह प्रत्येक है ॥ ३

दूसरी और तीसरी गाथासे यह भी अभिप्राय निकलता है कि, एकही वनस्पतिके भिन्न २ अवयव भिन्न २ अवस्थाओंके धारण करनेवाले होते हैं. अर्थात् यह नियम नहीं है कि, एक वनस्पतिके जड पीड शाखा पत्ते फूल फल आदि सब अवयव एक समयमें साधारण ही हों अथवा प्रत्येक ही हों. नहीं. जिस वनस्पतिके फल साधारण हों, उसके पत्ते, शाखा, फूल आदि अवयव प्रत्येक भी हो सकते हैं. और जिसके फल प्रत्येक हों, उसके पत्ते आदि साधारण भी हो सकते हैं. इन अवयवोंकी पहिचान तोडनेसे, समान टुकडे होनेसे, तथा नहीं होनेसे और छालकी मौटाई पतलाईसे हो सकती है. पहिचान करते समय यह भी ख्याल रखना चाहिये कि, प्रत्येक साधारणके समभंग आदि जो चिन्ह बतलाये हैं, वे सबके सब एकही वनस्पतिमें अथवा उसके अवयवमें नहीं मिल सकते हैं. किसीमें कोई चिन्ह मिलता है, किसीमें कोई मिलता है और किसीमें दो तीन अथवा सब भी मिलते हैं.

गोमठसारमें साधारण प्रत्येकके विषयमें एक विशेष नियम किया है. वह यह है:—

बीजे जोणीभूदे जीवो चंकमदि सोवि अण्णो वा।
जे विय मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए।

---

१ विपरीत लक्षणवाले जैसे कि, आम नारियल आदि हैं, इनकी गणना प्रत्येकमें है.

अर्थात् मूलवीज अग्रवीज आदिमें जबतक जीव उत्पन्न करनेकी शक्ति रहती है, तब तक वे अप्रतिष्ठित प्रत्येक रहते हैं. चाहे उनमें पहलेका ही जीव फिरसे आकर उत्पन्न हो, चाहे कोई दूसराही आकर जन्म लेवे. इसके सिवाय ये मूल-वीज आदि, जीव उत्पन्न होनेपर भी जीव उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक अप्रतिष्ठित प्रत्येक रहते हैं.

इस गाथाका अभिप्राय यह है कि, मूलवीज आदि वनस्पतियां सूख जानेपर अचित्त (जीवरहित) हो जाती हैं, परन्तु सूखनेपर भी जो योनिभूत होती हैं अर्थात् जिनके बोनेसे फिर वनस्पति उत्पन्न हो सकती है, वे अचित्त होनेपर भी सचित मानी गई हैं. क्योंकि उनमें जीव उत्पन्न करनेकी शक्ति रहती है. शक्तिकी अपेक्षासे उनमें जीवत्व माना जाता है. परन्तु ऐसी सचित्त होकर भी वह प्रत्येक ही होती है, साधारण नहीं होती है. यद्यपि जो सचित्त होती हैं, उनमें साधारण प्रत्येक दोनों अवस्थाओंकी संभावना होती है. परन्तु इस सूत्रसे नियम कर दिया कि, वे प्रत्येक ही होती हैं.

अभी तक जो कुछ कहा गया है, उससे यह निश्चय नहीं होता है कि, ककडी साधारण है, अथवा तोरई प्रत्येक है, आलू प्रत्येक है, अथवा अदरख साधारण है, ककड़ी तोरई आलू आदि साधारण भी हो सकते हैं और प्रत्येक भी हो सकते हैं, अतएव जो लोग साधारणके त्यागी हैं, उन्हें हर एक वनस्पतिकी अवस्थापर ध्यान रखना चाहिये कि, उस समय जब कि वे उसे खाना चाहते हैं, वह वनस्पति प्रत्येक है अथवा साधारण है. जहां तक हम जानते हैं, बहुत थोडे लोग इस बातका विचार करते हैं.

यहांपर एक बडी भारी शंका यह होती है कि, " कन्दमूलादिके विषयमें जब ऐसा निश्चित नहीं कहा है कि, वे सबही साधारण होते हैं. तब हमारे यहां जितने कन्दमूल हैं, उन सबकाही त्याग क्यों कराया जाता है, और उनकी २२ अभक्ष्योंमें क्यों गणना की जाती है? क्यों कि गोमठसारके कथनसे तो कन्दमूल प्रत्येक भी हो सकते हैं." हमारी समझमें कन्दमूलका त्याग करानेकी प्रवृत्ति बढनेका कारण शायद यह होगा कि, कन्द-मूल जितने होते हैं, उनमें या तो प्रत्येक बहुत थोडे होते होंगे और सो भी किसी खास अवस्थामें, या उनकी साधारण और प्रत्येककी पहिचान दूसरी वनस्पतियोंकी अपेक्षा बहुत कठिन अथवा कष्टसाध्य होगी. ऐसी दशामें उनका

सर्वथा ही त्याग करना लाभकारी समझा गया होगा. परन्तु यह निश्चय है कि, कन्दमूलमें साधारण और प्रत्येक ये दोनों अवस्थायें होती हैं. पंडितप्रवर आशाधरने भी भोगोपभोगपारिमाणव्रतमें साधारण वनस्पतियोंके त्याग करनेका वर्णन किया है, और उसमें मूलवीज कन्दवीज आदिकी साधारण तथा प्रत्येक दोनों अवस्थायें बतलाई हैं. टीकामें उन्होनें गोमठसारकी **मूलग्गपोरबीजा** आदि गाथाको भी उद्धृत की है.

जहां तक हम जानते हैं, यह भी कह सकते हैं कि, किसी आचार्यने "कन्दमूल साधारण ही होते हैं, प्रत्येक नहीं होते हैं," ऐसा कहीं भी नहीं कहा है. श्रीअमृतचन्द्रसूरिने पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है कि अनन्तकाय त्याग करना चाहिये, आशाधरने भी ऐसा ही कहा है. यदि कन्दमूलके विषयमें साधारणपनेका निश्चय होता, तो ऐसे स्थानोंपर कन्दमूलादि अनन्तकाय कह सकते थे. और यदि किसी ग्रन्थमें कन्दमूलको साधारण कहा भी हो, तो उसका अभिप्राय यही कहना चाहिये कि, वे साधारण भी होते हैं अथवा प्राय: साधारण ही होते हैं. बावीस अभक्ष्योंमें भी जो कन्दमूलकी गिनती है, वह साधारणत्वकी अपेक्षासे है. यदि कोई कन्दमूल किसी समय प्रत्येक हो, तो वह अभक्ष्य नहीं हो सकता है.

कन्दमूल विषयक शंकाका समाधान यदि अन्य किसी प्रकारसे हो सकता हो और हमने जो कुछ ऊपर लिखा हो, उसमें कुछ भूल हुई हो, तो विद्वानोंको सूचित करना चाहिये. हम उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे. हमने अभी तक इस विषयमें जो कुछ समझा है, उसे सर्वसाधारणके साम्हने उपस्थित किया है. और वह इसी अभिप्रायसे किया है कि, यह प्रयोजनीय विषय अच्छी तरहसे निर्णीत हो जावे.

अन्तमें हम एक प्रार्थना और भी कर देना चाहते हैं कि, विद्वानोंको किसी विषयका विचार प्रवृत्तिको देखकर अथवा रूढीमें पडकर नहीं करना चाहिये. जो शास्त्रोंमें कहा है, उसे देखकर करना चाहिये. क्योंकि शास्त्रके साम्हने प्रवृत्तिका तथा अंधपरम्पराका टिकाव नहीं हो सकता है. जैन समाजमें ऐसी सैकड़ों प्रवृत्तियां चल रही हैं, जो शास्त्रोंसे अतिशय विरुद्ध हैं. ऐसी प्रवृत्तियोंके संशोधन करनेकी बडी भारी आवश्यकता है. शास्त्रीय चर्चाके स्तंभमें ऐसी ही विषयोंकी चर्चा होनी चाहिये. अलमतिविस्तरेण. **वंशीधर।**

समालोचना।

दिगम्बरजैन—यह गुजराती भाषाका मासिकपत्र अहमदाबादके शेठ प्रेमचन्द मोतीचन्द जैन बोर्डिंगस्कूलकी ओरसे निकलता है. इसके सम्पादक शा. मूलचन्द कसनदास कापडिया एक नवयुवक हैं. गुजराती भाषामें दिगम्बरजैन समाजका यह एक ही पत्र है. खुशीकी बात है कि, एक हो कर भी इसकी लेखनशैली अच्छी है. गुजरातके दिगम्बरजैन समाजमें जाति और धर्मकी उन्नतिका बीज बोनेके लिये यह एक अच्छा साधन निकला है. हम इसकी उन्नतिसे बहुत प्रसन्न हैं . इस अंकमें त्यागी पन्नालालजीका एक सुन्दर फोटो निकला है, यह फोटो सम्पादक महाशयके पास डेढ आनाका टिकट भेजनेसे पृथक् भी मिल सकता है. पत्रका वार्षिक मूल्य सवा रुपया मात्र है.

सनातनजैन—यह भी एक गुजराती भाषाका मासिकपत्र है. प्रत्येक अंकमें एकाध लेख अंग्रेजीका भी रहता है. इसका मुख्य उद्देश जैनधर्मके श्वेताम्बर दिगम्बर ढूंढिया आदि भेद भावोंको दूर करके एक अविभक्तजैन-धर्मके विचारोंको विस्तृत करनेका है. इसमें जैनियोंके इतिहास, साहित्य और फिलासोफी आदि उच्च विषयोंके उत्तमोत्तम लेख निकलते है. कोई साढेतीन वर्षसे यह निकलता है, जिस समय यह निकला था, उस समय आशा नहीं थी कि, जैन समाजमे इसका आदर होगा. परन्तु अब थोडे ही दिनोंमें इसने ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है कि, जैनसमाजमे वह एक प्रथमश्रेणीका पत्र समझा जाता है. और अंग्रेजी पठित समाजमें इसका आदर दिनपर दिन बढता ही जाता है. इसका कारण जहां तक हमने विचार किया है, इसके सम्पादक श्रीयुक्त मनसुखलाल रवजी भाई मेहताकी प्रशंसनीय लेखनशैली उच्च कल्पना आस्तिक्यबुद्धि और निष्पक्षपातता है. सनातन जैनके विचारोंसे हमारे विचारोंमें बहुत बडा अन्तर है. तौ भी हमसे इस विषयमें प्रशंसा किये विना नहीं रहा जाता कि, अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये मनुष्यको जिस मार्गका ग्रहण करना चाहिये, सनातनजैनने उस मार्गपर बडी खूबीसे पैर बढाना शुरू किया है. दूसरे पत्रोंको सनातनजैनकी लेखनप्रणालीसे बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है. जब कि हमारे समाजके पत्रोंमें सम्पादकीय लेखोंका प्रायः अभाव ही रहता है, तब सनातनजैनका कोई २ मुख्यलेख तीन २ चार २ फार्म-

का होता है. और वह भी सम्पादकके स्वतंत्र मस्तकसे रातदिनके विचारोंका फलस्वरूप निकलता है. मुख्य लेखके सिवाय साहित्य इतिहासादिके लेख भी प्राय: प्रत्येक अंकमें निकलते हैं. सम्पादककी विचारशक्ति कल्पनाशक्ति गंभीर है, इसके लिये एक यही उदाहरण बस होगा कि, सनातन जैनके पिछले अंकोंमें उन्होंने आनन्दघनजी नामके एक ऐसे कविका जीवनचरित्र जिसका कि नाम ग्राम संवत् आदि कुछ भी मालूम नहीं है, केवल अनुमान और भाषा-विचारशास्त्रके सहारे कोई ३ फार्ममें लिखा है. अंग्रेजीके माडर्न रिव्यू नामके प्रसिद्ध पत्रने इस विषयमें उनकी बडी ही प्रशंसा की है. सनातनजैनके पिछले संयुक्त अंकमें एक "२००० वर्ष मूल प्रकाश" नामका अग्रलेख है. इस लेखमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है कि, " श्वेताम्बर और दिगम्बर इन दोनोंही दशाओंका अस्तित्व हमेशासे है. परन्तु संघरूपमें इनकी स्थापना वि० सं० १३६ के अनुमान हुई है. भगवानने इन दोनोंही अवस्थाओंको देश कालके अनुसार लाभकारी समझ कर आदेश किया था. पीछेसे एकान्त ग्रहण करके लोगोंने भगवानकी आज्ञाका विपर्यय कर डाला. वर्तमान देशकालके अनुसार श्वेताम्बर दशा उपकारी है, परन्तु दिगम्बर दशा भी अवहेलना करने योग्य नहीं है. " सनातन जैनका सिद्धान्त प्रत्येक लेखमें यही रहता है कि, दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों दशायें देशकालके अनुसार उपकारी हैं. इस विषयमें यह शंका खडी रहती है कि, साक्षात मोक्षकी कारण दिगम्बरदशा है, या श्वेताबर-दशा ? यदि श्वेताम्बर दशा अर्थात परिग्रहयुक्त दशा मोक्षकी साक्षात कारण मानी जावेगी, तो दिगम्बरदशाकी आवश्यकता नहीं रहेगी. और चारित्रके स्वरूपमें तथा सिद्धान्तमें ही भेद हो जावेगा. और यदि श्वेताम्बरदशा परम्परा मोक्षका कारण मानी जावेगी, तो दिगम्बरियोंमें जो क्षुल्लक ऐलक त्यागी होते हैं, उनसे भी वही उपकार हो सकता है, जो श्वेताम्बरी साधुओंसे होता है. इस कालके योग्य यदि दिगम्बरवृत्ति नहीं है, तो न सही. उससे जो उपकार होता था, उसकी पूर्ति क्षुल्लकोंसे होती रहेगी. इसके लिये ऐसे उपदेशकी आवश्यकता नही है कि, परिग्रहयुक्तदशा भी साक्षात मोक्षकी कारण है. आशा है कि, सनातनजैनके सम्पादक महाशय अपने आगामी लेखोंमें इस विषयकी आलोचना करेंगे. हमारी समझमें जबतक दिगम्बर और श्वेताम्बरके सिद्धान्तभेदोंपर विचार करके उनकी एकता किस तरह हो सकती है, इसका मार्ग नहीं बतलाया

जावेगा, तब तक इस नवीन विचारमें दृढता आना कठिन है. इसके लिये दोनों सम्प्रदायोंके धर्मग्रन्थोंका तथा सिद्धान्तोंका अध्ययन तथा मनन करनेकी आवश्यकता है. सनातनजैनका वार्षिक मूल्य १।) बहुत ही थोडा है. ग्राहक बननेवालों को " सनातन जैन आफिस-जवेरीबाजार-बम्बई ,, इस पतेसे पत्र लिखना चाहिये.

जैनप्रचारक—यह एक उर्दूभाषाका पत्र देवबन्द (सहारनपुर) से निकलता है. इसके सम्पादक लाला ज्योतीप्रसादजी ए. जे. हैं. लालाजी लेखकके सिवाय उर्दूके एक अच्छे कवि भी हैं. लेखनप्रणाली अच्छी है. केवल उर्दू जाननेवाले जैनियोंकी संख्या उत्तरहिन्दुस्थानमें बहुत ज्यादा है. उनके लिये इस पत्रसे बडा ही उपकार पहुंचा है, अभी तक उर्दूमें दिगम्बर जैन समाजका एक भी पत्र नहीं था. जैनप्रचारकने इस कमीको पूरी कर दी है. हम सिफारिश करते हैं कि, उर्दू जाननेवाले भाई इसके ग्राहक बनें, वार्षिक मूल्य १।) है.

तीर्थक्षेत्रकमेटीकी रिपोर्ट-कमेटीकी यह छठी वर्षकी रिपोर्ट है. इसके प्रारंभके कोई १२ पृष्ठोंमें तीर्थोंकी यात्राका मार्ग, रेलकिराया, और मन्दिरोंकी व्यवस्था आदिका वर्णन दिया है इस लिये इसका नाम तीर्थयात्रादर्पण भी रख दिया है. बाकी १०० पृष्ठोंमें तीर्थक्षेत्रकमेटीने इस वर्षमें क्या २ कार्य किये हैं उनका खुलासा, प्रत्येक तीर्थका हिसाब, उसकी व्यवस्था, मन्दिरोंकी नामावली, आदि सब बातें विस्तारके साथ लिखी गई हैं. मूल्य ४ आना. मिलनेका पता-दि० जैन तीर्थक्षेत्रकमेटीका दफ्तर-हीराबाग-बम्बई.

विविध समाचार ।

तम्बाकू पीनेका कानून---गत अप्रैल महीनेमें इग्लेंडमें एक कानून जारी किया गया है कि, १६ वर्षकी उमरसे कम उमरके लडकोंको जो कोई दूकानदार सिगारेट बेचेगा, उसे सजा दी जावेगी. तथा अपराधी लडकोंके मुकदमें करनेके लिये जुदे मजिष्ट्रेट नियत किये गये हैं. ये मजिष्ट्रेट केवल सजा ही नहीं देवेंगे किन्तु लडकोंको उपदेश देकर इस बुरे व्यसनसे विमुख करनेकी शिक्षा देवेंगे. जिस देशके बालकोंके आचरणपर इतना ख्याल किया जाता है, वहां देशभक्त और विद्वान पुरुष क्यों न तयार होगें ? तम्बाकूका बालकोंकी बुद्धि और

आचरणपर बडा बुरा असर पडता है. इसके रोकनेके लिये प्रत्येक गवर्न्मेंटको प्रयत्न करना चाहिये. हमारे यहां तो शराब जैसे पापकारी नशेके रोकनेका भी कुछ प्रयत्न नहीं किया जाता है. बल्कि जो लोग रोकनेका उपाय करते हैं, वे राजद्रोही समझे जाते हैं।

जैनियोंकी छुट्टी—श्वेताम्बरजैनग्रेज्यूएटएसोसियेशनकी कोशिशसें यहांके गवर्नर सा० ने जैनियोंके लिये १० दिनकी सरकारी छुट्टी मंजूर की है.

व्यापारीबेंक—बम्बईमें मरचेंटबैंकलिमिटेड नामका एक बैंक स्थापित हुआ है. इसकी पूंजी एक करोड रुपयेकी और प्रत्येक शेअर सौ रुपयेका है. इससे स्वदेशी व्यापारियोंको बहुत लाभ पहुंचेगा.

प्राचीन मन्दिर—मुर्शिदाबादके कासिमबाजारमें सुनते हैं, एक १४०० वर्षका प्राचीन दिगम्बरजैन मन्दिर है. इस समय यह श्वेताम्बरियोंके आधीन है. मालूम होता है, बंगालमें उस समय दिगम्बर जैनियोंकी आबादी होगी.

प्राचीन लुप्त हुआ नगर—महसूर राज्यमें चित्तलदुर्गके समीप एक प्राचीन नगरका पता लगा है, जिसका नाम चन्द्रावली था. राज्यकी ओरसे जमीन खुदवानेसे बडी बडी इमारतें. मठ, मन्दिर, सोने चान्दी तथा सीसेके सिक्के, मिट्टीके वर्तन, हड्डियां, शिलालेख आदि निकले हैं, सीसेके सिक्कोंपर बौद्धधर्मके चैत्य, धर्मचक्र आदि चिन्ह हैं. ये सिक्के ईस्वी सन्‌से २०० वर्ष पहलेके है. खोदनेका काम जारी है. इस स्थानसे अनेक प्राचीन बातोंका पता लगनेकी संभावना है. न जाने ऐसे कितने वैभवशाली नगर कालकी कुटिल गतिसे पृथ्वीके उदरमें प्राचीन इतिहासको छुपाये हुए पडे है.

चीनकी जागृति—चीन देशकी उन्नति बडी शीघ्रतासे हो रही है. शिक्षाप्रचारके लिये वहां बडी २ कोशिशें की जा रही हैं. वहांके हजारों विद्यार्थी जापान आदि देशोंमें शिक्षा पा रहे हैं. शिक्षाके लिये वहां एक बडा भारी प्रबन्ध यह किया गया है कि, वहां जितने देवमन्दिर हैं, वे सब स्कूल बना दिये गये हैं. अर्थात मन्दिरोंमें विद्या पढाई जाने लगी है! जैनियोंको भी चाहिये कि, वे अपने मन्दिरोंको केवल पूजा करनेके ही स्थान नहीं, किन्तु विद्याध्ययन और शास्त्रविचारके मुख्य स्थान बनावें. जब तक शिक्षाका प्रचार नहीं होगा, तब तक उन्नतिकी आशा करना व्यर्थ है.

धूर्तरसिकलाल—दुराचारी नौकर धनवानोंको अपनी मुट्ठीमें करके किस तरह सत्यानाश करते हैं. और फिर उनकी पोल किस तरह खुलती है, यह देखना है, तो इसे पढ़िये । मूल्य ॥) आना ।

शिवाजी विजय—मराठा सरदार शिवाजीकी वीरता और देशसेवाका वर्णन बांचकर हृदय फडक उठता है । मूल्य १) रुपया ।

स्वतंत्ररमा परतंत्र लक्ष्मी-विलायती सभ्यता सीखी हुई और देशी सदाचार सीखी हुई दो बहनोंका मजेदार चरित्र । मूल्य ।=) आना ।

देवरानी जिठानी -नामहीसे समझ लीजिये । मू० ॥)

सासपतोहू—गृहस्थीका चरित्र है । मू० ॥)

बडाभाई- सौतेली मा बेटेका सत्यानाश कैसे करती है । मू० ॥=)

रमा माधव बाबू स्वरूपचन्द्रजैनकृत । एक अबलाने बूढ़ेके साथ अपना विवाह किस खूबीसे नहीं होने दिया है । मूल्य ॥)

आनन्दमठ-वन्देमातरम् गीतकी उन्नति इसी उपन्याससमेसे हुई है । जरूर पढ़िये । मू० ॥)

उपयोगी शिक्षादायक पुस्तकें

भोज और कालिदास-बाबूस्वरूपचंन्द्रजैन कृत । भोज और कालिदासकी छोटी बडी सब मनोरंजक कहानियोंका इसमें संग्रह है । यह उपन्यास नहीं है, तौ भी आनंददायक है । मूल्य ॥।=)

स्वामी और स्त्री-इस पुस्तकके १६ पृष्ठ जैनहितैषीमें सुखसाधन नामसे निकल चुके हैं, इस लिये यह पुस्तक कैसी है, यह बतलानेकी जरूरत नहीं है । जो लोग विवाहित है, उन्हें इसकी एक २ प्रति जरूर मंगाना चाहिये । मू० ॥।)

Reg. No. B. 719.

ॐ

मासिक पत्र।

देवरी(सागर)निवासी श्री नाथूराम प्रेमीद्वारा सम्पादित।

पांचवां भाग.	श्रावण— वीर नि० सम्वत् २४३५।	अंक १०

लीजिये —

प्रद्युम्नचरित्र.

छपकर तयार हो गया।

सरल हिन्दी भाषामें सबके

समझने योग्य

बहुत ही मनोहर ग्रन्थ।

न्योछावर २॥)

चिट्ठी पत्री लिखनेका पता:—

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
पो० गिरगांव—बम्बई.

[illegible] कर्नाटक छापखाना, मुंबई

सूचना

अधिक मासका जैनहितैषी नहीं निकाला जावेगा। इसके बाद भादोंका जैनहितैषी निकलेगा, और वह यथासंभव शीघ्र तयार किया जावेगा।

बहुतसे भाई दशलक्षणीके दिनोंमें पुस्तकें मंगाते हैं और लिखते हैं कि, देखते चिट्ठीके रवाना कर दो, हमें लड़कोंको इनाम बांटना है अथवा मन्दिरमें चढ़ाना है, उनसे प्रार्थना है कि, दशलक्षणीके पहले ही जो कुछ मंगाना चाहैं, मंगा लेवें। क्योंकि उक्त दिनोंमें हमें अवकाश बहुत थोड़ा मिलता है।

क्षमावणीके स्वदेशी कार्ड।

जिन भाइयोंको चाहिये, अभीसे हमारे पास आर्डर भेज देवें। कार्ड तयार होते ही उनके पास भेज दिये जावेंगे। अबकी बार हम ऐसे कार्ड छपाना चाहते हैं, जो कई वर्षतक काम दे सकैंगे, अर्थात् उनमें मिती वगैरहकी जगह छोड़ देवेंगे, इसलिये ग्राहकोंको एक साथ बहुतसे कार्ड मंगा लेना चाहिये। सैकड़ेकी दर चार आना डांकखर्च अलग।

श्रीपालचरित्र।

भाषा चौपाईबद्ध श्रीपालचरित्रकी हमारे पास थोड़ीसी प्रतियां आई हैं, जिन भाइयोंको जरूरत हो, जल्दी मंगा लेवें। पुष्ट कागजपर छपा हुआ और कपड़ेकी जिल्द बंध हुआ तयार है। न्योछावर १॥)

तेरहद्वीप पूजाविधान।

यह बड़ा भारी पूजन विधान खास भादोंकी विक्रीके लिये मंगाया गया है। क्योंकि इन दिनों पूजाविधानोंकेलिये बहुतसे भाई हमें लिखते हैं। केवल १० प्रतियां हमारे पास आई हैं। इसलिये मंगानेवालोंको देरी नहीं करना चाहिये। न्योछावर २॥)

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र॥ १॥

पंचम भाग | श्रावण-श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३५। | अंक १०

संपादकीय विचार।

संस्कृत पाठशालाओंका शिक्षाक्रम।

स्याद्वाद पाठशाला, महाविद्यालय, बम्बईविद्यालय, सत्तर्कसुधातरंगिणी पाठशाला, आदि पाठशालाओंमें जो शिक्षा दी जाती है, उसमें बड़ी भारी त्रुटि यह है कि, व्यावहारिक ज्ञान करानेकी ओर बिलकुल लक्ष्य नहीं दिया जाता है। जहां तक हम जानते हैं, उनमें संस्कृतके साहित्य, व्याकरण, न्याय, और धर्मशास्त्र ये चार ही विषय ही पढ़ाये जाते हैं। हिन्दी साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित, चित्रविद्या, पदार्थविद्या, आरोग्यशिक्षा, व्यायाम आदि विषयोंकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है। फल इसका यह होता है कि, उक्त पाठशालाओंमें जो विद्यार्थी तयार होकर निकलते हैं, वे व्यवहारज्ञानशून्य निरे पंडित होते हैं, और सिवाय इसके कि किसी पाठशालाके अध्यापक होकर अपने पठित विषयोंको पढ़ा सकें, और कुछ भी नहीं कर सकते हैं। बालक विद्यार्थियोंके हृदयमें अपनी समझी हुई ज्ञानको किस तरहसे भर देना, और थोड़े परिश्रमसे विद्यार्थी किस तरहसे सुबोध हो सकते हैं, इस विषयकी शिक्षा न मिलनेसे वे उन पाठशालाओंकी अध्यापकी भी जैसी चाहिये, वैसी नहीं कर सकते हैं। इस समय बड़ी भारी जरूरत इस बातकी है कि, संस्कृतके उत्तमोत्तम ग्रन्थोंका अनुवाद सरल हिन्दीमें सबके समझने योग्य किया जावे, तथा जैनियोंके उत्तमोत्तम साहित्य ग्रन्थोंका परिचय सर्वसाधारणको कराया जावे। परन्तु जिस ढंगसे उक्त

पाठशालाओंकी पढाई हो रही है, उससे इन कामोंके करने योग्य विद्यार्थी तयार होना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। इतिहासका ज्ञान न होनेसे–इतिहासका महत्व न समझनेसे जैनियोंका प्राचीन इतिहास जो घोर अंधकारमें पड़ा हुआ है, उसके उद्धारकी तथा अपने पूर्व पुरुषोंके चरित्र पढ़कर उत्साहित होने और अपनी उन्नतिका मार्ग ढूंढ निकालनेकी आशा भी नहीं की जा सकती है। इसी प्रकारसे गणित भूगोलादि न जाननेसे भी बहुत हानियां हो रही हैं। जिनपर विचार करनेसे बहुत खेद होता है। इस शिक्षाक्रमसे जो विद्यार्थी पढ़कर निकलते है, वे अपने जीवननिर्वाहका अध्यापकी आदिके सिवाय कोई अच्छा प्रयत्न नहीं कर सकते हैं, जिससे लोगोंके हृदयसे संस्कृत शिक्षाके विषयमें उदासीनता बढ़ती जाती है। संसारी विषयवासनाओंमें फँसे हुए लोग अपने लडकोंको रुपया पैदा करनेकी कल बनाना चाहते हैं, और उनकी यह इच्छा निरे पंडित बनानेमें पूर्ण नही होती। इस लिये इस ओरसे विरक्त होकर वे अपने लडकोंको वह शिक्षा दिलाते हैं, जिससे धन कमाया जा सकै। यदि संस्कृत पाठशालाओंमें न्याय व्याकरणके साथ साथ धन कमानेकी विद्या भी थोडी बहुत सिखलाई जावे, तो इससे संस्कृत शिक्षाके प्रचारकी ओर लोगोंका ध्यान बहुत कुछ आकर्षित हो सकता है। इस लिये संस्कृत पाठशालाओं तथा विद्यालयोंके व्यवस्थापकोंसे हमारा निवेदन है कि, वे अपने शिक्षाक्रममें कुछ परिवर्तन अवश्य करें। परन्तु यदि प्रवन्धकर्तांओंकी केवल यही इच्छा हो कि, उनकी पाठशालाओंमें केवल संस्कृत, व्याकरण, न्याय, साहित्य ही पढाया जावे, तो उन्हें यह नियम अवश्य बना लेना चाहिये कि, “ हमारी पाठशालाओंमें केवल वे ही विद्यार्थी भरती हो सकेंगे, जो हिंदीकी छह कक्षा तक पढे हों, अथवा हिन्दी टीचरकी परीक्षामें पास हो चुके हों। ” क्यों कि इतनी योग्यता रखनेवाले विद्यार्थी हिन्दीसाहित्य, व्याकरण, भूगोल, इतिहास, आरोग्यशिक्षा, पदार्थविद्या, आदि सब विषयोंका साधारण ज्ञान रखते हैं। और व्युत्पन्न होनेके कारण ये आगे अच्छी तरहसे चल भी सकते हैं। ये विद्यार्थी संस्कृत न्याय व्याकरणादिकी शिक्षा पा चुकनेपर समाजकी सेवाका तथा अपने जीवननिर्वाहका कार्य भली भांतिसे कर सकते हैं। साधारण लिखना वांचना जाननेवाले विद्यार्थी जो केवल न्याय व्याकरण पढ़नेमें लगा दिये जाते हैं, वे विद्वान हो सकते हैं. परन्तु हमारी समझमें उनसे समाजका

कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता है । और इस समय हमको ऐसे विद्वान तयार करनेकी आवश्यकता है, जो समाजकी सेवा और अपना निर्वाह अच्छी तरहसे कर सकें ।

बोर्डिंग स्कूलोंमें धर्मशिक्षा ।

सरकारी कालेजों तथा स्कूलोंमें धर्मविरहित अंग्रेजी शिक्षा दी जाती है. जिससे समाजके नवयुवक धर्मज्ञानशून्य तथा नास्तिक बनते जाते हैं । इस बडे भारी दोषको दूर करनेके लिये समाजके कुछ धर्मात्मा धनिकोंने बोर्डिंगस्कूलोंकी स्थापना की है । इस समय बम्बई, अहमदाबाद, जबलपुर, कोल्हापुर, शोलापुर, हुबलीआदि कई स्थानोंमें बोर्डिंगस्कूल खुले चुके हैं, और वे चल भी अच्छी तरहसे रहे है । इन बोर्डिंगोंमें रहनेवाले लडके सरकारी स्कूलों तथा कालेजोंमें जाकर पढते हैं, और एक अध्यापक जो बोर्डिंगोंमें नियत रहता है, घंटा आध घंटा उन्हें कुछ धर्मकी शिक्षा दे दिया करता है । परन्तु जहां तक हमको मालूम हुआ है, अभी तक अधिकांश बोर्डिंगोंमें धर्मशिक्षाका एक नाम ही नाम है । जिस अभिप्रायसे ये खोले गये हैं, उस अभिप्रायकी सिद्धि शायद ही किसी अंशमें होती होगी । क्योंकि एक तो उन्हें सप्ताहमें केवल दो तीन घंटे ही धर्मशिक्षा दी जाती है, जो समुद्रमें कणिकाके तुल्य है, दूसरे अध्यापक ऐसे रक्खे जाते हैं, जिनका विद्यार्थियोंके ऊपर न तो कुछ प्रभाव ही पड़ता है और न वे उस ढंगसे पढ़ा सकते है, जिस ढंगसे उन विद्यार्थियोंपर शिक्षाका असर पड़ सके । अंग्रेजीके ऊंचेसे ऊंचे विषयोंके पढनेवालोंको एक पन्द्रह या वीस रुपये मासिक पानेवाला पंडित जिसकी योग्यता छोटे २ विद्यार्थियोंको साधारण पुस्तकोंके पढ़ा देने की है, क्या पढ़ाता होगा? और उसकी शिक्षाका वे ग्रेज्युएट विद्यार्थी एक कौतुकसे अधिक और क्या गौरव करते होंगे? सो विद्वान पाठक सहज ही सोच सकते हैं । जब तक बोर्डिंगोंमें अच्छी तनख्वाह पानेवाले अथवा आनरेरी काम करनेवाले ऐसे विद्वान न रक्खे जावेंगे, जो कि अपने विचारोंको विद्यार्थियोंके हृदयमें अच्छी तरह ठँसानेमें समर्थ हों, जिनके चरित्रका विद्यार्थियोंके हृदयपर कुछ प्रभाव पड़ता हो और पठन कालके सिवाय दूसरे समयमें भी सहवास रख कर जो धर्मविषयक ऊहापोह किया करें, तथा जबतक धर्मशिक्षाका समय प्रतिदिन कमसे कम डेढ दो घंटा न रक्खा जावेगा, तबतक बोर्डिंग स्कूलोंसे जो लाभ सोचा गया है, वह

कभी नहीं हो सकेगा। बोर्डिंग स्कूलोंके संचालकोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये और अपने धर्मविद्याकी उन्नति करनेके उद्देशको कार्यमें परिणत करनेमें शिथिल नहीं होना चाहिये।

आक्षेपोंका समाधान।

श्रीयुत मुंशी चम्पतरायजीने ८ अगस्तके जैनगजटमें हमारे ऊपर दो आक्षेप किये हैं। एक तो यह कि, "सम्पादकने जैनहितैषी हमारे पास नहीं भेजा" और दूसरा यह कि "महासभाके उपदेशक छपे ग्रन्थोंके प्रचारको रोकते हैं, जैनहितैषीका यह लिखना गलत है।" पहले आक्षेपके उत्तरमें हमारा यह निवेदन है कि, मुंशीजीके पास अंक तो सब भेजे गये हैं, परन्तु जिस लेखमें महासभापर आक्षेप किया गया है, उसका शीर्षक "जैनग्रन्थावली" है। शायद इसीलिये उसके बांचनेका उन्होंने परिश्रम नहीं किया है। जिन लोगोंको अवकाश कम होता है, वे हैडिंग देखकर जिनकी जरूरत समझते हैं, केवल उन्हीं लेखोंको पढ़ लिया करते हैं. सब नहीं पढ़ते हैं। जैनहितैषीके आठवें अंकमें जो लेख लिखा गया है, वह विशेष करके महासभाके अधिकारियोंके लिये ही लिखा गया है, जिसमें वे महासभाके द्वारा सरस्वतीप्रचारमें कितना लाभ पहुंचा है, इसका विचार कर सकें। फिर पाठक सोच सकते हैं कि, उसे मुंशीजीके पास नहीं भेजनेमें हमको क्या लाभ हो सकता था? जो लेख सर्वसाधारणमें प्रकाश करनेके लिये लिखा जाता है, वह क्या किसी एकके पास नहीं भेजनेसे छुपा रह सकता है? और यदि सचमुच ही मुंशीजीके पास जैनहितैषी नहीं पहुंचा था, तो क्या वे उसे पीछेसे नहीं मंगा सकते थे?

दूसरे आक्षेपके विषयमें हम तीर्थक्षेत्र कमेटीके मैनेजर बाबू प्रियचन्दजीकी एक चिट्ठी प्रकाशित करते हैं। जिससे पाठक जान सकेंगे कि, महासभाकी ओरसे छापेका प्रचार रोकनेके लिये अवश्य ही प्रयत्न होता है। और इस बातके कहनेवाले केवल जैनहितैषीके सम्पादक ही नहीं हैं, बाबू सूरजभानजी, अंग्रेजी जैनगजट, बाबू प्रियचन्दजी आदि बहुतसे हैं। हो सका, तो आगामी अंकमें इसके और भी प्रमाण दिये जावेंगे। मुंशीजी यह नहीं समझें कि केवल हकीमजीकी एक चिट्ठी मात्रसे महासभा दोषमुक्त हो जावेगी। इसके सिवाय जैनहितैषीमें हमने जो लिखा था, वह इस अभिप्रायसे नहीं लिखा

था कि, महासभा आपनी सफाई पेश करै । हमने उसमें यह सिद्ध किया है कि, महासभा आदि सभाओंसे सरस्वतीके प्रचारमें आजतक कोई भी सहायता नहीं मिली है, बल्कि सभाओंके अधिकारियोंसे जहांतक बनता है, इसके रोकनेका प्रयत्न किया करते हैं, और यह हम अब भी कहते हैं ।

संपादक, जैनहितैषी योग्य—

जैनगजट अंक ५ अगस्त ०९ में एक लेख डिपुटी चम्पतराय सा. महामंत्रीका प्रकाशित हुआ है, जिसमें डिपुटी सा. ने हकीम जिनेश्वरदासकी चिट्ठी उद्धृत करके यह सिद्ध किया है कि, हकीमजीने छापेके विरुद्ध मेरठमें एक शब्द भी नहीं कहा है. मै भी यह बात स्वीकार करता हूं कि शायद न कहा होगा। परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि महासभाके उपदेशक व कार्यकर्त्ता छपे हुए ग्रंथोंके विरोधमें कुछ भी नहीं कहते हैं । क्यों कि मैं जब फरवरीमें श्रीमन्त शेट मोहनलालजीसे खुरईमें मिला था और उनसे प्रश्न किया था कि पं. श्यामलालजी उपदेशक मध्यप्रान्त बुन्देलखंड दि. जैन प्रान्तिक सभा छापेके विरोधमें उपदेश क्यों करते हैं? तब उन्होंने साफ २ कहा था कि, महासभाका जब ऐसा उद्देश है कि, छपे हुए ग्रंथोंके प्रचारको रोकना! तब उसकी शाखा सभाओंका भी वही उद्देश होना चाहिये । पाठकगण इससे निर्णय कर सकते हैं कि, शेठजी सा. छापेके विषयमें महासभाका क्या कर्तव्य समझते हैं.

हकीम जिनेश्वरदासकी जो चिट्ठी प्रकाशित की गई है, उसपर सहायक महामंत्री सा. ने अपनी कुछ भी राय प्रकाशित नहीं कराई है । जिससे कौन कह सकता है कि इस विषयमें स. म. मंत्रीकी कुछ राय है या नहीं ?

हीराबाग—मुंबई,
१४—८—०९.

आपका—
प्रियचन्द्र जैन.

जैनियोंमें छापेका भविष्य ।

"श्रेयांसि बहुविघ्नानि" अर्थात् अच्छे कार्योंमें बहुतसे विघ्न हुआ करते हैं । परन्तु कार्य करनेवाले उन विघ्नोंकी परवाह नहीं करते हैं । उनसे हतोत्साहित नहीं होते हैं । बल्कि ज्यों २ विघ्न आते जाते हैं, त्यों त्यों उन्हें अपने कार्यक्षेत्रमें

पैर बढ़ानेकी उत्तेजना मिलती है, और अन्तमें वे सफलमनोरथ होते हैं। यह सदाका नियम है। जैनसमाजमें जैनग्रन्थोंके छपनेका विषय उपस्थित हुए पन्द्रह वर्ष हो चुके। ग्रन्थोंके छपनेका सूत्रपात होते ही इसके विरोधियोंका एक दल खड़ा हो गया था और इसकी राहमें रोड़ा अटकानेके लिये कटिबद्ध हो गया था। परन्तु छापेके प्रचारकोंने उनके विरोधकी कुछ भी परवाह न की, और अपने काममें लगे रहे। शोलापुरके शेठ श्रीयुक्त हीराचन्द नेमिचन्दजीने जो इस कार्यके प्रधान अगुए थे, उस समय कहा था, "हमैं अपना काम करते जाना चाहिये, विरोधी ठंडे हो जावेंगे, और लोग छापेके लाभ समझ समझकर उसके अनुयायी होते जावेंगे।" दूरदर्शी शेठजीकी यह उक्ति बराबर चरितार्थ हुई। समाजमें छपे ग्रन्थोंका प्रचार बढने लगा और विरोधी धीरे २ शान्त होने लगे।

परन्तु कई वर्षोंके बाद अब विरोधी सज्जन फिर सचेत हुए हैं। अपने अकांड तांडवसे उन्होंने समाजको फिर विचलित करना शुरू किया है। धर्मविद्याकी उन्नति चाहनेवालोंको इससे एक प्रकारकी चिन्ता हो गई है। वे सोचते हैं, ये लक्षण अच्छे नहीं है। इससे समाजको हानि पहुंचेगी। परन्तु हमारी समझमें इसमें चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है। क्योंकि विरोधियोंकी यह दूसरी बारकी चेतनता स्वयं नहीं हुई है। कुछ लोगोंकी छेडछाडसे तथा वाक्प्रहारसे हुई है। यदि वे फिरसे न छेड़े जाते, सताये न जाते, तो कभी सचेत नहीं होते। उन्हें स्वयं इस बातका विश्वास नहीं है कि, हमारे प्रयत्नमें हमको सफलता होगी। परन्तु क्या करैं, अपनी लज्जा रखनेके लिये अपने पक्षका निर्वाह करनेके लिये थोडा बहुत वितंडा किये छुटकारा नहीं है, ऐसा समझकर यह दूसरी बार कूंदफांद मचाई गई है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि, छापेके विरोधियोंके पैर पहले जैसे मजबूत बने हुए हैं। नहीं, उनकी कमर टूट चुकी है, अंग प्रत्यंगोंने जवाब दे दिया है, और छापेके फैलते हुए प्रभावसे वे हतप्रभ तथा निराश हो चुके हैं। केवल लोगोंकी दृष्टिमें उनका मुंह जी रहा है, गाली देनेके सिवाय अपने पक्षका समर्थन करनेके लिये उनके पास कोई युक्ति नहीं रही है।

महासभाके महामंत्री श्रीयुक्त मुंशी चंम्पतरायजीने ८ अगस्तके जैनगजटमें एक लेख लिखा है। जिसका सारांश यह है कि "दक्षिण, पंजाब, युक्तप्रान्त आदिमें छपे ग्रन्थोंका खूब प्रचार हो रहा है। यंगमेन्स एसोसियेशनने अपने जल्सेमें

खुल्लम खुल्ला जैन ग्रन्थोंके छपनेका प्रस्ताव पास कर डाला है। इस लिये जब इसका प्रचार रोकना असंभव है, तब महासभा इस झगडेमें क्यों पड़े, जिससे समाजको लाभके स्थानमें हानि पहुंचै। हां! अब उसका कर्तव्य यह है कि, इसका कोई प्रबन्ध ऐसा करे जिससे वह हानि जो इस समय हो रही है, न हो—कि हरएक मनुष्यने जो इसको अपना रोजगार समझकर कलकतिया टाइपमें भद्दे कागजपर अशुद्ध ग्रन्थ छापछापकर सस्ते दामोंमें बेचना शुरू किया है, सो न कर सकें" इस लेखसे चतुर पाठक जान सकैंगे कि छापेका प्रचार बराबर बढ़ रहा है. और उसके रोकनेकी महासभामें भी शक्ति नहीं है! बल्कि वह बुरी छपाईके ग्रन्थोंको रोककर अच्छे शुद्ध और सुन्दर छपे हुए ग्रन्थोंके प्रचार करनेमें—प्रत्यक्ष नहीं किन्तु प्रकारान्तरसें सहायक बननेके लिये तयार है। क्योंकि "बुरी छपाईके ग्रन्थोंको रोकना" इसीसे ध्वनित होता है कि अच्छी छपाईके ग्रन्थोंका प्रचार करना अच्छा है।

छपे ग्रन्थोंका प्रचार बढ़ रहा है, इसका कारण केवल छपानेवालोंका उद्योग ही नहीं है, किन्तु समयका परिवर्तन और दूसरे समाजोंकी उन्नतिका चित्र है। सारे देशके लोग जब छापेसे अवर्णनीय लाभ उठा रहे हैं, जितनी उन्नतियां हो रही हैं, उनका मुख्य साधनभूत जब मुद्रणकौशल समझा जा रहा है, तब कैसे संभव हो सकता था कि पढ़े लिखे जैनी चुपचाप बैठे रहते? ईसाई लोग जब अपनी बायबिलका करीब डेड सौ भाषाओंमें अनुवाद कराके उसकी करोंडों अरबो कापियां छाप छापकर बांटते हैं और उसके जरिये लाखों इसाई बना रहे हैं, हिन्दुओंकी तुलसीकृत रामायणकी जब प्रतिवर्ष कई लाख प्रतियां छपकर लोगोंके घर घर पहुंचकर उन्हें श्रद्धालु धर्मपरायण बना रहीं हैं, गीता अनेक भाषाओंमें अनुवादित होकर जब सारी दुनियांमें हिन्दुओंके धर्मकी विजयदुंदुभी बजा रही है, तब जैनधर्मके उपासकोंके हृदयमें अपने पवित्र ग्रन्थोंका प्रचार करनेके लिये जो कि भंडारोंमें पड़े पड़े सड़ रहे हैं, तथा मूर्ख लेखकोंकी कृपादृष्टिसे अतिशय अशुद्ध हो रहे हैं छापेका आश्रयका लेनेका उत्साह न होता, तो क्या होता? हम तो कहते हैं कि, यदि जैनियोंमें छापेका सूत्रपात न होता, तो संसारकी उन्नतिशील दशाके निरीक्षक उनपर यह कलंकका टीका लगाये विना कभी नहीं रहते कि " जैनियोंमें विद्याका तथा उत्साहका नामशेष भी नही रहा है। वे अपनी उन्नति कभी

नहीं कर सकेंगे । " अब भी जो लोग सुनते हैं कि, जैनियोंमें छापेके विषयमें बडा भारी युद्ध मच रहा है, वे जैनसमाजकी अज्ञानतापर हँसे बिना नहीं रहते हैं । इतनी बडी धनिक जाति विद्यामें इतनी पीछे क्यों पड़ी हुई है, इस बातका उत्तर भी वे हमारे छापे विषयक विवादसे तत्काल ही निकाल लेते हैं ।

जबतक समाजमें मूर्खताका साम्राज्य रहता है, तबतक अच्छेसे अच्छे कार्योंमें भी विघ्न उत्पन्न करनेवालोंकी कमी नहीं रहती है । परन्तु ज्यों २ शिक्षाका विस्तार होता जाता है, त्यों त्यों ऐसे विघ्न करनेवाले कम होने लगते हैं. और अन्तमें जब समाज शिक्षित हो जाता है, तब प्रत्येक कार्य बिना किसी विपत्तिके चलने लगते हैं । जिस समय हिन्दुओंके धर्मग्रन्थोंके छपनेका प्रारंभ हुआ था, उस समय उनके यहां भी अलीगढ़ जैसे अनेक पंडित विरोध करनेके लिये तयार हुए थे ! परन्तु अब उनका कहीं पता नहीं है। श्वेतांबर समाजमें भी छापेके विषयमें उनके बहुतसे लोगोंने उछल कूंद मचाई थी, और भीमसी माणिकको जो कि पुस्तक छपाने वालोंमें अग्रसर थे, नरकगामी ठहराया था ! तथा उसका असर भी छापेके विरुद्ध में बहुत कुछ हुआ था । परन्तु आखिर उनके यहां भी शान्ति हो गई । जो लोग विरोध करनेवाले थे, वे ही छापेके प्रचारक हो गये । हमारे समाजमें भी यही होनेवाला है । वह समय बहुत जल्दी दश पांच वर्षमें ही आता है, जब सारा समाज एक स्वरसे कहेगा कि ग्रन्थ छपानेके लिये अपनी शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिये । आजसे ५० वर्ष पीछे जब हमारी शिक्षित संतान सुनेगी कि, हमारे समाजमें छापेका घोर विरोध करनेवाले भी थे, तब वह बड़ा आश्चर्य करेगी और यह अनुमान जरूर करेगी कि, वह समय बडी ही अज्ञानताका था !

थोडेसे दुराग्रही शेठ लोगों और उनके कृपाजीवी पंडित लोगोंको छोड़कर जितने लोग छापेका विरोध करनेवाले हैं, उनमें प्राय: ऐसे ही लोग अधिक हैं, जो छापेके महत्वको नहीं समझते हैं और छापेके ग्रन्थोंका जिन्होंने अच्छी तरहसे अवलोकन नहीं किया है । वे समझते हैं, ग्रन्थ छपानेमें हाथसे ग्रन्थ लिखने वालोंके बराबर बुद्धिमानीकी भी जरूरत नहीं होती है । जिस तरह छीपा लोग कपडे छाप लिया करते हैं, उसी तरह से ये भी आंख बन्द करके ग्रन्थ छाप लिया करते हैं। इसके सिवाय उनके अगुए उन्हें उपदेश देते हैं कि, ग्रन्थ छपनेसे महा अशुद्ध हो जाते हैं। एक अशुद्धिकी हजार अशुद्धियां हो जाती हैं ! उपदेश सुननेवालोंमें इतना ज्ञान और इतना साहस कहां जो पूछ सकें कि,

यदि हजार ग्रन्थ लिखवाये जावें, तो उनमें कितनी अशुद्धियां होंगी ? बस जबतक यह अज्ञानता बनी हुई है, और लोगोंके हाथमें शुद्ध छपे हुए ग्रन्थ नहीं पहुंचे हैं तथा हस्तलिखित ग्रन्थोंसे उन्होंने उनका मिलान नहीं किया है, तब ही तक छापेके विरोधियोंका समाजमें अस्तित्व समझना चाहिये । हम यह बात गर्वके साथ कह सकते हैं कि, जो पुरुष निष्पक्ष होकर बम्बईके दो चार छपे हुए ग्रन्थोंका स्वध्याय करेगा, वह छापेका विरोधी कभी नहीं रह सकता है । छापेके कट्टर विरोधी छापेकी इस खूबीको देखकर उसके अनुयायी हो गये हैं । आज समाजमें जितने नामी २ विद्वान् है, उनमें छापेका विरोध करनेवाला एक भी नहीं है । बल्कि जो लोग प्रत्यक्षमें छापेका विरोध करनेवाले हैं, उनके घरोंमें भी आप निर्णयसारके छपे हुए दो चार जैन काव्य अवश्य पावेंगे । खुरईके-श्रीमन्त शेठजी जिनवाणीमाताके भक्तोंको जो ग्रन्थ लिखाकर भेजते हैं, उन की लिखाई तथा संशोधन कराई, एक हजार श्लोककी तीन रुपया होती है, परन्तु निर्णयसागर प्रेसके मालिक जो जैनियोंका प्रमेयकमलमार्तंड ग्रन्थ छपा रहे हैं, उसकी लिखाई तथा संशोधन कराईमें ५) रुपया फार्म खर्च करते हैं ! एक हजार श्लोकमें अनुमान छह फार्म होते है । अर्थात् छपानेवाले तीस रुपया हजार लिखवाई और-शुधाईमें खर्च करते है। बल्कि कोई कोई छपानेवाले इससे भी अधिक खर्च करते हैं । बंगालकी रायल एशियाटिक सुसाइटी अपने किसी २ संस्कृत ग्रन्थकी केवल प्रूफ संशोधन कराई १०) फार्म अर्थात् एक हजार श्लोककी केवल शुधाई ६०) तक देती है ! जिस छापेमें ग्रन्थोंके संशोधनके ऊपर इतना ध्यान दिया जाता है, इतना व्यय किया जाता है, उसका प्रचार न होगा-मूर्ख लेखकोंकी लिखी हुई अतिशय अशुद्ध कन्था पुस्तकोंपर लोगोंकी श्रद्धा बनी रहेगी, उन्हें ही वर्षोंमें लिखा लिखाकर लोग पढ़ते रहेंगे, ऐसी आशा दुराग्रहसे विक्षिप्त हुए महात्माओंके सिवाय कोई विवेकी स्वस्थ मनुष्य तो कभी नहीं करेगा ।

इन दिनोंमें जब अपने बहुत ही थोडे ग्रन्थ छपे हैं, और बहुत थोड़े ग्रन्थोंके पढ़नेवाले हैं, तब भी हिसाब लगाकर देखा गया है कि, सब मिलाकर अनुमान पन्द्रह हजार रुपयेके ग्रन्थ प्रतिवर्ष बिकते हैं और पन्द्रह बीस वर्ष पीछे यह बिक्री एक लाख रुपयेपर पहुंच जावेगी, ऐसा विश्वास होता है । अब हिसाब लगाइये कि ये एक लाख रुपयेके ग्रन्थ यदि हाथसे लिखवाये जावें तो, कितनेमें

लिखे जावेंगे ? यदि दश गुणा ही फरक समझा जावे, तो कमसे कम दश लाख रुपये लगाना पड़ेंगे। क्या किसी शेठमें इतनी शक्ति है कि वह लोगोंकी इतने ग्रन्थोकी मांगको प्रतिवर्ष पूरी कर दिया करै ? हम नहीं कह सकते हैं कि आरामघरकी गुलगुली तकियाका सहारा छोडकर मन्दिरमें शास्त्र सभामें जानेके लिये भी जिनका जी नहीं चाहता है, वे आलसी जीव इस प्रकांड कार्यको कैसे करैगे। जिन्हें केवल अपनी बात रखना है, समाज मूर्ख रहकर भले ही गड्ढेमें पड़ा रहै, उन्हें भला इस झगड़ेसे क्या सरोकार है ?

जो लोग समयकी परिवर्तनशील गतिका सूक्ष्म दृष्टिसे निरीक्षण कर सकते हैं, वे यह बात अवश्य कहेंगे कि, समाजकी बढ़ती हुई ज्ञानलिप्साको पूर्ण करनेमें हस्तलिखित ग्रन्थोंके चाहे जितने कारखाने खोले जावेंगे, कभी समर्थ नहीं हो सकेंगे। कुछ दिन पहले एक पाठशालाको ५०-६० छहढालोंकी आवश्यकता हुई थी। परन्तु पेशगी रुपये देने और बीसों तकाजे करनेपर भी छापेके एक विरोधी पंडितजी एक वर्ष तक उसकी पूर्ति नहीं कर सके थे। ऐसी दशामें भी जो लोग इस बातका स्वप्न देख रहे हैं कि, छापेका प्रचार बन्द हो जावेगा, विना छापेके भी हमारा काम चलता रहेगा, उनकी दूरदर्शिताकी कहांतक प्रशंसा की जावे ?

छापेके ग्रन्थोंमें बडा भारी दोष यह लगाया जाता है कि, उसमें अशुद्ध पदार्थोंका संयोग होता है, जिससे जिनवाणी माताकी अविनय होती है। और इसी दोषसे छापेके प्रचारमें बहुत बडी रुकावट हो रही है। परन्तु छापेका विरोध करनेवाले केवल इसी दोषके कारण उसके विरोधी नहीं है। वे तो ग्रन्थोंके अधिक प्रचारको तथा उनके सस्तेपनको ही अविनयका कारण बतलाते हैं। वे नहीं चाहते हैं कि, जैनियोंके ग्रन्थोंका घर घरमें अधिकतासे प्रचार हो जावे। क्योंकि यदि वे केवल अशुद्ध पदार्थोंके संयोगके ही विरोधी होते, तो हस्तलिखित ग्रन्थोंका कार्यालय खोलेनेके लिये जितना रोरा मचा रहे हैं, उतना शुद्ध प्रेस खोलनेके लिये क्यों नहीं मचाते ? यदि कोई धनिक अगुआ होकर इस कार्यको करे, तो नखसे शिख तक छापेका सब कार्य शुद्धतासे हो सकता है। कलकत्ता और बम्बईमें छापेकी देशी स्याहीके दो बड़े २ कारखाने खुल चुके हैं, उनमें चाहे जैसी शुद्ध स्याही तयार कराई जा सकती है, रबरके बिलकुल शुद्ध

वेतन मिल सकते हैं। कंपोजीटर, प्रेसमेन, बायंडर, मैनेजर, आदि सब जैनी रक्खे जा सकते हैं, और इच्छानुसार सब प्रकारकी विनय रक्खी जा सकती है। परन्तु इस प्रपंचमें पड़े कौन ? समाजके हित करनेकी इच्छा हो, तभी न ?

जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, जब शुद्ध पवित्र प्रेस खोलनेके सब प्रकारके साधन उपस्थित हैं–पवित्रता और विनयपूर्वक ग्रन्थोंका छापना जब कोई असाध्य कार्य नहीं है, तब छापेके विरोधियोंके पास और कौनसी युक्ति प्रबल है, जो समाजपर अपना प्रभाव डाल सके। सस्तेपनसे और अधिक प्रचारसे ग्रन्थोंकी अविनय बतलाकर जो पोच युक्ति दी जाती है, केवल उसीके भरोसे अब वे समाजकी प्रतारणा नहीं कर सकेंगे। समाजमें अब इतनी अज्ञानता नहीं रही है।

सारांश यह है कि, छापेका प्रचार अनिवार्य है। इसके मार्गमें कितने ही कांटे डाले जावें, कितना ही विरोध किया जावे, यह रुक नहीं सकता है। यदि किसी बड़ी भारी राजकीय जैसी शक्तिसे भी इसका गला घोंट डाला जावे, तो भी आज बंद होकर कल फिर शीघ्रतासे बढ़ने लगेगा, पर बढ़ेगा अवश्य। क्योंकि देशकाल इसके लिये सब प्रकारसे अनुकूल है। आज सारा शिक्षित समुदाय इसके प्रचारका अनुमोदक हो रहा है। किसीकी गुप्तरूपसे और किसीकी प्रगट रूपमे इस तरह सारे विद्वानोंकी इसको सहानुभूति और सहायता मिल रही है। धनिकगणोंकी सहायताकी भी कमी नहीं है। बहुत जल्दी एक ऐसी संस्था स्थापित होनेवाली है, जिसके द्वारा ग्रन्थोंका छपा छपाकर लागतके दामोंपर प्रचार किया जावेगा। जैनियोंके सिवाय दो चार भिन्नधर्मी सज्जन भी इसके पृष्टपोषक हैं। और इन सबसे बड़ी सहायता दूसरे सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंका प्रचार देख देखकर शिक्षित युवाओंके हृदयमें जो ईर्षा उत्पन्न होती है, उसकी है। इस लिये जो लोग समाजके सच्चे हितचिंतक हैं–दूरदर्शी हैं–धर्मात्मा हैं–उन्हें पुस्तकमुद्रणके रोकनेका अविचारितरम्य प्रयत्न नहीं करना चाहिये। विद्वान् पुरुष बहुत दूर तक सोचकर किसी प्रयत्नमें लगते हैं। किसी ने कहा है "**सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्।**

अच्छा क्या है ?

१

तैमूरलंगका पोता और जगत्प्रसिद्ध **अकबर**का दादा बाबरशाह चांदनीके **मेदिनीरायका** मेवाडके महाराज **संग्रामसिंह**का तथा और भी अनेक बडे २ वीर पुरुषोंका पराजय करके दिल्लीके सिंहासनपर विराजमान था। उस समय भारतवर्षमें बाबरका गर्व हरण करनेवाला कोई भी वीर पुरुष नहीं था।

ग्रीष्मऋतुका संध्याकाल है। उष्णताके संतापसे दुखी हुए लोग **यमुना** नदीके मनोहर किनारेपर समीरसेवनके लिये टहल रहे हैं। उनमें एक राजपूत युवा भी है। परन्तु विश्वास नहीं होता कि, यह राजकुमार भी हवा खानेके लिये आया है। क्योंकि अन्य लोगोंके समान उसकी मुखमुद्रापर जरा भी प्रसन्नताका चिन्ह नहीं है। उसकी भीषण मुद्रा भयंकर जान पड़ती है। उसकी चेष्टासे तथा अंगविक्षेपसे साफ समझमें आता है कि, वह किसी गहन विचारमें उलझा हुआ है, और उसी विचारमें यहां वहां डोल रहा है। वह कभी तो चलते २ ठिठक जाता है, कभी आकाशकी ओर देखने लगता है और कभी २ यमुनाके निश्चल प्रवाहका अवलोकन करता है। कभी पृथ्वीकी ओर देखता है, कभी एकदम आगे चलने लगता है, और कभी पीछे लौटकर किसी जगह बैठ जाता है। उसके नेत्र ईंगुल सरीखे लाल हो गये हैं, और नाकमेंसे गर्म स्वास निकल रही है। थोडी देरमें वह अपने आप ही बड़बड़ाने लगा:—"बाबर! बस आज तेरी १०० वर्षे पूरी हो चुकीं! नीच! बेईमान! तूने मेरी मातृभूमिका अपमान किया है, और स्वातंत्र्यका सत्यानाश किया है। तेरे वध करनेमें मुझे चाहे जितना पाप लगै, मैं उस पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये नहीं डरता हूं। निश्चय समझ ले कि, आज तुझे इस संसारमें नहीं रहने दूंगा।"

धीरे २ अंधेरा होने लगा। यमुना नदीके अतिशय नीले जलमें आकाशमंडलके तारे अपनी सखियोंके साथ जलविहार करने लगे। उधर रोहिणीनाथ चन्द्रमाने भी जलमें डुबकी लगा दी और इस रमणीय प्रसंगको देखकर वायु भी आनन्दित होकर नृत्य करने लगा।

इतनेमें वह युवा राजपूत उठ खड़ा हुआ। उसने पहले तो चन्द्रमाके प्रकाशमें दूर तक राजमार्गका अवलोकन किया और फिर अपनी कमरसे गुप्त कटार

निकालकर उसकी ओर देखा। इतनेहीमें समीपके देवमंदिरमें आरतीके शंखका भीषण नाद सुन पड़ा। उस शब्दके सुननेसे युवाके शरीरमें एक।एक विजलीसी तडप गई! धर्मकी रक्षा करनेके जोशमें वह अपने आपेको भूल गया। यहां वहां कुछ भी न देखकर वह सीधा राजमार्गपर पहुंच गया और उसपर तेजीके साथ चलने लगा।

२

जबसे बावर सिंहासनारूढ हुआ, तबहीसे वह अपने राज्यकी व्यवस्था अपने नेत्रोंसे देखता था और नवीन नवीन वेष धारण करके नगरमें भ्रमण करता था। हमारे उपर्युक्त राजपूतको यह बात अच्छी तरहसे मालूम थी। बाबरको वह अच्छी तरहसे पहिचानता था। बाबर चाहे जो वेष धारण करता, परन्तु राजकुमार उसके पहचाननेमें नहीं चूकता। वह उसको तत्काल ही अन्वेषण कर लेता और इसी कारणसे वह आज इस विचारसे निकला है कि किसी जगह बावरको पाकर उसके खूनसे अपनी तलवारको रंजित करूं!

यह इतनी गडवड़ किस कारण हो रही है? यह क्या उपद्रव हो रहा है? ये लोग छलांगे मारते हुए इतनी जल्दी २ कहां और किस लिये भागे जा रहे हैं? कोई किसीसे कुछ बोलता नहीं है। सबहीके मुंह सूख रहे हैं। जिसे जहांसे रास्ता मिलता है, वह वहांसे भाग रहा है। यह क्या बात है? समझमें नहीं आती।

इतनेहीमें एक ओरसे आवाज आई—हाथी छूटा है! हाथी। भागो! भागो! थोडे ही समयमें एक मदोन्मत्त हाथी दिखलाई दिया। रास्तेमें जो चीज मिलती थी, वह उसे पैरसे पिचलता हुआ चला आता था। जो लोग आश्चर्यचकित होकर यह विचार करते हुए जहांके तहां खड़े थे कि, यह क्या गडबड हो रही है, उनकी धोती ढीली हो गई। साम्हने जिसको जो घर मिला, वह उसीमें घुसने लगा। कोई झाडपर चढ़ने लगा, कोई **कर्तव्यविमूढ** होकर जहांका तहां कीलित सा हो रहा, कोई दौड़ने लगा, और कोई गिर गिर कर उठने लगा। हाथीके पैरके नीचे दबकर मरनेके पहले ही उस अगणित जनसमूहमें अनेक लोग पिचलकर मर गये! इस तरह चारों ओर त्राहि! त्राहि! हाहाकार मच गया।

हमारा तरुण राजकुमार भी इस भीडमें आ फँसा था। उसे अबतक बाबर बाबर—बाबरके सिवाय और कुछ भी नहीं सूझ पड़ता था। परन्तु इस अकल्पित

घटनासे उसका चित्त उस ओरसे खिंचकर इस भीड़की ओर आ गया । इतने हीमें कोई जोरसे चिल्लाया, अरे लडके भाग ! भाग !!

एक सुन्दर बच्चा हाथीके रास्तेमें आ पड़ा था । हाथी तबतक बहुत समीप आ पहुंचा था । एक दो पलमें वह हाथीके पैरके नीचे पिसनेहीवाला था । बेचारा हास्य मुखसे रास्तेमें खेलता था । संसारके सुखदु:खोंसे अपरिचित रहनेवाला वह सुकुमार बालक क्या समझै कि, हाथी क्या चीज हैं, और उससे मेरा क्या अपाय होगा. वह और भी आनन्दके साथ हाथीके पास जाने लगा !

एक आदमी जोरसे चिल्लाया–" उस बच्चेको कोई उठा लो ! उठा लो ! देखो हाथी आ पहुंचा है !" दूसरा आदमी बोला :" उसकी तो मौत आ पहुंची है ! अब जलती हुई आगमें कौन कूद पडे ? उसके लिये दूसरेको अपना प्राण-देनेमें क्या पुण्य होगा ? क्या शोभा होगी ?"

तथापि हमारा यह तरुण राजपूत उस बालकको रास्तेसे दूसरी ओर करनेके लिये दौडा । परन्तु समीप खडे हुए दश बारह आदमियोंने उसे पकड़कर कहा "अरे मूर्ख ! कालके गालमें पड़नेके लिये क्यों तयार हुआ है ? इसके *सिवाय देखता नहीं है कि, वह भंगीका लड़का है । उसका स्पर्श करना भी* पातकका कार्य है !

बेचारा युवा राजपूत निरुपाय होकर जहांका तहां खड़ा हो रहा । वह इस कुछ इसलिये नहीं रुक गया कि, मृत्युके मुखमें पड़ते हुए भंगीके लडकेको प्राणदान देनेमे जो स्पर्शजन्य पातक होगा, उसका भागी होना पड़ेगा ! नहीं, उन दश बारह आदमियोंने उसे ऐसे जोरसे पकड लिया था कि, वह एक पैर भी आगे नहीं रख सकता था । हाय ! हाय ! ऐसे भी विचारहीन नरपशु होते हैं, जो मृत्युमुखमें पड़ते हुए जीवोंकी रक्षा करते समय भी स्पर्शास्पर्शके छोटेसे विचारको नहीं भूल सकते हैं ।

लोगोंने समझा, बालककी मृत्यु आ चुकी ! परन्तु जिसका उदय अच्छा होता है, उसे कौन मार सकता है ? उस असंख्य मनुष्योंकी भीड़मेंसे एक दयालु पुरुष दौड़ता हुआ आया और हाथीके बिलकुल आगेसे उस बालकको उठाकर एक ओर चला गया । आंखका पलक पड़ते पडते यह सब खेल हो गया । तब-तक रास्तेमें जिसको पाया, उसका चूर्ण करता हुआ हाथी भी निकल गया । थोडी देरमें भीड़ कम हो गई । लोग अपनेअपने रास्ते लग गये ।

३

भीड कम हो जानेपर युवा राजकुमार उस भंगीके बालकको प्राणदान देने-वाले पुरुषके पास गया और एकाएक उसके चरणोंपर पड़के उसके मुखकी ओर बड़ी भक्तिसे देखने लगा। यह पुरुषश्रेष्ठ कोन है? इसकी पोषाक तो बिल-कुल भिखमंगे जैसी मालूम होती है, परन्तु मुख बडा तेजस्वी है। दूसरेका जीव बचानेके लिये अपना जीव देनेको तयार हो जानेवाले पुरुष इस पापमय संसारमें बहुत थोड़े मिलते हैं। फिर यह दिव्य पुरुष कौन है? इत्यादि विचारमें निमग्न हुए उस युवा राजपूतने गुप्त वेष धारण करनेवाले बाबरको शीघ्र ही पहि-चान लिया। उसने अपनी छुपी हुई कटार निकालकर बाबरको हाथमें देना चाही। बाबरने पूछा, "तू कौन है और यह कटार मुझे क्यों देता है?"

राजपूतका कंठ भर आया। नेत्रोंमें पानी आ गया। वह कंपित स्वरसे बोला, "जहांपनाह! इस कटारसे आप अपने इस दुश्मनका काम तमाम कर दीजिये। आज मैं इस कटारसे आपका प्राण लेनेके लिये आया था। परन्तु आपने मुझे इस बातकी शिक्षा दी है कि, दूसरेका जीव लेनेकी अपेक्षा दूसरेको जीवदान देना ही मनुष्यत्वका लक्षण है। बस अब विलम्ब न कीजिये, इस पापात्माका प्राण लेकर आप निर्भय हो जाइये।"

अपना आशय बाबरको समझाकर वह तरुण राजपुत्र अपना प्राण लेनेके लिये वारंवार आग्रह करने लगा। इस घटनाका विचार करनेसे बाबरकी भी आंखें डबडबा आईं। उसने कटार फेंककर राजकुमारको छातीसे लगा लिया और गद्गद स्वरसे कहा, "सच है भाई! **दूसरेका जीव लेनेकी अपेक्षा उसे जीव-दान देना ही मनुष्यत्व है**। मैं तुम्हारा जीव ले लेता हूं। आजसे उसपर मेरी मालिकी हुई। तुम हमेशा मेरे साथ रहा करो। तुम्हें मैंने अपने शरीर रक्षकोंका मुखिया बनाया।

तरुणके अन्तःकरणकी द्वेषाग्नि जो बाबरका प्राण लेनेके लिये धधक रही थी, कृतज्ञताके आंसुओंसे जहांकी तहां बुझ गई। उस दिनसे वह बाबरका शरीररक्षक (बाडी गार्ड) बनकर रहने लगा।

बाबरने इस वीर राजपूतकी बहादुरी अनेक बार देखी। उसने अनेक बार अपने जीवको तुच्छ समझकर बाबरका प्राण बचाया। बाबरकी उसपर अतिशय प्रीति रहने लगी।

* * ० * * *

जो मनुष्य एक दिन बाबरका जीव लेनेके लिये तयार था, वही अब अपने जीवकी कुछ भी परवाह न करके बाबरका जीव बचानेके प्रयत्नमें रहता है। पाठक! बतलाइये कि, दूसरेका प्राण लेना अच्छा है, कि, दूसरेको प्राणदान देना अच्छा है?

मनोरंजन।

विषापहारस्तोत्र।

(गत ८ वें अंकसे आगे)

(३१)

हे[1] प्रभु! तेरे गुण प्रसिद्ध हैं, परमोत्तम हैं गहरे हैं।
बहु प्रकार हैं पाररहित हैं, निज स्वभावमें ठहरे हैं॥
स्तुति करते करते यों देखा, छोर गुणोंका आखिरमें।
इनमें जो नहिं कहा रहा वह, और कौन गुण जाहिरमें॥

(३२)

किन्तु न केवल स्तुति करनेसे, मिलता है निज अभिमतफल।
इससे प्रभुको भक्ति भावसे, भजता हूं प्रतिदिन प्रतिपल॥
स्मृति करके सुमरन करता हूं, नम्र होयकर नमता हूं।
किसी यत्नसे भी अभीष्ट साधनकी इच्छा रखता हूं॥

(३३)

इसीलिये शास्वत तेजोमय, शक्ति अनन्तवन्त अभिराम।
पुण्यपापविन परमपुण्यके कारण परमोत्तम गुणधाम॥
वन्दनीय पर[2] जो न और की, करते हैं वन्दना मुनीश।
ऐसे त्रिभुवननगरनाथको, करता हूं प्रणाम धर शीस॥

---

१ भगवानके गुणोंका वर्णन नहीं हो सकता है। परन्तु गंभीर, उत्कृष्ट, बहु प्रकार बहुत आदि कहकर स्तुति करनेसे उन गुणोंका अन्त दिख पड़ता है। क्योंकि ऐसा कोई भी गुण नहीं रहता, जो इन विशेषणोंमें गर्भित न हो जावे। सारांश यह कि, गुणोंका यथार्थ वर्णन वचनअगोचर है। उनका पार पाया जा सकता है, तो ऐसे ही विशेषणोंसे। २ परन्तु।

(३४)

जो नहिं स्वयं शब्द रस सपरस, अथवा रूप गंध कुछ भी।
पर इन सब विषयोंके ज्ञाता, जिन्हें केवली कहें सभी ॥
सब पदार्थ जो जाने पर नहिं, कोइ जान सकता जिनको
स्मरणमें न आ सकते हैं जो, करता हूं सुमरन उनको ॥

३५

औरोंके मनसे भी जो नहिं, लंघ्य[1] और गहरे अतिशय ॥
धनविहीन जो स्वयं किन्तु, करते जिनका धनवान विनय ॥
जो इस जगके पार गये पर[2], पाया जाय न जिनका पार।
ऐसे जिनपतिके चरणोंकी, लेता हूं मैं शरण उदार[3] ॥

(३६)

मेरु बड़ा सा पत्थर पहले, फिर छोटासा शैल स्वरूप।
और अन्तमें हुआ न कुलगिरि, किन्तु सदासे उन्नतरूप ॥
इसी तरह जो वर्धमान[3] है, किन्तु न क्रमसे हुआ उदार।
सहजोन्नत उस त्रिभुवन गुरुको, नमस्कार है वारंवार ॥

(३७)

स्वयं प्रकाशमान जिस प्रभुको, रात[4] दिवस नहिं रोक सकें।
लाघव[5] गौरव भी नहिं जिसको, बाधक होकर टोक सकें ॥
एक रूप जो रहै निरन्तर, कालकला जिसपर न चलै।
भक्ति भारसे झुककर उसकी, करूं वन्दना विघ्न टलै ॥

(३८)

इस प्रकार गुणकीर्तन करके, दीन भावसे हे भगवान।
वर न मांगता हूं मैं कुछ भी, तुम्हें वीतरागी वर[6] जान ॥

---

१ जिनका उलंघन नहीं किया जा सकता है। २ परन्तु. ३ महान बडी भारी। ३ 'वर्धमान' का शब्दार्थ यद्यपि बढ़ता हुआ होता है, परन्तु इससे ऐसा नहीं समझना चाहिये कि, भगवान् क्रम क्रमसे बढ़ते हैं। नहीं वे स्वभावसे ही उन्नत हैं। सुमेरुपर्वत पहले एक बड़ासा पत्थर था, फिर छोटासा पहाड़ हुआ और फिर कुलपर्वत हो गया। ऐसा नहीं है। वह अनादिकालसे उन्नत है। ४ रात और दिन जिसके बाधक नहीं है। ५ अगुरुलघु गुणके कारण। ६ श्रेष्ठ।

वृक्षतले जो जाता है, उसपर छाया होती स्वयमेव।
छांह-याचना करनेसे फिर, कौन लाभ होता है देव ॥

(३९)

और होय यदि देनेकी ही, इच्छा वा कुछ आग्रह हो ।
तो निजचरनकमल-रत निर्मल, बुद्धि दीजिये नाथ अहो ! ॥
अथवा कृपा करोगे ही प्रभु, इसमें क्या कुछ कहना है ।
कौन सुधी अपने प्रिय सेवक,-पर करता नहिं करुना है ॥

(४०)

यथाशक्ति कैसे ही हो, कीहुई भक्ति श्रीजिनवरकी ।
भक्तजनोंको मनचाही, सामग्री देती जगभरकी ॥
गूंथी हुई स्तवनमें पुनि, अति शुद्ध भावनासे प्यारी ।
"प्रेमी" देती है सुख यशको, तथा "धनंजय"[1]को भारी ॥

विज्ञप्ति—यह अनुवाद मूल और भाषाटीकासहित अलग पुस्तकाकार भी छपाया जावेगा ।

विद्वद्रत्नमाला ।

(३)

पण्डितप्रवर आशाधर।

"आशाधरो विजयतां कलिकालिदासः"

(उदयसेनमुनिः)

जिस समय यह लेखमाला शुरू की गई थी, उस समय ऐसा विचार था कि, जैनहितैषीके प्रत्येक अंकमें अधिक नहीं, तो एक आचार्य अथवा विद्वानका परिचय अवश्य दिया करेंगे । परन्तु ऐसे विषयोंका अनुशीलन करनेके लिये जैसी निराकुलताकी आवश्यकता है, उसके न मिलनेसे तथा जहां सब प्रकारके ग्रन्थ देखनेको मिल सकें, ऐसे किसी पुस्तकालयके अभावसे केवल दोही अंकोंमें

---

1 इस स्तोत्रके कर्ता महाकविका नाम तथा 'धन' और 'जय' । धनंजय एक पद करनेसे यह भी अर्थ होता है कि, धनंजयको सुख और यश देती है ।

यह विषय चलाया जा सका। आज यह तीसरे नम्बरका लेख है। इसमें हम अपने पाठकोंको एक एसे विद्वानका परिचय देवेंगे, जिसके पांडित्यपूर्ण ग्रन्थोंके प्रभावसे जैनसाहित्यका मस्तक बहुत ऊंचा हुआ है। और जिसने संसारको अपनी अभूतपूर्व कृतियोंसे यह दिखला दिया है कि, गृहस्थाश्रममें रह कर भी मनुष्य विद्याका पारगामी हो सकता है।

इस ऋषितुल्य विद्वानका नाम **आशाधर** था। आशाधरके पिताका नाम **सल्लक्षण (सलखण)** और माताका नाम **श्रीरत्नी** था। जैनियोंकी ८४ जातियोंमें **बघेरवाल** नामकी जाति है। हमारे चरित्रनायकने इसी बघेरवाल जातिका मुख उज्ज्वल किया था। **सपादलक्ष** देशमें **मंडलकर** नामका एक नगर है। पंडित आशाधरका जन्म उसी मंडलकर नगरमें हुआ था[1]।

सपादलक्ष देशको भाषामें **सवालख** कहते हैं। नागौरके निकटका प्रदेश सवालखके[2] नामसे प्रसिद्ध है। इस देशमें पहले **चाहमान** (चौहान) राजाओंका राज्य था। फिर सांभर और अजमेरके चौहान राजाओंका सारा देश सपादलक्ष कहलाने लगा था और उसके सम्बन्धसे चौहान राजाओंके लिये " सपादलक्षीय नृपति-भूपति " आदि शब्द लिखे जाने लगे थे।

आशाधरके समयमें सपादलक्ष देशमें **सांभर**का राज्य भी शामिल था, यह उनके दिये हुए " शाकंभरीभूषण " विशेषणसे स्पष्ट होता है। **शाकंभरी** झील जिसमें कि नमक पैदा होता है और जिसे आजकल सांभर कहते हैं, सवालख देशकी शृंगाररूप थी। **मंडलकरदुर्ग**को आजकल **'मांडलगढका किला'** कहते हैं। यह इस समय मेवाड़ राज्यमें है। उस समय मेवाडका सारा पूर्वीय भाग **चौहानों**के आधीन था। चौहान राजाओंके बहुतसे शिलालेख वहां अब तक मिलते हैं। महाराजाधिराज **पृथ्वीराज**के समय तक मांडलगढ सपादलक्ष देशके अन्तर्गत था और वहांके अधिकारी चौहान राजा

१—श्रीमानास्ति सपादलक्षविषयः शाकंभरीभूषण-
स्तत्र श्रीरतिधाममण्डलकरं नामास्ति दुर्गं महत्।
श्रीरत्न्यामुदपादि तत्र विमलव्याघ्रेरवालान्वयात्
श्रीसल्लक्षणतो जिनेन्द्रसमयश्रद्धालुराशाधरः॥ १

२ प्राचीन कालमें "कमाऊंके" आसपासके देशको भी सपादलक्ष कहते थे।

रहे थे। पीछे अजमेरपर मुसलमानोंका अधिकार होनेपर वह किला भी उनके हस्तगत हो गया था।

आशाधरकी स्त्री **सरस्वतीसे** एक **छाहड** नामका पुत्र था, जिसने धाराके तत्कालीन महाराजाधिराज अर्जुनदेवको अपने गुणोंसे मोहित कर रक्खा था। वह अपने पिताका सुपूत पुत्र था। यद्यपि उसके कीर्तिशाली कार्योंके जाननेका कोई साधन नहीं है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि, वह होगा अपने पिताही जैसा विद्वान। इसीलिये पंडितराजने एक श्लोकमें अपने साथ उसकी तुलना की है कि "जिस तरह सरस्वतीके (शारदाके) विषयमें मैंने अपने आपको उत्पन्न किया, उसी तरहसे अपनी **सरस्वती** नामकी भार्याके गर्भसे अपने अतिशय गुणवान पुत्र छाहडको उत्पन्न किया[1]!" छाहड सरीखे गुणवान पुत्रको पानेका एक प्रकारसे उन्हें अभिमान था। जान पडता है, उनके छाहडके अतिरिक्त और कोई पुत्र नहीं था। यदि होता, तो वे अपने ग्रन्थोंकी प्रशस्तिमें छाहडके समान उनका भी उल्लेख करते। अनगारधर्मामृतकी **भव्यकुमुदचन्द्रिका** टीका वि० सं० १३०० की बनी हुई है, जबकि उनकी आयु कमसे कम ६५ वर्षकी होगी, जैसा कि हम आगे सिद्ध करेंगे। इस अवस्थाके पश्चात् पुत्र उत्पन्न होनेकी संभावना बहुत कम होती है।

आशाधरने अपने ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंमें अपना बहुत कुछ परिचय दिया है। परन्तु किसीमें अपने जन्मका समय नहीं बतलाया है। तौभी उन्होंने अपने विषयमें जो बातें कहीं हैं, उनसे अनुमान होता है कि, विक्रम संवत् १२३५ के लगभग उनका जन्म हुआ होगा।

जिस समय गजनीके बादशाह **शहाबुद्दीनगोरीने** सारे सपादलक्ष देशको व्याप्त कर लिया था, उस समय सदाचार भंग होनेके भयसे—मुसलमानों-के अत्याचारके डरसे आशाधर अपने परिवारके साथ देश छोड़कर निकले थे, और **मालवाकी धारा** नगरीमें आ बसे थे। उस समय मालवाके परमार वंशके प्रतापी राजा विन्ध्यवर्माका राज्य था। वहां उनकी भुजाओंके प्रचंड बल-

---

१—सरस्वत्यामिवात्मानं सरस्वत्यामजीजनत्।
यः पुत्रं छाहडं गुण्यं रंजितार्जुनभूपतिम्॥ २॥

से तीनों पुरुषार्थोंका साधन अच्छी तरहसे होता था। शहाबुद्दीन गोरीने ईस्वी-सन् ११९३ में अर्थात् विक्रमसंवत् १२४९ में **पृथ्वीराज**को कैद करके **दिल्ली**को अपनी राजधानी बनाई थी। उसी समय अर्थात् संवत् १२४९ (ई० सन् ११९३) में उसने अजमेरको अपने आधीन करके वहांके लोगोंकी कतल कराई थी। और इसी साल वह अपने एक सरदारको हिन्दुस्थानका सारा कारभार सौंप करके **गजनीको** लौट गया था। इसके पश्चात् सन् ११९४ और ९५ में हिन्दुस्थानपर उसकी छठी और सातवीं चढ़ाई और भी हुई थी। छठी चढ़ाईमें उसने **कन्नौज** फतह की थी। और सातवीमें **दिल्ली गवालियर, बुन्देलखंड, बिहार, बंगाल,** और **गुजरात** प्रदेश उसके राज्यमें मिला लिये गये थे। फिर सन् १२०२ में वह **ग्यासुद्दीनगोरी**के मरनेपर गजनीके तख्तपर बैठा था, और सन् १२०६ में सिंध नदीके किनारे उसे गक्कर जातिके जंगली लोगोंने मार डाला था। इससे मालूम पड़ता है कि, शहाबुद्दीन गोरीने पृथ्वीराज चौहानसे दिल्लीका सिंहासन छीनते ही अजमेरपर धावा किया होगा। क्योंकि अजमेर पृथ्वीराजके ही अधिकारमें था। और उसी समय अर्थात् सन् ११९३ ईस्वीमें सपादलक्षदेश शहाबुद्दीनके अत्याचारोंसे व्याप्त हो गया होगा। यही समय पंडितप्रवर आशाधरके मांडलगढ छोडकर धारा नगरीमें आनेका निश्चित होता है।

मांडलगढसे धारानगरीमें आ बसनेके पश्चात् पंडित आशाधरने एक **महावीर** नामके प्रसिद्ध पंडितसे **जैनेन्द्रप्रमाण** और **जैनेन्द्रव्याकरण** इन दो प्रन्थोंका अध्ययन किया। आशाधरके गुरु पं० महावीर, वादिराजपंडित **धरसेन**के शिष्य थे। प्रसिद्ध विद्याभिलाषी महाराजा **भोज**को मरे हुए यद्यपि उन दिनों १५० वर्ष बीत चुके थे, तौ भी धारानगरीमें संस्कृत विद्याका अच्छा प्रचार था। उन दिनों संस्कृतके कई नामी नामी विद्वान हो गये हैं। जिनमें वादीन्द्र **विशालकीर्ति, देवचन्द्र,** महाकवि **मदनोपाध्याय,** कविराज **बिल्हण** (मंत्री), **अर्जुनदेव, केल्हण, आशाधर** आदि मुख्य गिने जाते हैं।

१—म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति–त्रासाद्विन्ध्यनरेन्द्रदो: परिमलस्फूर्जत्त्रिवर्गौजसि। प्राप्तो मालवमंडले बहुपरीवार: पुरीमावसन्यो धारामपठज्जिनप्रीमितवाक्शास्त्रं महावीरत: ॥५॥ २–प्रशस्तिकी टीकामें 'म्लेच्छेशेन' का अर्थ "साहबदीनतुरुष्केन" लिखा है।

वि० संवत्, १२४९ में जब कि पंडित आशाधर धारामें आये होंगे, उनकी अवस्था अधिक नहीं होगी। क्योंकि धारामें आनेके पश्चात् उन्होंने न्याय और व्याकरण शास्त्र पढ़े थे। हमारी समझमें उस समय उनकी अवस्था २० वर्षके भीतर भीतर होगी। और इस हिसाबसे उनका जन्म वि० सं० १२३०-३५के लगभग हुआ होगा, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं।

जिस समय आशाधर धारामें आये थे, उस समय मालवाके राजा **विन्ध्य-नरेन्द्र, विन्ध्यवर्मा** अथवा **विजयवर्मा** थे। प्रशस्तिकी टीकामें "विन्ध्य भूपतिका" अर्थ *"विजयवर्मानाम मालवाधिपति"* किया है। जिससे मालूम होता है कि विन्ध्यवर्माहीका दूसरा नाम विजयवर्मा है। विन्ध्यवर्माका यह नामान्तर अभीतक किसी शिलालेख या दानपत्रमें नहीं पाया गया है। विजयवर्मा परमार महाराज भोजकी पांचवीं पीढ़ीमें थे। पिप्पलियाके अर्जुनदेवके दानपत्रमें[1] उनकी कुलपरम्परा इस प्रकार लिखी है:- "**भोज-उदयादित्य-नरवर्मा, यशोवर्मा,, अजयवर्मा, विन्ध्यवर्मा** (विजयवर्मा) **सुभटवर्मा** और **अर्जुनवर्मा**।" अर्जुनवर्माके पीछे उसका पुत्र **देवपाल** (साहसमल्ल) और देवपालके पीछे उसका पुत्र **जैतुगिदेव** (जयसिंह) राजा हुआ। आशाधर जिससमय धारामें आये, उस समय विन्ध्यवर्माका राज्य था और वि० सं०१२९६ में जब उन्होंने सागारधर्मामृतकी टीका बनाई, तब जैतुगिदेव राजा थे। अर्थात् वे अपने समयमें धाराके सिंहासनपर पांच राजाओंको देख चुके थे। केवल ५० वर्षके बीचमें पांच राजाओंका होना एक आश्चर्यकी बात है। आशाधरका विद्याभ्यास समाप्त होते होते उनके पांडित्यकी कीर्ति चारों ओर फैलने लगी। उनकी विलक्षण प्रतिभाने विद्वानोंको चकित स्तंभित कर दिया। विन्ध्यवर्माके सांधिवैग्रहिक मंत्री (फारेन सेक्रेटरी) **बिल्हण** नामके एक महाकवि थे। उन्होंने आशाधरकी विद्वत्तापर मोहित होकर एकबार निम्नलिखित श्लोक कहा था,—

"आशाधर त्वं मयि विद्धि सिद्धं निसर्गसौदर्य्यमजर्यमार्य!
सरस्वतीपुत्रतया यदेतदर्थे परं वाच्यमयं प्रपञ्चः॥[2]

---

१ बंगाल एशियाटिक सुसाइटीका जनरल जिल्द ५ पृष्ठ ३७८

२—इत्युपश्लोकितो विद्वद्बिल्हणेन कवीशिना।
श्रीविन्ध्यभूपतिमहासान्धिविग्रहकेण यः॥ ७॥

जिसका आशय यह है कि "हे आशाधर ! तथा हे आर्य ! तुम्हारे साथ मेरा स्वाभाविक सहोदरपना (भ्रातृत्व) और श्रेष्ठ मित्रपना है। क्योंकि जिस तरह तुम सरस्वतीके (शारदाके) पुत्र हो, उसी तरह मैं भी हूं ! एक उदरसे पैदा होनेवालोंमें मित्रता और भाईपना होता ही है।" इस श्लोकसे इस बातका भी पता लगता है कि, आशाधर कोई सामान्य पुरुष नहीं थे। एक बड़े भारी राज्यके महामंत्रीकी जिनके साथ इतनी गाढ़ मित्रता थी, उनकी प्रतिष्ठा थोड़ी नहीं समझना चाहिये। उक्त बिल्हण कविका उल्लेख मांडूके एक खंडित शिला-लेखमें है। उसे छोड़कर न तो उनका बनाया हुआ कोई ग्रन्थ मिलता है और न आशाधरको छोड़कर उनका किसीने उल्लेख किया है। ऐसे राजमान्य प्रतिष्ठित कविकी जब यह दशा है, तब पाठक सोच सकते हैं कि, कालकी कुटिल गतिने हमारे देशके ऐसे कितने विद्वानोंकी कीर्तिका नामशेष न कर दिया होगा!

आशाधरकी प्रशस्तिमें **बिल्हण कवीश**का नाम देखकर पहले हमने समझा हुआ था कि, काश्मीरके प्रसिद्ध कवि **बिल्हण** ही जिनकी उपाधि **विद्यापति** थी, आशाधरकी प्रशंसा करनेवाले हैं। परन्तु वह केवल एक भ्रम था। विद्यापति बिल्हण और मालवा राज्यके मंत्री कवीश बिल्हणके समयमें लगभग डेढ़ सौ वर्षका अन्तर है। विद्यापति बिल्हण काश्मीरनरेश **कलश**के राज्य कालमें विक्रमसंवत् ११२० के लगभग काश्मीरसे निकला था। जिस समय वह धारामें आया था, **भोजदेव**[1]की मृत्यु हो चुकी थी। इससे स्पष्ट है कि, विन्ध्यवर्माके मंत्री बिल्हणसे विद्यापतिबिल्हण भिन्न पुरुष थे।

बिल्हणचरित नामका एक काव्य बिल्हण कविका बनाया हुआ प्रसिद्ध है। परन्तु इतिहासज्ञोंका मत है कि, उसका कर्त्ता बिल्हण नहीं है, किसी दूसरे कविने उसकी रचना की है और यदि बिल्हणने की हो, तो वह विद्यापति बिल्हणसे भिन्न होना चाहिये। परन्तु भिन्न होकर भी वह विन्ध्यवर्माका मंत्री बिल्हण नहीं हो सकता। क्योंकि उक्त काव्यमें जिस **वैरिसिंह** राजाकी कन्या **शशि-कला**के साथ बिल्हणका प्रेमसम्बन्ध होना वर्णित है, वह विक्रमसंवत् ९०० के

---

१ राजा भोजकी मृत्यु वि० सं० १११२के पूर्व हो चुकी थी और १११५ में उदयादित्यको राज्य मिल चुका था, ऐसा परमार राजाओंके लेखोंसे सिद्ध हो चुका है।

लगभग हुआ है, इससे आशाधरके समयके साथ उसका भी ठीक नहीं बैठ सकता है।

शार्ङ्गधरपद्धति और **सूक्तमुक्तावली** आदि सुभाषित ग्रन्थोंमें बिल्हण कविके नामसे बहुतसे श्लोक ऐसे मिलते हैं, जो न तो विद्यापति बिल्हणके **विक्रमांकदेवचरित** तथा **कर्णसुन्दरी**[1] नाटिकामें हैं, और न **बिल्हण-चरितमें** हैं। क्या आश्चर्य है, जो उनके बनानेवाले आशाधरकी प्रशंसा करनेवाले बिल्हण ही हों।

आशाधरने अपनी प्रशंसा करनेवाले दो विद्वानोंके नाम और भी लिखे हैं, जिनमेंसे एकका नाम **उदयसेन** और दूसरेका नाम **मदनकीर्ति** हैं। ये दोनों ही दिगम्बर मुनि थे। क्योंकि इनके नामके साथ **मुनि** और **यतिपति** विशेषण लगे हुए हैं। देखिये, उदयसेन क्या कहते हैं:—

व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहंसः
काव्यामृतौघरसपानसुतृप्तगात्रः।
सल्लक्षणस्य तनयो नयविश्वचक्षु—
राशाधरो विजयतां कलिकालिदासः॥२

अर्थात्—जो बघेरवालोंके श्रेष्ठवंशरूपी सरोवरसे उत्पन्न हुआ हंस है, काव्यामृतके पानसे जिसका हृदय तृप्त है, जो सम्पूर्ण नयोंका जाननेवाला है और जो श्रीसल्लक्षणका पुत्र है, वह **कलियुगका कालिदास** आशाधर जयवन्त होवै।

इसी प्रकारसे श्रीमदनकीर्तिमुनिने कहा था कि, "आप प्रज्ञाके पुंज हैं—अर्थात् विद्याके भंडार हैं।"

---

१ कर्णसुंदरीनाटिकाके मंगलाचरणमें जिनदेवको नमस्कार किया गया है। इसका कारण यह नहीं है कि, विद्यापति बिल्हण जैनी थे। किन्तु उक्त नाटिका अणहिलपाटनके राजा कर्णके जैन मंत्री सम्पत्करके बनवाये हुए आदिनाथ भगवानके यात्रामहोत्सवपर खेलनेके लिये बनाई गई थी, इसलिये उसमें जिनदेवको नमस्कार करना ही उन्होंने उचित समझा होगा। पीछेसे अपने इष्टदेव शिवपार्वतीको भी नमस्कार किया है।

२—इत्युदयसेनमुनिना कविसुहृदा योऽभिनान्दितः प्रीत्या।
प्रज्ञापुञ्जोसीति च योऽभिहितो मदनकीर्तियतिपतिना॥४

इन दोनों विद्वानोंमेंसे हमको उदयसेनके विषयमें तो केवल इतना ही मालूम है कि, वे कवियोंके मित्र थे। तथा स्वयं भी कवि थे। और मदनकीर्तिके विषयमें यह पता लगा है कि, वे आशाधरके शिष्योंमेंसे एक प्रधान शिष्य थे। अपने एक शिष्यकी की हुई प्रशंसासे पंडित आशाधरने अपना इतना गौरव क्यों समझा कि, उस प्रशंसाको प्रशस्तिमें लिखनेकी जरूरत समझी ? इसका एक कारण है। वह यह कि, मदनकीर्तिने आशाधरसे विद्यालाभ करनेके पश्चात्, राजगुरुके परमोच्च पदको प्राप्त कर लिया था। धाराके तत्कालीन महाराज अर्जुनदेव इन्हीं मदनकीर्तिके शिष्य थे। इसके सिवाय ऐसा मालूम होता है कि, मदनकीर्तिने पीछेसे जिनदीक्षा भी ले ली थी। इन्हीं दो कारणोंसे आशाधरने उनकी की हुई प्रशंसाको अपने गौरवका कारण समझी होगी।

मालवाधीश महाराज अर्जुनदेव बड़े भारी विद्वान और कवि थे। **अमरुशतक**की उनकी बनाई हुई **रससंजीविनी** नामकी एक टीका काव्यमाला-में प्रकाशित हुई है। इस टीकामें जगह जगहपर "यदुक्तमुपाध्यायेन बालसरस्व-त्यपरनाम्ना मदनेन" इस प्रकार लिखकर मदनोपाध्यायके अनेक श्लोक उदाहरण-स्वरूप उद्धृत किये हैं। और भव्यकुमुदचन्द्रिका टीकाकी प्रशस्तिके नवमश्लोक के अन्तिमपदकी टीकामें पं० आशाधरने भी लिखा है, "आपुः प्राप्ताः, के बालसर-स्वतिमहाकविमदनादयः।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि, अमरुशतकमें जिनके श्लोक उदाहरणस्वरूप ग्रहण किये गए हैं, वे ही आशाधरके शिष्य महाकवि मदन हैं। इसके सिवाय प्राचीन लेखमालामें अर्जुनवर्मदेवका जो तीसरा दानपत्र प्रकाशित हुआ है, उसके अन्तमें "रचितमिदं राजगुरुणा मदनेन" इस प्रकार लिखा हुआ है। इससे इस विषयमें भी शंका नहीं रहती है कि, आशा-धरके शिष्य मदनोपाध्याय अथवा **मदनकीर्ति** जिनका दूसरा नाम '**बाल-सरस्वती**' था, मालवाधीश महाराज अर्जुनदेवके गुरु थे। उनका 'मदनो-पाध्याय' यह नाम संसारावस्थाका और 'मदनकीर्ति' यह नाम दीक्षा ले चुकनेके पश्चात्का होगा।

अमरुशतककी टीकामें जो श्लोक उद्धृत किये गए हैं, उनसे मालूम पड़ता है कि, महाकवि मदनोपाध्यायका बनाया हुआ कोई अलंकारका ग्रन्थ होगा। जो अभीतक कहीं प्रसिद्ध नहीं है। हमारे एक विद्वान मित्रने लिखा है कि, बालसरस्वती मदनोपाध्यायकी बनाई हुई एक **पारिजातमंजरी** नामकी

नाटिका है। परन्तु उसके देखनेका हमको अभी तक सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

मदनकीर्तिके सिवाय आशाधरके अनेक शिष्य थे। व्याकरण, काव्य, न्याय, धर्मशास्त्र आदि विषयोंमें उनकी असाधारण गति थी। इन सब विषयोंमें उन्होंने सैकड़ों शिष्योंको निष्णात कर दिया था। देखिये, वे क्या कहते हैं:—

> **यो द्राग्व्याकरणाब्धिपारमनयच्छुश्रूषमाणान्नकान्**
> **षट्तर्कीपरमास्त्रमाप्य न यतः प्रत्यर्थिनः केऽक्षिपन्।**
> **चेरुः केऽस्खलितं न येन जिनवाग्दीपं पथि ग्राहिताः**
> **पीत्वा काव्यसुधां यतश्च रसिकेष्वापुः प्रतिष्ठां न के ॥ ९ ॥**

भावार्थ—शुश्रुषा करनेवाले शिष्योंमेंसे ऐसे कौन हैं, जिन्हें आशाधरने व्याकरणरूपी समुद्रके पार शीघ्र ही न पहुंचा दिया हो, तथा ऐसे कौन हैं, जिन्होंने आशाधरसे षट्दर्शनरूपी परम शस्त्रको लेकर अपने प्रतिवादियोंको न जीता हो, तथा ऐसे कौन हैं, जो आशाधरसे निर्मल जिनवचनरूपी (धर्मशास्त्र) दीपक ग्रहण करके मोक्ष मार्गमें प्रवृत नहीं हुए हों, अर्थात् मुनि न हुए हों, और ऐसे कौन शिष्य हैं, जिन्होंने आशाधरसे काव्यामृतका पान करके रसिक पुरुषोंमें प्रतिष्ठा नहीं पाई हो।

इस श्लोककी टीकामें पंडितवर्यने प्रत्येक विषयके पार पहुंचे हुए अपने एक एक २ दो २ शिष्योंका नाम भी दे दिया है। पंडित **देवचन्द्रादि**को उन्होंने व्याकरणज्ञ बनाया था, वादीन्द्र **विशालकीर्तिको** षड्दर्शनन्यायका ज्ञाता बनाकर वादियोंपर विजय प्राप्त कराई थी, भट्टारक[1] **देवचन्द्र विनयचन्द्र** आदिको धर्मशास्त्र पढ़ाकर मोक्षमार्गमें प्रवृत्त किया था, और **मदनोपाध्याया**दिको काव्यके पंडित बनाकर अर्जुनवर्मदेव जैसे रसिक राजाओंकी प्रतिष्ठाका अधिकारी बना दिया था। पाठक इससे जान सकते हैं कि, आशाधरकी विद्वत्ता, पढ़ानेकी शक्ति और परोपकारशलिता कैसी थी। गृहस्थ होनेपर भी बडे २

---

१ भट्टारकका अर्थ वस्त्रधारी भट्टारक नहीं समझना चाहिये। आशाधरके समय वस्त्रधारी भट्टारकोंकी स्थापना ही नहीं हुई थी। भट्टारक पद बड़ा भारी प्रतिष्ठाका सूचक है। यह पद राजाओं विद्वानों तथा मुनियोंके साथ जोड़ा जाता था।

मुनि उनके पास विद्याध्ययन करके अपनी विद्यातृष्णाको पूर्ण करते थे। उस समयके इतिहासकी यह एक विलक्षण घटना है, जो नीतिके इस वाक्यको स्मरण कराती है, "**गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः**" अर्थात्, गुणवानोंमें उनके गुणही पूजनेके योग्य होते हैं, उनकी उमर अथवा वेष नहीं।

विन्ध्यवर्माका और उनके पीछे उनके पुत्र सुभटवर्माका राज्यकाल समाप्त हो चुकनेपर आशाधरने धारानगरीको छोड़ दी और नलकच्छपुरको अपना निवासस्थान बनाया। नलकच्छपुरमें आ रहनेका कारण उन्होंने अपने प्यारे धर्मकी उन्नति करना बतलाया है[1]। इससे यह भी अनुमान होता है कि वे धारासे अकेले आये होंगे। गृहस्थाश्रमसे उन्होंने एक प्रकारसे सम्बन्ध छोड़ दिया होगा।

नलकच्छपुरको इस समय **नालछा** कहते हैं। यह स्थान धारसे १० कोसकी दूरीपर है। सुना है, इस समय वहांपर जैनियोंके थोडेसे घर और जैनमंदिर है। परन्तु आशाधरके समय वहांपर जैनियोंकी बहुत बड़ी वस्ती थी। जैनधर्मका जोर शोर भी वहां बहुत होगा। ऐसा हुए विना आशाधरसरीखे विद्वान धारा जैसी महानगरीको छोड़कर वहां रहनेको नहीं जाते। अवश्य ही वहांपर जैनधर्मकी उन्नति करनेके लिये धारासे अधिक साधन एकत्र होंगे।

जिस समय पंडितवर्य आशाधर नालछाको गये, उस समय मालवामें महाराज **अर्जुनवर्मदेव**का राज्य था। अर्जुनवर्मदेवके अभीतक तीन दानपत्र प्राप्त हुए हैं, जिनमेंसे एक विक्रमसंवत् १२६७ का है, जो पिप्पलिया नगरमें है, और मंडपदुर्गमें दिया गया था, दूसरा वि० सं० १२७० का भोपालमें है और भृगुकच्छ (भरोंच) में दिया गया था, और तीसरा[3] १२७२ का है, जो अमरेश्वर तीर्थमें दिया गया था और भोपालमें है। इसके पश्चात् अर्जुनदेवके पुत्र **देवपालदेव**के राजत्वकालका एक शिलालेख हरसोदामें मिला है, जो वि० सं० १२७५ का लिखा हुआ है। इससे मालूम पड़ता है कि,

---

१ श्रीमदर्जुनभूपालराज्ये श्रावकसंकुले।
जिनधर्मोदयार्थं यो नलकच्छपुरे वसत्॥ ८॥

२ अमेरिकन ओरियंटल सुसाइटीका जनरल भाग ७, पृष्ठ ३२.

३ अ० ओ० सु० का जनरल भाग ७, पृष्ठ २५.

१२७२ और १२७५ के बीचमें किसी समय अर्जुनदेवके राज्यका अन्त हुआ था। और १२६७ के पहले उनके राज्यका प्रारंभ हुआ था। कब प्रारंभ हुआ था, इसका निश्चय करनेके लिये विन्ध्यवर्मा और सुभटवर्मा इन दो राजाओंके राज्यकालके लेख मिलना चाहिये, जो अभीतक हमको प्राप्त नहीं हुए हैं। तौ भी ऐसा अनुमान होता है कि, १२६७ के अधिकसे-अधिक २-३ वर्ष पहले अर्जुनवर्माको राज्य मिला होगा। क्योंकि संवत् १२५० में जब आशाधर धारामें आये थे, तब विन्ध्यवर्माका राज्य था, और जब वे विद्वान हो गये थे, तब भी विन्ध्यवर्माका राज्य था। क्योंकि उनके मंत्री बिल्हणने आशाधरकी विद्वत्ताकी प्रशंसा की थी। यदि आशाधरके विद्याभ्यास कालके केवल ७-८ वर्ष गिने जावें, तो विन्ध्यवर्माका राज्य वि० सं० १२५७-५८ तक समझना चाहिये। विन्ध्यवर्माके पश्चात् **सुभटवर्मा**के राज्यके कमसे ७ वर्ष माने जावें, तो अर्जुनदेवके राज्यारंभका समय वि० सं० १२६५ गिनना चाहिये। इसी १२६५ के लगभग आशाधर नालछेमें आये होंगे।

असमाप्त।

इतिहासकी खोजका एक साधन।

प्राचीन इतिहासका पता लगानेमें "भाषाविवेक" से बड़ी भारी सहायता मिलती है। अर्थात् किसी ग्रन्थकी अथवा लेखकी भाषाका विचारपूर्वक निरीक्षण करनेसे यह मालूम हो सकता है कि, उसका लिखनेवाला विद्वान किस समयमें अथवा किस प्रान्तमें हुआ था। क्योंकि देश और कालके अनुसार प्रत्येक भाषामें कुछ न कुछ फेर फार हुआ करता है। यद्यपि वह फेरफार इतना स्थूल नहीं होता है कि, सहज ही लक्ष्यमें आ जावे। परन्तु होता अवश्य ही है। जो भाषा पन्द्रहवीं सदीमें लिखी जाती थी, वह आज नहीं लिखी जाती, और जो आज लिखी जाती है, वह सौ वर्ष पीछे नहीं लिखी जावेगी। इसी प्रकारसे जो भाषा जयपुरमें लिखी अथवा बोली जाती है, वह आगरेमें की भाषासे भिन्न है, और जो आगरेमें लिखी बोली जाती है, वह जयपुरमें नहीं लिखी बोली जाती है। अब यदि कोई विद्वान पन्द्रहवीं सदीके लिखे हुए ग्रन्थोंका अच्छी तरह अध्ययन करके किसी ऐसे ग्रन्थको देखे, जिसके बननेके

समयका कुछ निश्चय न हो, और उस ग्रन्थकी भाषा उसे अपने पूर्वपठित ग्र-न्थोंके समान विदित हो, तो वह निश्चय कर लेगा कि, यह ग्रन्थ पन्द्रहवीं सदीके अनुमानका बना हुआ है। इसी प्रकारसे प्रान्तीय भाषाओंके भेद जानने वाले विद्वान् प्रान्तका भी निश्चय कर सकते हैं कि, इसका बनानेवाला अमुक प्रांतका रहनेवाला होगा। बल्कि जिन्हें इस विषयका अच्छा अनुभव होता है, वे प्रान्त ही क्यों उसके अन्तर्गत जिला आदिको भी बतला सकते हैं। क्यों-कि "बारह कोसमें बोली बदल जाती है" इस कहावतके अनुसार एक प्रान्तके अन्तर्गत विभागोंकी भाषामें भी भेद होता है।

संस्कृत एक ऐसी नियमबद्ध भाषा है, अपने अपूर्व व्याकरणसे वह इस प्रकारसे जकड़ी हुई है कि, हजारों वर्ष बीत जानेपर भी उसका रूपान्तर नहीं हुआ है। दो हजार वर्षके लिखे हुए कालिदासके ग्रन्थोंमें जो भाषा लिखी है, आज कलके संस्कृतके पंडित भी उसको लिख सकते हैं। इतनी नियमबद्धता होनेपर भी संस्कृत भाषापर समयका प्रभाव पड़ा है। देश कालके प्रभावने उसे भी नहीं छोड़ा है। दो हजार वर्ष पहलेके संस्कृत ग्रन्थोंकी रचना और हजार वर्ष पहलेकी रचनामें विचारशीलोंको बहुत भेद मालूम होता है। यद्यपि उसके व्याकरणके नियम ज्योंके त्यों बने हुए हैं, परन्तु रचनाशैली, शब्दसंगठन, विषय और वर्णनक्रममें समय समयपर बराबर फेरफार हुआ किया है। इस भाषाविवेक शास्त्रके सहारे पश्चिमके जैकोबी आदि विद्वानोंने बहुतसे संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंकी रचनाका समय निश्चित किया है। और उसे बहुत लोगोंने मान्य भी किया है।

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता है कि, भाषाविवेकसे अनुमान किया हुआ समय अथवा देश बिलकुल ठीक ही होता है, नहीं—कभी कभी उसमें भ्रम भी हो जाता है, तौ भी सर्वथा लुप्त हुए विषयमें अनुमानका इतना सहारा मि-लना कुछ थोड़ा नहीं है। इतिहासका गौरव समझनेवाले इस अनुमानका बहुत बड़ा मूल्य समझते हैं।

जैन समाजमें आज इतिहासकी चर्चा नहीं है। इतिहासको रुचिसे पढ़नेवाले भी नहीं है। तौभी इस विषयमें यह लेख लिखनेकी अवश्यकता आज यों हुई कि, वर्तमानमें बहुतसे लेखक तथा ग्रन्थ छपानेवाले इतिहासके उक्त साधनपर कुठाराघात कर रहे हैं। प्राचीन गद्य तथा पद्यको वे अपनी इच्छानुसार संशो-धन कर रहे हैं, तथा छपा रहे हैं। वे समझते हैं, 'मोख' 'मोष'

'मोच्छ' शब्द अशुद्ध है, इसलिये 'मोक्ष' कर देना चाहिये। 'फुनि' बुरा मालूम होता है, 'पुनि' कर देनेमें क्या बुराई है ?

कोई २ महाशय तो यहांतक कृपा करते हैं कि, प्राचीन भाषाका जो शब्द अथवा पद समझमें नहीं आता है, उसके स्थानमें अपनी इच्छानुसार नया शब्द वा पद डाल देते हैं।

सारांश यह है कि, वर्तमान संस्कारकी हुई भाषाके समान पुरानी भाषाके सुधार सुधारकर वे एक प्रकारसे बिगाड़ रहे हैं। यह बात उनके ध्यानमें ही नहीं है कि, इससे इतिहासका कितना बड़ा साधन नष्ट हो रहा है। संशोधन करनेवालेका यह कर्तव्य है कि, वह अनेक प्रतियोंको एकत्र करके एक शुद्ध प्रतिके अनुसार पाठ कर दे, और शेष प्रतियोंके पाठान्तर नीचे टिप्पणीमें लिख दे। तथा जो शब्द प्रचलित नहीं हैं, जिन्हें लोग नहीं समझ सकते हैं, उनका अर्थ लिख दे। उन्से यह अधिकार कदापि नहीं हैं कि, **स** को **श**, **ण** को **न**, **मैं** को **में** अथवा **तौ** को **तो** कर दे। यह दूसरी बात है कि, पुरानी भाषा बदल करके वर्तमान भाषा कर दी जावे—अनुवाद कर दिया जावे, परन्तु जब पुरानी भाषा प्रकाशित हो, तब उसमें एक बिन्दु विसर्गका भी अन्तर करना बड़ा भारी अन्याय है। आशा है कि, जैन समाजके लेखक और ग्रन्थ-प्रकाशक हमारी इस प्रार्थनापर ध्यान देंगे, और आगेसे इस विषयमें सचेत हो कर अपनी कलमको परिश्रम देंगे।

बिखरे हुए मोती।

उपाय करनेसे बड़ीसे बड़ी नदीका प्रवाह बन्द किया जा सकता है, परन्तु निन्दा करनेवालेका मुंह बन्द करना अशक्य है।

एक धनवानने एक फकीरसे पूछा, "आप इतने अधिक दिनोंके बाद क्यों आये?" फकीरने उत्तर दिया, इस लिये कि मुझे "बारबार क्यों आते हो?" इसकी अपेक्षा "बहुत दिनोंमें क्यों आये" यह वाक्य बहुत प्यारा लगता है।

सभामें यदि कोई छोटा आदमी ऊंचे स्थानपर आकर बैठ जावे, तो यह सोचकर संतोष कर लेना चाहिये कि, समुद्रमें काई सेवार वगैरह ऊपर ही रहते हैं, परन्तु मोती ऊपर नही रहते, वे तलीमें बैठे रहते हैं।

लकड़ीको पानी डुबाता नहीं है, अपने ऊपर तैराता रहता है। क्यों? वह सोचता है, जिसे स्वयं अपना खाद्य देकर पोषण किया है, उसका घात करना सज्जनोंका कार्य नहीं है ।

आगामी कालमें सुख पानेकी इच्छासे धर्म करना धर्मको व्याजपर लगाना है। मनुष्य एक रुपयेका धर्म करके उससे दशगुना पानेकी इच्छा रखता है।

किसी बेवकूफ मालदारके यहां नौकरी करनी हो, तो बढ़ियां पोशाख पहिनके, गलेमें एक बेशकीमती जरीका दुपट्टा डालके, और सिरपर कामदार देहलीकी टोपी लगाके जाओ। बातोंमें जमीन आसमानके कुलावे मिलाना आना चाहिये, विद्याकी तथा चतुराईकी इतनी जरूरत नहीं है।

संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो उद्योग करनेवाले धीर वीर पुरुषको प्राप्त न हो सके–**अप्राप्यं नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिनः**।

गुणको पूछो, रूपको मत देखो। चारित्रकी परीक्षा करो, कुलका पता लगानेकी जरूरत नहीं है। सिद्धि देख लो, विद्या मत पूछो और उद्योगी है कि नहीं यह जांच कर लो, धनको मत देखो कि, कितना है।

पाप परिणामोंसे होता है, शरीरकी क्रियासे नहीं होता है। जिस शरीरसे स्त्रीका आलिंगन किया जाता है, उसीसे स्नेहमयी पुत्रीका भी किया जाता है। परिणामोंकी विशेषतासे दोनोंमें जमीन आसमानका अन्तर है।

स्वभावसे कोई वस्तु न तो सुन्दर है, और न असुन्दर है। जिसको जो वस्तु रुचती है, उसको वही सुन्दर है। लैला काली कुरूपा थी, परन्तु मजनूको वह स्वर्गकी अप्सरासे भी बढ़कर थी।

समालोचना।

जैनशिक्षाप्रचारकसमितिकी तीसरी रिपोर्ट––जैनहितैषीके पाठकोंको विदित होगा कि, जयपुरमें उक्त नामकी एक उपयोगी संस्था तीन वर्षसे स्थापित हुई है। इस संस्थाके मुख्य संचालक श्रीयुक्त बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. हैं. जिन्होंने अपना जीवन जैनियोंमें शिक्षा प्रचार करनेके लिये अर्पण कर दिया है। आपको जयपुरमें दो चार सहायक भी ऐसे उदार और

परिश्रमी मिल गये हैं कि, समितिका कार्य विना किसी अड़चनके बराबर चलता है। समिति दिनपर दिन उन्नति कर रही है। इस वर्ष उसने "वर्धमान विद्यालय" नामका एक विद्यालय भी खोल दिया है, जिसका मासिक खर्च फिलहाल डेड़सौ रुपया मासिकके करीब है। समितिने जो शिक्षाक्रम बनाया है, वह वर्तमान देशकालके अनुसार बहुत ही उपयोगी है। इस समय समितिके आधीन जयपुर और उसके आसपासकी कई पाठशालाओंमें उसके शिक्षाक्रमके अनुसार पढ़ाई होती है। समितिके शिक्षाक्रमसे पढ़े हुए विद्यार्थी धर्मात्मा, व्यवहारकुशल और देशभक्त बन सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं है। अपने उद्देश्योंका प्रचार करनेके लिये समितिने जैनप्रकाशक नामका एक मासिकपत्र निकालना भी शुरू कर दिया है, जो देवबन्दसे बाबू सूरजभानजी वकील द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित होता है। इस समय समितिके स्थायी सभासद ९ साधारण सभासद ८३ और आनरेरी सभासद ६ हैं। खर्चका निर्वाह करनेके लिये समितिने एक डेप्युटेशन कमेटी बना रक्खी है, जो जयपुर शहरमें और कभी २ बाहर भी दौरा करके चन्दा एकत्र करती है। तीसरे वर्षमें डेप्युटेशनके बारह दौरे हुए हैं, जिनमेंसे दश जयपुर खासमें और दो बाहर हुए हैं। समितिकी तीसरे वर्षकी आमदनी १८४१≶)॥ और खर्च ११५४॥)≈॥ है। समिति अपने शिक्षाप्रचार कार्यको बहुत बढ़ाना चाहती है.। उसे क्रमिक पाठ्य पुस्तकें तयार करवाना, विद्यालयका विस्तार करना, आदि बहुतसे कार्य करना बाकी है। परन्तु कार्य विस्तारके योग्य उसके पास द्रव्य नहीं है। इसलिये विद्याकी उन्नति चाहनेवालोंको चाहिये कि, समितिकी धनसे सहायता करें।

रायचन्द्रजैनकाव्यमाला प्रथम गुच्छक—सनातन जैनके सम्पादक श्रीयुत मनसुखलाल रवजीभाई मेहताद्वारा सम्पादित और प्रकाशित। इस गुच्छकमें 'आनन्दघन कवितावली' 'शीलवतीनो रास' और 'मोह अने विवेक' इन तीन गुजराती पद्यग्रन्थोंका संग्रह है। प्रारंभमें गुजराती साहित्यके विषयमें एक विस्तृत लेख और आनन्दघनका बड़ा भारी परिशीलनबुद्धिसे लिखा हुआ जीवनचरित्र है, जिसके विषयमें हम सनातन जैनकी समालोचना करते समय लिख चुके हैं। गुजराती साहित्यके विषयमें जो लेख लिखा है, उससे गुजरातीके विद्वानोंमें बड़ी भारी चर्चा फैली है। क्योंकि उसमें सिद्ध किया गया है कि, गुजराती भाषाके उत्पादक जैन विद्वान हैं, और गुजराती भाषा

☞ आप पढ़िये और मित्रोंको सुनाइये।

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय-बम्बईमें विक्रीके लिये तयार पुस्तकोंका

सूचीपत्र

हमारी खासकी छपाई हुई पुस्तकें।

१ धर्मपरीक्षा—वचनिकामें मनोवेग पवनवेगकी मनोहर कथा ... १)
२ पार्श्वपुराण—चौपाईबद्ध पं० भूधरदासजीकृत खुले पत्रोंमें ... १।)
३ बनारसीविलास--बनारसीदासजीके विस्तृत जीवनचरित्र सहित १॥)
४ बृंदावनचौवीसीपाठ--कविवर बृन्दावनजीकृत शुद्धपाठ ... १)
५ प्रवचनसारपरमागम--कविवर बृन्दावनजीकृत अध्यात्मका ग्रन्थ १।)
६ बृंदावनविलास--बृन्दावनजीकी समस्त कविताका संग्रह बहुत बढियां ।॥)
७ रत्नकरंडश्रावकाचार--वचनिका पं० सदासुखजीकृत खुलेपत्र ४)
८ भाषापूजासंग्रह--दूसरी बारका छपा हुआ ... ... ॥।)
९ मनोरमा उपन्यास--बाबू जैनेन्द्रकिशोरजीकृत ... ... ॥)
१० ज्ञानसूर्योदयनाटक--श्री नाथूरामप्रेमीकृत नई तर्जका ... ॥)
११ मोक्षशास्त्र--बालबोधिनी भाषाटीकासहित दूसरीबार छपा ... ॥।)
१२ जैनपदसंग्रह प्रथमभाग--दौलतकृत बडे अक्षर ... ... ।=)
१३ जैनपदसंग्रह दूसरा भाग--भागचंदजीकृत भजन... ... ।)
१४ जैनपदसंग्रह तीसरा भाग--भूधरदासजीकृत भजन ... ।-)
१५ जैनपदसंग्रह चौथा भाग--द्यानतरायजीकृत भजन ... ॥=)
१६ नित्यनियमपूजा--संस्कृत और भाषा (तीसरीबार छपी) ।)
१७ दशलक्षणपूजा--और प्राकृतकी जयमाला अर्थ सहित ... ।)
१८ रत्नकरंडश्रावकाचार--अन्वय अर्थ सहित ... ... ।)

१९ **द्रव्यसंग्रह**--अन्वय अर्थ भावार्थ सहित ... ... |=)
२० **भक्तामरस्तोत्र**--अन्वय अर्थ भावार्थ और हिन्दीकवितासहित)
२१ **जैनबालबोधकप्रथमभाग**--पूर्वार्ध -)॥ और पूरा ...)
२२ **जैनबालबोधकद्वितीयभाग**--सबके पढने योग्य ... ... ॥)
२३ **शीलकथा**--भारामलजीकृत ... ... |-)
२४ **दर्शनकथा**-- " " " |-)
२५ **श्रुतावतारकथा**--श्रुतस्कंधविधानादिसहित ... ... ≡)
२६ **अकलंकस्तोत्र**--श्रीअकलंकदेवके जीवनचरित्र और भाषाकवितासहित ≡)
२७ **दियातलेअंधेरा**--स्त्री शिक्षाकी मनोहर कहानी ... ... -)॥
२८ **सदाचारीबालक**--एक बालककी दुख भरी कहानी ... -)॥
२९ **अरहंतपासाकेवली**--पासा डालकर शुभ अशुभ जाननेकी रीति =)
३० **भक्तामर भाषा**--हेमराजजीकृत और मूल संस्कृत ... -)
३१ **पंचमंगल**--रूपचन्दजीकृत शुद्धपाठ ... ... -)
३२ **दर्शनपाठ**--दौलत और बुधजनकृत दर्शनसहित ... ... -)
३३ **मृत्युमहोत्सव**--सदासुखजीकृत वचनिकासहित ... ... -)॥
३४ **शिखरमाहात्म्य भाषा** वचनिका ... ... -)
३५ **निर्वाणकांड**--प्राकृत भाषा और महावीर पूजा ... ...)॥।
३६ **सामायिकपाठभाषा**--पं० महाचंद्रजीकृत ... ...)॥
३७ **आलोचनापाठ भाषा** ... ...)॥
३८ **कल्याणमंदिर**--तथा एकीभाव भाषा ... ...)॥।
३९ **आरतीसंग्रह**--जिसमें ११ आरती हैं ... ...)॥।
४० **छहढाला**--दौलतरामकृत बडे अक्षरोंमें छपा ... ... -)
४१ **छहढाला**--बुधजनकृत बडे अक्षरोंमें ... ... -)
४२ **छहढाला**--बावन अक्षरी द्यानतरायजीकृत ... ... -)
४३ **इष्टछत्तीसी**--अर्थसहित ... ...)॥
४४ **भूधरजैनशतक**--उपदेशमय कवित्त सवैया ... ... =)॥
४५ **मोक्षशास्त्र**--(तत्त्वार्थसूत्र) मूल शुद्धपाठ ... ... =)
४६ **शाकटायन व्याकरण**--संस्कृतका प्राचीन व्याकरण ... ३।)
४७ **प्रद्युम्नचरित्र**--हिन्दी भाषामें बहुत बढियां ... ... २॥।)
४८ **आप्तपरीक्षा**--संस्कृत ... ... -)

४९ आप्तमीमांसा (देवागमस्तोत्र) ... ... ~)

नोट—हमारी छपाई सब पुस्तकें एकही किस्मकी एक साथ पांच मंगानेसे पांचकी न्योछावरमें छह भेजी जाती हैं।

दूसरे लोगोंकी बम्बई कोल्हापुर देवबन्द लाहौर आदि स्थानोंकी छपाई हुई पुस्तकें जो हमारे पुस्तकालयमें मिल सकती हैं।

१ **पुण्यास्रव पुराण**—उत्तमोत्तम ५६ कथाओंका संग्रह ... ३)
२ **आत्मानुशासन**—भाषा वचनिका सहित खुले पन्ने ... २)
३ **आत्मख्यातिसमयसार** भाषावचनिका पं. जयचन्द्रजीकृत ... ४)
४ **भगवतीआराधनासार**—भाषावचनिका सहित ... ... ५)
५ **ज्ञानार्णवजी**—भाषाटीकासहित योगका ग्रंथ जिल्द बंधा ... ४)
६ **पंचास्तिकाय**--भाषाटीका और संस्कृत टीका सहित ... १॥)
७ **बृहद्द्रव्यसंग्रह**—भाषाटीका और संस्कृत टीका सहित ... २)
८ **सप्तभंगीतरंगिणी**--भाषाटीका सहित ... ... १)
९ **स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा**--पं० जयचन्दजीकृत भाषावचनिका १।)
१० **संशयतिमिरप्रदीप**--पं० उदयलालजी कृत (दूसरी बारका) ॥।)
११ **वाग्भट्टालंकार**--हिन्दी भाषा और संस्कृत टीकासहित अलंकारग्रन्थ १।)
१२ **जैनसिद्धांतदर्पण** पं० गोपालदासजी कृत ... ॥।)
१३ **सुशीलाउपन्यास** दोनों भाग—देखने लायक ... १)
१४ **परमात्मप्रकाश**--भाषाटीकासहित अध्यात्मग्रन्थ ... ।=)
१५ **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय** संक्षिप्त अर्थ सहित ,, ... ।)
१६ **नित्यपूजा अर्थसहित**--(देवगुरुशास्त्र पूजाका अर्थ) ... ≡)
१७ **सुखानन्द मनोरमा नाटक**--(थियेटरमें खेलने योग्य) ... ॥।)
१८ **मनमोहिनी नाटक**--(उपन्यास)बाबू सूरजभानजीकृत ... ।)
१९ **अंजनासुंदरी नाटक**—बाबू कन्हैयालाल श्रीमालकृत ... ॥)
२० **सोमासती नाटक**—बाबू जैनेन्द्रकिशोरजी कृत ... ... ~)॥
२१ **श्रावकवनितावोधिनी**—दूसरी वारकी छपी हुई ... ... ।=)
२२ **बारहभावना**—बाबू-जैनेन्द्रकिशोरजी कृत नई तर्जकी ... ।)

केवल संस्कृतके ग्रन्थ दूसरोंके छपाये हुए।

मनोरंजक उपन्यास वगैरह सर्वसाधारणके पढने योग्य।

७४ भोज कालिदास--बाबू स्वरूपचन्द जैन कृत ... ... ॥॥=)
७५ हितोपदेश भाषाटीकासहित ... ... ॥॥=)

नोट--इनके सिवाय हमारे यहां बम्बई वगैरहकी छपी हुई सब प्रकारकी पुस्तकें वाजिब मूल्यसे भेजी जाती हैं।

रत्नकरंडश्रावकाचार वचनिका बडा।

यह महान् ग्रन्थ दो तीन मूल प्रतियोंपरसे संशोधन किया गया है। पं० सदासुखजीने जिस भाषा वचनिकामें लिखा था, वैसाका वैसा ही है। एक अक्षर मात्रामें भी फेरफार नहीं करके छपाया है।

यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि, यह ग्रन्थ कैसा उपदेशजनक और धर्मके सम्मुख करनेवाला है। क्योंकि सारे देशमें इसका प्रचार है। सब ही लोग इससे परिचित हैं। प्रत्येक बातको अत्यन्त सरल भाषामें इस तरहसे लिखा है और उसकी पुनरावृत्ति इतनी अधिक की है कि, बांचनेवाले और सुननेवालोंपर उसका असर हुए विना नहीं रहता। वैराग्यका तो यह भंडार ही है। बालक वृद्ध लडकियां स्त्रियां सब ही इसको पढ सकतीहैं। न्योछावर गत्तेवेष्टन सहित ४)

पार्श्वपुराण चौपाईबद्ध

कविवर भूधरदासजीका बनाया हुआ यह ग्रंथ सर्वत्र प्रसिद्ध है चौपाई, दोहा सोरठा आदि नाना छंदोंमें इस ग्रन्थकी रचना हुई है। कविता बडी ही सुहावनी है। इस ग्रन्थमें कथाभाग तो थोडा है परन्तु जैनधर्मके तत्त्वोंका बडे विस्तारमें वर्णन है। शास्त्र सभाओंमें बांचनेके लिये बडे ही कामका है, इसलिये हमने खुले हुए पत्रोंमें छपाया है। न्योछावर सवा रुपया।

धर्मपरीक्षा वचनिका

यह एक बडा ही विचित्र ग्रन्थ है। इसमें बडी ही मधुर हृदयग्राही भाषामें एक विलक्षण कथाके द्वारा सम्पूर्ण धर्मोंकी परीक्षा करके जैनधर्मकी उपादेयता सिद्ध की गई है। पुराणोंकी पोलोंपर सभ्यताके साथ बडे ही बढियां कटाक्ष किये हैं। एक बार पढना प्रारंभ करके फिर छोडनेको जी नहीं चाहता है। यों तो

नवों रसका भंडार है, परन्तु हास्य और शृंगारकी प्रधानता है अबकी बार मूल ग्रन्थ छोडकर ग्राहकोंके सुभीतेके लिये केवल हिन्दी अनुवाद छपाया है । न्योछावर केवल १) रु० है ।

वृन्दावनविलास ।

इस ग्रन्थमें काशीनिवासी कविवर बाबू वृन्दावनजीके संकटमोचन, कल्याणकल्पद्रुम, आदि मनोहर स्तोत्रों, अनेक प्रकारके पदों, फुटकर कविताओं, जयपुरके पंडित जयचन्द्रजी, दीवान अमरचन्द्रजी आदि महाशयोंके साथ किये हुए प्रश्नोत्तरों और गद्यपद्यबद्ध चिट्ठियोंका संग्रह है । साथ ही हिन्दीके एक अद्वितीय पिंगल ग्रन्थका संग्रह है, जो कि छन्दशतकके नामसे प्रसिद्ध है । ग्रन्थके प्रारंभमें देवरीनिवासी श्रीनाथूराम प्रेमीने कोई ३२ पृष्ठोंमें कविवरका जीवनचरित्र और उनके ग्रन्थोंका परिचय दिया है । न्योछावर ॥।) आने ।

आत्मख्यातिसमयसार ।

यह प्रसिद्ध अध्यात्मका ग्रन्थ पं० जयचन्द्रजी कृत वचनिका सहित खुले पत्रोंमें छपकर तयार हुआ है । इसमें शुद्ध निश्चय नयका वर्णन है । हमने थोडी सी प्रतियां ग्राहकोंके लिये मंगाई हैं । न्योछावर चार रुपया ।

भगवती आराधनासार ।

इस ग्रन्थका जीर्णोद्धार दक्षिणके धर्मात्मा शेठोंनें करवाया है । पं० सदासुखदासजीकृत वचनिका सहित ज्योंका त्यों खुले पत्रोंपर छपा है । इस ग्रन्थकी श्लोकसंख्या बारह हजार है । इसमें अन्तिम सल्लेखनाका अपूर्व शान्तिदायक वर्णन है । न्यो० पांच रुपया । भाड़ोंतक ४)

लीजिये! **तयार हो गया**

सबके समझने योग्य सरल हिन्दी भाषामें.

प्रद्युम्नचरित्र ।

ऐसा मनोरंजक चटपटा और शिक्षाप्रद पुराण आजतक नहीं छपा है । एक बार पढ़ना शरू करके फिर छोड़ा नहीं जावेगा ।

न्योछावर २॥।) रु०

जैनहितैषी मासिकपत्र।

हमारे पुस्तकालयसे इस नामका बढियां मासिकपत्र भी निकलता है, जिसमें सामाजिक, धार्मिक, तथा ऐतिहासिक उत्तमोत्तम लेख कविता मनोरंजक चुटकुले शिक्षाप्रद हृदयग्राही उपन्यास, जीवनचरित्र, आदि अनेक विषय हर महीने छपा करते हैं। जैनियोंमें इससे अच्छा और कोई मासिकपत्र नहीं है। बडी भारी खूबी यह है कि इसके ग्राहकोंको प्रतिवर्ष उपाहारमें (भेटमें) बढियां २ ग्रन्थ दिये जाते हैं, जिनका मूल्य अलग लेनेसे वार्षिक मूल्यके ही बराबर होता है। अर्थात् मासिकपत्रके मूल्यमें उपहार मिल जाता है, मासिकपत्र सालभर मुफ्तमें ही आया करता है। इस पत्रके निकालनेमें हमको बराबर घाटा रहता है, तौ भी हम उत्तमोत्तम ग्रन्थोंके प्रचारके लिये और अपने विचारोंको सब भाईयोंके समक्ष प्रकाशित करनेके लिये निकाल रहे हैं। धर्मात्मा भाईयोंको इसके ग्राहक बनकर हमारे उत्साहको बढना चाहिये। वार्षिक मूल्य उपहार डांकखर्च वगैरहके सहित कुल १॥) डेढ रुपया मात्र है।

विगत वर्षमें इसके उपहारमें वृन्दावनविलासादि १॥) के ग्रन्थ दिये थे। इस वर्ष प्रवचनसारजी जिनकी न्यो० १।) है, उपहारमें दिया है। आगामी वर्षके लिये कोई इससे भी अच्छा ग्रन्थ उपहारमें दिया जावेगा।

इस पतेसे चिट्ठी लिखिये—

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय

पो० गिरगांव–बम्बई।

नोट—हमारे यहां कमीशन किसीको नही दिया जाता।

प्रार्थना—सूचीपत्रकी एक एक कापी अपने यहांके मन्दिरोंमें रख दीजिये, अथवा दूसरे भाइयोंको बांट दीजिये।

कर्नाटक छापखाना, बम्बईमें छपा.

साहित्यका तीन चतुर्थांश भाग जैन कवियोंका लिखा हुआ है। नरसिंह मेहता गुजरातीके आदि कवि माने जाते हैं, परन्तु काव्यमालाके सम्पादक कहते हैं, कि, नहीं उक्त गौरवके अधिकारी गौतमरासाके कर्ता उदयनमुनि हैं, जो नरसिंह मेहतासे ७५ वर्ष पहले हुए हैं। इसके सिवाय गुजराती भाषाकी उत्पत्ति, ग्यारहवीं शताब्दिके लगभग सिद्ध की गई है। सारांश यह है कि, काव्यमालाके उक्त लेखने गुजराती साहित्य समाजमें एक नया युग उपस्थित कर दिया है। लोगोंको आश्चर्य हो रहा है कि, जैनियोंका इतना बड़ा साहित्य कहां छुपा पड़ा था, जो काव्यमालाके सम्पादक कहते हैं कि, हमारे पास इस गुच्छक जैसे ५० गुच्छकोंके प्रकाश करने योग्य साहित्य इस समय मौजूद है! रायचन्द्रजैनकाव्यमालाका जन्म प्रकाशकोंके लाभके लिये नहीं हुआ है, किन्तु जैन साहित्यके प्रचारके लिये हुआ है। इसी लिये लगभग ४५० पृष्ठकी खूबसूरत मजबूत जिल्द बंधी हुई पुस्तकका मूल्य केवल बारह आना रक्खा है, जो लागतके दामोंसे भी कुछ कम है। हमारी समाजके धनिक गणोंमें अपने अपूर्व साहित्यके प्रचार करनेके विषयमें ऐसी उदारबुद्धि न जाने कब होगी। प्रचार करना तो दूर रहै, यहां प्रचार करनेवालोंके मार्गमें रोड़ा अटकानेवाले भी तयार हैं। हम अपने गुजराती जाननेवाले पाठकोंसे सिफारिश करते हैं कि, वे उक्त ग्रन्थको मंगाकर एक बार अवश्य ही बांचें। मिलनेका पता-सनातन जैन कार्यालय-जवेरी बाजार बम्बई।

विविधसमाचार।

कन्याविक्रयका कानून—समझाने बुझानें उपदेश देनेसे जो बात नहीं मानी जाती है, उसके लिये बलका प्रयोग करना पड़ता है। रतलामके महाराजने जब अन्य उपायोंसे सफलता न देखी, तब आखिर उन्होंने अपने राज्यमें इसके लिये एक कानून जारी कर दिया है। महाराजने यह बड़ा ही पुण्यका कार्य किया है। यदि अन्य राजा लोग भी ऐसा कानून जारी कर देवें, तो कन्याओंके बेचनेवाले, दलालों, और बुड्ढे दुलहोंका बाजार एकदम मन्दा हो जावे।

अचरजकारी दान--बर्लिन (जर्मनी) नगरके सेम्सन नामके एक धनिकने वहांके एक विज्ञानशास्त्रके विद्यालयको सवा दो करोड़ रुपयाका दान

किया है। पाठक आश्चर्य करनेकी बात नहीं हैं। जो लोग विद्याकी महिमा-को जानते हैं, और सच्चा परोपकार करना जानते हैं, वे ऐसे ही कार्योंमें अपने धनको सफल करते हैं।

विद्यादान—कलकत्तेके महाराज मणीन्द्रचन्द्र नन्दीने कलाकौशल्यके विद्या-लयके लिये अपनी इतनी मिलकियतका दान किया है, जिसकी वार्षिक आमदनी एक लाख रुपया है! बंगालियोंका ध्यान देशमें कलाकौशल्य बढ़ानेके विषयमें पूरा २ आकर्षित हो चुका है। कलकत्तेकी एक शिल्पसभा प्रतिवर्ष १०० हिंदु-स्थानी विद्यार्थियोंको कलाकौशल्यकी शिक्षा पानेके लिये जापान, अमेरिका, इंग्लैंड आदि देशोंको भेजने लगी है।

सिक्खसरदारका दान—मि० गजेन्द्रसिंह माजथिया नामके एक दाताने अपनी मृत्युके पहले अमृतसरके खालसा कालेजको डेढ़ करोड़ रुपये प्रदान किये हैं। धन्य हैं, वे लोग जिनका द्रव्य विद्यादानमें लगता है! उक्त उदार सरदारके भाई दयालसिंहने वहीं कालेजकी स्थापनाके लिये तीस लाख रुपये दिये थे।

महाराष्ट्र खंडेलवालसभा—ता० ८-९-१० सितम्बरको नासिकमें उक्त सभाका अधिवेशन होगा। उसके सभापति श्रीयुक्त पंडित पन्नालालजी कासलीवाल चुने गये हैं।

ग्यारह हजारका सौदा—हम समझते थे कि, सिंहस्थकी साल कन्या-के व्यवसायोंके लिये खाली निकल जावेगी, और खरीददारोंकी उमरमें एक सालका घाटा पड़ जावेगा. परन्तु खुशीकी बात है कि ऐसा नहीं हुआ। अभी २ कई नामी २ सौदा हो गये हैं जिससे व्यापारियोंकी पाचों उंगली घीमें तर हो रही हैं। सबसे नामी सौदा दक्षिणके एक वयोवृद्ध शेठजीका हुआ है। आपने ग्यारह हजार रुपयेमें तीसरी या चौथीबार पीले होनेका मनसूबा बांधा है; जीते जागते रहे, तो आगामी सालमें मनोरथ सफल हो जावेगा। शेठजीकी उमर ६० से कुछ ज्यादा नहीं है! इस उमरमें तो मनुष्य सब कुछ कर सकता है। देखो न मार्ली साहब इस समय कैसी तेजीसे हिन्दुस्थानके राज्यशासनको चला रहे हैं। क्या उमर अधिक होजानेसे तेजी कहीं चली जाती है?

Reg. No. B. 719.

ॐ

मासिक पत्र।

देवरी (सागर) निवासी श्री नाथूराम प्रेमी द्वारा सम्पादित।

पाँचवाँ भाग	भाद्रपद — वीर नि० संवत् २४३५।	अंक ११

अधूरीं पुस्तकें।

ब्रह्मविलास पूर्वार्द्ध और **धर्मपरीक्षा** (संस्कृत भाषा और सहित) उत्तरार्ध इन दो ग्रन्थोंकी थोडी २ प्रतियां हमारे पास पड़ी हैं। हम इनको बहुत सस्ते दामोंपर उठा देना चाहते हैं, इस लिये जिन भाइयोंको चाहिये, मंगा लेवें। ब्रह्मविलास छह आनेमें और धर्मपरीक्षा आठ आनेमें।

पार्श्वाभ्युदयकाव्य संस्कृत टीका सहित।

छपकर तयार हो गया है। न्यो० बहुत ही थोडी अर्थात् सिर्फ १२ आने रक्खी गई है। जिन भाइयोंको चाहिये, हमारे पाससे मंगा लेवें। इस अपूर्व काव्यमें कालिदासका पूरा मेघदूत वेष्टित किया गया है। श्री पार्श्वनाथ स्वामीका चरित्र वियोग शृंगारसे भरा हुआ है। इसके बनानेवाले आदिपुराणके कर्त्ता श्री जिनसेन स्वामी हैं। निर्णयसागरमें बहुत सुन्दर छपा है।

क्षमावणीके स्वदेशी कार्ड।

छपके तयार हैं। अबकी बार ऐसे छपाये हैं, जो हर साल काम दे सकते हैं। दर चार आना सैकडा। डांक खर्च अलग। एक आने डांकखर्चमें ७५ कार्ड जाते हैं।

श्रीपालचरित्र।

भाषा चौपाईबद्ध श्रीपालचरित्रकी हमारे पास थोडीसी प्रतियां आई हैं. जिन भाइयोंको जरूर हो, जल्दी मंगा लेवें। पुष्ट कागजपर छपा हुआ और कपडेकी जिल्द बंधा हुआ तयार है। न्योछावर १॥)

तेरहद्वीप पूजा विधान।

यह बडा भारी पूजन विधान खास भादोंकी बिक्रीके लिये मंगाया गया है। क्योंकि इन दिनों पूजाविधानकेलिये बहुतसे भाई हमें लिखते हैं। केवल ३० प्रतियां हमारे पास आई हैं। इसलिये मंगानेवालोंको देरी नहीं करना चाहिये। न्योछावर २॥)

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र ।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

पंचम भाग } भाद्रपद-श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३५। { अंक ११

सम्पादकीय विचार.

दशलक्षण पर्व ।

हमारा परमपूज्य दशलक्षण पर्व आ गया। बड़े आनन्दके साथ हम इसका स्वागत करते हैं। यह पवित्र पर्व हमारी और हमारे धर्मकी उन्नतिकी आशाका तथा भरोसेका एक मात्र अवलम्बन है। हमको विश्वास है कि, जिस समय हम इस पर्वका असली स्वरूप जान जावेंगे, इसके उद्देशोंको समझ जावेंगे और इसकी ठीक ठीक पालना करनेके लगेंगे, उस समय हमारी उन्नति होनेमें कुछ भी विलम्ब नहीं लगेगा। समाजके अगुओंको तथा विद्वानोंको इस पर्वका महत्व लोगोंको समझाना चाहिये और प्रत्येक पुरुष स्त्रीके हृदयमें धर्मकी तथा जातिकी उन्नति करनेकी आकांक्षा उत्पन्न करनी चाहिये। प्रत्येक जैनीका इस समय यह कर्तव्य है कि, वह उत्तम क्षमादि दशधर्मोंका स्वरूप समझ करके तथा उन्हें धारण करके अपनेको धर्मात्मा बनावे, व्रत उपवास करके परिणामोंको स्थिर करना सीखे और उनसे आत्माकी उन्नति करै। पूजन तथा रथयात्रादि महोत्सव करके, शास्त्रचरचा करके, शास्त्रदान करके, विद्यादानके साधन पाठशाला बोर्डिंगस्कूल आदि बनाके, अभय, आहार, औषधि दान करके धर्मकी प्रभावना करै, और परस्परके वैर भावको मिटाकर संघकी एकता बढाकर समाजमें जितनी बुराइयां घुस गई हैं, उनको दूर करके समाजका कल्याण करै। जिन उपायोंसे इन कर्तव्योंको प्रत्येक मनुष्य समझने

लगे और उसके अनुसार वर्ताव करने लगे, उन उपायोंके करनेकी बड़ी भारी अवश्यकता है। आशा है कि, जाति और धर्मकी उन्नति चाहनेवाले सज्जन इस पर्वके अवसरको व्यर्थ नहीं जाने देंगे और अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य करेंगे। वर्षभर तक इससे अच्छा और कोई मौका नहीं मिलेगा;

स्वदेशीवस्तुव्यवहार।

भारतवर्षके एक छोरसे दूसरे छोरतक स्वदेशी वस्तुओंका व्यवहार करनेकी आकांक्षा प्रबल हो रही है। गत चार पांच वर्षमें इससे जो देशको अचिन्त्य लाभ हुआ है, और हो रहा है, उसे देखकर तो यह इच्छा इतनी बढ़ गई है कि, जिसकी स्वप्नमें भी आशा नहीं थी। स्वदेशवस्तु व्यवहारके इस अप्रतिम प्रेमसे थोडे ही दिनोंमें देशमें सैकडों कल कारखाने खुल गये हैं, और दिनपर दिन खुलते जाते हैं। प्रतिवर्ष सैकड़ो विद्यार्थी जापान आदि देशोंमे कलाकौशल्य सीखने जा रहे हैं और वहांसे वापिस आकर नवीन नवीन वस्तुओंके तयार करनेके कारखाने खोल रहे हैं। धनिक लोक उन्हें धनसे सहायता कर रहे हैं और देशहितैषी लोग उनकी बनाई हुई वस्तुओंके प्रचार करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। यों सब तरहसे स्वदेशी आन्दोलनकी सफलता हो रही है। पाठकोंको मालूम होगा कि, लार्ड कर्जनने बंगालके दो हिस्से प्रजाकी इच्छाके विरुद्ध कर दिये थे, इससे चिढ़कर लोगोंने स्वदेशी आन्दोलन और बहिष्कारका शस्त्र उठाया था। यद्यपि उस समय यह शस्त्र केवल बंगभंगके रद करनेके लिये था, परंतु इससे जो सफलता हुई है, उसके साम्हने बंगभंगका रद होना न होना लोगोंकी दृष्टिमें कोई चीज ही नहीं रहा है। बंगभंग भले ही रद हो जावे परन्तु प्रजा अब इस शस्त्रको कभी नहीं छोड़ेगी। बंगभंग तो इसके उठनेका एक कारण मात्र था। स्वदेशी आन्दोलनमें शामिल होनेके लिये बंगभंगके समान जैनियोंको भी सम्मेदशिखरपर बंगले बनाये जानेका कारण मिला था। और उस समय जैनसमाजने इस शस्त्रको ग्रहण भी बहुत शीघ्रतासे किया था। परन्तु सम्मेदशिखरका मामला ठंडा होते ही जैनियोंमें स्वदेशी आन्दोलनका जोश स्थिर न रहा, उसमें शिथिलता आ गई। यद्यपि सम्मेद शिखरपर बंगले बनाना बन्द हो गया है, परन्तु इससे क्या यह कहा जा सकता है कि, इस मामलेमें जैनियोंको न्याय मिला है? नहीं, उनका जो स्वत्व था, वह एक प्रकारसे नष्ट कर दिया गया है, और कई लाख रुपये राजाको दिलाकर जैनियोंपर एक बड़ी भारी टैक्स

हमेशाके लिये लगा दी गई है। फिर जैनी इस विषयमें क्यों ठंडे होने लगे, यह समझमें नहीं आता। यदि थोड़ी देरके लिये अपने राजभक्त अगुओंके कहनेसे हम यह भी मान लें कि, सरकारने हमें न्याय दिया है, तो भी क्या जैनियोंको स्वदेशी वस्तु व्यवहारकी प्रतिज्ञामें शिथिल हो जाना चाहिये? नहीं, इस आन्दोलनका सबसे बड़ा लाभ जैनियोंके लिये ही है। क्योंकि यह हिन्दुस्थानकी सबसे प्रधान व्यापारी जाति है और स्वदेशी आन्दोलन देशका व्यापार बढ़ानेके लिये ही किया गया है। इसमें व्यापारी जैन जातिको सबसे पहले शामिल होना चाहिये। इसके सिवाय यह जैनियोंका धर्म भी है। क्योंकि एक तो विदेशी वस्तुओंमें अधिकतर ऐसी चीजोंका संयोग रहता है, जो हमारे धर्मसे बहुत ही विरुद्ध हैं। जैसे कि, विलायती शक्करमें गोरक्त तथा कपड़ोंमें अनेक अशुद्ध पदार्थोंकी पालिश। और दूसरे इससे देशके करोड़ों रुपये बाहर नहीं जाने पाते हैं, जिनसे लाखों गरीब देशवासियोंके प्राणोंकी रक्षा होती है। इन सब कारणोंसे जैनियोंको स्वदेशी आन्दोलनमें सबसे अधिक योग देना चाहिये और विदेशी वस्तुओंके व्यवहार न करनेकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये। पर्वके दिनोंमें जिस प्रकार अभक्ष्यादिका तथा हरितकायका त्याग किया जाता है, उसी प्रकारसे अव्यवहार्य विलायती वस्तुओंका त्याग करनेकी पद्धति भी चलानी चाहिये। साथ ही जो धनिक लोग हैं, जिनके पास पूंजी है, उन्हें विदेशोंमें विद्यार्थियोंको शिल्पकला सीखनेके लिये भेजना चाहिये, तथा उनके जरिये नवीन २ वस्तुओंके तयार करनेके लिये कल कारखाने खोलना चाहिये।

विदेशगमन।

शेठ हीराचंद गुमानजी जैन बोर्डिंग स्कूल बम्बईके विद्यार्थियोंकी ओरसे गत ६ सितम्बरको हीराबागके व्याख्यानमन्दिरमें मिस्टर हीराचन्दजी नामके श्वेताम्बर सज्जनके सत्कारके लिये एक सभा हुई थी। उक्त सज्जन व्यापारी शिक्षा पानेके लिये इंग्लेंडको रवाना होनेवाले थे। इस सभामें कई अच्छे २ वक्ताओंके व्याख्यान हुए और उसमें समझाया गया कि, इस समय विदेशोंमें जाकर कलाकौशल्य तथा व्यापारकी शिक्षा प्राप्त करनेकी बड़ी भारी जरूरत है। क्योंकि हमारा देश इस विषयमें बिलकुल पीछे पड़ा हुआ है। परन्तु यूरोप देशोंमें विलासिता तथा अधर्मकी नदी बह रही है। इस लिये वहां जानेवालोंको सचेत होकर जाना चाहिये, जिसमें उसके अरोक प्रवाहमें वे न बह जावें। इसके

लिये आत्मबलकी आवश्यकता है। हमारे देशका यह प्रधान बल है। इस बलके आगे सम्पूर्ण बल तुच्छ हैं। इस बलसे वहांके विलासितारूप विघ्नोंको टालना चाहिये, तथा अपने धर्मको भले प्रकार सुरक्षित रखके देशको लौटना चाहिये और देशका कल्याण करना चाहिये। पंडितवर्य धन्नालालजी काशलीवालने कहा कि, जैनियोंको किसी भी देशमें जानेकी मनाई नहीं है। केवल धर्मभ्रष्ट करनेकी मनाई है। जिन कार्योंके करनेमें सम्यक्त्वका घात नहीं होता और व्रतोंमें दूषण नहीं लगता, वे सब कार्य जैनी कर सकते हैं। इसलिये विलायत जाते समय हमारे देश वासियोंको इन्हीं दो बातोंका ख्याल रखना चाहिये। और अपने धर्मकी रक्षा करते हुए वहां रहकर विद्याध्ययन करना चाहिये। सभापति महाशयने बड़ी ही उत्तेजक भाषामें मि० हीराचन्दको उपदेश दिया और उसे उन्होंने बड़ी ही नम्रता तथा विनयसे स्वीकार किया। उनके प्रत्येक वाक्यमें धर्मप्रेम और भक्तिकी झलक दिखलाई देती थी। देशवासियोंको धर्मप्रेम और स्वदेशप्रीतिको साथ लेकर विलायत जाते देखकर हृदयमें आनन्दकी सीमा नहीं रहती।

अध्यापक कैसे तयार हों?

जैनसमाजमें अध्यापकोंकी बडी कमी है। एक तो केवल मन्दिर बनवा देने अथवा केवल प्रतिष्ठा करा देनेमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझनेवाले जैनी भाई विद्याकी ओर ध्यान ही नहीं देते हैं, और यदि निरन्तरकी प्रेरणाओंसे उपदेशोंसे अथवा दूसरे लोगोंकी देखादेखीसे कोई कभी तयार भी होता है, पाठशाला खोलनेका विचार भी करता है, तो उसे अध्यापक नहीं मिलते हैं। अथवा किसी बडे भारी प्रयत्नसे मिलते भी हैं, तो उनमें इतनी योग्यता और व्यवहारज्ञता नहीं होती है कि, वे विद्यार्थियोंको अच्छी तरहसे पढ़ा सकें, और अपने उत्कृष्ट व्यवहारसे लोगोंको प्रसन्न रख सकें। इससे या तो वह पाठशाला इसलिये टूट जाती है कि लोगोंपर उसका कुछ अच्छा फल नहीं प्रगट होता है, या लोग अध्यापकके व्यवहारसे असन्तुष्ट होकर तथा उसके पीछे आपसमें कलह खड़ी करके पाठशालाकी 'समाप्ति' कर देते हैं। अनेक स्थान ऐसे भी हैं, जहां यह कुछ नहीं होता है और पाठशालायें दश दश वर्षसे चल रहीं हैं। परन्तु वहां फल कुछ भी दिखलाई नहीं देता है। दो चार विद्यार्थी भी ऐसे

योग्य नहीं हैं, जिनकी विद्याको देखकर द्रव्य खर्च करनेवाले धर्मात्माओंके नेत्र तृप्त हों। क्योंकि पढ़ानेवाले अध्यापक जैसे होना चाहिये, वैसे नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि इस समय योग्य अध्यापकोंकी बड़ी भारी जरूरत है। और उनके न मिलनेसे विद्याप्रचारकी ओर बढ़ते हुए उत्साहकी बड़ी भारी हानि हो रही है। इसलिये समाजके अगुओंको इस ओर शीघ्र ही ध्यान देना चाहिये।

हमारी समझमें इसके किये दो उपाय होना चाहिये। एक तो यह कि, जैनमहाविद्यालय, स्याद्वादपाठशाला, बम्बईविद्यालय आदि ऐसी पाठशालाओंमें जहां कि उच्च श्रेणीकी शिक्षा दी जाती है, और जहांके विद्यार्थी अपना अभ्यास समाप्त करके अधिकतर अध्यापक बनते हैं, अध्यापकीय शिक्षा देनेका प्रबंध होना चाहिये। अर्थात् उन्हें विद्यार्थियोंके प्रति, उनके मा बापोंके प्रति, पाठशालाके स्वामियोंके प्रति, परीक्षकोंके प्रति अध्यापकोंके क्या क्या कर्तव्य हैं, शिक्षा किस ढंगसे देनी चाहिये, कैसी शिक्षासे विद्यार्थियोंकी मानसिक शक्तियां बढ़ती हैं, कैसे व्यवहारसे विद्यार्थियोंपर दबाव पड़ता है, विद्यार्थियोंको ताड़ना कहां तक उचित है, व्याकरण, काव्य, इतिहास, धर्मशास्त्र आदि विषयोंके पढ़ानेकी उत्तम पद्धति कौन सी है, जुदे २ विषयोंके पढ़ानेके लिये समयविभाग किस तरहसे करना चाहिये, पठनक्रमकी पुस्तकोंके सिवाय अन्यान्य विषयोंकी मौखिक शिक्षा किस प्रकारसे और क्यों देना चाहिये, आदि आवश्यक बातोंकी शिक्षा अवश्य ही मिलना चाहिये और उसकी एक खास परीक्षा होनी चाहिये। जबतक इस अध्यापकी परीक्षामें विद्यार्थी पास न हो, तबतक उसे अध्यापकी नहीं मिलना चाहिये। इन सब बातोंका जिससे ज्ञान हो सके, ऐसी पुस्तक परीक्षालयकी ओरसे तयार करा लेना चाहिये। सरकारी नार्मल स्कूलोंमें जो शिक्षाप्रबन्ध अथवा शिक्षापद्धति नामकी पुस्तकें भरती हैं, उन्हींके समान जैनियोंकी सामाजिक धार्मिक व्यवस्थापर ध्यान रखके यह पुस्तक बनना चाहिये। युरोप जापान आदि देशोंमें जिस प्रकारकी पद्धतिसे बालकोंको सिखलाया जाता है. और जिस पद्धतिसे बालक बड़ी सरलतासे थोड़े ही दिनोंमें सुखपूर्वक बहुत विषयोंका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, वह पद्धति इस पुस्तकमें अच्छी तरहसे लिखनी चाहिये; जिसे पढ़कर अध्यापकगण हमारे बालकोंको सहज ही विद्यासम्पन्न कर सकें।

जैसे अध्यापकोंकी हमको जरूरत है, वैसे अध्यापक यथार्थमें तो तब ही बन सकेंगे, जब उक्त विद्यालयोंमें भाषासाहित्य, गणित, पदार्थविज्ञान, भूगोल, इतिहास,

चित्रकारी, आदि सब विषयोंकी शिक्षाका प्रबन्ध होगा, क्योंकि इन विषयोंके पढ़े विना केवल धर्मशास्त्र, व्याकरण, न्याय, पढ़नेसे वे निरे पंडित बन जाते हैं। परन्तु जबतक इस शिक्षाका प्रबन्ध नहीं हुआ है, तबतक शिक्षापद्धतिका विषय तो अवश्य पढ़ाना चाहिये। क्योंकि इससे इतना लाभ तो भी होगा कि, अध्यापक महाशय जिन विषयोंको पढ़े हैं, उन्हे विद्यार्थियोंको अच्छीतरहसे पढ़ा सकेंगे, और पाठशालाका बाहिरी प्रबंध भली भांति कर सकेंगे। उक्त विद्यालयोंके अधिकारियोंसे हम प्रार्थना करते हैं कि, वे इस विषयको अवश्य भरती करें।

अध्यापकोंकी पूर्ति करनेका दूसरा उपाय यह है कि जैनियोंकी ओरसे एक खास ट्रेनिंग स्कूल खोला जावे, जैसा कि श्वेताम्बरियोंकी ओरसे रतलाममें खोला गया है। और यदि वह न खोला जा सके, अथवा शीघ्र ही उसके खोलनेका प्रबन्ध न हो सकै, तो फिलहाल जैनमहाविद्यालयमें ही एक ट्रेनिंग क्लास खोल दी जावे, और उसका कोर्स दो वर्षका रक्खा जावे। इस क्लासमें उन विद्यार्थियोंको शिक्षा दी जावे, जो अध्यापक होना चाहते हों। शिक्षाप्रबंधके सिवाय इस क्लासमें गणित, इतिहास, भूगोल, पदार्थविज्ञान आदि विषयोंका ज्ञान भी कराया जावे। हमको आशा है कि, इस प्रार्थनापर हमारे अगुए अवश्य ही ध्यान देंगे।

सरस्वती भक्तोंके कर्तव्य।

इस समय जैन समाजमें सरस्वती भक्तोंके दो दल दिखलाई देते हैं, एक तो वे जो छापेके कट्टर विरोधी हैं और जैन ग्रन्थोंकी थोडीसी भी अविनयसे अतिशय दुखी होते हैं। और दूसरे वे जो जैन ग्रन्थोंको छपा छपाकर घर घरमें पहुंचा देना तथा संसारमें जैनधर्मके अपूर्व तत्वज्ञानको प्रकाशित करना अपना कर्तव्य समझते हैं। और ग्रन्थोंके पठन पाठनको ही उनका मुख्य विनय मानते हैं। इन दोनोंके विचार यद्यपि एक दूसरेसे बहुत विरुद्ध हैं, परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि, थोड़े बहुत दुराग्रही दुष्टप्रकृति महात्माओंको छोड़कर ये दोनोंही थोक जिनवाणी माताके सेवक हैं, और दोनों ही चाहते हैं कि, जिनवाणीका खूब प्रचार हो और उससे जैनधर्मकी प्रभावना हो। यह कोई नहीं चाहता है कि, जैन ग्रन्थोंके पठन पाठनकी वृद्धि न हो, अथवा वे भंडारोंमें ही पड़े २ सड़ा करें। यह बात दूसरी है कि, इनमेंसे किसी दलके कामोंसे समाजका विशेष उपकार होता है, और किसी दलके कामोंसे नहीं। परन्तु अभिप्राय दोनोंके अच्छे हैं।

इन दोनों ही दलोंके जैसे आभिप्राय हैं उनके अनुसार ये यदि कुछ प्रयत्न करें अपनी शक्तिको काममें लावे, तो जिनवाणी माताकी बहुत कुछ सेवा हो सकती है। परन्तु खेदका विषय है कि ये दोनों ही दल अपनी शक्तिका उपयोग एक दूसरेके विरुद्धमें करने लगे हैं, और अपने कर्तव्यको भूल रहे हैं। इस समय दोनों ही एक दूसरेका मनमाना सत्कार करके अपना चित्त शान्त कर रहे हैं। उन्हें शायद विश्वास है कि, हम अपने पक्षको प्रबल सिद्ध करके विपक्षीसे अपना पक्ष स्वीकार करा लेंगे। परन्तु हमारी समझमें यह केवल भ्रम है। इस तरह लड़ झगड़कर कोई किसीका पक्ष स्वीकार नहीं करता। क्योंकि लोग अपने पक्षमें ऐसे दुराग्रही हो जाते हैं कि, दूसरे पक्षकी बातको सुनना भी नहीं चाहते हैं। उनकी बुद्धिमें इतना अवकाश ही नहीं रहता है कि वहां किसी दूसरेकी बातको स्थान मिल सकै। इससे तो अच्छा यही है कि, दोनों इस विषयमें शान्त हो जावें और अपने कर्तव्यमें लग जावें। जिसने जिस पद्धतिसे जिनवाणीका प्रचार होना समझ रक्खा है, वह उसी पद्धतिसे करै, और दूसरेकी पद्धति अच्छी है, या बुरी, इस विषयमें दोनों चुप हो जावें। क्योंकि इस विषयकी तो आशा करना ही व्यर्थ है कि, एकके प्रयत्नसे दूसरा पक्ष बिलकुल ही नष्ट हो जावेगा। तब इस व्यर्थके वितंडेमें पड़े रहनेसे ही क्या लाभ है? दोनों ही दलोंके लिये यदि वे करना चाहें, तो सरस्वती सेवाके एक नहीं सैकड़ों कार्य पड़े हैं। सो उन्हें करना चाहिये, और अपनी सच्ची मातृभक्ति प्रगट करनी चाहिये। सच बात तो यह है कि, अभीतक हमारे इन दोनों ही दलोंमें सच्चे काम करनेवाले जिनवाणीके भक्त तयार ही नहीं हुए हैं। और जिसे काम कहते हैं उसका अभी प्रारंभ ही नहीं हुआ है। जिस दिन ऐसे सज्जन तयार होंगे और जिस दिन असली काम होना शुरू होगा, वह दिन जैनसाहित्यके लिये बडी ही प्रभावनाका होगा।

जिनवाणी माताके भक्त होनेका जिन्हें अभिमान है, उन दोनों ही दलवालोंके लिये सबसे बड़ा काम यह है कि, भारतवर्षके किसी केन्द्रस्थानमें एक ऐसा जैनग्रन्थसंग्रहालय खोला जावे, जिसमें प्राचीन नवीन सब प्रकारके जैनग्रंथ संग्रह किये जावें। गांव गांव नगर नगरमें खोज करनेवाले भेजकर अप्राप्यसे अप्राप्य ग्रन्थ एकत्र किये जावें। ऐसा कोई भी ग्रन्थ न रहै, जो दूसरे स्थानोंमें मिलता हो, और इस संग्रहमें न मिलै। बल्कि अपने इस भंडारके विषयमें

लोगोंको ऐसा श्रद्धान करा देना चाहिये कि, "यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् अर्थात् जो इसमें नहीं है, सो कहीं भी नहीं है। इसके साथमें एक लेखक-कार्यालय भी खोलना चाहिये, जिसमें सौ पचास लेखक ग्रन्थ लिखा करें, और उससे सर्व साधारण लोग जब चाहें, तब भंडारास्थित ग्रन्थोंको लिखाकर मंगा सकैं। क्योंकि इसकी भी बड़ी भारी जरूरत है। छापेके विरोधी दलकी इच्छा यदि किसी अंशमें पूरी हो सकेगी, तो इसी प्रबन्धसे हो सकेगी। इसलिये उसे सरस्वतीभंडारके कार्यमें सबसे अगुआ होना चाहिये। इस दलमें धनिक लोगोंकी बहुत ज्यादती है, इसलिये यदि वह चाहै, तो सरस्वतीभंडारके लिये चाहै जितना रुपया एकत्र कर सकता है। छापेके प्रचारकोंको भी इस कार्यमें तन मन धनसे सहायता करनी चाहिये। क्योंकि यह कार्य सरस्वतीसेवा सम्बन्धी सम्पूर्ण कामोंकी जड़ होगा। इससे जैनी मात्रको लाभ होगा। जबतक जैनियोंने एक वृहत्सरस्वतीभंडार स्थापित नहीं किया है, तबतक उनके सरस्वती सेवाके सब काम अधूरे रहेंगे।

दूसरा कार्य सरस्वती सेवकोंका यह है कि, संस्कृत प्राकृतके उन ग्रन्थोंका जिनका कि अभीतक भाषानुवाद नहीं हुआ है, अनुवाद कराके प्रचारमें लावें। इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि जैनसमाजका उपकार अब केवल संस्कृत के ग्रन्थोंसे होना संभव नहीं है। वर्तमान देशकालपर विचार करनेसे यह प्रतीत नहीं होता कि, संस्कृत हमारी मातृभाषा बन जावेगी, और इसे प्रत्येक जैनी समझने लगेगा। इसलिये हमे वह प्रयत्न करना चाहिये, जिसमें जैनधर्मके सिद्धान्तोंको प्रत्येक मनुष्य समझ सकै, और अपने आत्माका कल्याण कर सकै। वह प्रयत्न संस्कृत ग्रन्थोंका देश भाषामें अनुवाद करना ही हो सकता है। आज जैनधर्मके थोड़े बहुत तत्त्वोंके जाननेवाले जो जैन समाजमें दिखलाई देते हैं, वे इसी भाषानुवादके प्रयत्नसे दिखलाई देते हैं। यदि सिद्धान्त ग्रन्थोंकी भाषा वचनिकायें नहीं होतीं, तो जैनसमाजकी वह दशा होती, जिसकी कल्पनासे भी कष्ट होता है। धर्मकी रक्षा करनेवालोंने ऐसे प्रयत्न पहले भी किये हैं। जिस समय देशमें प्राकृत मागधी आदि भाषाओंका प्रचार था, उस समयके धर्माचार्योंने संस्कृत ग्रन्थोंकी रचना छोडकर प्राकृत भाषाओंमें ही ग्रन्थरचना करना शुरू कर दी थी। क्योंकि उस समय सर्व साधारण लोग उसी भाषाको समझते थे। पीछे जब प्राकृत भाषाका रूपान्तर हो गया, उसके स्थानमें दूसरी भाषायें बन गईं,

यहां तक कि लोग प्राकृत भाषाको समझने नहीं लगे,तब आचार्योंने देश भाषाओंमें ग्रन्थ लिखनेका प्रारंभ किया। कर्नाटकी भाषामें जैनियोंके आठवीं नवमी सदी तकके बने हुए ग्रन्थ इस विषयके साक्षी हैं। प्रसिद्ध गोमठसारकी संस्कृत टीका कर्नाटकी टीकाके आधारसे लिखी गई है। कर्नाटकी भाषाका व्याकरण भी श्रीअकलंक भट्टका बनाया हुआ है। हिन्दीमें भी चौदहवीं पन्द्रहहवीं शताब्दीसे ग्रन्थ लिखे जाने लगे थे। उस समयके कई एक भट्टारकोंके बनाये हुए भाषाग्रन्थ अबभी मिलते हैं। मराठीमें भी बहुतसे जैनग्रन्थ लिखे गये हैं, ऐसा सुना है। साराश यह कि; जिस समयमें देशकी जो भाषा रही, आचार्योंने धर्मका प्रचार होनेके लिये उसी भाषामें ग्रन्थोंकी रचना की थी। उन्होंने इस बातका आग्रह नहीं किया था कि, नहीं, हमारे सब ग्रन्थ संस्कृतमें ही रहेंगे और संस्कृतमेंही बनेंगे। यदि उनमें ऐसा आग्रह होता और समयसूचकता नहीं होती, तो जैनधर्मका नाम भी शायद नहीं रहता। धर्मके प्रचारके लिये उन्होने देशका भाषाओंमें ही नहीं, विदेशी भाषाओंमें भी अनुवाद कराया था। इस बातका पता राजा अमोघवर्षकी बनाई हुई प्रश्नोत्तररत्नमालाके तिब्बती भाषाके अनुवादसे लगता है। तात्पर्य यह है कि, हमको संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंका अनुवाद देश भाषामें करानेके लिये अपने प्राचीन ऋषियोंका अनुकरण करना चाहिये। क्योंकि इसके विना धर्मविद्याकी रक्षा करनेका और उसका बहुलतासे प्रचार करनेका और कोई अच्छा मार्ग नहीं है; आप लोगोंने सुना होगा कि अंग्रेजोंकी बायबिलका सौसे अधिक भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है। यह भी कहनेकी जरूरत नहीं है कि, इस प्रयत्नसे ईसाई धर्मकी कितनी उन्नति हुई है। जैनियोंका हिन्दी साहित्य अभी बहुत ही थोड़ा है। बहुत थोड़े जैन ग्रन्थोंका भाषानुवाद हुआ है। गोमठसारादि थोड़ेसे ग्रन्थोंको छोड़कर संस्कृतके नामी २ ग्रन्थ अभी तक हमारे समाजके परिचयमें ही नहीं है। उनका अनुवाद होना बहुत आवश्यकीय है। छोटे २ से विषयोंमें हमारे यहां जो विवाद खड़े हो जाते हैं, और उनका यथेष्ट समाधान नहीं होता है, इसका कारण यही है कि, संस्कृत प्राकृतके उपयोगी ग्रन्थोंका अभीतक भाषामें अभाव ही है।

अनुवाद करानेके लिये एक खास खाता खोलना चाहिये, और उसके द्वारा दो तीन विद्वानोंकी देखरेखमें यह कार्य शुरू कराना चाहिये। इस कार्यमें जैन विद्वानोंके सिवाय जैनधर्मका थोड़ा बहुत परिचय रखनेवाले ब्राह्मण विद्वान भी रखना चाहिये, जो जैनविद्वानोंके समीप रहकर उनकी सहायतासे ग्रन्थोंका अनुवाद

कर सकैं। क्योंकि अभीतक जैन विद्वानोंका बहुत बड़ा घाटा है। ग्रंथ तयार हो जानेपर दो तीन विद्वान उसको देखकर संशोधन कर देवें, और पीछे उसका प्रचार किया जावे। ऐसा करनेसे ग्रन्थोंमें किसी प्रकारके अनर्थकी संभावना नहीं रहेगी। इस खातेके द्वारा संस्कृत प्राकृतके सिवाय कर्णाटकी आदि भाषाओंमें जो ग्रन्थ हों, उनका भी अनुवाद कराया जाना चाहिये, जिससे हमारी भाषामें शीघ्र ही सब प्रकारके उपयोगी ग्रन्थ हो जावें।

सरस्वतीभंडारके समान यह कार्य भी दोनों दलोंको करना चाहिये। परन्तु इसमें दोनों एकत्र मिलकर काम नहीं कर सकेंगे। क्योंकि एक पक्षवालेको यह शंका रहेगी कि, दूसरे पक्षवाले इसे छपा डालेंगे, तो महापाप हो जावेगा। यद्यपि ऐसी शंका करना तो नहीं चाहिये, क्योंकि दूसरेके किये हुए पापका फल आपको नहीं लगता है, तथा प्रत्येक पुरुष स्वाधीन है, उसे कोई किसी कामके लिये रोक नहीं सकता है। परन्तु यदि यह शंका मेटनेका कोई उपाय न हो, तो छापेके विरोधी दलको यह कार्य जुदा करना चाहिये और छापेवालोंको जुदा करना चाहिये। विरोधी दलवाले भले ही यह प्रबंध कर लेवें कि, उनके तयार कराये हुए ग्रन्थ कोई छपा नहीं सकैगा। और यह हो भी सकता है। परन्तु उन्हें यह कार्य करना अवश्य चाहिये। नहीं छपेंगे, तो भी समाजको उनसे लाभ तो पहुंचेगा ही। बहुत प्रचार नहीं होगा, थोड़ा होगा, पर होगा अवश्य।

छापेवालोंने अभीतक जितने ग्रन्थ छपवाये हैं, उनमें बहुत थोडे ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनका पहले भाषानुवाद नहीं था, और नया अनुवाद कराया गया हो। प्रायः पहलेके भाषानुवाद किये हुए ग्रन्थोंको ही छपाया है। यही कारण है कि, छापेकी ओर बहुतसे लोगोंका ध्यान नहीं जाता है। क्योंकि जो ग्रन्थ छपे हैं, वे उन्हें अपने घरोंमें अथवा मंदिरोंमें भी मिल जाते हैं। यदि ऐसे ग्रन्थ छपकर प्रकाशित हुआ करें, जिनका पहले अनुवाद नहीं हुआ है, अथवा जो कहीं मिलते नहीं हैं, तो कट्टरसे कट्टर छापेके विरोधी भी शिथिल हो जावेंगे और उन ग्रन्थोंको मंगाकर पढ़नेकी लालसाको नहीं रोक सकेंगे। हमारे यहांसे गद्यचिंतामणि, जीवंधरचम्पू, सप्तभंगीतरंगिणी आदि ग्रन्थ जो पहले कहीं मिलते नहीं थे, छप जानेपर छापेके अनेक विरोधियोंने मंगाये हैं। सारांश यह है कि, नवीन ग्रन्थोंका अनुवाद कराके प्रकाशित करनेसे छापेका प्रचार भी होगा, और धर्मके

तत्त्वोंकी लोगोंमें जानकारी बढ़ेगी। इसलिये छापेवालोंको यह कार्य अवश्य ही करना चाहिये, और इसके लिये उन्हें कुछ विशेष प्रयत्न करना चाहिये।

तीसरा कार्य छापेके विरोधियोंको यह करना चाहिये कि, एक अच्छा फंड खोलके उसके जरिये ग्रन्थोंको शुद्धतापूर्वक बहुतही सुलभ मूल्यमें विक्रय करना चाहिये जिसमें साधारण निर्धन लोग भी लेकर अपना कल्याण कर सकें। इसके सिवाय इस बातका आन्दोलन करना चाहिये कि, पर्वके दिनोंमें समर्थ लोग दश दश पांच पांच ग्रन्थ लिखवाकर मुफ्तमें बांटे। मेला प्रतिष्ठा करानेवालोंका तो यह मुख्य कर्तव्य होना चाहिये। शास्त्रदानकी इस समय बड़ी भारी जरूरत है।

छापेवालोंका तीसरा कार्य यह है कि, वे एक बड़ी भारी संस्था स्थापित करके उसके द्वारा उत्तमोत्तम ग्रन्थ छपवावें, और उन्हें लागतके दामोंपर अथवा उससे भी कम दामोंपर बेचें और पर्व दिनोंमें तथा मेला प्रतिष्ठाओंमें छपे ग्रन्थोंके बांटे जानेकी प्रथाको बढ़ानेका प्रयत्न करें। इस तीसरे कार्यसे दोनों ही दलोंमें ग्रन्थोंका प्रचार होकर धर्मज्ञानकी वृद्धि होगी, और इसीसे सच्ची सरस्वतीसेवाका फल मिलेगा।

सरस्वती सेवकोंके इन तीन कर्तव्योंके सिवाय अन्य कर्तव्य और कौन २ हैं, उनके विषयमें हम फिर कभी लिखेंगे। आज इतना ही लिखकर इस लेखको समाप्त करते हैं, और फिर एक बार कहते है कि, व्यर्थका वितंडा छोडकर अपने २ कर्तव्योंमें लग जाओ। सरस्वती माताकी सेवा कुछ करनेसे होगी। इस बकवादसे अथवा एक दूसरेको बुरा कहनेसे नहीं होगी। समयको देखकर कार्य करो।

एक अभागिनीकी आत्मकहानी।

मैं अपने माता पिताकी एकलौती लाड़ली लड़की थी। सैकड़ों देई देवताओंकी सेवा पूजा करके मेरी माताने उतरती अवस्थामें मुझे पाया था, इसलिये मैं उसके लिये पुत्रसे भी अधिक प्यारी थी। मेरे पिताको मुझे साथ बिठाकर थालीमें जिमाये विना रोटी नहीं भाती थी। आंगनमें खेलती खेलती यदि मैं जरा भी इधर उधर हो जाती थी, तो उनका जीमें जी नहीं रहता था। जिस दिन मेरा जन्म हुआ, मेरे पिताने उसी दिनसे व्यापार वगैरह करना छोड़ दिया था। उनका सारा दिन मेरे ही लाड़ चावमें और खिलानेमें जाता था। घरमें

निर्वाहके योग्य जायदाद थी और खर्च कुछ विशेष था नहीं, इसलिये धन कमानेकी उन्हें इच्छा भी नहीं थी।

मेरे पिताके एक मित्र थे। उनसे उनकी जैसी मित्रता थी, शायद ही किसी दूसरेकी होगी। वे दोनों दो शरीर एक प्राण थे। एक दिन पिताने मित्रकी बीमारीकी खबर सुनी। मित्रका गांव दो तीन मील दूर था, वे उसी समय दौड़े हुए गये। देखा कि, मित्र मृत्युशय्यापर पड़े हुए अन्तिम श्वासें पूरी कर रहे हैं। इन्हें देखकर मित्रकी आंखोंमेंसे आंसुओंकी धारा वहने लगी। पिताने बड़ी कठिनाईसे अपने हृदयको संभालकर मित्रके आंसू पोंछकर ढाढस दिया। मित्रने अपने तीन वर्षके बालकका हाथ पकड़कर पिताके हाथमें दिया और बहुत जीर्णस्वरसे कहा, "लो, अब यह तुम्हारा पुत्र है। इसे सरजूके समान ही समझना। एक बात मेरी मनकी मनमें रह गई। मैं चाहता था कि, सरजूका और इसका विवाह कर दूं। यदि मेरी यह इच्छा पूरी हो जाती, तो मैं सुखसे मर जाता।" इसके उत्तरमें पिता कुछ कहना चाहते थे, पर कुछ कहा नहीं गया। कंठ रुक गया। उधर थोड़ी ही देरमें मित्रकी जीवनलीला समाप्त हो गयी। मित्रके एक पुत्रके सिवाय और कोई नहीं था। क्रियाकांडके समाप्त होनेपर पिता उसे लेकर अपने घर आ गये। मित्रकी जो थोड़ी बहुत सम्पत्ति थी, वह उनके क्रियाकाण्डमें लगा दी गई।

थोड़े ही दिनोंमें मेरे पिताने अपने मित्रकी इच्छा पूर्ण कर दी। हम दोनोंकी सगाई कर दी और एक वर्षके पीछे बड़े भारी उत्साहके साथ बहुतसा धन खर्च करके विवाह कर दिया। विवाहके समय मेरी उमर चार वर्षकी और मेरे पतिकी ५ वर्षकी थी। विवाह हो गया, तो भी हम दोनोंको पतिपत्नी भावका कुछ ज्ञान नहीं था। दोनों एक साथ खेलते कूदते थे, एक साथ भोजन करते थे और एक ही साथ सोते थे। पतिको देखकर लज्जा करना चाहिये, यह कल्पना भी मेरे मनमें उस समय नहीं उठती थी। मुहल्लेके लोगोंको हमारी इस अज्ञान लीलासे बड़ा ही कौतुक होता था। मेरे मातापिता तो इस आनन्दक्रीड़ाके आगे स्वर्गके सुखको भी तुच्छ समझते थे। इस प्रकारसे हमारे बालकपनके दिन बड़े ही आनन्दसे व्यतीत होते थे। हमारे साथ दूसरा कोई खेलनेवाला नहीं था, इसलिये परस्परके सिवाय हम दोनोंको कोई भी प्रिय नहीं था। हम दोनोंके कोई भाई बहिन भी नहीं थे, इसलिये बाल्यकालमें उदय होनेवाले हमारे स्नेहका कोई

दूसरा हिस्सेदार नहीं था और इस कारण हम दोनोंकी एक दूसरे पर पराकाष्ठा-की प्रीति हो गई थी। अहा ! हा ! बाल्यकालके उन दिनोंका स्मरण होनेसे अन्तः-करणमें आनन्दकी लहरें उठने लगती हैं।

(२)

सुखके दिन सदा नहीं रहते। जिस बातकी कभी कल्पना भी नहीं की थी, वह हो गया। मेरे माता पिता इस दुःखमय संसारका त्याग करके चल बसे! हम दोनोंको चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखने लगा। उस समय हमारी उमर १३-१४ वर्षकी थी। जिन प्राणियोंने केवल खेलकूद और आनन्दमें अपने दिन पूरे किये हों, उनपर एकाएक संसारका असह्य बोझ आ पड़ना कितनी घबड़ाहटका कारण है, यह चतुर पाठकपाठिकाओंको समझानेकी आवश्यकता नहीं है।

दुःख कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसका वेग निरन्तर एकसा नहीं रहता है। धीरे २ हम लोगोंका दुःख भी कम हो गया और आंसू पोंछ करके हमने संसारका भार अपने सिरपर ले लिया। हम लोगोंको जैसी कुछ शिक्षा दीक्षा मिली थी, उसके अनुसार हम अपनी गृहव्यवस्था चलाने लगे। पहले जैसा तो नहीं, परन्तु किसी तरहसे हमारा गृहशकट चलने लगा।

मातापिताकी मृत्युके तीन वर्ष पीछे हमारे परस्परके निस्सीम प्रेमरूपी वृक्षमें एक सुन्दर पुत्र फलका दर्शन हुआ। हमारे मातृ-पितृ-वियोगी हृदयमें फिर आन-न्दका उदय हुआ। हमारा शून्य गृह आनन्दके प्रकाशसे चमक उठा। जहां तहां आनन्द ही आनन्द दिखाई देने लगा। शक्तिसे भी अधिक रुपया खर्च करके हमने अपने पुत्रके जन्मका उत्सव मनाया।

(३)

परन्तु ये आनन्दके दिन भी अधिक नहीं ठहरे। पुत्र होनेके थोड़े ही समय पीछे मेरे स्वामीका स्वास्थ्य बिगड़ा। शरीर दुर्बल होने लगा, भूख घटने लगी, और साथही साथ शक्ति जवाब देने लगी। धीरे २ एक वर्ष बीत गया, डेढ़ बीत गया, पर आराम नहीं हुआ। देशी, यूनानी, डाक्टरी सब प्रकारके इलाज करा छोड़े, पर जरा भी फायदा नहीं हुआ। उनकी सेवा सुश्रूषा और दवाईकी तजवीज करनेमें मैंने कुछ भी नहीं उठा रक्खा, पर सब व्यर्थ हुआ।

जब दवाईसे कुछ लाभ नहीं हुआ, तब यह मूर्ख मन दूसरे विकल्पोंमें पड़ा। गृहशान्ति कराई, क्षेत्रपालकी पूजा कराई, पदमावतीकी मानता की, और गुनियोंको वा मंत्रवादियोंको बुलवाकर उनसे झाड़ा फूंकी करवाई। परन्तु क्या हो सकता था? टूटीपर बूटी नहीं लगती। मेरे प्राण देनेसे भी यदि मेरे प्राणप्यारेका रोग दूर हो जाता, तो वह भी मैं करनेके लिये तयार थी। उनके साम्हने आंखोंमें आंसू आवेंगे, तो दुख होगा, इसलिये मैं एकान्तमें बैठकर रोती थी, और उनका भला चाहनेके लिये सारे संसारके देईदेवताओंसे प्रार्थना करती थी। इसके सिवाय मैं कर ही क्या सकती थी?

एक दिन पड़ोसकी जसोदाने सहज ही बातचीत करते २ कहा, "देवगढ़की दुर्गादेवी बड़ी ही सच्ची हैं। उनकी सेवा भक्ति करनेसे भक्तोंका मनोरथ जरूर ही सफल होता है। देखो न, बलदेवका लड़का कितना बीमार था? देवीके मन्दिरकी जरासी रज लगानेसे भला चंगा हो गया है। राधाकी माको आंखोंसे बिलकुल नहीं सूझता था, पर वहां जानेसे वह सूझती हो गई है। धन्य दुर्गामाता! तुम्हारी लीला अपरंपार है।" जसोदाकी इस बातसे मेरे घोर अंधकारमय हृदयमें आशा दीपका उदय हुआ। पहले भी कई बार मैंने ऐसी बातें सुनी थीं, परन्तु उनका परिणाम मेरे चित्तपर बहुत समय तक नहीं रहा था। अबकी बार वैसा नहीं हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि, दुर्गामाता जरूर ही मेरी चूड़ियोंकी रक्षा करेंगी। घड़ी घड़ी मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि, कोई मुझसे कानोंके समीप आकर दुर्गामाताकी सेवामें जानेको कहता है और प्राणनाथके निरोग होनेका ढाढस दिलाता है। मैं तत्काल ही अपने स्वामीके पास गई और चरणोंमें मस्तक रखकर बोली, "नाथ! मुझे देवगढ़ जानेकी आज्ञा दीजिये। वहां जाकर दुर्गामाताकी भक्तिभावसे पूजा अर्चा करनेसे स्वप्नमें देवीका दर्शन होता है, और वे रोगीकी रोगकी औषधि बतलाती हैं। इस तरहसे सैकड़ों लोगोंका कल्याण हुआ है। मैं जाकर उसे अपना रक्त अर्पण करूंगी और इतना करनेसे भी यदि वह प्रसन्न न हुई, तो उसके चौंतरेपर देहत्याग करके हत्या दूंगी! इतना करनेपर भी उसे अपने पर दया आती है कि, नहीं, सो देखती हूं।" यह कहते २ मैंने आसुंओंकी धारासे अपने सर्वस्वके चरणोंको भिगो दिये। वे मेरी ओर एकटक दृष्टि लगाकर देख रहे थे। बडी देरमें बोले, "प्यारी—"

इस हतभागिनीको नाथ 'प्यारी' कहकर पुकारते थे। उनसे इस मनोहर शब्दके आगे और कुछ नहीं कहा गया। मैंने ऊपर मुंह करके देखा, तो उनके नेत्रोंसे आसुंओंकी धारा बह रही थी। मेरा भी हृदय उमड़ आया। मैंने बड़े कष्टसे पूछा, आप रोते क्यों हैं?"

"प्यारी! अब तू मेरे लिये नाहक कष्ट मत उठा। यदि मैं अच्छा होनेवाला होता, तो कभीका अच्छा हो जाता। अभीतक क्या तूने थोड़े उपाय किये हैं? इन कष्टोंसे तू अपनी और अपने बालक की जान जोखममें डाल बैठेगी? मेरा अन्तकाल अब समीप आ गया है। ऐसे समयमें मैं तुझे अपनी आंखोंकी ओट नहीं होने दूंगा।"

(४)

देवगढ़की माताका मुझे ऐसा विश्वास हो गया था कि, उसके आगे मैंने अपने जीवनसर्वस्वके वचनोंपर जरा भी ध्यान नहीं दिया। उन्हें अकेला छोड़ जानेमें मुझे पराकाष्ठाका कष्ट होना था, परन्तु दो दिनमें देवीका प्रसाद लेकर लौट आऊंगी और प्रसाद पाते ही मेरा सुहाग अमर हो जावेगा, इस सम्यक्श्रद्धानके कारण मैं उस अथाह शोक समुद्रमें कूदनेमें जरा भी नहीं हिचकी। जसोदाबाईके हाथ पैर पड़कर मैंने यह स्वीकार करा लिया कि, "सेवा सुश्रूषा तथा औषधिपानीका काम मैं कर दूंगी" और दूसरे ही दिन सबेरे देवगढ़ जानेके लिये मैंने अपना गांव छोड़ दिया। हमारे गांवसे जी. आई. पी. रेलवेका स्टेशन चार पांच कोस था, वहांसे रेलमें बैठकर देवगढ़ जाना पड़ता था। मेरे साथ और भी बहुतसी मूर्ख स्त्रियां थीं, जो माताकी यात्राको निकली थीं। रात दिनकी चिन्तासे मेरे शरीरमें शक्ति नहीं थी, तो भी आशाने उस दिन बहुत बलवती बना दी। चलनेमें मेरी साथकी स्त्रियां भी मेरे पीछे रह जाती थीं। हम सब रातके ५॥ बजे स्टेशनपर आ पहुंचीं। गाड़ी आनेमें उस समय आधा घंटाकी देरी थी।

गाड़ीकी वाट देखती हुई हम सब स्टेशनपर बैठ गईं। इतनेमें एक हृष्टपुष्ट आदमी आकर हम लोगोंके पास आकर खड़ा हो गया, और मेरे मुंहकी ओर निरख निरख कर देखने लगा। एक बार चला गया, और फिर आके मेरी ओर कुछ मुसकुराता हुआ देखने लगा। अबकी बार वह हमारी साथकी एक स्त्रीसे मेरे विषयमें "ये कौन है, कहांकी है, कहां जायगी" आदि बातें पूछने लगा। यह अपरिचित पुरुष मेरे विषयमें इतनी छानबीन क्यों करता है? मेरी

छाती धड़कने लगी । गाडी आनेमें दशमिनटकी देरी थी, कि टिकटें बंटने लगीं। मेरे साथकी सब स्त्रियोंने टिकट ले लिये । परन्तु ज्यों ही मैं टिकट लेने लगी कि खिड़कीका द्वार एकदम बन्द हो गया। देखते देखते गाड़ी भी स्टेशनपर आकर खड़ी हो गई । मैं नहीं समझ सकी कि, मुझे टिकट क्यों नहीं दिया गया । साथकी, स्त्रियां जल्दी जल्दीमें एक डब्बामें जाके बैठ गई । मैं भी उनके साथ जाकर बैठने लगी, परन्तु एक सिपाहीने आकर कहा, " तुम्हारे पास टिकट नहीं है, गाड़ीमें मत बैठो ।" और मुझे गाड़ीमें नहीं बैठने दिया । थोडी ही देरमें गाड़ी फक फक करती हुई चल दी । मेरी कमर टूट गई । मुझसे आगे नहीं चला गया। मैं वहीं बैठ गई और बालकको गोदीमें रखकर जोरजोरसे रोने लगी । मेरे साथकी स्त्रियोंको बहुत दुःख हुआ, परन्तु वे वेचारीं क्या कर सकती थीं ? मुझे प्राणनाथके शब्द स्मरण हो आये कि, " तू अपनी और अपने बालककी जान जोखममें डाल बैठेगी ।" मेरे कानोंके पास इन शब्दोंकी प्रतिध्वनि बार २ होने लगी। मुझे चारों ओर अंधकार दिखने लगा।

(५)

जो आदमी मेरे मुंहकी ओर बार २ झांकता था और मेरे साथकी औरतोंसे पूंछतांछ करता था, वह और कोई नहीं उस स्टेशनका माष्टर था । अब स्टेशनपर वह और उसके आज्ञानुवर्ती तीन नौकरोंके सिवाय और कोई नहीं रहा । चारो ओर सुनसान था । पासकी झाड़ीमेंसे एक उल्लूके अमंगलके सूचक शब्दके सिवाय और कुछ भी नहीं सुन पड़ता था । बीचबीचमें तारकी खटखटाहट भी शान्ति भंग कर देती थीं ।

मैं प्लेटफार्मपर बैठी हुई मनहीमन प्रश्न करने लगी,–स्टे० माष्टर मेरी ओर बार २ क्यों देखता था ? मुझे टिकट क्यों नहीं दिया गया ? मेरी साथवाली मुझसे अलग क्यों कर दी गई ? तत्काल ही इन प्रश्नोंका उत्तर मेरे सम्मुख भयंकर रूप धारण करके खड़ा हो गया । मैं थरथर कांपने लगी । मैं शून्य हो गई। मेरे शरीरमें काटो तो लोहू नहीं । थोडी देरमें स्टेशनमास्टरने कहा, "बाई! तुम डरो मत । इस वेटिंगरूममें जाकर चैनसे सो जाओ। कल सबेरे जब देवगढ़की गाड़ी आवे, तब चली जाना ।"

यह सुनकर मेरा चित्त कुछ स्वस्थ हुआ । भगवानका स्मरण करके मैं वहांसे उठी और वेटिंगरूममें जाकर बैठ गई । वहां पहुंचते ही मेरे हृदयमें नानाप्रकार

की दुर्भावनायें उठने लगीं। उनका शमन करनेके लिये मैं दुर्गादेवीका अतिशय भक्तिभावसे स्मरण करने लगी। कोई आधा घंटाके पीछे वेटिंगरूमका दरवाजा जोरसे खुल पड़ा और स्टेशनमाष्टर तथा उसके तीनों साथी हाथोंमें कटारी लिये हुए आते दिखलाई दिये। उनकी सूरत देखते ही मेरी आंखें तिरमिरा गईं। मैंने समझ लिया, अब कुशल नहीं है। स्टेशनमास्टर मुझसे दपटकर बोला, "तू अपने और अपने लड़केके शरीरपरसे सब जेवर उतारकर बिना कुछ चीं चपट किये हुए दे दे, नहीं तो इस कटारीकी तरफ देख! यह अभी तुम दोनोंके पेटमें तैर जायगी!" यह सुनते ही मैं कर्तव्यमूढ़ होकर सोचने लगी, क्या करूं? उस समय अपने जीवनाधार बेटेको छातीसे चिपटाकर रोनेके सिवाय मुझे और कुछ भी नहीं सूझ पड़ा। यह देख शेष तीनों यमदूत भी कटारी लेकर मुझे डरवाने लगे। दूसरा उपाय न देखकर मैं अपना और अपने बेटेका सारा जेवर एक एक उतार कर फेंकने लगी। मैंने समझा, जेवर देनेसे छुट्टी हो जावेगी, मेरे ऊपर और कोई संकट नहीं आवेगा। परन्तु वह मेरा भ्रम था। जेवर लेकर उस नरपिशाच माष्टरने अपनी पापवासना प्रगट की। उसके पापपूर्ण वाक्य सुनकर मैं सोचने लगी, इन शब्दोंके सुननेकी अपेक्षा तो इन चांडालोंकी कटारियोंसे अपना प्राण खो देना ही अच्छा था। उस समय अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यारे शीलरत्नकी रक्षा करनेके विचारसे मैं व्याकुल हो गई। द्रौपदी, सीता, मनोरमा, मैनासुन्दरी आदि पतिव्रता स्त्रियोंके शीलकी रक्षा करनेवाले भगवानका स्तवन करने लगी। डर लज्जा और जीवनकी आशा छोड़कर बालकको छातीसे लगाये हुए मैं खड़ी हो गई और जोर जोरसे चिल्लाने लगी। यह देखकर उन दुरात्माओंके हृदयमें भी कुछ डरका संचार हुआ। क्योंकि पापियोंका चित्त सदा भयग्रस्त रहता है। वह नरपशु नाना प्रकारके लोभ दिखलाकर मुझे मनाने लगा। मेरे पैरोंमें लोट गया और कामीजनसुलभ विकार चेष्टायें करने लगा। मैं असहाय अकेली अबला, यमराजके समान चार दुष्टोंके हाथमें पड़ी थी। इसलिये इस समय कुछ युक्ति लगाये विना शीलव्रतकी रक्षा नहीं हो सकेगी, यह मैं अच्छी तरहसे समझ चुकी थी। बड़ा भारी साहस करके मैं "बोली, मुझे एक बार बाहर जा आने दो पीछे तुम्हारी बातका जवाब दूंगी."

यह सुनकर वह नराधम माष्टर बोला, "प्यारी! इस समय मैं तुम्हें बाहर नहीं जाने दूंगा। तुम बाहर होते ही भाग जाओगी, और पुलिसमें खबर कर

दोगी, तो मैं क्या करूंगा? जान! अब बहाना मत बनाओ, मेरा कलेजा ठंडा करनेमें अब देर मत करो।"

मैं-- पोलिसकी चौकी यहांसे ३ मील दूर है। इस अंधेरी रातमें मैं अकेली कैसे भाग जाऊंगी?

स्टे० मा०--अच्छा तो जाओ, परन्तु तुम्हारे साथ एक सिपाही जावेगा।

मैं—मैं स्त्री जाति हूं! मर्दके साथ बाहर जानेमें मुझे संकोच होता है। मेरा यदि तुम्हें इतना भी विश्वास नहीं है, तो मैं अपने बच्चेको यहां तुम्हारे ही पास छोड़े जाती हूं। फिर तो कोई डर नहीं है?

उस राक्षसने मेरी यह बात मान ली। तत्काल ही मैंने अपना हृदय पत्थरका कर लिया। पुत्रस्नेहको ताखमें रख दिया और दयाहीना होकर अपने प्राणतुल्य पुत्रको मैंने उन पापियोंके हाथमें दे दिया। उस समय मुझे जितना कष्ट हुआ, उतना कष्ट यदि अपना कलेजा बाहर निकाल कर रख देती, तो भी न होता। तदनन्तर मैं एक लम्बी सांस लेकर घरेसे बाहर आई और चटसे वेटिंगरूमका दरवाजा बन्द करके मैंने बाहरसे सकल लगा दी।

बड़ी फुर्तीसे यह काम करके मैंने चारों तरफ देखा, परन्तु कहीं कोई भी नहीं था। मेरा असली उद्देश समझ करके वे पापात्मा बहुत घबड़ाये और चिल्लाने लगे। उन्होंने पहले डांट दपटसे काम निकालना चाहा। परन्तु जब कुछ फल नहीं देखा, तब हाथ पैर जोड़ने लगे। "तुम्हारा सब जेवर वापिस कर देंगे। और तुम्हें तुम्हारे बालक सहित आनन्दके साथ देवगढ़ पहुंचा देंगे. दरवाजा खोल दो।" उनकी इस विनती तथा लोभके लटकेपर मैंने जरा भी ख्याल नहीं किया। परन्तु जब वे भय दिखाने लगे कि, "यदि दरवाजा नहीं खोलेगी, तो तेरे लड़केका काम तमाम कर दिया जावेगा।" तब मेरा हृदय पुत्रप्रेमसे डांवाडोल होने लगा। परन्तु अन्तमें पुत्रप्रेमकी अपेक्षा पातिव्रतप्रेम ही बलवान निकला। अन्तःकरणमें उसीकी जय हुई। मैं पत्थरसे भी अधिक कठोर बनकर चुप हो रही।

(६)

इसके पीछे जो कुछ हुआ, उसका वर्णन करनेके लिये मैं असमर्थ हूं। उस सुकोमल बालकके अन्तकालके हृदयभेदक आक्रोशसे चारों दिशायें कांपने लगीं।

परन्तु उसकी यह पाषाणहृदया माता अपने निश्चयसे न डिगी! आखिर वे पिशाच मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे बालकके एक २ अवयवके टुकड़े कर करके खिड़कीमेंसे बाहर डालने लगे। पहले मस्तक, फिर हाथोंके टुकड़े और फिर पांवोंके टुकड़े बाहर आकर पड़ने लगे। उन टुकड़ोंमेंसे रक्तका प्रवाह बराबर चल रहा था। यह दृश्य देखकर मेरे अन्तःकरणकी जो स्थिति हो गई, उसकी कल्पना भी किसीसे नहीं की जा सकती है। पुत्रशोकमें मैं पागल हो गई और आखिर थोड़ी देरमें मैं मूर्च्छित हो कर गिर पड़ी।

(७)

जब मैं होशमें आई, तब मुझे मालूम हुआ कि, मैं एक कोठरीमें बिछौने पर सोई हूं। उस कोठरीमें कई एक सिपाही तथा कई एक दूसरे भले आदमी बैठे हुए मेरी ओर देख रहे हैं। सचेत होते ही मैं अपनी विपत्तिका स्मरण करके रोने लगी। उस समय मुझे वे लोग समझाने लगे और ढाढस देने लगे। अब शोक करना व्यर्थ है। यह समझकर मैंने भी अपने हृदयकी सान्त्वना कर ली और देवगढ़ जानेकी इच्छा प्रगट की। इतनेमें एक प्रतिष्ठित पुरुष मेरे पास आ कर बोला "बाई! तुम्हें अब यहांपर डरनेका कोई कारण नहीं है। मैं तुम्हारे साथ एक आदमी देता हूं। और जहां तुम्हारी जानेकी इच्छा हो, वहां पहुंचाये देता हूं। परन्तु जिन नीचोंने तुम्हारे बालककी हत्या करके तुम्हें सताया है, मुझे उनकी तहकीकात करना है, और उसमें तुम्हारी थोड़ी सी जरूरत है। इस लिये कुछ देर यहां रहना होगा। तहकीकात हो चुकनेपर तुम्हें कोई नहीं रोकेगा। इसके सिवाय देवगढ़की गाड़ी जानेके लिये अभी बहुत समय बाकी है।

मुझे मालूम हुआ कि, उक्त प्रतिष्ठित पुरुष एक तहसीलदार हैं। और मेरे मामलेकी तहकीकात करनेके लिये स्वयं आये हैं। अब यह मुकद्दमा चलेगा और उन नरपिशाचोंको दंड मिलेगा। परन्तु इससे मुझे क्या? मेरा सर्वस्व पुत्ररत्न मुझे छोड़करके चला गया, सो क्या मुझे मिल जावेगा?

तहसीलदार सा० ने धीरे २ मुझसे सारी घटनाका हाल पूछ लिया और एक कागजपर लिख लिया। तदनन्तर एक साहबकी गवाही हुई। उसने जो कुछ कहा, उसका सारांश यह है:--

"मैं गुड्सट्रेन नं० २१ का गार्ड हूं। इस स्टेशनपर गाड़ी खड़ी करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं थी। परन्तु स्टेशनके समीप आते ही नियमानुसार जब

सिग्नल नहीं मिला, तब मुझे लाचार होकर गाडी खडी करनी पड़ी। बहुत सी सीटियां दीं, परन्तु जब कुछ उत्तर नहीं मिला, तब मैंने एक आदमीको साथ ले स्टेशनपर उतरकर देखा, तो यहां कोई भी मनुष्य नहीं था। मैंने विस्मित होकर यहां वहां तलाश किया, तो यह मूर्छिता स्त्री दिखलाई दी, और एक छोटे बच्चेके टुकडे २ पडे हुए पाए। इसके पश्चात पासहीकी वेटिंग रूममें स्टेशनमास्टर और तीन सिपाही बन्द मिले। यह दृश्य देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ। इस घटनाका कारण भी मुझे तत्काल ही समझमें आ गया। मैंने गाड़ीपरसे फायरमेन वगैरहको बुलाकर अपराधियोंको पकड़ लिये और आपको बुलानेके लिये तार दिया। इस स्त्रीने जो २ बातें इस मामलेमें कहीं हैं, अपराधियोंने मेरे निकट वे सब स्वीकार की हैं।"

इसके अनन्तर फायरमन आदि तीन चार आदमियोंकी गवाही हुई। जिसमें प्रायः गार्डसाहबकी जबानीका ही समर्थन किया गया।

(८)

तदनन्तर दयालु तहसीलदार सा०ने टिकिट दिलाकर मुझे देवगढ़ रवाना कर दिया। पुत्रशोकसे छिन्नभिन्न हुए हृदयको आंसुओंकी धारासे सिक्त करती हुई यह अभागिनी अपने पतिकी मंगलाकांक्षासे दुर्गामाताके चरणोंके पास धरना देकर बैठी। मैंने रोते रोते देवीसे कहा, "माते भवानी! तू स्त्री होकर इतनी कठोर क्यों हो गई? स्त्रीका हृदय तो बड़ा ही कोमल होता है। मैं तेरे दर्शनोंके लिये दौड़ी हुई आई और तूने मेरे बालकका वध कर डाला। हाय! क्या तेरे हृदय नहीं है?"

अन्नपानीका त्याग करके मैंने तीन दिनरात देवीकी आराधना की। भक्तिसे नहीं तो मेरी हत्याके पापके डरसे ही देवी मेरी चूड़ियोंकी रक्षा कर देगी, इस आशासे मैं मंदिरमें धरना देकर बैठी थी। परन्तु हाय! उस पत्थरको मेरी जरा भी दया नहीं आई। न उसने मुझे स्वप्नमें कुछ उपाय बतलाया और न कुछ समक्षमें ही कहा। चौथे दिन सबेरे ही मेरे गांवकी एक स्त्री देवगढ़ आई और उसने मेरे भाग्यके फूटनेका दुष्ट समाचार आकर सुनाया। अकेला छोड़कर चली आनेसे और अपने अन्तसमयमें कोई भी पास नहीं रहा, यह देखकर उन्हें एक तो वैसे-ही अपरिमित दुःख हुआ था, और फिर यहांसे बालककी हत्या तथा मेरी दुर्दशा होनेकी खबर पहुंची! बस इस असह्य वेदनासे उनके प्राणपखेरू तत्काल ही उड़ गये।

पड़ोसिनके मुंहसे यह खबर सुनते ही मैं मूर्छित हो गई! कुछ समयमें सचेत होनेपर देवीके दोनों कुलोंका उद्धार करनेके सिवाय मुझसे और कुछ न बन पड़ा।

* * * *

मैं अपने अभाग्यका खप्पर उस मूर्तिके सिरपर क्यों फोड़ूं? वह तो पत्थरकी ही ठहरी! मैं सचेतन होकर भी जब पत्थरसे बढ़कर हो गई, तब उसे क्यों दोष दूं? यह तो सब मेरी ही करतूतोंका फल है। मैंने अपने आप अपने पैरमें कुल्हाड़ी मारी है। न मैं मिथ्यात्वके चक्कर में पड़ती, न यह दुर्दशा होती। क्या देवता किसीकी सेवा पूजासे प्रसन्न होकर उसके प्राण बचा सकते हैं? मैं नहीं कह सकती कि, मुझे उस समय क्या हो गया था, जो मृत्युशय्यापर पड़े हुए अपने पतिको छोड़कर घरसे निकल पड़ी। मेरे समीप होनेसे उनके प्राण न बचते तो न सही, पर शान्तितासे तो देहत्याग करते। हाय! उनके परिणाम उस समय कैसे हुए होंगे। यदि वह दुर्बुद्धि उस समय न उपजती, तो मैं मूर्ख स्त्रियोंके साथ घरसे कैसे निकल पड़ती और अपने प्राणाधारका वध अपने साम्हने क्यों कराती।

हे मेरे स्वर्गवासी माता पिताओ! तुमने बड़े भारी प्रेमसे मेरा लालन पालन किया और हजारों रुपये खर्च करके बड़े ठाट बाटसे मेरा विवाह किया, परन्तु हाय! मुझे योग्य शिक्षा देनेकी ओर तुमने कुछ भी ध्यान न दिया। बालकपनमें यदि तुमने मेरी अज्ञानता दूर की होती, धर्मका स्वरूप समझाया होता, स्त्रियोंके कर्तव्य सिखलाये होते, तो आज मेरा यह सर्वनाश न होता। और मेरे लिये जीवन भर रोनेका यह समय नहीं आता। यदि तुम बालकपनमें हम दोनोंको विवाहसे शोभित न करके विद्यासे शोभित करते, तो मेरे प्राणसर्वस्वको अकालमें ही रोगग्रस्त होकर कालके गालमें न जाना पड़ता और मुझे सदाके लिये यह बालवैधव्यका क्लेश न सहना पड़ता। इस समय मैं अनाथ हूं निराधार हूं मेरा कोई सहायक नहीं है। यदि सीने पिरोने कसीदा काढ़नेकी भी मुझे शिक्षा मिली होती, तो मैं अपना पेट भर लेती। परन्तु मैं अभागिनी उससे भी शून्य हूं। इस समय तुम्हारी अतिशय प्यारी और लाड़ली लड़कीको मजदूरी करनेके सिवाय जीवननिर्वाहका अब कोई उपाय नहीं सूझता है। क्या तुम्हें दया नहीं आती है?*

---

* मराठी मनोरंजनकी एक कहानीका आशय।

विद्वद्रत्नमाला ।

(४)

पण्डितप्रवर आशाधर ।

पंडितप्रवर आशाधरकी मृत्यु कब हुई इसके जाननेका कोई उपाय नहीं हैं । उनके बनाये हुए जो २ ग्रन्थ प्राप्य हैं, उनमेंसे अनगारधर्मामृतकी भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका कार्तिक सुदी ५ सोमवार सं० १३०० को पूर्ण हुई है । इसके पीछेका उनका कोई भी ग्रन्थ नहीं मिलता है । इस ग्रन्थके बनानेके समय हमारे ख्यालसे पंडितराजकी आयु ६५–७० वर्षके लगभग होगी । क्योंकि उनका जन्म वि० सं० १२३०–३५ के लगभग सिद्ध किया जा चुका है । इस ग्रंथकी प्रशस्तिसे यह भी मालूम होता है कि, वे उस समय नालछेमें ही थे । और शायद सं० १२६५ के पश्चात् उन्होंने कभी नालछा छोड़ा भी नहीं । क्योंकि उनके १२६५ और १३०० के मध्यके जो दो ग्रंथ मिलते हैं, वे भी नालछेके बने हुए हैं । एक वि० सं० १२८५ का और दूसरा १२९६ का । नालछेमें कविवर जैनधर्मका उद्योत करनेके लिये आये थे, फिर क्या प्रतिज्ञा पूरी किये बिना ही चले जाते ? अंत समय तक वे नालछेमें ही रहे और वहीं उन्होंने अपने अपूर्व ग्रंथोंकी रचना करके जैनधर्मका मस्तक ऊंचा किया ।

वर्तमानमें पं० आशाधरके मुख्य तीन ग्रंथ मिलते हैं । एक जिनयज्ञकल्प, दूसरा सागरधर्मामृत और तीसरा अनगारधर्मामृत । इन तीनों ही ग्रंथोंमें वे अपनी विस्तृत प्रशस्ति लिखके रख गये हैं । वि० संवत १३०० तक उन्होंने जितने ग्रंथोंकी रचना की है, उन सबके नाम उक्त तीनों प्रशस्तियोंमें लिखे हुए हैं । हम उन्हें यहां क्रमसे प्रकाशित करते हैं:—

> स्याद्वादविद्याविशदप्रसादः प्रमेयरत्नाकरनामधेयः
> तर्कप्रबन्धो निरवद्यपद्यपीयूषपूरो वहतिस्म यस्मात् ॥ १० ॥
>
> सिद्ध्यङ्कं भरतेश्वराभ्युदयसत्काव्यं निबन्धोज्ज्वलम्
> यस्त्रैविद्यकवीन्द्रमोदनसहं स्वश्रेयसेऽरीरचत् ।
>
> योऽर्हद्वाक्यरसं निबन्धरुचिरं शास्त्रं च धर्मामृतम्
> निर्माय व्यदधान्मुमुक्षुविदुषामानन्दसान्द्रं हृदि ॥ ११ ॥
>
> आयुर्वेदविदामिष्टां व्यक्तुं वाग्भटसंहिताम् ।
> अष्टाङ्गहृदयोद्योतं निबन्धमसृजच्च यः ॥ १२॥

यो मूलाराधनेष्टोपदेशादिषु निबन्धनम् ।
विधत्तामरकोशे च क्रियाकलापमुज्जगौ [1] ॥१३॥
(जिनयज्ञकल्प.)

भावार्थ—स्याद्वाद विद्याका निर्मल प्रसादस्वरूप **प्रमेयरत्नाकर** नामका न्याय ग्रन्थ जो सुन्दर पद्यरूपी अमृतसे भरा हुआ है, आशाधरके हृदय सरोवरसे प्रवाहित हुआ। **भरतेश्वराभ्युदय** नामका उत्तम काव्य अपने कल्याणके लिये बनाया, जिसके प्रत्येक सर्गके अंतमें 'सिद्ध' शब्द रक्खा गया है, जो तीनों विद्याओंके जानने वाले कवीन्द्रोंको आनन्दका देनेवाला है, और स्वोपज्ञटीकासे प्रकाशित है। **धर्मामृतशास्त्र** जो कि जिनेन्द्र भगवान-की वाणीरूपीरससे युक्त है, और टीकासे सुन्दर है, बनाकर मोक्षकी इच्छा करनेवाले विद्वानोंके हृदयमें अतिशय आनन्द उत्पन्न किया। आयुर्वेदके विद्वा-नोंकी प्यारी **वाग्भट्टसंहिता**की **अष्टांगहृदयोद्योतिनी** [2] नामकी टीका बनाई। मूल **आराधना** और मूल **इष्टोपदेश** [3] (पूज्यपादकृत) आदिकी टीकायें बनाईं और **अमरकोषपर क्रियाकलाप** नामकी टीका बनाई। इसमें जो आदि शब्द दिया है, उससे **आराधनासार, भूपालचतुर्विंशतिका** आदिकी टीकायें समझनी चाहिये। अर्थात् इन ग्रन्थोंकी टीकायें भी पंडित-वर्यने बनाईं।

ये सब ग्रन्थ विक्रमसंवत्, १२८५ के पहलेके बने हुए हैं। जिनयज्ञ-कल्पकी प्रशस्तिमें इतने ही ग्रन्थोंका उल्लेख है। इनके पश्चात् सं० १२९६ तक अर्थात् सागारधर्मामृतकी टीका बनानेके समयतक निम्नलिखित ग्रन्थोंकी रचना और भी हुई:—

रौद्रटस्य व्यधात्काव्यालंकारस्य निबन्धनम्
सहस्रनामस्तवनं सनिबन्धं च योऽर्हताम् ॥ १४
सनिबन्धं यश्च जिनयज्ञकल्पमरीरचत् ।
त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्रं यो निबन्धालंकृतं व्यधात् ॥ १५

१—ये १३ श्लोक तीनों प्रशस्तियोंमें एकसे हैं। अनगारधर्मामृतकी टीकामें बारहवां श्लोक १९ वें नम्बरपर है, और तेरहवां चौदहवें नम्बरपर है। उनके स्थानपर जो दूसरे श्लोक हैं, वे आगे लिखे गये हैं।

२ इससे जान पडता है कि, आशाधर वैद्यविद्याके भी बडे भारी पंडित थे।

३ पूज्यपादका मूल इष्टोपदेश बम्बईके मन्दिरमें है।

योऽर्हन्महाभिषेकार्चाविधिं मोहतमोरविम्
चक्रे नित्यमहोद्योतं स्नानशास्त्रं जिनेशिनाम् ॥ १६
(सागारधर्मामृत टीका)

भावार्थ—रुद्रट कविके **काव्यालंकार** ग्रन्थकी टीका बनाई, अरहंत देवका **सहस्रनाम** टीकासहित बनाया, **जिनयज्ञकल्प सटीक** बनाया **त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र** (संक्षिप्त) टीकायुक्त बनाया, और **नित्यमहोद्योत** नामक अभिषेकका ग्रन्थ बनाया, जो भगवानकी अभिषेकपूजाविधि सम्बन्धी अंधकारको नाश करनेके लिये सूर्यके समान है।

वि० संवत् १२९६ के पीछे बने हुए ग्रन्थोंके नाम अनगारधर्मामृतकी टीकामें इस प्रकार मिलते हैं:—

राजीमतीविप्रलम्भं नाम नेमीश्वरानुगम्।
व्यधात्त खण्डकाव्यं यः स्वयंकृतनिबन्धनम् ॥ १२ ॥
आदेशात्पितुरध्यात्मरहस्यं नाम यो व्यधात्।
शास्त्रं प्रसन्नगम्भीरं प्रियमारब्धयोगिनाम् ॥ १३ ॥
रत्नत्रयविधानस्य पूजामाहात्म्यवर्णकम्।
रत्नत्रयविधानाख्यं शास्त्रं वितनुतेस्म यः ॥ १४ ॥
(अनगारधर्मामृत टीका)

भावार्थ—राजामती विप्रलंभ नामका खंडकाव्य स्वोपज्ञ टीका सहित बनाया। पिताकी आज्ञासे **अध्यात्मरहस्य** नामका ग्रन्थ बनाया, जो शीघ्र ही समझनेमें आने योग्य, गंभीर और प्रारम्भके योगियोंका प्यारा है। और रत्नत्रय विधानकी पूजा तथा महात्म्यका वर्णन करनेवाला **रत्नत्रयविधान** नामका ग्रन्थ बनाया।

संवत् १३०० के पश्चात् यदि पंडितवर्य दश ही वर्ष जीवित रहे होंगे, तो अवश्य ही उनके बनाये हुए और भी बहुतसे ग्रन्थ होंगे। ग्रन्थरचना करना ही उन्होंने अपने जीवनका मुख्य कर्तव्य समझा था।

आशाधरके बनाये हुए ग्रंथ बहुत ही अपूर्व हैं। उन सरीखे ग्रन्थकर्ता उनके पीछे शायद ही कोई हुए होंगे। उनका बनाया हुआ सागारधर्मामृत ग्रन्थ ही एक ऐसा है, जो अपनी तुलना नहीं रखता। श्रावकाचारका ऐसा विस्तृत और स्पष्ट ग्रन्थ जैन साहित्यमें दूसरा नहीं है। जिसने एकवार भी इस ग्रन्थका स्वाध्याय

१ आशाधरकृत मूल सहस्रनाम प्रायः सब जगह मिलता है। बुन्देलखंडमें प्रायः इसी सहस्रनामका प्रचार है।

किया है, वह इसपर मुग्ध हो गया है[1]। अनगारधर्मामृत और जिनयज्ञकल्प ग्रन्थ भी ऐसे ही अपूर्व हैं। हम एक पृथक् लेखमें आशाधरके ग्रन्थोंकी आलोचना करनेका प्रयत्न कर रहे हैं।

अध्यात्मरहस्य कविवरने अपने पिताकी आज्ञासे बनाया। इससे मालूम पड़ता है कि, उनके पिता सं० १२९६ के पीछे भी कुछ कालतक तक जीवित थे। क्योंकि इस ग्रन्थका पहले दो ग्रन्थोंकी प्रशस्तिमें उल्लेख नहीं है, अनगार धर्मामृतकी टीकामें ही उल्लेख है। और उसमें जो अधिक ग्रन्थ बतलाये गये हैं, वे १२९६के पीछेके हैं।

महाराज अर्जुनदेवके वि० संवत् १२७२ के दानपत्रके अन्तमें लिखा हुआ है:—"रचितमिदं महासान्धि० राजा सलखणसंमतेन राजगुरुणा मदनेन" इससे ऐसा मालूम होता है कि, पं० आशाधरके पिता सलखण (सल्लक्षण) महाराजा अर्जुनदेवके सन्धिविग्रह सम्बन्धी मंत्री थे। यद्यपि आशाधरके पिता महाजन थे और दानपत्रमें संमति देनेवाले सलखणके साथ 'राजा' पद लगा हुआ है, इससे अन्य किसी सलखण नामके राजाकी भी संभावना भी हो सकती है, परन्तु आशाधरके पिताका संधिविग्रहके मंत्रियोंका राजा होना कुछ आश्चर्यकी बात भी नहीं है। क्योंकि उस समय प्रायः महाजन लोग ही राज्यमंत्री होते थे।

अब हम यहांपर तीनों ग्रंथोंकी प्रशस्तियोंके बाकी श्लोक जो ऊपर कहीं नहीं लिखे गये हैं, भावार्थसहित उद्धृत करते हैं:—

> प्राच्यानि संवर्ज्य जिनप्रतिष्ठाशास्त्राणि दृष्ट्वा व्यवहारमैन्द्रम्।
> आम्नायविच्छेदतमश्छिदेऽयं ग्रन्थःकृतस्तेन युगानुरूपम् ॥१४॥
> खण्डिल्यान्वयभूषणाल्हणसुतः सागारधर्मे रतो
> वास्तव्यो नलकच्छचारुनगरे कर्ता परोपक्रियाम्।
> सर्वज्ञार्चनपात्रदानसमयोद्योतप्रतिष्ठाग्रणीः
> पापासाधुरकारयत्पुनरिमं कृत्वोपरोधं मुहुः ॥ १५ ॥
> विक्रमवर्षसपञ्चाशीतिद्वादशशतेष्वतीतेषु।
> आश्विनसितान्त्यदिवसे साहसमल्लापराख्यस्य—॥१६॥
> श्रीदेवपालनृपतेः प्रमारकुलशेखरस्य सौराज्ये।
> नलकच्छपुरे सिद्धो ग्रन्थोऽयं नेमिनाथचैत्यगृहे ॥ १७ ॥

१—इस ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद हो रहा है। आगामी वर्षमें छप जावेगा।

अनेकार्हत्प्रतिष्ठान्तप्रतिष्ठैः केल्हणादिभिः ।
सद्यः सूक्तानुरागेण पठित्वाऽयं प्रचारितः ॥ १८ ॥

अलमतिप्रसङ्गेन—

यावत्त्रिलोक्यां जिनमन्दिरार्चाः तिष्ठन्ति शक्रादिभिरर्च्यमानाः ।
तावज्जिनादिप्रतिमाप्रतिष्ठां शिवार्थिनोऽनेन विधापयन्तु ॥ १९
नन्याखाण्डिल्यवंशोत्थः केल्हणो न्यासवित्तरः ।
लिखितं येन पाठार्थमस्य प्रथमपुस्तकम् ॥ २० ॥
इत्याशाधर विरचितो जिनयज्ञकल्पः ।

भावार्थ—प्राचीन प्रतिष्ठापाठोंको वर्जित करके और इंद्रसम्बन्धी व्यवहारको देखकर यह वर्तमान युगके अनुकूल ग्रंथ बनाया, जो कि आम्नायविच्छेदरूपी अंधकारको नाश करनेवाला है। खंडेलवाल वंशके भूषणरूप अल्हणके पुत्र, श्रावकधर्ममें लवलीन रहनेवाले, नलकच्छपुर निवासी, परोपकारी, देवपूजा, पात्रदान, तथा जिनशासनका उद्योत करनेवाले और प्रतिष्ठाग्रणी **पापासाधुने** वारंवार अनुरोध करके यह ग्रंथ बनवाया। आसोज सुदी १५ वि० सं० १२८५ के दिन परमारकुलके मुकुट **देवपाल** उर्फ **साहसमल्ल** राजाके राज्यमें नलकच्छपुर नगरके नेमिनाथ चैत्यालयमें यह ग्रंथ समाप्त हुआ। अनेक जिनप्रतिष्ठाओंमें प्रतिष्ठा पाये हुए **केल्हण** आदि विद्वानोंने नवीन सूक्तियोंके अनुरागसे इस ग्रन्थका प्रचार किया। जब तक तीन लोकमें जिनमंदिरोंकी पूजा इंद्रादिकोंके द्वारा होती है, तब तक कल्याणकी इच्छा करनेवाले इस ग्रंथसे जिन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा करावें। खंडेलवाल वंशमें उत्पन्न हुए और न्यास ग्रंथको अच्छी तरहसे जाननेवाले **केल्हणने** पाठ करनेके लिये जिनयज्ञकल्पकी पहली पुस्तक लिखी।

सोऽहं आशाधरो रम्यामेतां टीकां व्यरीरचम् ।
धर्मामृतोक्तसगारधर्माष्टाध्यायगोचराम् ॥ १७ ॥
प्रमारवंशवार्द्धी+देवसेननृपात्मजे ।
श्रीमज्जैतुगिदेवेसि स्थाम्नावन्तीमवत्यलम् ॥ १८
नलकच्छपुरे श्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत् ।
टीकेऽयं भव्यकुमुदचन्द्रिकेत्युदिता बुधैः ॥ १९
षण्णवद्व्येकसंख्यानाविक्रमाङ्कसमात्यये ।
सप्तम्यामसिते पौषि सिद्धेयं नंदताच्चिरम् ॥१०
श्रीमान्श्रेष्ठिसमुद्धरस्य तनयः श्रीपौरपाटान्वय—
व्योमेन्दुः सुकृतेन नन्दतु महीचन्दोदयाभ्यर्थनात् ।

चक्रे श्रावकधर्मदीपकमिमं ग्रन्थं बुधाशाधरो—
ग्रंथस्यास्य च लेखितो मलभिदे येनादिमं पुस्तकम् ॥२१

अलमितिप्रसंगेन—

यावत्तिष्ठति शासनं जिनपतेश्छेदानमन्तस्तमो—
यावच्चार्कनिशाकरौ प्रकुरुतः पुंसां दृशामुत्सवम् ।
तावत्तिष्ठतु धर्मसूरिभिरियं व्याख्यायमानानिशं—
भव्यानां पुरतोत्र देशविरताचारप्रबोधोद्धुरा ॥२२

इत्याशाधरविचरिता स्वोपज्ञधर्मामृतसागरटीका भव्यकुमुदचन्द्रिकानाम्नी समाप्ता ।

भावार्थ—मैंने (आशाधरने) सागारधर्मामृतकी यह सुन्दर टीका बनाई जिसके आठ अध्याय हैं । जब परमारवंशशिरोमणि देवसेन राजाके पुत्र श्रीमान् जैतुगिदेव अपने खड्गके बलसे मालवाका शासन करते थे, तब नलकच्छपुरके नेमिनाथ चैत्यालयमें यह भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका पौषवदी ७ सं० १२९६ को पूर्ण हुई । यह श्रावकधर्मदीपक ग्रन्थ पंडित आशाधरने बनाया। और पोरवाड़वंशरूपी आकाशके चन्द्रमा श्रीमान् समुद्धरश्रेष्ठीके पुत्रने महीचन्द्रकी प्रार्थनासे इसकी पहिली पुस्तक लिखी । उस श्रेष्ठीपुत्रके पुण्यकी बढ़वारी हो । अन्तरंगके अंधकारको नष्ट करनेवाला जिनेन्द्रदेवका शासन जब तक रहै, और जबतक चन्द्रसूर्य लोगोंके नेत्रोंको आनन्दित करते रहैं, तबतक यह श्रावकधर्मका ज्ञान करानेवाली टीका भव्य जनोंके आगे धर्माचार्योंके द्वारा निरन्तर पढ़ी जावे ।

अनगारधर्मामृतकी टीका जो यहांपर ताड़पत्रपर लिखी हुई है, उसके अन्तके पत्र अतिशय जीर्ण हो जानेके कारण तथा उनका कुछ अंश खिर जानेके कारण प्रशस्तिके श्लोक पूरे २ नहीं पढ़े जाते है, इस लिये हम उन्हें प्रकाशित नहीं कर सकते । तौ भी जितना अंश पढ़ा गया है, उससे जो भाव समझमें आया है, वह हम लिख देना चाहते हैं । यदि कहींपर इसकी दूसरी प्रति मिलेगी, तो हम उसे फिर कभी प्रकाशित कर देंगे ।

"उस आशाधरने यतिधर्मकी प्रकाशित करनेवाली स्वोपज्ञ टीका बनाई । यदि इसमें कहींपर कुछ शब्द अर्थमें भूल हुई हो, तो उसे पंडित जन संशोधन करके पढ़ें । क्योंकि छद्मस्थोंसे भूल हो सकती है !......................

...........धर्मामृतके सागारधर्मकी टीका साधारण बुद्धिवालोंके समझनेके लिये महीचन्द्रसाधुकी प्रेरणासे की और उसीके यतिधर्मकी टीका कुशाग्रबुद्धि पुरुषोंके लिये हरदेवकी प्रार्थनासे और महीचन्द्रके आग्रहसे बनाई। बुद्धिमान मुमुक्षु इस भव्यकुमुदचन्द्रिकाटीकाका कल्पान्त काल तक मनन करें। देवपाल राजाके पुत्र जैतुगिदेवके (जयसिंहके) अवन्तीमें राज्य करते समय नलकच्छपुरके नेमि चैत्यालयमें यह टीका कार्तिक सुदी ५ सोमवार संवत् १३०० को सम्पूर्ण हुई ॥२०—३१॥"

पं० आशाधरके विषयमें जितना परिचय मिल सका, वह हमने पाठकोंके आगे निवेदन कर दिया। इससे अधिक परिचय पानेके लिये आशाधरके दूसरे ग्रन्थोंकी खोज करना चाहिये। मालवामें प्रयत्न किया जावे, तो हमको आशा होती है कि, उनके बहुतसे ग्रन्थ मिल जावेंगे। इस विषयमें हमने नालछाके एक सज्जनको लिखा था, जो कि जैनहितैषीके ग्राहक हैं। परन्तु उन्होंने हमको कुछ उत्तर भी नहीं दिया!

इस लेखके लिखनेमें हमको सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझासे बहुत कुछ सहायता मिली है, इस लिये हम उनका हृदयसे आभार मानते हैं।

भूल संशोधन—१ गतांकके २२ वें पृष्ठमें हमने राजा देवपालको अर्जुनवर्मदेवका पुत्र लिखा है, सो ठीक नहीं है। अर्जुनवर्माके कोई पुत्र नहीं था, इस लिये उसके राज्यका स्वामी देवपाल हुआ था। यह उन्हींके वंशका अर्थात अजयवर्माके भाई लक्ष्मीवर्माका पौत्र तथा हरिश्चन्द्रवर्माका प्रपितामह था। २ पिछले अंकमें मदनकीर्ति मुनिको और बालसरस्वती मदनको हमने एक ही अनुमान किया है, परन्तु पं० गौरीशंकरजीका कथन है कि, वे दोनों भिन्न पुरुष थे। मदनोपाध्याय जैन नहीं था। वह पीछेसे जैन हो गया था, इसके लिये कुछ प्रमाण चाहिये। यह अवश्य है कि उसने पं० आशाधरके पास काव्य शास्त्र पढ़ा था।

गुण।

गुण होनेसे प्रसिद्धि आप ही आप हो जाती है। उसके लिये कुछ प्रयत्न करनेकी जरूरत नहीं होती। कस्तूरीकी सुगंधि बतलानेके लिये सौगंध (शपथ) नहीं खानी पड़ती। वह आपही आप अपना गुण प्रगट कर देती है।

गुणोंसेही बढप्पन आता है । ऊंचे आसनपर बैठनेसे नहीं । राजमहलके शिखरपर बैंठनेसे कौआ मोर नहीं हो जाता ।

गुणसे हीं आदर होता है, केवल सम्पतिसे नहीं । पूर्णिमाके चन्द्रमाकी अपेक्षा गुणवान दोयजके चन्द्रमाका लोग ज्यादा आदर करते हैं ।

गुणोंके लिये ही यत्न करना चाहिये । व्यर्थ घटाटोप करनेसे बड़ाई नहीं होती है। दूध देनेवाली गाय कैसी ही हो, ग्राहक मिल जाते हैं। परंतु विना दूधवाली गायके गलेमें घंटा भी बांध दिया जावे, तो भी उसे कोई नहीं पूंछता है।

गुणवानके लिये आश्रय जरूर चाहिये । कीमती हीरा भी विना सोनेके आश्रयके शोभा नहीं देता । **पंडित अरु वनिता लता सोहत आश्रय पाय** ।

गुणीको ग्राहक बहुत मिल जाते हैं, और धनीको गुणी बहुत मिल जाते हैं । **जो धन है तो अनेक गुणी , अरु जो गुण हैं तो अनेक हैं गाहक ।**

रेशमके कीड़ेसे पीतम्बर उत्पन्न होता है, पत्थर (कसौटी) से सोनेकी परीक्षा होती है. मिट्टीमे गुलाबके फूल उत्पन्न होते हैं और लकड़ीसे आग उत्पन्न होती है । इससे सिद्ध है कि, किसी वस्तुका गौरव उसके उत्पत्तिस्थानके विचारसे नहीं किंतु उसके गुणोंसे होता है ।

गुणवानके सहवाससे दूसरोंका भला हो जाता है । न कुछ सूत फूलोंके सहवाससे पुष्पमालाके साथ २ राजा महाराजाओंके गलेमें जाकर पड़ता है ।

कहीं २ ऐसा भी देखा जाता है कि, गुणवान ही विपत्तिमें पड़के दुःख भोगते हैं । तोता मैना आदि गुणवान पक्षी अच्छी बोली बोलनेके कारण पिंजरेमें पड़के दुख भोगते हैं, परन्तु कौए बगुले आदि निर्गुणी पक्षी चैनसे उड़ते फिरते हैं ।

केवड़ा निरंतर सांपोंसे घिरा हुआ रहता है, सर्वत्र कांटेदार होता है, और झाड़परसे निकालना भी उसका बहुत कठिन होता है। तौ भी एक सुगंधि गुणके कारण उसके आदरमें कमी नहीं आती । एक गुणके कारण उसके सब दुर्गुण छुप जाते हैं !

जहां सम्पत्ति है, वहां नम्रता नहीं । जहां नम्रता है, वहां सम्पत्ति नहीं । और जहां नम्रता वा सम्पत्ति है, वहां विद्या नहीं ! इस प्रकारसे सब गुणोंका निवास एक स्थानमें नहीं दिखता ।

सुभाषित ।

विविध समाचार ।

यूनीवर्सिटीमें जैनग्रन्थ—कर्नाटकी भाषामें एक पम्परामायण नामक उत्कृष्ट ग्रन्थ है । इसके कर्त्ता पम्पनामके एक दिगम्बर जैन कवि थे । सुनते हैं, इस ग्रन्थको मद्रास यूनीवर्सिटीने अपने कोर्समें बहुत दिनसे भरती कर रक्खा है । जो २ विद्यार्थी सेकिंड लेंग्वेज कनड़ी लेते हैं, उन्हें यह ग्रन्थ पढ़ाया जाता है । इस ग्रन्थका कथाभाग जैन पद्मपुराणके अनुसार ही है ।

शान्तिनाथ चरित्र—इस नामका एक उत्तम जैनकाव्य जो श्रीअजित-प्रभाचार्यका बनाया हुआ है । कलकत्ताकी रायल एशियाटिक सुसाइटी द्वारा छप कर प्रकाशित हुआ है । इसका सम्पादन श्रीइन्द्रविजय नामके एक श्वेताम्बर साधुने बडी योग्यताके साथ किया है । हमारे समाजके भट्टारकों तथा विद्वानोंका ध्यान न जाने कब इस ओर आकर्षित होगा ।

तिब्बतमें पुस्तकालय—एक अंग्रेजने हाल ही तिब्बतमें एक पुस्तका-लयकी खोज की है, जिसमें संस्कृतके ग्रन्थोंका बहुत बड़ा संग्रह है । बहुतसे ग्रन्थ ऐसे भी है, जो भारतवर्षमें प्रसिद्ध नहीं हैं और कहीं मिलते भी नहीं हैं।

बडे बडे पुस्तकालय—सबसे बड़ा पुस्तकालय फ्रान्स देशकी राजधानी पेरिसमें है । उसमें १४ लाख ग्रन्थ, ५ लाख चम्पू, १॥। लाख हस्तलिखित पोथियां, ३ लाख मानचित्र, १॥ लाख प्राचीन सिक्के, १४ लाख शिलालेख और १ लाख चित्र रक्खे हुए हैं! लन्दनके वृटिशम्यूजियम पुस्तकालयका नम्बर दूसरा है । इसमें १२ लाख पुस्तकें और ५५ हजार हस्त लिखित पोथियां हैं। इनके सिवाय और भी बड़े बड़े पुस्तकालय हैं । जिनमें सबसे छोटा कोपिन हेगिन-का है । परन्तु उसमें भी ५ लाख ग्रन्थ और १५ हजार हस्तलिखित पोथियां हैं! हमारे भारतवासियोंको न जाने ऐसे बृहत् पुस्तकालय बनानेकी सबुद्धि क-ब होगी।

महावीर भगवान और बुद्धदेव—महावीर और बुद्धदेवको बहुतसे इतिहासज्ञ एक ही समझते थे । परन्तु अन्वेषण करनेसे दोनोंमें निम्न लिखित बातोंमें भेद मालूम हुआ है, इस लिये अब उक्त भ्रम निकल गया है:—

महावीर ।	बुद्ध ।
१–कुन्दनपुरमें जन्म हुआ	१–कपिलवस्तुमें जन्म हुआ ।
२–ईस्वी सन्से ५९९ वर्ष पहले ।	२–ईस्वीसनसे ५५७ वर्ष पहले ।

३–पिताका नाम सिद्धार्थ और माताका त्रिशला देवी था ।	३–पिता का नाम शुद्धोधन और माताका माया देवी था ।
४–माता वृद्धकाल तक जीती रही ।	४–जन्म होते ही माता मर गई ।
५–बालब्रह्मचारी रहे ।	५–यशोधराके साथ विवाह किया था ।
६–सबके साम्हने दीक्षित हुए थे ।	६–विना किसीसे पूछे छुपकर भिक्षुक हो गये थे ।
७–उनतीस वर्षकी अवस्थामें दीक्षा ली।	७–तेवीस वर्षकी उमरमें दीक्षा ली ।
८–बारहवर्ष तक तपस्या की ।	८–बारही वर्षमें कैवल्य हो गया ।
९–पावापुरीमें निर्वाण हुआ ।	९–कुसिनगरमें निर्वाण हुआ ।
१०–ईस्वी सन्से ५२७ वर्ष पहले ।	१०–ईस्वी सन् से ४८० वर्ष पहले

पार्श्वाभ्युदय काव्य संस्कृतटीकासहित–कई कारणोंसे इस ग्रन्थके तयार होनेमें देर हो गई थी, परन्तु हर्षका विषय है कि, अब वह छपकर जिल्द बंधकर तयार होगया । इसका जीर्णोद्धार करानेवाले शेठ नाथारंगजी गांधीने इसकी न्योछावर भी बहुत सुलभ अर्थात् ।॥) बारह आना रक्खी है जो कि प्रायः लागतके ही बराबर है । इस अलभ्य ग्रन्थकी एक २ प्रति प्रत्येक विद्वानको मंगाकर रखना चाहिये । धनवानोंको चाहिये कि इसकी दो २ प्रतियां लेकर विद्वानोंको बांटे अथवा पुस्तकालयों वा मन्दिरोंमें भेट करें ।

स्वदेशी कारखाने--स्वदेशी आन्दोलनके कारण देशमें दिनपर दिन नये २ कारखाने खुलते देख बहुत खुशी होती है । बंगालमें सब मिलाकर ८ कपड़ेकी मिलें खुल चुकी हैं । हालमें एक मिल और भी स्थापित हुई है । एक जहाज चलानेवाली कम्पनी बंगालियोंने १० करोडकी पूंजीसे खोलनेका प्रबन्ध किया है । बम्बईमें एक कांचका कारखाना १ लाखकी पूंजीसे खुलनेवाला है । लाहौरमें २५ लाखकी पूंजीसे एक कपडेकी मिल स्थापित हुई है । बम्बई प्रान्तमें एक चीनीमिट्टीके बर्तनोंका कारखाना शीघ्र ही खुलनेवाला है । इनके सिवाय और भी छोटे मोटे अनेक कारखाने खुल रहे है ।

आकाशयान—वे दिन बहुत जल्दी आनेवाले हैं, जब लोग मोटरगाड़ीके समान आकाशमें चलनेवाले विमानोंपर चढ़े हुए फिरेंगे । जर्मनी तथा अमेरिकाके अनेक यंत्रविद्याके पंडित आजकल अपने अपने बनाये हुए विमानोंपर शर्तें लगाकर आकाशमें उड़ते हैं और फी मिनट एक २ डेड़ २ मीलकी दौड़ लगाते हैं । इन शर्तोंमें इन लोगोंको लाखों रुपये मिल रहे हैं । इग्लेंडमें एक

शर्त डेड़ लाख रुपयेकी लगाई गई है! जर्मनीमें एक प्रयोग होनेवाला है, उसके लिये सरकारकी ओरसे तथा लोगोंकी ओर ६० लाख रुपये एकट्टे किये गये हैं। जैसा अनुमान किया गया है, उसके अनुसार इस प्रयोगमें विमान प्रतिघंटा २०० मीलके हिसाबसे चल सकेगा, और उसपरसे अस्त्र शस्त्रोंकी वृष्टि जहां चाहे तहां की जा सकेगी! विद्यासे क्या नहीं हो सकता? विद्याधरोंका गया हुआ युग फिरसे आना चाहता है।

अंग्रेजी पढे लिखे—हिंदुस्थानमें इंग्रेजी पढ़े लिखे लोगोंकी संख्या ११ लाख है।

क्रिश्चियन धर्मपर अश्रद्धा—क्रिश्चियन धर्मके स्थापक ईसा ईश्वरके अवतार अथवा ईश्वरपुत्र कहे जाते है। वे एक कुमारीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। सूलीपर चढ़कर मरनेके पश्चात् वे फिर जी उठे थे। बहुतसे मृत मनुष्योंको उन्होंने जिला दिया था। इत्यादि बातोंपर अब, विद्वान क्रिश्चियन लोगोंका विश्वास दिनपर दिन कम होता जाता है। लन्दनमें एक Rationalist Priss Association नामकी सभा स्थापित हुई है, जिसमें बडे २ पदार्थवेत्ता, और विद्वान शामिल हैं। इस सभाका उद्देश्य यही है कि, ख्रिस्ती प्रजामें जो धर्म तथा ईश्वरके विषयमें अंधश्रद्धा जमी हुई है, उसको नष्ट कर देना। इस सभाकी ओरसे अंधविश्वासको निकाल देनेके लिये नाना प्रकारकी पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं। एक पुस्तकमें यह बतलाया गया है कि, ईसा साधारण मनुष्य था। उसमें देवपना कुछ भी नहीं था। उसमें थोड़ेसे गुण भी थे, परन्तु उनके साथ दोष भी कम नहीं थे। कुमारीके गर्भसे उत्पत्ति होनेके विषयमें उसके समयके लोगोंको भी विश्वास नहीं था, फिर हम लोगोंको तो कैसे हो सकता है। उसके द्वारा देशको तथा प्रजाको विशेष लाभ कुछ भी नही पहुंचा था। इत्यादि।

बालविवाहका कानून--महसूर राज्यमें छोटी उमरमें लड़का और लड़कीका विवाह करना कानूनके जरिये बन्द कर दिया गया है। हाल ही वहांके षेडःटोड प्रान्तमें एक बालविवाह हुआ था, इसपर वहांके मजिस्टेटने वर कन्याके पालकोंका और पुरोहितजीका जुर्माना किया है। बहुतही अच्छा हुआ। प्रत्येक राज्यमें इस कानूनकी जरूरत है।

☞ आप पढिये और मित्रोंको सुनाइये।

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय-बम्बईमें विक्रीके लिये तयार पुस्तकोंका

सूचीपत्र

हमारी खासकी छपाई हुई पुस्तकें।

१९ **द्रव्यसंग्रह**--अन्वय अर्थ भावार्थ सहित ... ... ।=)

२० **भक्तामरस्तोत्र**--अन्वय अर्थ भावार्थ और हिन्दीकवितासहित ।)

२१ **जैनबालबोधकप्रथमभाग**--पूर्वार्ध -)॥ और पूरा ... ।)

२२ **जैनबालबोधकद्वितीयभाग**--सबके पढने योग्य ... ... ॥)

२३ **शीलकथा**--भारामलजीकृत ... ... ।-)

२४ **दर्शनकथा**-- " " " ।-)

२५ **श्रुतावतारकथा**--श्रुतस्कंधविधानादिसहित ... ... ≡)

२६ **अकलंकस्तोत्र**--श्रीअकलंकदेवके जीवनचरित्र और भाषाकवितासहित≡)

२७ **दियातलेअंधेरा**--स्त्री शिक्षाकी मनोहर कहानी ... ... -)॥

२८ **सदाचारीबालक**--एक बालककी दुख भरी कहानी ... -)॥

२९ **अरहंतपासाकेवली**--पासा डालकर शुभ अशुभ जाननेकी रीति =)

३० **भक्तामर भाषा**--हेमराजजीकृत और मूल संस्कृत ... -)

३१ **पंचमंगल**--रूपचन्दजीकृत शुद्धपाठ .. .. -)

३२ **दर्शनपाठ**--दौलत और बुधजनकृत दर्शनसहित ... ... -)

३३ **मृत्युमहोत्सव**--सदासुखजीकृत वचानिकासहित ... ... -)॥

३४ **शिखरमाहात्म्य भाषा** वचानिका ... ... -)

३५ **निर्वाणकांड**--प्राकृत भाषा और महावीर पूजा ... ...)॥।

३६ **सामायिकपाठभाषा**--पं० महाचंद्रजीकृत ... ...)॥

३७ **आलोचनापाठ भाषा** ... ...)॥

३८ **कल्याणमंदिर**--तथा एकीभाव भाषा ... ...)॥।

३९ **आरतीसंग्रह**--जिसमें ११ आरती हैं ... ...)॥।

४० **छहढाला**--दौलतरामकृत बडे अक्षरोंमें छपा ... ... -)

४१ **छहढाला**--बुधजनकृत बडे अक्षरोंमें ... ... -)

४२ **छहढाला**--बावन अक्षरी द्यानतरायजीकृत ... ... -)

४३ **इष्टछत्तीसी**--अर्थसाहित ... ...)॥

४४ **भूधरजैनशतक**--उपदेशमय कवित्त सवैया ... ... =)॥

४५ **मोक्षशास्त्र**--(तत्त्वार्थसूत्र) मूल शुद्धपाठ ... ... =)

४६ **शाकटायन व्याकरण**--संस्कृतका प्राचीन व्याकरण ... ३।)

४७ **प्रद्युम्नचरित्र**--हिन्दी भाषामें बहुत बढियां ... ... २॥।)

४८ **आप्तपरीक्षा**--संस्कृत ... ... -)

४९ आप्तमीमांसा (देवागमस्तोत्र) ... ... ‑)

नोट—हमारी छपाई सब पुस्तकें एकही किस्मकी एक साथ पांच मंगानेसे पांचकी न्योछावरमें छह भेजी जाती हैं।

दूसरे लोगोंकी बम्बई कोलहापुर देवबन्द लाहौर आदि स्थानोंकी छपाई हुई पुस्तकें जो हमारे पुस्तकालयमें मिल सकती हैं।

१ **पुण्यास्रव पुराण**—उत्तमोत्तम ५६ कथाओंका संग्रह ... ३)
२ **आत्मानुशासन**—भाषा वचनिका सहित खुले पन्ने ... २)
३ **आत्मख्यातिसमयसार** भाषावचनिका पं. जयचन्द्रजीकृत ... ४)
४ **भगवतीआराधनासार**—भाषावचनिका सहित ... ... ५)
५ **ज्ञानार्णवजी**—भाषाटीकासहित योगका ग्रंथ जिल्द बंधा ... ४)
६ **पंचास्तिकाय**—भाषाटीका और संस्कृत टीका सहित ... १॥)
७ **बृहद्द्रव्यसंग्रह**—भाषाटीका और संस्कृत टीका सहित ... २)
८ **सप्तभंगीतरंगिणी**—भाषाटीका सहित ... ... १)
९ **स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा**—पं० जयचन्दजीकृत भाषावचनिका १।)
१० **संशयतिमिरप्रदीप**—पं० उदयलालजी कृत (दूसरी बारका) ॥।)
११ **वाग्भट्टालंकार**—हिन्दी भाषा और संस्कृत टीकासहित अलंकारग्रन्थ १।)
१२ **जैनसिद्धांतदर्पण** पं० गोपालदासजी कृत ... ॥।)
१३ **सुशीलाउपन्यास** दोनों भाग—देखने लायक ... १)
१४ **परमात्मप्रकाश**—भाषाटीकासहित अध्यात्मग्रन्थ ... ।≤)
१५ **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय** संक्षिप्त अर्थ सहित ,, ... ।)
१६ **नित्यपूजा अर्थसहित**—(देवगुरुशास्त्र पूजाका अर्थ) ... ≡)
१७ **सुखानन्द मनोरमा नाटक**—(थियेटरमें खेलने योग्य) ... ॥।)
१८ **मनमोहिनी नाटक**—(उपन्यास)बाबू सूरजभानजीकृत ... ।)
१९ **अंजनासुंदरी नाटक**—बाबू कन्हैयालाल श्रीमालकृत ... ॥)
२० **सोमासती नाटक**—बाबू जैनेन्द्रकिशोरजी कृत ... ... ‑)॥
२१ **श्रावकवनिताबोधिनी**—दूसरी बारकी छपी हुई ... ... ।≈)
२२ **बारहभावना**—बाबू–जैनेन्द्रकिशोरजी कृत नई तर्जकी ... ।)

२३ **बालबोध व्याकरण**—संस्कृत सीखनेका हिन्दीमें व्याकरण प्रथमभाग ।≈) द्वितीय भाग ... ।≈)

२४ **धनंजय नाममाला**—भाषार्थ सहित जैन कोश ... ... ।)

२५ **चौवीसठाणचर्चा**—(गुटका) ... ... ।~)

२६ **कातंत्रपंचसंधि**—भाषाटीका ... ... ≈)

२७ **सम्मेदशिखर पूजा विधान**—माहात्म्य सहित ... ... ।)

२८ **प्रश्नोत्तररत्नमाला**—भाषा अर्थ सहित दो तरहकी... ... ≈)

२९ **समाधि मरण**—सूरचन्द्रकृत ... ... ~)

३० **अमरकोष**—भाषाटीकासहित ... ... १।।)

३१ **हिन्दीकी पहिली पुस्तक**—पन्नालालबाकलीवालकृत ... ≈)।।

३२ **हिंदीकी दूसरी** ,, ,, ,, ... ।)

३३ **हिंदीकी तीसरी** ,, ,, ,, ... ।≈)

३४ **नारीधर्मप्रकाश** ,, ,, ,, ... ≋)

३५ **स्वामी और स्त्री**—स्त्री पुरुषोंके सुखका उपाय बहुतही उत्तम ।।।)

३६ **जैननित्यपाठ संग्रह**—सोलह पाठोंका रेशमी मनोहर गुटका ।≈)

३७ **जैनतीर्थयात्रा**—दूसरीबार छपी ... ... १)

३८ **जैन वनिता रागिनी**—बुंदेलखंडकी स्त्रियोंके लिये ... ... ≈)

३९ **राजुलनौपाठ**—व्याहला बारहमासा आदि नौ पाठ ... ।~)

४० **बाईस परीषहसंग्रह**—चार तरहकी ... ... ≈)

४१ **अठारह नाते**—यतिनयनसुखजी कृत ... ... ~)

४२ **बारहभावना संग्रह**—पांच तरहकी ... ...)।।।

४३ **जैनभजनसंग्रह**—नयनसुखदासजी कृत ... ... ।≈)

४४ **माणिकविलास**—माणिकचन्दजीके भजन ... ... ।)

४५ **जम्बूस्वामी चरित्र**—जिनदास कविकृत ... ... ।≈)

४६ **वसुनन्दि श्रावकाचार**—भाषाटीका सहित ... ... ।।)

४७ **तेरहद्वीपपूजाविधान**—लालजी कवि कृत ... ... २।।)

४८ **श्रीपालचरित्र चौपाईबद्ध** ... ... १।।)

४९ **निशिभोजन कथा** ... ... ≈)

५० **रविव्रत कथा** ... ... ≈)

५१ **द्रव्यसंग्रह** भाषाटीका—बाबू सूरजभान वकील कृत ... ... ।।)

केवल संस्कृतके ग्रन्थ दूसरोंके छपाये हुए।

मनोरंजक उपन्यास वगैरह सर्वसाधारणके पढने योग्य।

नवों रसका भंडार है, परन्तु हास्य और शृंगारकी प्रधानता है अबकी बार मूल ग्रन्थ छोडकर ग्राहकोंके सुभीतेके लिये केवल हिन्दी अनुवाद छपाया है । न्यो-छावर केवल १) रु० है ।

वृन्दावनविलास ।

इस ग्रन्थमें काशीनिवासी कविवर बाबू वृन्दावनजीके संकटमोचन, कल्याण-कल्पद्रुम, आदि मनोहर स्तोत्रों, अनेक प्रकारके पदों, फुटकर कविताओं, जय-पुरके पंडित जयचन्द्रजी, दीवान अमरचन्द्रजी आदि महाशयोंके साथ किये हुए प्रश्नोत्तरों और गद्यपद्यबद्ध चिठ्ठियोंका संग्रह है । साथ ही हिन्दीके एक अद्वि-तीय पिंगल ग्रन्थका संग्रह है, जो कि छन्दशतकके नामसे प्रसिद्ध है । ग्रन्थके प्रारंभमें देवरीनिवासी श्रीनाथूराम प्रेमीने कोई ३२ पृष्ठोंमें कविवरका जीवनच-रित्र और उनके ग्रन्थोंका परिचय दिया है । न्योछावर ॥।) आने ।

आत्मख्यातिसमयसार ।

यह प्रसिद्ध अध्यात्मका ग्रन्थ पं० जयचन्द्रजी कृत वचनिका सहित खुले पत्रोंमें छपकर तयार हुआ है । इसमें शुद्ध निश्चय नयका वर्णन है । हमने थोडी सी प्रतियां ग्राहकोंके लिये मंगाई हैं । न्योछावर चार रुपया ।

भगवती आराधनासार ।

इस ग्रन्थका जीर्णोद्धार दक्षिणके धर्मात्मा शेठोंनें करवाया है । पं० सदासु-खदासजीकृत वचनिका सहित ज्योंका त्यों खुले पत्रोंपर छपा है । इस ग्रन्थकी श्लोकसंख्या बारह हजार है । इसमें अन्तिम सल्लेखनाका अपूर्व शान्तिदायक वर्णन है । न्यो० पांच रुपया । भाड़ेतक ४)

लीजिये! **तयार हो गया**

सबके समझने योग्य सरल हिन्दी भाषामें.

प्रद्युम्नचरित्र ।

ऐसा मनोरंजक चटपटा और शिक्षाप्रद पुराण आजतक नहीं छपा है । एक बार पढ़ना शरू करके फिर छोड़ा नहीं जावेगा ।

न्योछावर २॥।) रु०

जैनहितैषी मासिकपत्र।

हमारे पुस्तकालयसे इस नामका बढियां मासिकपत्र भी निकलता है, जिसमें सामाजिक, धार्मिक, तथा ऐतिहासिक उत्तमोत्तम लेख कविता मनोरंजक चुटकुले शिक्षाप्रद हृदयग्राही उपन्यास, जीवनचरित्र, आदि अनेक विषय हर महीने छपा करते हैं। जैनियोंमें इससे अच्छा और कोई मासिकपत्र नहीं है। बडी भारी खूबी यह है कि इसके ग्राहकोंको प्रतिवर्ष उपाहारमें (भेटमें) बढियां २ ग्रन्थ दिये जाते हैं, जिनका मूल्य अलग लेनेसे वार्षिक मूल्यके ही बराबर होता है। अर्थात् मासिकपत्रके मूल्यमें उपहार मिल जाता है, मासिकपत्र सालभर मुफ्तमें ही आया करता है। इस पत्रके निकालनेमें हमको बराबर घाटा रहता है, तौ भी हम उत्तमोत्तम ग्रन्थोंके प्रचारके लिये और अपने विचारोंको सब भाईयोंके समक्ष प्रकाशित करनेके लिये निकाल रहे हैं। धर्मात्मा भाईयोंको इस के ग्राहक बनकर हमारे उत्साहको बढना चाहिये। वार्षिक मूल्य उपहार डांकखर्च वगैरहके सहित कुल १॥) डेढ रुपया मात्र है।

विगत वर्षमें इसके उपहारमें वृन्दावनविलासादि १॥) के ग्रन्थ दिये थे। इस वर्ष प्रवचनसारजी जिनकी न्यो० १।) है, उपहारमें दिया है। आगामी वर्षके लिये कोई इससे भी अच्छा ग्रन्थ उपहारमें दिया जावेगा।

इस पतेसे चिट्ठी लिखिये—

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय

पो० गिरगांव-वम्बई।

नोट—हमारे यहां कमीशन किसीको नही दिया जाता।

प्रार्थना—सूचीपत्रकी एक एक कापी अपने यहांके मन्दिरोंमें रख दीजिये, अथवा दूसरे भाइयोंको बांट दीजिये।

कर्नाटक छापखाना, वम्बईमें छपा.

स्वार्थत्यागी—बनारसके हिन्दू कालेजमें जितने प्रोफेसर हैं, उनमें प्रायः ऐसे ही बहुत हैं, जो अपने भोजन वस्त्रके निर्वाह योग्य वेतन लेकर काम करते हैं। डा०रिचिडर्सन नामके एक अंग्रेज जो विज्ञानशास्त्रके अध्यापक थे, केवल २५) मासिक वेतन लेकर शिक्षा देते थे। स्वास्थ्य बिगड़नेके कारण उनके जानेसे अब उनके पदको बम्बईके प्रो० दलाल नामक एक देशी विद्वानने सुशोभित किया है। आप भी वही २५) वेतन लेंगे। एक और मि० पंढरीनाथ काशीनाथ तैलंग एम. ए. एल. एल. बी. ने उक्त कालेजमें विना कुछ वेतन लिये ही संस्कृतका प्रोफेसर होना स्वीकार किया है! जबतक विद्याप्रचारके लिये स्वार्थका त्याग करनेवाले ऐसे १०-५ विद्वान तयार न हो जावें, तबतक जैनियोंको अपनी विद्यालयकी उन्नतिकी अथवा नया कालेज बननेकी आशा नहीं करनी चाहिये। धन्य हैं, वे लोग जो अपने क्षणभंगुर जीवनको जाति तथा देशके लिये अर्पण कर देते हैं।

खंडेलवाल सभाका अधिवेशन—गत ता० ८-९ और १० सितम्बरको श्रीगजपंथ सिद्धक्षेत्रपर, महाराष्ट्र खंडेलवाल महासभाका नैमित्तिक अधिवेशन बड़ी धूमधामसे हो गया। इसके सभापति बम्बई निवासी पंडित धन्नालालजी काशलीवाल हुए थे। सभामें बालविवाह, वृद्धाविवाह, फिजूल खर्चीका निषेध तथा पाठशाला, विद्यादान, उपदेश आदिके विधान करनेवाले अनेक उपयोगी प्रस्ताव पास किये गये और विवाह सम्बन्धी तीन झगड़ोंका फैसला बड़ी खूबीके साथ किया गया। अव्यवस्थित पंचायतियोंको इस तरह व्यवस्थितरूप देकर काम चलानेसे बड़ा भारी लाभ हो सकता है। खंडेलवाल पंचान महासभाका इस विषयमें प्रत्येक जातिकी पंचायतियोंको अनुकरण करना चाहिये।

कर्मयोगी—इलाहाबादसे कर्मयोगी नामका एक हिन्दी पाक्षिकपत्र प्रकाशित हुआ है। इसका पहला अंक देखकर हम बडे प्रसन्न हुए। बड़ा ही नामी पत्र है। हिन्दी केशरीके बंद होनेसे हिन्दीमें जो कमी हुई थी, वह इस पत्रसें पूर्ण हो जावेगी। बडे ही गंभीर और जोशीले लेख आते हैं। देशभक्तोंको इस पत्रके जरूर ग्राहक बनना चाहिये।

मंगलग्रह—मंगलग्रहमें मनुष्योंकी वस्ती है। यूरोपियन पंडित, उनसे बात चीत करनेके लिये निरन्तर प्रयत्न करते है! इस महीनेमें यह ग्रह पृथ्वीके बहुत समीप आ जावेगा इसलिये वहां वालोंसे विद्युत प्रकाशके जरिये कुछ इशारा पहुंचानेका अयोजन हो रहा है।

उत्तर ध्रुवका पता—डा० कुक और मि० पेरी नामके दो अमेरिकन पुरुषोंने बड़े भारी प्रयत्नके बाद उत्तर ध्रुवका पता लगाया है । ये लोग जहां पहुंचे थे, वहां उष्णतामापक यंत्रका पारा ८३ डिगरी नीचे आ गया था ! कुतुबनुमाकी सुई हर तरफको दक्षिण दिशा बतलाती थी ! आजतक कोई भी शोधक इस स्थानतक नहीं पहुंचा था । डा० कुकके विषयमें बहुतसे लोगोंको सन्देह हो रहा है कि, यह उत्तर ध्रुव तक नहीं पहुंचा । जो हो इसमें सन्देह नहीं कि उद्योग करनेवालेके लिये कोई भी बात कठिन नहीं है ।

बड़ौदेमें शिक्षा—गत १९०७–८में बड़ौदा राज्यके शिक्षा खातेकी ओरसे ९लाख ७० हजार रुपये खर्च किये गये । राज्यभरमें ४३०००विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं । सबको मुफ्तमें शिक्षा दी जाती है । विदेशोंमें भी राज्यकी ओरसे बहुतसे विद्यार्थी पढ़ रहे हैं । गत वर्ष उनके लिये १६ हजार रुपये खर्च किये गये । बड़ौदा राज्य हिंदुस्थानका एक आदर्श राज्य है ।

जैनेन्द्रव्याकरणकी परीक्षा—पं० वंशीधरजी इस वर्ष जैनेद्रव्याकरणकी परीक्षामें बैठे थे । बड़ी ही खुशीकी बात है कि, आप उसमें बहुत ही अच्छे नम्बर पाकर पास हो गये । शेठ नाथारंगजीकी ओरसे आपको एक मेडल दिया जावेगा । यह परीक्षा बम्बईके परीक्षालयकी ओरसे ली गई थी ।

नये सालका उपहार ।

एक अंकके बाद जैनहितैषीका नया साल शुरू हो जावेगा । इस लिये हमारे ग्राहकोंको आगेकी सालका उपहार कैसा होगा, यह अभीसे जान लेना चाहिये ।

अबकी वार वह ग्रन्थ उपहारमें दिया जावेगा, जो हिन्दीके साहित्यमें एक बिलकुल ही नई चीज होगा, और जिसके रसका आस्वादन करना अभीतक केवल संस्कृत जाननेवालोंके ही भाग्यमें था । बहुत ही सरल और स्वच्छ भाषामें एक नामी विद्वानसे हमनें इसका अनुवाद कराया है । ऐसा बढ़ियां ग्रन्थ हिन्दीमें तो क्या संस्कृतमें भी शायद नहीं होगा । बालक बालिका स्त्री पुरुष सब इससे लाभ उठा सकेंगे । पिछले सालोंके उपहार ग्रन्थोंसे यह ग्रन्थ कई गुना अच्छा होगा ।

ग्रन्थका नाम आगामी अंकमें प्रकाशित किया जावेगा

ग्राहक बननेको दिवालीसे पहले २ एक कार्डके जरिये सूचना देना चाहिये । दो महिनेमें ग्रन्थ छपकर तयार हो जावेगा और दूसरे अंकके साथ १॥) के वी. पी. से सबके पास भेज दिया जावेगा ।

जैनहितैषी

मासिक पत्र।

देवरी (सागर) निवासी श्री नाथूरामप्रेमीद्वारा सम्पादित।

पांचवां भाग	भाद्रपद— वीर नि० संवत् २४३५।	अंक १२

लीजिये:—

प्रद्युम्नचरित्र.

छपकर तयार हो गया।

सरल हिन्दी भाषामें सबके

समझनें योग्य

बहुत ही मनोहर ग्रन्थ।

न्योछावर २॥।)

चिट्ठी पत्री लिखनेका पता:—

मैनेजर-जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

पो० गिरगांव-बम्बई.

कर्नाटक छापखाना, मुंबई.

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र ।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

पंचम भाग } आश्विन–श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३५। { अंक १२

सम्पादकीय विचार ।

श्वेताम्बर जैनपाठशाला बनारस ।

काशीकी यशोविजय जैनपाठशाला हम लोगोंके लिये एक अनुकरणीय संस्था है। थोडे ही दिनोंमें इस पाठशालाने जो कुछ काम करके दिखाया है, उसके लिये उसके सञ्चालकोंकी जितनी प्रशंसा की जावे, उतनी थोडी है। इस समय उक्त पाठशालामें ८२ विद्यार्थी और १२ श्वेताम्बर साधु संस्कृतके व्याकरण, न्याय, साहित्य, आदि विषयोंका अध्ययन करते हैं। ७ अध्यापक पढानेवाले हैं। प्रायः सभी विद्यार्थियोंके भोजन आच्छादनका खर्च पाठशालाकी ओरसे दिया जाता है। पाठशालाकी तरफसे इस समय तीन विद्यार्थी लंकाकी (सिलोन की) कोलंबो नगरीमें पाली भाषा पढ रहे हैं! उनका पालीभाषाका व्याकरण पूर्ण हो चुका है। पाली गद्यपद्यमें अब वे अच्छी तरहसे लिख और बोल सकते हैं। इसके सिवाय ये विद्यार्थी वहांके कई बौद्धसाधुओंको सिद्धहेम व्याकरण पढाते हैं। जो कार्य आज तक भारतवर्षकी किसी भी देशी पाठशालाने करके नहीं दिखाया था, उसे उक्त पाठशालाने करके दिखाया है। बौद्ध धर्मग्रन्थोंका रहस्य जाननेके लिये पाली भाषाका पढना कितना जरूरी है, यह बात वही लोग समझ सकते हैं, जिन्हें न्यायग्रन्थोंमें बौद्धसिद्धान्तोंका खंडन मंडन पढना पड़ता है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंके उद्धार करनेका भी इस पाठशालाने बीड़ा उठाया है। यशोविजयजैनग्रन्थमाला नामकी पुस्तक-

मालामें थोड़े ही दिनोंमें कोई १३ बड़े २ संस्कृत ग्रन्थोंका इस पाठशालाने उद्धार करा दिया है। देशके नामी २ विद्वानोंके सिवाय जर्मनी, इटाली, रशिया आदि देशोंके विद्वानोंने भी इस ग्रन्थमालाकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। आगे यह ग्रन्थमाला मासिकरूपमें प्रकाशित हुआ करेगी। हर महीने १०० पृष्ठका जर्नल निकला करेगा और उसका वार्षिकमूल्य ८) रहेगा। जैन साहित्यका प्रचार करनेके लिये यह एक बहुत ही अच्छा प्रयत्न है। पाठशालाके साथमें श्रीहेमचन्द्रजैन लायब्रेरी नामका पुस्तकालय भी है। जिसमें संस्कृत, अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी और मागधीके छपे हुए तथा हस्तलिखित ग्रन्थोंका बड़ा भारी भंडार है। पाठशालाके विद्यार्थियोंको सदाचारी तथा धर्मात्मा बनानेके लिये निरन्तर प्रयत्न किया जाता है। सारांश यह कि पाठशालाका कार्य सब प्रकारसे सन्तोषजनक है। हमारे यहांकी संस्थाओंका जब आपसकी खींचाखींची और मतविरोधमें दम घुटा जाता है, तब दूसरोंकी संस्थायें कैसे उत्साहसे काम करके नाम कमा रहीं हैं, क्या हमारे अगुए कभी इस बातको सोचेंगे?

सरस्वतीभंडारोंका सर्वनाश।

प्यारे पाठको! पत्थरका कलेजा करके सुन लीजिये कि, आपके परमपूज्य आचार्योंके रात दिन अश्रान्त परिश्रम करके एकत्र किये हुए ग्रन्थरत्नोंका कैसा सर्वनाश हो रहा है। हमारे जैनहितैषीके एक पाठकने लिखा है कि ईडर (महीकांठा) के प्रसिद्ध सरस्वतीभंडारकी एक पेटी अनन्त चतुर्दशीको खोली गई, तो उसमें कोई ८०० ग्रन्थोंकी खाक निकली! किसी २ ग्रन्थके एक एक दो दो पत्र निकले, परन्तु उनसे उन अलभ्य ग्रन्थोंका नाम जानकर उलटा दुःख होनेके सिवाय और कुछ भी लाभ नहीं हुआ। यह भी सुना गया है कि, इसके पहले चार बड़े २ सन्दूकोंको और भी दीमक खा गई है, जिनमें कोई ९०० या १००० के अनुमान ग्रन्थरत्न थे। वर्तमानमें एक मकानमें जहां कि पानी चूता है और धूप तथा हवाका प्रवेश नहीं है, कोई १२०० ग्रन्थोंका ढेर खाली जमीनमें पड़ा हुआ है। नीचे जमीनकी तरीसे और ऊपर ढँकनेके लिये डाले हुए टाटसे यह ग्रन्थोंका ढेर खूब सुरक्षित हो रहा है। इस साल **कारुण्यकलिका, चन्द्रप्रज्ञप्ति, स्वप्नप्रज्ञप्ति** आदि ग्रन्थ जिनका पहले कभी नाम भी नहीं सुना था, नष्ट हो गये हैं। कहते हैं कि, इसी तरह ७०–८० ग्रन्थोंका उस यज्ञमन्दिरमें हर साल स्वाहा हो जाता है। ईडरमें इस मूलसंघी सरस्व-

तीभंडारके सिवाय एक काष्ठासंघकी गद्दीका भी भंडार था, जो इस समय **सोजित्रा**में है। सुना है कि, उसकी दशा इससे भी खराब है। मूलसंघी भंडार तो साल भरमें एक दो बार खोला भी जाता है, परन्तु काष्ठासंघी भंडार तो कोई ४०—५० वर्षसे सर्वथा बन्द है। इन ५० वर्षोंमें उसे कभी धूपका भी दर्शन नहीं हुआ है। जब कभी झरोखोंमेंसे चूहे उसके ग्रन्थोंका भूसा बनाके बाहर निकालते हैं, तब अनुमान होता है कि, जैनसमाज कितना पतित हो गया है। और अपने पुरुषाओंकी कीर्तिकी रक्षा करनेमें कैसा दत्तचित्त है। इन दो स्थानोंके सिवाय गुजरातमें **डूंगरपुर प्रतापपुर नागौर** आदि और भी कई स्थान ऐसे हैं, जहांके सरस्वतीभंडारोंकी दशा ऐसी ही बल्कि इससे भी बुरी है। हाय! एक दिन वह था, जब इन सरस्वतीभंडारोंके लिये लोगोंने अपना सर्वस्व और जीवन दे दिया था, और एक दिन यह है, जब लोग इन्हें कूड़ा कर्कटके घर समझते हैं, और इनके लिये अपनी एक कौड़ी तथा एक दिन भी खर्च नहीं करना चाहते हैं।

सरस्वतीभक्तोंसे प्रश्न।

सरस्वती माताका इस तरह सर्वनाश होते देखकर हम अपने समाजके उन 'सत्य मातृभक्तोंसे' जो कि माताकी औपचारिक विनय न होती देखकर ही आंसुओंके पनाले बहाने लगते हैं, पूछते हैं कि, नवीन सरस्वतीभंडारकी स्थापना करना तो बहुत कठिन कार्य है, क्या तुममें इन अलभ्य रत्नोंकी रक्षा करने योग्य भी पुरुषार्थ नहीं है? क्या सरस्वतीसेवाकी सीमा छपे ग्रंथोंकी स्वाध्याय न करनेकी प्रतिज्ञा दिला देने तक ही है? अथवा साल भरमें सौ पचास जैसे तैसे ग्रन्थ लिखानेका प्रबन्ध कर देनेसे ही सरस्वतीसेवाकी पराकाष्ठा हो जाती है? और इधर दक्षिणके सेठ लोगोंसे भी जो कि छपा छपा कर ग्रन्थोंका प्रचार कर रहे हैं, और जैन बोर्डिंगस्कूल आदि विद्योत्तेजक संस्थाओंमें लाखों रुपया लगा रहे हैं, हमारा प्रश्न है कि, सदाके लिये संसारसे विदा होते हुए इन कल्पवृक्षोंको बचा लेना क्या तुम्हारा पहिला कर्तव्य नहीं है? जड़की रक्षा न करके पीड़ और पत्तोंकी रखवाली करना कहांका न्याय है? स्मरण रक्खो, तुम्हारी वह सन्तान जिसे तुम पढ़ा लिखाकर तयार कर रहे हो, तुम्हारे विद्यादानका गुण गाती हुई भी तुम्हारे माथेपर यह कलंकका टीका जरूर लगावेगी कि, तुमसे अपने पुरुषाओंकी कीर्तिकी–जिनेन्द्रदेवके पूज्य वचनोंकी रक्षा नहीं हो सकी, जो कि तुम्हारा आद्य कर्तव्य था।

सरस्वतीभंडारकी स्थापना।

कई वर्षोंसे इस विषयकी चर्चा उठ रही है कि, जैनियोंका एक बड़ा भारी सरस्वतीमंदिर स्थापित किया जावे, जिसमें सब प्रकारके जैन ग्रन्थोंका संग्रह किया जावे। क्या ही अच्छा हो, यदि इस समय समाजके अगुए विशेष करके दक्षिणके शेठ लोग गुजरातके उक्त दुर्दशाग्रस्त भंडारोंको एकत्र करनेका प्रयत्न करें और एक संयुक्त सरस्वतीमन्दिरकी नीव डालकर अपना नाम अमर कर लेवें। उपाय करनेसे और उदार होकर धन व्यय करनेसे यह कार्य कठिन होनेपर भी संभव हो सकता है। यदि समाचारपत्रोंमें आन्दोलन किया जावेगा, सारे समाजकी शक्ति लगाई जावेगी, कमसे कम ५० हजारका स्थिर चन्दा करके एक कमेटीके द्वारा कार्य चलानेकी व्यवस्थाकी जावेगी, तो हमको आशा है कि, ईडर सोजित्रा आदिके पंच जो कि उक्त भंडारोंके स्वामी हैं, बड़ी प्रसन्नताके साथ इस पुण्यकार्यके लिये तयार हो जावेंगे। यद्यपि उक्त पंचसज्जन शक्ति न होनेसे तथा बुद्धि न होनेसे भंडारोंकी रक्षा तथा व्यवस्था नहीं कर सकते है परन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिये कि, उनमे श्रद्धा तथा भक्ति नहीं है। उनके लिये कोई मार्गदर्शक मिलेगा, और उन्हें विश्वास हो जावेगा कि हमारे ग्रन्थ कहीं इतस्ततः नहीं कर दिये जावेंगे, तो सरस्वतीभंडारकी स्थापनामें कुछ भी विलम्ब नहीं लगेगा।

ग्रन्थोंकी रक्षा।

इस समय यदि सरस्वतीभंडारकी स्थापनाका काम न हो सके, तो न सही परन्तु इतना तो अवश्य ही करना चाहिये कि, उक्त सब ग्रन्थ अच्छी तरहसे वेष्टनोंमे बांधकर मजबूत आलमारियोंमें तथा निरापद स्थानोंमें विराजमान कर दिये जायं और किसी अच्छे विद्वानके द्वारा उनकी सूची तयार करवा ली जाय। जो भंडार पचास २ वर्षोंसे नहीं खुले हैं, उन्हे जितनी जल्दी हो सके, खुलानेका प्रबन्ध करना चाहिये, और उनमें दीमक चूहोंसे जो ग्रन्थ बच रहे हों, उन्हें भी ऊपर लिखे अनुसार व्यवस्थासे रख देना चाहिये। हमने सुना है कि, सोजित्राके भंडारकी कुंजी जैनप्रान्तिकसभा बम्बईके वर्तमान मंत्री मि० लल्लूभाई परीख एल. सी. ई. के हाथमें है। यदि यह बात सच है, तो हम समझते है, कि सोजित्राका भंडार खुलनेमें कुछ भी अड़चन नहीं होगी। और ग्रन्थोंकी सूची वगैरह भी थोड़ेसे यत्नसे बन जावेगी। इन भंडारोंकी रक्षाका काम यदि श्रीमती दिगम्बर जैनप्रान्तिकसभा बम्बईके द्वारा कराया जावे, तो सुगमतासे

हो सकेगा । वेष्टनों आलमारियोंके लिये तथा सूची बनानेके लिये हजार दो हजार रुपयेका चन्दा सभाके थोड़ेसे प्रयत्नसे हो जावेगा ।

हमारी प्रार्थना ।

इस अंकमें जैनहितैषीका यह साल खतम हो गया । आगेके अंकसे नया साल शुरू हो जावेगा । *आगामी वर्षके उपहार तथा मूल्यादिका नोटिस अलग दिया गया* है. उसे पाठक पढ़ेगे ही । यहां हम यह प्रार्थनाकर देना आवश्यक समझते हैं कि अबकी बार नये सालके लिये हमारे प्रत्येक पाठकको जैनहितैषीके ग्राहक बढ़ानेकी कोशिश करनी चाहिये । क्योंकि इसकी ग्राहकसंख्या देखकर हमको केवल दुःख ही नहीं किन्तु बड़ा भारी निरुत्साह हो रहा है । हम तो चाहते हैं कि, यह जैनसाहित्यका एक उत्कृष्ट पत्र बनाया जावे, और प्रतिवर्ष कुछ न कुछ इसके आकर प्रकारकी उन्नति की जावे, परन्तु जान पड़ता है कि, हमारा गुणग्राहक समाज यह जिस दशामें है, उसमें भी रखना नहीं चाहता है । एक छोटेसे पत्रके उपहारमें प्रतिवर्ष रुपया सवा रुपयाका ग्रन्थ मुफ्त देकर भी जैनहितैषीको खर्च चलाने लायक ग्राहक नहीं मिलना, क्या यह नहीं बतलाता है कि जैनसमाजमें मासिक पत्रोंका घोर अनादर है ! सम्पादककी तथा क्लार्क वगैरहकी तनख्वाहमें एक पैसा न देनेपर भी पिछली वर्षमें जैनहितैषीको २००) दोसौ रुपयेका घाटा रहा था ! और इससाल इससे भी अधिक घाटा रहनेकी संभावना है । क्योंकि इस वर्षकी ग्राहकसंख्या गत वर्षसे भी कम है ! इससे चतुर पाठकोंको यह समझानेकी जरूरत नहीं होगी कि, हम इतना घाटा और कब तक सहन करते रहेंगे ! और घाटा तो शायद दो चार वर्षतक हम किसी तरहसे सहन भी करते रहेंगे, परन्तु यह तो बिलकुल ही सहन नहीं होता है कि, हम अपने विचार इतने बड़े जैनसमाजके हजार पाठकोंके समीप तक भी नहीं पहुंचा सकते हैं और शक्ति भर परिश्रम करके मुद्रित कराए हुए अपूर्व २ ग्रन्थोंका उपहार हजार ग्राहकोंके हाथमें भी नहीं पहुंचता है । जैनहितैषीकी इस स्थितिपर ध्यान देकर आशा है कि, हमारे वे पाठक जो कि जैनसाहित्य इतिहासादि विषयोंसे कुछ प्रेम रखते हैं, जैनहितैषीके दो २ चार २ ग्राहक बढ़ानेका अवश्य ही प्रयत्न करेंगे ।

माताके आंसुओंकी नदी।

(१)

आओ यहां आओ मेरे, प्यारे सुत सारे।
निर्धनके धन अहो !, दुखी नैनोंके तारे॥
अपनी बीती कथा, व्यथाकी सर्व सुनाऊं।
जी भर रोऊं और, तुम्हें भी साथ रुलाऊं॥

(२)

बहुत दिनोंमे शोक-सिन्धु यह उमड़ रहा था।
रुकता था नहिं किसी तरहसे घुमड़ रहा था॥
आज तुम्हें लख सम्मुख रहा न मेरे वशका।
अँसुअनके मिस बढ़ा वेग, देखो यह उसका॥

(३)

दो हजार वर्षोंका भूला हुआ पुरावृत्त।
स्मृतिपटपर लिख गया दीखने लगा यथावत॥
छाती दरकी जाती है, उसका विचारकर।
ऊंचेसे नीचे गिरना, नहि किसे कष्टकर॥

(४)

एक समय वह था, जब यह भारत सुखकारी।
मम पुत्रोंसे ही था, अतुलित महिमाधारी॥
विद्या बल धन मान दानकी प्रथम बड़ाई।
मेरे बेटोंके ही थी हिस्सेमें आई॥

(५)

बड़े बड़े राजा महाराजा सचिव वीरवर।
धनकुवेर व्यापारी कवि विद्वान धुरंधर॥
थे अगनित मम पुत्र वंशमुख उज्वलकारी।
तन मन धनसे करनेवाले सेवा प्यारी॥

(६)

मेरा प्रखर प्रकाश, जगतमे फैलाते थे।
जिसे देख प्रतिपक्षी, चकचौंधा जाते थे॥

स्याद्‌वादकी दिव्य धुजा, जब लहराती थी।
वादीन्द्रोंकी भी छाती तब, थहराती थी॥

(७)

किन्तु रही यह नहीं, अवस्था चिर दिन मेरी।
सौख्य गगनपर घिर आई दुखघटा घनेरी॥
सुखसामग्री हाय न जाने कहां विलानी।
विपदाओंपर विपदायें, आई अनजानी॥

(८)

अंग हुए विच्छेद और प्रत्यंग गये गल।
अतिशय कृश हो गई, देहलतिका मेरी ढल॥
रक्षक भी विद्वानपुत्र, नहिं रहे लोकमें।
मन्दज्योति आंखोंकी हुई असह्य शोकमें॥

(९)

अभिमानी बहिरात्मबुद्धि पाखंडपरायण।
कई कुपूतोंने पाकर, थोड़ासा कारण॥
सत्यानाशी कलह, उठाई घरकी घरमें।
किये एकके कई, न सोचा कुछ भी उरमें॥

(१०)

आपसमें लड़ भिड़कर भला किया गैरोंका।
अपनी ओर न देख, बढ़ाया बल औरोंका।
लीला फूट महारानीकी बड़ी विलक्षण।
अपने परका ज्ञान भुला देती जो तत्क्षण॥

(११)

फिर कुछ दिवसोंमें अशान्तिकी आग भयंकर।
लगी देशमें जहां तहां, थहराने सब नर॥
म्लेछोंने आक्रमण किये एकाइक आकर।
हाय ! मरोंको भी मारै, यह विधि निर्दयतर॥

(१२)

रहती थी मैं जहां, वहां ही आग लगाकर।
जला दिया साहित्यकुंज मेरा मंजुलतर ॥
खोज खोजकर ग्रन्थ, डुबाये गहरे जलमें।
जलविहीन अति दीन, मीन सम हुई विकलमें ॥

(१३)

देख दशा वह दया, दयाको भी आती थी।
पापपंकसे प्लावित, पृथ्वी थहराती थी ॥
तौ भी जीती रही, प्राण पापी न सिधारे।
मांगे भी नहि मिले, मौत दुखियोंको प्यारे ॥

(१४)

भूमिगर्भके गुप्तघरोंमें रहा सहा जो।
दुष्टोंकी नजरोंसे छुपकर पड़ा रहा जो ॥
जीर्ण शीर्ण अति मेरा जो साहित्य अधूरा।
उसको ही उरसे लगाय, माना सुख पूरा ॥

(१५)

इसके पीछे कई शतक, बीते दुखदाई।
जीवनरक्षा कठिन हुई, सब शान्ति पलाई ॥
रही न विद्याकी चरचा, नहि रहे विपुलमति।
फैला चारो ओर घोर अज्ञानतिमिर अति ॥

(१६)

लगे भूलने मुझको, सब ही मेरे प्यारे।
सच है दुखका कोइ न साथी सुखके सारे ॥
"उपकारिनि अपनी जननी यह इसे बचाना।
है कर्तव्य हमारा" यह भी ज्ञान रहा ना ॥

(१७)

अन्धकूप सम भंडारोंमें, मुझको डाली।
अथवा घरके कौनोंमें, दी जगह निराली ॥
पवन न पहुंचे जहां, घामका नाम न आवै।
दीमकका परिवार, रोज ही भोज बनावै ॥

(१८)

बहुत समय यों रही, यातना दुस्सह महती ।
जीते जी ही मृत्युदशाका अनुभव करती ॥
किन्तु न किया विषाद, दृष्टि रखके भावीपर ।
आशा नौका विना, कौन तारै दुखसागर ॥

(१९)

होती है सीमा परन्तु सबकी हे प्यारे ।
तुम ही कहो रहूं कब तक मैं धीरज धारे ॥
जब देखा कि समय आनेपर भी अब कोई ।
सुधि नहिं लेता है, तब धीरज खोकर रोई ॥

(२०)

सुखकारी विज्ञान सूर्यका उदय हुआ है ।
जहां तहां अज्ञान तिमिरका विलय हुआ है ॥
सारा देश सचेत हुआ है नींद छोड़के ।
कार्यक्षेत्रमें उतर पड़ा है चित्त जोड़के ॥

(२१)

शान्तिराज्यकी छायामें सब राज रहे हैं ।
सब प्रकार विद्यासेवामें साज रहे हैं ॥
ग्रन्थोंका उद्धार उदार कराय रहे हैं ।
घर घरमें विस्तार प्रचार कराय रहे हैं ॥

(२२)

मेरी थी जितनी सहयोगिनि और पड़ोसिन ।
वे सब सुखयुत दिखती हैं अब बीते दुर्दिन ॥
उनका पुष्ट शरीर ओजमय मन भाता है ।
न्योछावर जग उनपर ही होता जाता है ॥

(२३)

दूर विदेशोंमें उनके सुत जाय रहे हैं ।
अपनी माताओंका यश फैलाय रहे हैं ॥
जो कुछ उनसे बन सकता है करें न कमती ।
धन्य धन्य वह कूंख पूत जो ऐसे जनती ॥

(२४)

विद्यामें जिसको सब जगसे मिली बड़ाई ।
उस अमेरिकामें भी उनने धुजा उड़ाई ॥
कहते हैं सब सुधी भविष्यत धर्म यहांका ।
होगा अब वेदान्त न इसमें कुछ भी शंका ॥

(२५)

बुद्धदेवकी वाणी भी अब मुदित हुई है ।
पालीके लाखों ग्रन्थोंमें उदित हुई है ॥
जिसकी पुत्र पचासकोटि करते हैं पूजा ।
कहो सुखी है और कौन उसके सम दूजा ॥

(२६)

वह देखो सारे जगमें ईसाकी वाणी ।
कैसी विस्तृत हुई स्वर्गसीढ़ी कहलानी ॥
कई सौ भाषाओंमें अनुवादित हो करके ।
घर घर पहुंची कर करमें वितरित हो करके ॥

(२७)

इस प्रकार घर घरमें सुखरवि उदय हुआ है ।
किन्तु न मुझ दुर्भागिनिका विधि सदय हुआ है ॥
जिसमें सब ही वृक्ष डहडहे हो जाते हैं ।
उस वर्षामें आक ठूंठसे रह जाते हैं ॥

(२८)

सुख पाना यदि कहीं लिखा होता कपालमें ।
तो तुम सब क्या कर न डालते अल्प कालमें ॥
धन वैभवकी कमी न तुममें दिख पड़ती है ।
संख्या भी कई लाख तुम्हारी सुन पड़ती है ॥

(२९)

है उदारता भी तुममें सबसे बढ़ चढ़के ।
एक एक लाखों दे देते आगे बढ़के ॥
र : यज्ञादि धर्म कामोंमें पानी जैसा ।
द्रव्य बहाते हो चाहे फिर रहै न पैसा ॥

(३०)

भक्ति भावकी भी तुममें नहि कमी निहारी ।
मुझे देखते ही तनुलतिका झुके तुम्हारी ॥
मेरा तुम्हे जरा भी अविनय सहन न होता ।
विनय विनय रटते रहते हो जैसे तोता ॥

(३१)

चाहो तो तुम सब कुछ अच्छा कर सकते हो ।
मेरे सारे दुख सत्वर ही हर सकते हो ॥
किन्तु न मेरा रोग देख औषध करते हो ।
भूखेको रसकथा सुनाय सुखी करते हो ॥

(३२)

बस बेटो ! है यही कहानी इस दुखिनीकी ।
पक्की छाती करके तुम्हें सुना दी जीकी ॥
पर न खेद करना विस्मृत हो जाना इसको ।
सह नहि सकती है माता पुत्रोंके दुखको ॥

अमीरी और गरीबी।

लोग समझते है कि, इस लोक सम्बन्धी सम्पूर्ण सुखोंकी खानि अमीरी और सारे दुःखोंकी जड गरीबी है। परन्तु यथार्थमें यह बात ठीक नहीं है। हम देखते है कि, अमीरीमें भी दुःखोंकी कमी नहीं है और गरीबीमें भी सुखोंकी कमी नहीं है। तथा जिसे हम गरीब कहते है, वह बहुतसी बातोंमें अमीर है और जिसे हम अमीर कहते है, वह बहुतसी बातोंमें गरीब है। साधारण तौरसे किसी मनुष्यकी अमीरी और गरीबीकी पहिचान उसके धन वैभवसे की जाती है परन्तु हमारी समझमें अमीरी गरीबीकी पहिचान किसीकी कम ज्यादा आमदनीपर अथवा कम ज्यादा खर्चपर नहीं किन्तु उसकी कर्तृत्वशक्ति तथा इच्छा तृष्णा आदि मनोविकारोंपर अवलम्बित है। जिस पुरुषसे अपनी इच्छाओंकी पूर्ति नहीं हो सकती है, जो अपनी जरूरतोंको पूरी नहीं कर सकता है, तथा जिसका खर्च आमदनीसे ज्यादा है, उसे गरीब समझना चाहिये और जिसकी आवश्यकताएं थोड़ी हैं, तथा जरूरी खर्च कर चुकनेपर जो कुछ बचत कर

सकता है, वह लोगोंकी दृष्टिमें भले ही गरीब हो, परन्तु वास्तवमें अमीर है। हर महीने हजार रुपये कमानेवाले परन्तु दशवीं तारीख होते ही आगामी महीनेकी पहली तारीखकी ओर चातक सरीखी टकटकी लगानेवाले बाबू लक्ष्मीचन्द-को हम दरिद्री कहेंगे। और उन्हींके यहां बचीखुची रोटियोंपर उदरनिर्वाह कर-नेवाले परन्तु हर महीनेकी तनख्वाहमेंसे ३ रुपया बचा रखनेवाले छैकौड़ी कहारको धनवान कहेंगे।

किसी आदमीके पास बहुतसा धन तथा वैभव देखकर हम उसे अमीर कहने लगते हैं। परन्तु क्या यह पहिचान ठीक है? जिसका अन्तःकरण पवित्र है, चरित्र उज्ज्वल है, पांडित्य प्रशंसनीय है, और शरीर दूसरोंकी भलाईमें श्रमित होता है, उसमें श्रीमन्तपदपर सुशोभित होनेकी जितनी योग्यता है, उतनी योग्यता क्या उस धनिकमें हो सकती है, जिसकी तृष्णा अपरिमित है, जो कल्दारको ही परमदेव समझता है, विषयोंके दलदलमें आकण्ठ निमग्न रहता है अक्षरोंका शत्रु है और अस्वाभाविक स्थूलता धारण करके जिसका शरीर पृथ्वीका भारभूत होकर किसीके भी काममें नहीं आता है? कदापि नहीं।

अमीरोंके बाह्य आडम्बर और सुखकी सामग्रियोंकी ओर नहीं देखकर उनके अन्तरंगकी दशा देखनी चाहिये। धनके मदसे तथा सुखोपभोगकी लाल-साओंसे उनके हृदय बड़े ही अपवित्र रहते हैं। उनके मनकी प्रवृत्ति उद्योग तथा व्यापारकी ओरसे हटकर व्यसनोंमें तथा ऐशो आराममें समय बितानेकी ओर झुक जाती है। और उस समय उन्हें धनमदका एक अद्भुत रोग हो जाता है। जैसा कि, एक कविने किसी राजासे कहा है कि;—

बधिरयति कर्णविवरं वाचं मूकयति नयनमन्धयति।
विकृतयति गात्रयष्टिं सम्पद्रोगोऽयमद्भुतं राजन्॥

"कानोंको बहिरा कर देता है, वाणीको गूंगी कर देता है, नेत्रोंको अंधा कर देता है, और शरीरको विकृत कर देता है। हे राजन्! यह सम्पत्तिका रोग बड़ा ही अद्भुत है।" इसका अभिप्राय यह है कि, अमीर लोग ऐसे मदान्ध होते हैं कि, वे न तो किसीकी कुछ सुनते हैं, न कुछ जबाब देते हैं, और न किसीकी ओर देखते हैं। विकृत शरीर किये पड़े रहते हैं। इनके विरुद्ध किसी संतोषी गरीबकी झोपड़ी जाकर देखिये कि थोड़ेसे निर्वाहयोग्य परिग्रहमें ही वह कितना सुखी है। प्रतिदिन जीविकाके लिये परिश्रम करके

वह कैसी शान्ति और सन्तोषके साथ सन्ध्याको लूखा सूखा भोजन करके विश्राम करता है। सच कहा है:—

आत्माधीनशरीराणां स्वपतां निद्रया स्वया।
कदन्नमपि मर्त्यानाममृतत्वाय कल्पते॥

अर्थात्, जिनका शरीर स्वाधीन है, जो अपनी निद्रासे सोते हैं, उन मनुष्योंको लूखा सूखा बुरा अन्न भी अमृत सरीखा स्वादिष्ट लगता है।" विषय वासनायें गरीबकी झोपडीसे दूर रहती है, ऐशो आराम पास नहीं फटकते, उद्योग उसका सेवक रहता है, समय समयकी विपत्तियां उसे धर्मचिन्तामें लगाये रहती हैं, और अवसर पड़नेपर धर्म तथा देशके लिये वह सब कुछ कर सकता है।

आज तक जितने २ बड़े २ राज्योंका नाश हुआ है, वह अमीरीसे हुआ है। और जितने राज्य उन्नत हुए हैं, वे गरीबीसे हुए हैं। जब राष्ट्रके अंगभूत अमीर धन संग्रह करना ही अपना परम कर्तव्य समझने लगते हैं, और अपने उत्कृष्ट विचारोंसे च्युत होकर केवल स्वार्थतत्पर होने लगते हैं, तब राष्ट्रकी दुर्दशाका प्रारंभ होता है, और आखिर वह सारा राष्ट्र नष्ट भ्रष्ट होकर परतंत्रताकी दृढ़ संकलोंसे जकड़ा जाता है। पृथ्वीके सबसे बलाढ्य और वैभवशाली रोमन राज्यका सत्यानाश इसी अमीरी लालसासे हुआ था। जो राष्ट्र धनमदसे अंधे होकर स्वेच्छाचारी हो रहे हैं तथा आगे होंगे, उनकी भी आखिरमें रोमन राज्य सरीखी गति होगी।

जिस समय देशमें इस प्रकारकी समझ हो जाती है कि, जो कुछ आदरणीय और प्रार्थनीय वस्तु है, वह केवल एक धन ही है, उस समय सद्गुणोंका बल घटना शुरू हो जाता है, और गरीबी एक अपमानकी वस्तु समझी जाने लगती है। 'येन केन प्रकारेण' न्याय अन्यायसे धन कमानेके सिवाय लोगोंको और कुछ सूझता ही नहीं है। उनके निकट धन कमानेवालेके सिवाय किसीका भी आदर नहीं होता है। गरीब आदमी चाहे जैसा अपूर्व विद्वान हो, उसकी ओर इन लोगोंका दृष्टिपात भी नहीं होता है। इस तरह लक्ष्मीके द्वारा सरस्वती माताका घोर अपमान होने लगता है। और अन्तमें उस अपमान संतापकी उष्ण उच्छासोंसे सारा राष्ट्र झुलसने लगता है।

जिस समय अमीरोंका युग आरंभ होता है, उस समय अधिकार तथा सत्ताका धन कमानेके काममे दुरुपयोग होने लगता है। युवा पुरुषोंमें ऐशो

आराम, विषयलालसा, निर्बलता, आदि दुर्गुणोंका प्रवेश हो जाता है, इसलिये वे अंधाधुंध द्रव्य खर्च करने लगते है। और जब निर्धन हो जाते हैं, तब अपनी इच्छाओंको रोकनेका अभ्यास न होनेसे दूसरोंके धनपर दृष्टि डालते हैं। लज्जा, मर्यादा, इज्जत, विनय आदि सबको ताखमें रख देते हैं, न्याय अन्याय धर्म, अधर्म, और योग्य अयोग्य बातोंकी बगलमें दबा लेते हैं और अन्तमें ये नरपशु धरतीमाताको असह्य कष्ट देते हैं। इंद्रियोंकी तृप्ति करनेके लिये ये विषयोंके संग्रह करनेमें अधिकाधिक कष्ट उठाते हैं, परन्तु उनसे तृप्ति होना तो दूर है, विषयाग्नि और भड़क उठती है। महाकवि श्रीवीरनन्दिने कहा है:—

दहनस्तृणकाष्ठसञ्चयैरपि तृप्येदुदधिर्नदीशतैः।
न तु कामसुखैः पुमानहो वलवत्ता खलु कापि कर्मणः।

अर्थात् घास और काष्ठके समूहसे आग भले ही तृप्त हो जावे, तथा सैकड़ों नदियोंके मिलनेसे समुद्र भले ही संतुष्ट हो जावे, पर मनुष्य विषय सुखोंसे तृप्त नहीं होता है।

इस प्रकारकी अनिवार्य धन तृष्णा तथा धनमद रोमन जातिमें पहली सदीके शुरूमें उत्पन्न हुआ था, जिससे उस बड़े भारी राष्ट्रका धीरे २ नामशेष होगया। वहां विषयसेवन, इन्द्रियोंके तृप्त करनेकी इच्छा, निःसीम व्यभिचार और छल छिद्र बढ़कर शिखरपर पहुंच गये। स्त्री पुरुषोंने लज्जा छोड़कर धर्म कर्म सदाचारको एक ओर रख दिया। तृष्णा निवारण करनेके लिये नाना प्रकारके उपायोंकी योजना होने लगी। लोग स्वेच्छाचारी होकर निद्रादेवीकी सुखकर सेवासे विमुख होकर मादक पदार्थोंका सेवन करने लगे, क्षुधाकी शान्ति भी समयपर साधे भोजनोंसे न करके नाना प्रकारके विकृत पदार्थोंसे करने लगे, जिनसे कि रोगी होने लगे। इस प्रकार इनके तथा और भी अनेक दुर्गुणोंके आधीन होकर जब वहांके लोग अपने पूर्व पुरुषोंके एकत्र किये हुए धनका स्वाहा कर चुके, तब खून डांकेजनी आदि भयंकर कृत्य करने लगे। और अन्तमें अधोगतिको प्राप्त हो गये।

समाजकी अथवा राष्ट्रकी उन्नतिका समय वह नहीं है, जिसमें अमीरीके कारण लोग ऐशोआराममें तथा मौज शौकमें मग्न रहते हैं। किन्तु वह है जिसमें राष्ट्रका प्रत्येक मनुष्य स्वावलम्बी होकर अपने कर्तव्यमें लग जाता है। स्वावलम्बनका यथार्थ महत्व समझकर जब हरएक आदमी अपना २ व्यवसाय करने लगता है, तभी राष्ट्रकी उन्नति हो सकती है। केवल धनकी लालसासे

उन्नति नहीं होती है। जापान सरीखे छोटेसे राज्यने जो संसारचाकित करने-वाली कीर्ति सम्पादन की है, वह इसी स्वालम्बनके बलसे की है। और इधर हमारे हिन्दुस्थानकी जो वर्तमान शोचनीय दशा है, वह उसके विरुद्धधर्मी परावलम्बनके कारण हुई है।

इस पृथ्वीकी पीठपर आजतक जितने विद्वान तत्त्वज्ञानी तथा महात्मा हुए हैं, वे प्राय: गरीबोंकी झोपड़ीमें अथवा गरीबीसे हुए हैं। एक विद्वानका कथन है, कि, "गरीबी यह तत्त्वज्ञानकी दासी है। काटकसरीसे चलानेवाली, मिताहार अ-ल्पसंतोषादिके अभ्यासका पाठ सिखानेवाली, विचारपूर्वक काम करानेवाली, उद्धतता मिटाने वाली और निरन्तर सत्यकी तथा हितकी सम्मति देनेवाली गरीबी जैसी सहेली दूसरी नहीं है। अभिमानसे वह किसीको अन्धा नहीं होने देती है, अधिकार मदसे किसीको भ्रष्ट नहीं होने देती है और सत्ताके बलसे किसीको अन्याय नहीं करने देती है। क्योंकि वह आशा तृष्णा आदि विकारोंसे सदा अलिप्त रहती है।" संसारमें आज तक जितने घोर तथा भयंकर पातक करने वाले हुए हैं, उनमें गरीब लोग बहुत ही थोड़े हुए है। और जितने सुप्रसिद्ध तथा जगतके भूषण-स्वरूप पुरुष हुए हैं, उनमें अमीरी भोगनेवाले बहुतही थोड़े हुए हैं। जगतका इतिहास देखनेसे इस बातका अच्छी तरहसे निश्चय हो जाता है। अमेरिकाके सयुक्तराज्यके आजतक जितने प्रेसीडेंट हुए हैं, उनमें कोई ६–७ ऐसे हुए हैं, जिनके मा बाप बहुत ही गरीब थे। दरिद्रता माताके बड़े भारी स्नेहसे तथा यत्नसे पलकर उन्होंने धीरे २ कितनी उन्नति की और अपने उच्चत्तम गुणोंसे एक बड़े भारी साम्राज्यका अधिकार किस तरहसे पाया, यह विषय इतिहासके जानने वालोंसे छुपा नहीं है।

सारांश यह है कि, बडे २ राज्योंकी स्थापना करनेवाली, लुप्तप्राय धर्मका उद्धार करनेवाली, सारी विद्याओं और कलाओंका शोध लगानेवाली यह गरीबी ही है। गौतम ब्राह्मण अध्ययन अध्यापन कर्म करनेवाले एक गरीब ब्राह्मण ही थे, जो पीछेसे चार ज्ञानके धारी गणधर हो गये। पंडितप्रवर टोडरमलजी एक गरीब माबापके ही लड़के थे, जिन्होंने अपने पांडि-त्यसे जैनधर्मकी डूबती हुई विद्याको बचा लिया। कविवर बनारसीदासजीने गरीबी दशामें ही नाटकसमयसार जैसे अपूर्व उत्कृष्ट ग्रन्थकी रचना की थी। भगवान अकलंकभटने भिक्षावृत्ति करते हुए न्याय शास्त्रोंका अध्ययन किया था और बृहत्त्रयी

लघुत्रयी जैसे ग्रन्थोंकी रचना भी लक्ष्मीदेवीके कटाक्ष विक्षेपोंसे वंचित रहकर ही की थी। ऐसे २ सैकड़ों उदाहरणोंसे इतिहास भरा पड़ा है।

हमारे ग्रन्थोंमें बहुत कथायें ऐसी ही मिलती हैं, जिनमें बड़े २ प्रतापी तथा विद्वान पुरुष अमीर घरानोंमें ही हुए हैं। हम भी उन्हें मानते हैं। परन्तु उनसे हमारे सिद्धान्तका खंडन न होकर उलटा मंडन ही होता है। क्योंकि उन अमीर घरानोंमें उत्पन्न हुए पुरुषोंकी उन्नति तथा ख्याति अमीरीसे नहीं किन्तु गरीबीसे ही हुई है। अर्थात्, उनकी शारीरिक और मानसिक उन्नतियां अमीरी वासनाओंसे नहीं किन्तु गरीबी संयमसे ही हुई थीं। विद्या तथा कलाओंका अभ्यास करते समय प्राचीनकालके उन सब ही अमीरोंको गरीबी व्रतका पालन करना पड़ता था। जैनधर्ममें उसीकी कीर्ति जगह २ गाई है, जिसने अमीरी छोड़कर अपनी आत्माकी उन्नति की थी। जो लोग विषयवासनाओंमें आजन्म डूबे रहे हैं, गरीबीके पवित्र सौख्यसे वंचित रहे हैं, उन्हें जैनधर्मकी कथाओंमें उच्चस्थान नहीं मिला है।

एक देश भक्त सज्जनके कुछ वाक्य लिखकर अब हम इस लेखको समाप्त करते हैं:—"मुझे उस चक्रवर्तीकी विभूति नहीं चाहिये, जिसे सांसारिक भोगोंके भोगनेसे कभी अवकाश ही नहीं मिलता है। मैं तो उस गरीबकी झोपड़ीको ही स्वर्ग समझूंगा, जहां तक सांसारिक वासनाओंकी गन्ध भी नहीं आती है। और एक वक्त लूखा सूखा अन्न खाकर जहां अपनी आत्माकी, अपने धर्मकी और अपने प्राणप्रिय देशकी चिन्ताके लिये समाधि लगाई जाती है.........भाइयो! अमीरोंको सोने दो, वे नहीं जागेंगे। उनके रक्त और मांसमें विलासिताका विष तन्मय हो गया है। उनकी सारी शक्तियां नष्ट हो चुकी हैं। वे दर्शन करनेके सिवाय देशके और किसी उपयोगमें नहीं आवेंगे। तुम्हारे रूक्ष और कठोर शरीरमें देशोद्धारक रक्त वेगसे बह रहा है। देशसेवाके यज्ञमें उसका हवन करनेके लिये तयार हो जाओ। तुम्हारी गरीबी देशको पुष्ट करनेके लिये कामधेनु बनेगी।........

मारवाडी धर्मके नामपर विद्यासे शत्रुता करते हैं।

ज्ञान और विद्या एक वस्तु है तथा मूर्खता और अज्ञान एक पदार्थ है। आज

तक किसीकी अज्ञानतासे कुछ लाभ नहीं हुआ फिर आजकल लोग उससे कैसे लाभ उठावेंगे अथवा कैसे सुखी होंगे ?

योग दर्शनमें एक सूत्र इस आशयका है कि अज्ञानता ही सब दुःखोंकी जड़ है। यदि एक समयमें सारा संसार ज्ञानी अर्थात् विद्वान् हो जाय तो संसार स्वर्ग-धाम बन जाय, लोभ मोहका नाम मिट जाय एवं राजाओंको अपने न्यायालय उठा देने पड़े अथवा वहां कोई न्याय ही के लिये नहीं जाय। क्योंकि ज्ञान चारों ओर शान्तिका सोता बहा देता है उसीमें ज्ञानी निमग्नोन्मग्न हुआ करते हैं। कोई किसीकी वस्तु नहीं चुराता, कोई किसीकी हत्या नहीं करता, कोई किसीके विरुद्ध अपने मनमें द्वेषकी आग नहीं सुलगाता तथा कोई किसीकी वस्तुपर अपना अधिकार नहीं जमाता। मानो ज्ञानरूपी एँजिनमें जोड़ी हुई सबकी मानसिक गाडियां एक लक्ष्य स्थानपर चली जा रही हैं।

कभी २ विद्वानोंमे मतभेद होता है। इसका कारण यह है कि वे परस्पर समान ज्ञानके नहीं होते हैं दीपकका प्रकाश जितनी दूर तक पहुंचता है उतनी ही दूर का अन्धकार दूर होता है। उद्योग कर मनुष्य पूर्ण प्रकाश तक पहुंचते हैं जहां पहुंचनेपर वे दूसरोंको भी उस प्रकाश सुखका अनुभव करा सकते हैं।

मारवाड़ी समाज बड़े अंधेरेमें है उसे हानि लाभके सोचनेकी यथार्थ शक्ति नहीं है क्योंकि वह विद्यासे बहुत दूर है। अज्ञानी अंधोंसे भी बुरे हैं क्योंकि अंधे टटोल कर चल सकते हैं पर अज्ञानियोंको राह चलनेका एक भी साधन प्राप्त नहीं है। वे अपनी छायाको प्रेत समझते हैं, उल्लूके शब्दसे मूर्च्छित होते हैं, मित्रको शत्रु जानते हैं, अपने बलपर भी विश्वास नहीं करते अथवा साधारण शत्रु को दबानेके लिये अपने प्रबल शत्रु को अपने तन मन धन का स्वामी बना देते हैं। ऐसी अवस्था में विना विद्याके मारवाडी समाज अपनी भलाई और बुराई क्या सोच सकता है।

उक्त मारवाड़ियों में विद्या नहीं है किन्तु विद्या सीखनेवालोंमें जो गुण होते हैं अथवा चाहिये वे उनमें विद्यमान हैं उसी से उन्हें अपने काम में कुछ सफलता हो जाती है पर उन्हें यह सोचनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ कि उनकी सफलता स्वरूप सम्पत्ति क्या हुई ? उनके उपार्जन किये हुए अर्ब खर्ब रुपये क्या हुए ! बहियां केवल न देना ही बताती हैं. जितने दिन प्रतिष्ठा निबड़ जाय वही बहुत है। इन दिनों वे केवल पुराने लोटेवाले ही रह गये हैं।

इस पर वे कहने लगेंगे कि हमारी बनायी धर्मशालायें सदाव्रत, छत्रियां तथा मन्दिर हमारी सम्पत्तियों की सूचना दे रहे हैं। हमने अपनी सम्पत्ति धर्म्ममें लगाई है, धन धर्महीं के लिये है।

दुःख की बात है कि वे उन कामोंको करते हैं जो केवल धर्माभास मात्र हैं, जिनसे केवल लुच्चे गुंडे गजेड़ी अथवा अफीमची साधु ब्राह्मण पाले पोषे जाते हैं। मन्दिर और धर्मशालाओंके साथ पुस्तकालय और पाठशालाएं खुलतीं तो वे यथार्थ धर्म कृत्य कहलातीं अन्यथा वहां कौन २ रहस्य होते हैं यह बात पुलिसकी रिपोर्ट बतलावेंगी।

एक दिन एक विद्याप्रचारक ने एक आरा प्रवासी मारवाड़ी से कहा "सेठ-जी कुछ विद्याके प्रचारमें व्यय किया कीजिये ,, उस ने कहा "यह सब पाखंड है विद्या क्या करेगी? यदि ब्राह्मण साधुओं को खिलाऊंगा तो धर्म होगा।" कहने वालेने कह दिया कि "मूर्ख साधु खानेके समय जो अनर्थ करते हैं वे पढ़ लिखकर उसे छोड़ देंगे तथा आप ही धर्मकी बात सिखावेंगे। अस्तु—और नहीं तो अपनी चैनपुरी जमींदारी में तो कहीं पाठशाला स्थापित कीजिये। ,, उक्त बातसे हमारे मनमें यह विचार उठा कि क्या मारवाड़ी धर्मके नाम पर विद्यासे शत्रुता करते हैं?

शिक्षा—आरा।

बालवर्ग।

१ जो जागता है, उस को रात्रि अधिक है। जो थका है, उसको कोस बड़े हैं। जिसको सत्य धर्मका ज्ञान नहीं है, उस मूर्खको संसार भयंकर है।

२ प्रवासीको अपनेसे अच्छा अथवा अपने तुल्य प्रवासी न मिले तो उसको धैर्य्यके साथ अकेले ही राह चलना चाहिये। परन्तु मूर्खके साथ चलना अच्छा नहीं है।

३ ये पुत्र मेरे हैं, यह धन मेरा है, ऐसे विचार मूर्खोंके मनमें आते है। जब वह स्वतः अपना नहीं है, तब फिर लड़के और रुपये उसके कैसे होंगे?

४ मूर्खको अपना मूर्खपना मालूम होनेपर वह अन्तमें होशयार हो जाता है। परन्तु जो मूर्ख अपनेको होशियार समझता है, वह यथार्थमें मूर्ख है।

५ जिस प्रकार चमचेको वस्तुका स्वाद नहीं जान पड़ता, उसी प्रकार मूर्ख जन्मपर्यंत किसी ज्ञानीके साथ रहता हो तो भी उसके ध्यानमें सत्य नहीं आता है।

६ जिसको बुद्धि नहीं है, वह मूर्ख अपना ही शत्रु है। क्योंकि वह जो बुरे कर्म करता है, उसके बुरे फल जल्दी पाता है।

७ जिससे भविष्यतमें पश्चात्ताप हो जिसका फल रो रो कर भोगना पड़े, ऐसा काम करना अच्छा नहीं है।

८ इसके विरुद्ध जिस कर्मके करनेसे पीछे न पछताना पड़े और जिसका फल आनन्द और सन्तोषदायक हो, ऐसा काम करना अच्छा है।

९ बुरे कर्मोंका फल जब तक मिलता नहीं है, तबतक मूर्खको वह मधुसरीखा मीठा प्रतीत होता है। परन्तु जब उसे उसका फल मिलता है, तब उस फलसे उसे दुःख प्राप्त होता है।

१० किसी मूर्खने यतिके तुल्य कई मास तक बराबर पत्तोंपर भोजन किया और किसी अन्य पुरुषने अच्छे प्रकार शास्त्र मनन किया। तो पहिला इस दूसरेके साम्हने पासंग भी नहीं है।

११ जिस प्रकार तुरन्तका दुहा हुआ दूध तुरन्त नहीं फट जाता, उसी प्रकार बुरे कर्मोंका बुरा फल तुरन्त ही नहीं मिलता। बुरे कर्मोंकी बुराई तुरन्त ही समझमें नहीं आती। परन्तु राखसे दबी अग्निके तुल्य वह बुरा फल मूर्खका पीछा नहीं छोड़ता।

१२ बुरे कर्म प्रगट हो जानेपर मूर्खको दुःख होता है। उसकी प्रतिष्ठा नहीं रहती है। इतना ही नहीं वरन वे उसके भाग्यको भी दूषित कर देते हैं।

१३ सन्यासियोंमें अग्रगण्य होने, मठ अथवा मन्दिरोंमें मुख्याधिकारी होने और लोगोंसे अपने पुजाने की वृथा अभिलाषा इत्यादि कीर्तियोंकी चाहना मूर्ख लोग करते हैं।

१४ यह मैंने किया, वह मैंने किया, ऐसा गृहस्थ और सन्यासियोंको मालूम होता है (!) जो कोई कुछ करता धरता हो, वह मेरे कहनेके अनुसार करे, ऐसा मूर्ख चाहता है। इस कारण उसकी तृष्णा और अहंकार नित्य प्रति बढ़ता जाता है।

१५ सम्पत्ति मिलनेका एक अलग मार्ग है, और निवार्ण प्राप्तिका एक दूसरा मार्ग है। जो सन्यासी बुद्धका शिष्य है, उसे सांसारिक विषयवासनाओंका परित्याग करना चाहिये और उनसे बचनेका प्रयत्न करना चाहिये।

(बौद्ध धम्मपदसे उद्धृत)

शास्त्रीयचर्चा।

(४)

सचित्त और अचित्त।

संस्कृतमें चित्त शब्दका अर्थ जीव होता है। जो पदार्थ जीव सहित होता है उसे सचित्त कहते हैं, और जो जीवरहित होता है उसे अचित्त कहते हैं। अचित्तका पर्यायवाची प्रासुक और सचित्तका पर्यायवाची अप्रासुक शब्द है। अर्थात् सचित्त अप्रासुक, और अचित्त प्रासुक ये एक ही अर्थके बतलानेवाले दो २ शब्द हैं।

जब श्रावक अपने संयमकी वृद्धि करते २ पांचवीं कक्षामें प्रवेश करता है, अर्थात् सचित्तत्याग प्रतिमाको धारण करता है, तब वह सम्पूर्ण सजीव पदार्थोंके खानेका त्याग कर देता है। केवल ऐसे प्रासुक पदार्थ खाता है, जिनमें किसी भी प्रकारके जीव नहीं रहते हैं। यद्यपि आरंभादि कार्योंमें वह शक्तिके अनुसार केवल त्रस जीवोंका ही घात बचा सकता है, स्थावर एकेन्द्रिय जीवोंकी हिंसाको नहीं पाल सकता है, तो भी हिंसासे उसे इतनी ग्लानि हो जाती है, परिणाम उसके ऐसे कोमल हो जाते हैं कि, एकेन्द्रिय जीव संयुक्त भोजनको भी वह छोड़ देता है। अर्थात् संसारका प्रपंच पीछे लगे रहनेसे आरंभजनित हिंसाका तो उससे त्याग नहीं बन सकता है, परन्तु सचित्त भक्षणकी हिंसासे बचनेके लिये वह पांचवीं प्रतिमामें समर्थ हो जाता है। जो दयावान् श्रावक इस कक्षामें प्रवेश करता है, वह हरित अर्थात् सचित्त कन्दमूल आदि पदार्थोंको नहीं खाता है। अचित्तको खाता है।

सचित्त पदार्थ अचित्त कैसे हो सकते हैं, अथवा कैसी अवस्था प्राप्त होनेपर वे अचित्त कहे जाते हैं, इसके लिये निम्नलिखित गाथा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी संस्कृत टीकामें श्रीशुभचन्द्राचार्यने उद्धृत की है:—

सुक्कं पक्कं तत्तं अंबिललवणेहिं मिस्सियं दव्वं।
जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुयं भणियं॥

इसका अर्थ यह है कि जो पदार्थ सूखे हुए, पके हुए, गरम किये हुए, खटाई और लवणसे मिले हुए तथा यंत्रसे छिन्न भिन्न किये हुए हों, वे सब प्रासुक अर्थात् जीवरहित होते हैं। मतलब यह कि, साधारण तथा प्रत्येक दोनों प्रकारकी वनस्प-

तियां और जल आदि पदार्थ सूखने पकने आदि उपर्युक्त अवस्थाओंमेंसे किसी एक अवस्थामें परिणत होकर जीवरहित हो जाते हैं। और ऐसी प्रासुक अवस्थामें उन पदार्थोंको सचित्तत्याग प्रतिमाका धारण करनेवाला श्रावक भक्षण करता है। सचित्तत्याग प्रतिमाका स्वरूप हमारे सम्प्रदायके प्रायः सभी ग्रन्थोंमें इसी प्रकार कहा है। थोड़ेसे ग्रन्थोंका प्रमाण यहां उद्धृत करते हैं:—

मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः॥

(रत्नकरण्डश्रावकाचार।)

अर्थात्, जड़, फल, पत्ते, शाखा, करीर (बांसकी कोंपल) कन्द, फूल, और बीजोंको जो कच्चे नहीं खाता है, अर्थात् पके हुए खाता है–अचित्त किये हुए खाता है, वह दयाकी मूर्तिस्वरूप सचित्तत्यागी श्रावक है।

जं वज्जिज्जइ हरियं तुयपत्तपवालकंदफलबीयं।
अप्पासुगं च सलिलं सचित्तविणिवित्ति तं ठाणं॥

(वसुनन्दिश्रावकाचार।)

अर्थात् जिसमें छाल, पत्र, अंकुर, कन्द, फल, बीज, इन हरित पदार्थोंका और अप्रासुक (कच्चे) पानीका त्याग होता है, वह सचित्तविनिवृत्ति नामकी प्रतिमा है।

हरिताङ्कुरबीजाम्बुलवणाद्यप्रासुकं त्यजन्।
जाग्रत्कृपश्चतुर्निष्ठः सचित्तविरतःस्मृतः॥

(सागारधर्मामृत।)

हरे अंकुर, बीज, जल, नमक आदि (कन्द, मूल, फूल) अप्रासुक अर्थात् जीवसहित पदार्थोंका त्याग करनेवाला श्रावक जिसके हृदयमें सदा दयाका निवास रहता है, तथा जो पहली दर्शन व्रत आदि चार प्रतिमाओंको पालता है, सचित्तत्यागी है, ऐसा समझना चाहिये।

---

१ पं० सदासुखजीने इसकी टीका इस प्रकारकी है–"जो श्रावक मूल फल पत्र डाहली करीर कहिये वंशकिरण, अर कन्द अर मूल अर बीज ये अग्निकरि पके हुये नहीं होंय तिनकूं निरर्गल भक्षण नहीं करै सो श्रावक दयाकी मूर्ति सचित्तविरत नाम पंचम पदकूं अंगीकार करै है।"

न भक्षयति योऽपक्वं कन्दमूलफलादिकम् ।
संयमासक्तचेतस्कः सचित्तात्स पराङ्मुखः ॥ ५३७

(सुभाषितरत्नसन्दोह ।)

जो विना पके हुए कन्द मूल फल आदि भक्षण नहीं करता है, वह संयमासक्तचित्त श्रावक सचित्तत्याग प्रतिमाका धारक है ।

सच्चित्तं पत्तफलं छल्ली मूलं च किसलयं बीजं ।
जो ण य भक्खदि णाणी सच्चित्तविरओ हवे सोवि ॥

(स्वामिकुमारानुप्रक्षा ।)

जो ज्ञानी सचित्त पत्र, फल, छाल, मूल, कोंपल, और बीजोंको भक्षण नहीं करता ह, उसको सचित्तविरत श्रावक कहते हैं ।

सर्वजीवकरुणापरचित्तो यो न खादति सचित्तमशेषम् ।
प्रासुकाशनपरं यतिनाथास्तं सचित्तविरतं निगदन्ति ॥

(धर्मपरीक्षा ।)

जो जीवमात्र पर दया करनेवाला पुरुष किसी भी सचित्त पदार्थको नहीं खाता है, उस प्रासुक भोजन करनेवालेको सचित्तविरत कहते हैं ।

इस विषयमें अकसर लोग यह शंका किया करते हैं कि, सचित्तसे अचित्त करनेमें जीवोंका घात तो हो ही जाता है, उनकी हिंसा तो लग ही जाती है, फिर अचित्त करके खानेसे क्या फल हुआ ? परन्तु यह शंका ऐसे ही लोग करते हैं, जो श्रावकाचारके तथा प्रतिमाओंके क्रमको नहीं जानते हैं । पहिली प्रतिमासे लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा तकका क्रम बहुत ही सुन्दर और सरल है । उसमें चारित्रकी वृद्धि क्रम क्रमसे की गई है । यह तो बहुत ही अच्छा है कि, जो पुरुष सचित्तका त्याग करता है, वह उसके अचित्त करने रूप आरंभका भी त्याग कर दे । परन्तु यदि किसीकी सामर्थ्य सचित्त भक्षणका त्याग करनेकी ही हो, तो क्या उसे नहीं करने देना चाहिये ? क्या उससे यह कह देना चाहिये कि, जब तू दोनों प्रकारका त्याग कर सकै, तभी करना ? नहीं, आचार्योंने जो चारित्रकी कक्षायें बनाई हैं, वे इसी अभिप्रायको सोच कर बनाई हैं कि, जिससे जितना हो सकता है, वह उतना ही करै ? यदि ऐसा न किया जाता, तो जैनमार्ग दुष्प्रवेश हो जाता । शक्तिशालियोंके सिवाय कम शक्तिवाले इस मार्गके पास

भी नहीं फटकने पाते । सारांश यह है कि,सचित्तके भक्षणका त्याग पांचवी कक्षामें होता है, और सचित्तसे अचित्त करनेका त्याग उससे दो कक्षा ऊपर चढ़ चुकने पर आठवीं आरंभत्याग प्रतिमामें होता है। जिसे आरंभ करनेका त्याग होता है, वह सचित्त खाता भी नहीं है, और सचित्तसे अचित्त करता भी नहीं है। परन्तु यदि उसे अचित्त की हुई वस्तु खानेको दी जावेगी, तो वह उसे खा लेगा। उसमें उसे कुछ भी दोष नहीं लगेगा। क्योंकि वह वस्तु निर्दोष है–प्रासुक है। मुनिराज भी यदि कोई श्रावक उन्हें पकी हुई सूखी हुई वस्तु देता है,तो आहारमें ले लेते हैं।

ऊपरके श्लोकोंमें जो कन्दमूलादि पदार्थोंके सुखा पकाकर खानेका विधान किया है, उसपर भी बहुत लोग आक्षेप करेंगे कि, प्रत्येक वनस्पतिको सुखा पकाकर खानेकी बात तो किसी तरहसे मान भी ली जावे, परन्तु साधारणवनस्पति कन्द मूल जो कि, बिलकुल निषिद्ध तथा अभक्ष्य बतलाये गये हैं, उन्हे पकाकर खानेकी बात कैसे मानी जा सकती है? उनसे हमारा निवेदन है कि, कंदमूलादि जो अनन्तकाय हैं प्रासुक करनेसे उनके अनन्त जीवोंका घात तो होता ही है। परन्तु विचारनेकी बात यह है कि, उस समय जब कि श्रावक सचित्तत्यागी होता है, क्या उसकी ऐसी अवस्था होती है कि, एकेन्द्रिय जीवोंके घातका भी सर्वथा त्याग कर दे? नानाप्रकारके आरंभोंमें स्थावर हिंसाका तो वह किसी तरहसे बचाव कर ही नहीं सकता है। फिर यदि उससे इस अचित्त करनेके आरंभमें हिंसा हो गई, तो क्या अनहोनी हो गई? इसके सिवाय हमारा कुछ आग्रह भी तो नहीं है कि, आप अचित्त करके खावें ही खावें। आप नहीं खाते हैं, तो बहुत अच्छी बात है। परन्तु यह श्रद्धान आपको आपने जीमेंसे अवश्य निकाल देना चाहिये कि, सचित्तत्याग प्रतिमामें आरंभका त्याग कहा है। यदि आपका ऐसा श्रद्धान है, तो वह मिथ्या है।

ऊपर जो श्लोक दिये हैं, उनमें किसीमें मूल और किसीमें कन्द आदि शब्द देकर स्पष्ट कर दिया है कि, इनके कच्चे खानेमें ही दोष है। इसके सिवाय अनेक आचार्योंने भोगोपभोगपरिणामव्रतमें भी इन कन्दमूलादि पदार्थोंका त्याग कराया है, परन्तु वहां भी अभिप्राय सचित्तसे ही रक्खा है। जैसे कि, भगवान् समन्तभद्रने नीचे लिखे श्लोकमें 'आर्द्र (गीले विना पके)' विशेषण देकर स्पष्ट किया है:—

अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि शृंगवेराणि ।
नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥

अर्थात् जिनमें थोड़ा फल और हिंसा अधिक हो, ऐसे गीले अदरख मूला ....आदि पदार्थोंका त्याग करना चाहिये ।

महाकवि हरिश्चन्द्रने भी धर्मशर्माभ्युदयमें कहा है:—

आर्द्रकन्दं कालिङ्गं वा मूलकं कुसुमानि च।
अनन्तकायमज्ञातफलं सन्धानकान्यपि ॥

इसमें भी आर्द्र विशेषण दिया है जिसका अर्थ यह है कि कन्द मूल गीले अर्थात् सचित्त नहीं खाय ।

सचित्त कन्द मूलादिके त्याग करनेकी मुख्यता होनेसे ही भोगोपभोग परिमाणव्रतके सचित्तसम्बन्ध आदि पांच अतीचार सूत्रकारने कहे हैं । यदि सचित्तकी मुख्यता नहीं होती, तो सचित्तसम्बन्ध आदि अतीचार कैसे घटित होते ?

एक बात यह भी विचारने योग्य है कि, प्राय: जितने लोग हरीका त्याग करनेवाले हैं, वे गुवारफली, भिंडी, सोंठ, हलदी, और पंसारियोंकी सैकड़ों दवाइयां सूखी हुई खाते हैं, परन्तु यदि ये ही चीजें आगमें पकाकर उन्हें दी जावें, तो नहीं खाते हैं । क्यों ? क्या जिस तरह सुखानेसे ये चीजें अचित्त हो जाती हैं, उस तरह पकानेसे नहीं होती है ? जो जीव सुखानेसे नष्ट हो जाते हैं, वे क्या पकानेसे बने रहते होंगे ? गेहूं आदि अनाज जबतक उनमें ऊगनेकी शक्ति रहती है, सचित्त हैं । उन्हें हम प्रति दिन पिसाकर तथा पकाकर खाते हैं, उसमें दोष नहीं होता है । परन्तु यदि कोई हरा शाक अष्टमीके दिन पकाकर खा लिया जाय, तो अन्याय समझा जाता है । पाठकोंको यहां भी यह नहीं समझ लेना चाहिये कि, ये पर्वदिनोंमें हरी चीजको पकाकर खानेका उपदेश देते हैं । नहीं; हमारा आक्षेप तो इस अबुद्धिपूर्वक त्याग पर है ! जहां देखो,

---

१ पंडित सदासुख जी 'आर्द्राणि' पदका अर्थ करनेमें भूल कर गये हैं । उन्होंने 'आर्द्राणि' का अर्थ अदरख (आदो) किया है, और शृंगवेरको कोई दूसरी चीज समझके जुदा लिख दिया है । परंतु यथार्थमें शृंगवेर शब्दका ही अर्थ अदरख है 'आर्द्राणि'का नहीं । अदरखका पर्यायवाची शब्द 'आर्द्रक' है, 'आर्द्र नहीं है । आर्द्रका अर्थ तो गीला ही होता है ।

वहीं उलटी समझ हो रही है। शास्त्रोंमें क्या कहा है, इसपर किसी की भी दृष्टि नहीं है! सब रूढ़ीके दास बन रहे हैं। समझ कुछ ऐसी हो रही है कि, उसमें रूढ़ीके विरुद्ध एक बाल भी प्रवेश करनेको मार्ग नहीं है।

यहांपर हम यह भी कह देना चाहते हैं कि, इस सुखा पकाकर तयार किये हुए पदार्थोंमें कुछ भी दोष नहीं है। उनके खानेमें कुछ भी पाप नहीं होता है।

गोमठसारकी योगमार्गणामें जहां सत्यवचनयोगके कथनमें भावसत्यका स्वरूप बतलाया है, वहांपर २१९ वीं गाथाकी संस्कृतटीकामें इस प्रकार कहां है—

" अतीन्द्रियार्थेषु प्रवचनोक्तविधिनिषेधसंकल्पपरिणामो भावः। तदाश्रितसंवचनं भावसत्यम्। यथा शुष्कपक्वध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रदुग्धादि द्रव्यं प्रासुकम्। ततस्तत्सेवने पापबन्धो नाऽस्तीति पापवर्ज्जवचनम्। अत्र सूक्ष्मप्राणिनामिन्द्रियागोचरत्वेऽपि प्रवचनप्रामाण्येन प्रासुकाप्रासुकसंकल्परूपभावाश्रितवचनस्य सत्यत्वात् समस्तातीन्द्रियार्थज्ञानिप्रणीतप्रवचनस्य सत्यत्वादेव कारणात्। चशब्द एवंविधानुक्तभावसत्यसमुच्चयार्थः।"

पण्डितप्रवर टोडरमल्लजीने इसकी वचनिका इस तरहसे की है;—" बहुरि अतीन्द्रिय जे पदार्थ तिन विषै सिद्धान्तके अनुसारि विधि निषेधका संकल्परूप जो परिणाम सो भाव कहिए। तींहनैं लिएं जो वचन सो भावसत्य कहिए। जैसे जो सूकि गया होइ, वा अग्निकरि पचा होइ, वा घरटी कोल्हू इत्यादिक यंत्रकरि किया होइ, अथवा खटाई वा लूणकरि मिश्रित हुवा होइ, वा भस्मीभूत हुवा होइ वस्तु ताको प्रासुक कहिये। **याके सेवनतैं पापबंध नाहीं** इत्यादिक पापवर्जनरूप वचन सो भावसत्य कहिए। यद्यपि इन वस्तुनिविषैं इन्द्रियअगोचर सूक्ष्म जीव पाइए है, तथापि आगमप्रमाणतै प्रासुक अप्रासुकका संकल्परूप भावके आश्रित ऐसा जो वचन सो सत्य है। जातैं समस्त अतीन्द्रिय पदार्थके ज्ञानीनिकरि कह्या हुवा वचन सत्य है। चकारकरि ऐसे ही और भावसत्य जानना।"

---

१ संस्कृतमें यहांपर 'दुग्धादिद्रव्यं, ऐसा पद है, जिसका अर्थ दूध आदि पदार्थ होता है। परन्तु पं० टोडरमलजीने इसका 'अर्थ भस्मीभूत' हुवा किय है। ऐसा जान पड़ता है, उनके पास जो टीका होगी, उसमें 'दग्धादिद्रव्यं' ऐसा पाठ होगा। और यही ठीक मालूम होता है।

पं० सदासुखजीने भी अर्थप्रकाशिकाके आठवें अध्यायमें इसी प्रकार कहा है। देखिये–" वहुरि अतीन्द्रिय अर्थविषै शास्त्रोक्त विधिनिषेधका संकल्परूप परिणाम सो भावसत्य है। जैसे सूकि गया तथा अग्निकरि पकाया, तथा चाकीमैं सिलावटी लोढीतैं पीस्या तथा जंत्रतैं पील्या तथा आमली (आम्ल ?) लवणकरि मिल्या द्रव्य प्रासुक है। **प्रासुक सेवनतैं पापबंध नहीं है**। ऐसे प्रासुकमैं दृष्टिके अगोचर सूक्ष्मप्राणका पतन हो जायि, तो कौन जानैं। परन्तु भावमें प्रासुक हो गया। सो याकूं प्रासुक कहना सो भावसत्य है।

हम समझते हैं, जैन समाजके सम्मुख अब इस विषयमें इन तीन प्रमाणोंसे अधिक और कहींके प्रमाण खोजकर उपस्थित करनेकी जरूरत नहीं होगी। क्योंकि पं० टोडरमलजी आदिके वचनोंपर समाजको बहुत बड़ा विश्वास है।

अभीतक सचित्त और अचित्तके विषयमें जो कुछ अध्ययन किया है, तथा विद्वानोंके मुंहसे सुना है, उसके अनुसार हमने अपने विचार इस लेखमें प्रगट किये हैं। यदि इसमें हमारी कुछ भूल हो, तो पाठकोंको स्पष्ट शब्दोंमें प्रगट करना चाहिये। यदि वास्तवमें भूल होगी, तो हम उसे बड़ी खुशीसे स्वीकार कर लेंगे।

वर्तमानमें तो हमारे जैनी भाइयोंमें ऐसे ही सज्जन बहुत हैं, जो अपने विचारोंसे विरुद्ध एक अक्षर भी नहीं सुनते हैं। उनमें इतनी भी सहनशीलता नहीं है इतनी भी निष्पक्ष बुद्धि नहीं है कि अपनेसे भिन्न विचारवालेकी किसी बातको सुनकर उसपर विचार कर सकें, उसे मान लेना तो बहुत कठिन बात है। और हमारी इस लेखमालामें बहुधा ऐसे ही विषयोंकी चर्चा की जा रही है, जिनका स्वरूप कुछ और है, और लोग समझ कुछ और रहे हैं। इसलिये यह तो विश्वास है कि, इस समय तो इन लेखोंके प्रतापसे हमको खूब उलटी सीधीं सुनना पड़ेंगी, बल्कि एक सज्जनने तो सुनानेका प्रारंभ भी कर दिया है, तौ भी समाजमें विचार करनेवालोंका सर्वथा अभाव नहीं हो गया है। अब भी सैकड़ों सज्जन ऐसे हैं, जो विचार करनेकी शक्ति रखते हैं, तथा आगे भी ज्यों ज्यों शिक्षाका प्रचार होगा, त्यों त्यों दुराग्रह हटता जावेगा, और यथार्थ बात खोजनेवाले तयार होंगे, इस आशासे हम अपने इस प्रयत्नसे नहीं हटते हैं। यदि एक भी सज्जनने हमारे अभिप्रायको समझा और उसपर निष्पक्ष विचार किया, तो हम अपने परिश्रमको सफल समझेंगे।

इस लेखका हरितकाय (हरी)के त्यागके साथ बहुत बड़ा सम्बन्ध है। इसलिये हम आगेके अंकमें इस बातको विस्तारके साथ लिखेंगे कि, हरित और हरितका त्याग क्या है। लोगोंकी इस विषयमें प्रवृत्ति क्या हो रही है और सिद्धान्तकारोंका अभिप्राय क्या है।

विविधसमाचार।

दिगम्बर जैन प्रान्तिक सभा बम्बईका वार्षिक अधिवेशन कार्तिक सुदी १२ १३-१४ को श्री मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्रपर होनेवाला है। सभापति शेठ हीराचन्द रामचन्द्जी शोलापुरवाले होंगे।

बेलगांवमें एक जैनबोर्डिंगस्कूल स्थापित करनेके लिये वहांके प्रसिद्ध व्यापारी धर्मप्पा सूबेदारने २००००) रुपये देनेका संकल्प किया है।

आश्विन सुदी ११ को अहमदाबादमें दिगम्बरजैन श्राविकाश्रम बड़े भारी उत्साहके साथ खोल दिया गया।

नागपुरके सुप्रसिद्ध शेठ गुलाब साहजीके उत्तराधिकारी शेठ नेमीलालजी पासूसाहका भादों सुदी १५को अचानक स्वर्गवास हो गया। आप बड़े ही सज्जन और विचाररसिक थे। संस्कृत भाषामें आपकी अच्छी योग्यता थी। आपकी मृत्युसे हमको बहुत ही शोक हुआ है

मि० हरिनाथ दे नामके एक विद्वान्की संस्कृतमें सबसे ऊंची परीक्षा ली गई और उसमें उन्हें प्रतिशत ८० नम्बर मिले। इससे प्रसन्न होकर सरकारने उन्हें ५०००)का पारितोषक दिया है। संस्कृतके समान ग्रीक, लैटिन, पाली और वैदिक भाषाओंकी अत्युच्च परीक्षाओंमें भी आप इसी तरह उत्तीर्ण हुए हैं। इन भाषाओंके सिवाय उड़िया, अरबी, जर्मन, फ्रेंच, स्पानिश, रशियन, और अंग्रेजी भाषामें भी आप बहुत अच्छी योग्यता रखते हैं। इस समय आपकी उमर कुल ३२वर्षकी है! आप अपनी भारतमाताका मुंह उज्ज्वल करनेवाले सच्चे सुपुत्र हैं।

कोल्हापुर जैनेन्द्रप्रेसके मालिक पं० कलापा भरमापा निटवे सूचित करते हैं कि, हम जैनियोंके महान् ग्रन्थ श्रीगोमठसारजी संस्कृतटीका और पं० टोडरमलजीकृत वचनिकासहित छपानेको प्रबंध कर रहे हैं। बड़ी खुशीकी बात है। ग्रन्थके संशोधनके विषयमें पंडितजीको बहुत लक्ष्य रखना चाहिये।

शोलापुरके शेठ जीवराज गोतमचन्दजी पहले दो एक हिन्दी ग्रन्थोंका मराठी अनुवाद करके छपा चुके हैं। अब उन्होंने आत्मानुशासनका मराठी अनुवाद भी किया है और वह छपके प्रकाशित हो चुका है। मराठीमें जैनसाहित्यका प्रचार करनेका उनका यह प्रयत्न बहुत ही प्रशंसनीय है। गुजरातीमें ऐसे प्रयत्नकी और भी अधिक जरूरत है।

जैनहितैषीका नया साल।

दिवालीसे जैनहितैषीका नया साल शुरू हो गया। जिन भाइयोंको ग्राहक होना हो, उन्हें जल्दी करनी चाहिये और १॥) पेशगी भेजकर अपना नाम दर्ज करा लेना चाहिये। क्योंकि इस पत्रके ग्राहक सालके शुरूहीसे किये जाते हैं। बीचमेंसे नहीं। जो बीचमेंसे ग्राहक बनते हैं, उन्हें शुरूके सब अंक भेजकर दिवालीसे ही ग्राहक समझ लिया जाता है। अर्थात् एक दिवालीसे दूसरी दिवाली तक ही जैनहितैषीके ग्राहक बनाये जाते हैं। इसी लिये कहते हैं कि ग्राहक होनेका पत्र भेजनेमें देर नहीं करना चाहिये।

नये सालका पहला अंक शीघ्र तयार किया जावेगा। यह अंक हम अपने पुराने सभी ग्राहकोंको भेज देंगे, और दूसरा अंक निकलने तक इस बातकी वाट देखेंगे कि किसीको ग्राहक रहना अस्वीकार तो नहीं है। जो महाशय आगेकी साल ग्राहक नहीं रहना चाहें, उन्हें कृपा करके एक कार्डके जरिये हमको इत्तला दे देना चाहिये ताकि हम उनको आगेसे जैनहितैषी भेजना बन्द कर दें। जिन महाशयोंकी कोई इंकारीकी सूचना नहीं मिलेगी, उन्हें हम समझेंगे कि वे ग्राहक रहना चाहते हैं। और उपहारका अपूर्व ग्रन्थ तयार होते ही उनकी सेवामें मूल्यका वी. पी. एक रुपये नो आनेका कर देंगे।

हमको आशा है कि, अबके सालके उपहारका विचार करके हमारे वर्तमान पाठक नये सालके ग्राहक स्वयं तो रहेंगे ही बल्कि प्रेरणा करके कमसे कम एक एक दो २ ग्राहक बनानेकी और भी कोशिश करेंगे। और हमारे उत्साहको बढ़ावेंगे।

नया उपहार।

अबके साल उपहारमें जो ग्रन्थ रक्खा गया है, वह हिन्दी साहित्यमें बिलकुल नई चीज है। महाकवि वादीभसिंहका क्षत्रचूड़ामणि काव्य संस्कृतमें एक अपूर्व ग्रन्थ है। क्योंकि संस्कृतके जितने काव्य हैं, वे प्रायः शृंगार रससे ओतप्रोत भरे हुए हैं। छोटे २ बालकोंकी बुद्धिपर वे बहुत बुरा असर करते हैं। परन्तु क्षत्रचूड़ामणि काव्य इस दोपसे बिलकुल बचा हुआ है। यह हरएक बालक बालिकाको पढ़ाया जा सकता है। और इसके पढ़नेसे बालकोंका चरित्र बहुत ही उन्नत हो सकता है। इसमें जीवंधरस्वामीकी कथाके साथ २ प्रत्येक श्लोकमें बहुत ही उत्तम नीतिका वर्णन किया है। इसकी कविता बहुत ही उत्तम है और अर्थकी गंभीरता तो इतनी है कि "भारविका अर्थ-गौरव" अलग ही रह जाता है। यह ग्रन्थ मूल संस्कृतमें छप चुका है और प्रवेशिकाके विद्यार्थियोंको पढ़ाया जाता है। परन्तु अभीतक भाषा जाननेवालोंके लिये इसका कुछ भी उपयोग नहीं होता था। जिन्हें अच्छे २ ग्रन्थोंके पढ़नेका शौक है, पर संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें निराश होना पड़ता था। इसलिये हमने इसे हिन्दी अनुवाद सहित छपानेका और हितैषीके पाठकोंको मुफ्तमें देनेका विचार किया है। अनुवाद करने वाले लाहौरके पेंशनयाफ्ता प्रोफेसर लाला मुंशीलाल जी एम. ए. हैं जो हिन्दीके सुलेखक और संस्कृत अंग्रेजीके बड़े भारी विद्वान् हैं। फिर उनका अनुवाद कैसा अच्छा होगा, इसके

विषयमें तो कहना ही क्या है। यह केवल संस्कृत ग्रन्थ एक रुपयामें मिलता है। परन्तु हम अनुवादसहित मुफ्तमें देंगे। कितना लाभ है? यदि इस साल हमारे पाठकोंने ग्राहक बनकर और एक २ दो २ नवीन ग्राहक बनाकर जैनहितैषीके केवल एकहजार ही ग्राहक कर दिये, तो आगे प्रतिवर्ष एक ऐसे ही ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद तयार कराके उपहारमें दिया जाया करेगा, जिसका पहले हिन्दीमें अनुवाद न हुआ हो। ऐसा करनेसे हिन्दीके जैन साहित्यकी कितनी वृद्धि होगी, यह चतुर पाठकोंको समझानेकी जरूरत नहीं है।

इस वर्षमें जैनहितैषीने जैन साहित्यकी जैसी कुछ सेवा की है, वह हमारे पाठकोंसे छुपी नहीं है। तो भी जैनियोंके तथा सर्वसाधारणके पत्रोंने इसके विषयमें अपनी क्या रायें दी हैं उन्हें हम यहांपर प्रकाशित करते हैं;—

समाचार पत्रोंकी सम्मतियां।

"**जैनहितैषी**–हमको अब जैनहितैषीकी हालत देखकर हर्ष होता है।...... ....यह पत्र बराबर उन्नति कर रहा है। और अब इसमें अच्छे २ लेख और सम्पादकीय विचार प्रगट होते हैं। अतएव हमारे भाइयोंको इसका जरूर ग्राहक होना चाहिये। यद्यपि इसका वार्षिक मूल्य १।) रु० है, परन्तु एक प्रकारसे यह पाठकोंको विना मूल्य ही दिया जाता है। क्योंकि १।) के मूल्यका कोई न कोई ग्रन्थ उपहारके तौरपर दे दिया जाता है।

[**जैनगजट**–ता० ८ अगस्त १९०९]

"**जैनहितैषी**—.........लेख रोचक और इतिहासपूर्ण हैं। उपहार सहित मूल्य १॥) वार्षिक है। विद्याप्रेमियोंको अवश्य ग्राहक होना चाहिये।

[**जैनमित्र**–५ जुलाई १९०९]

"**जैनहितैषी**–.........मजमून मजहबी और कौमी तरक्कीके लिये पुरअसर और जोशीले होते हैं। और सबसे बडी खूबी इस रिसालेके अन्दर यह

है कि, इसमें जैन आचार्योंके हालात भी दर्ज होते हैं......इस रिसालेका खरीदार हरएक जैनीको होना जरूरी है।

(**जैनप्रचारक** उर्दू–अंक ३–४ देवबन्द)

जैनहितैषी–.........इस पत्रमें उत्तम लेख, बोधप्रद कथा, धार्मिक टीकात्मक निबंध तथा ऐतिहासिक संशोधात्मक विषय प्रकाशित होते हैं। इस लिये यह हिन्दी भाषाका उच्चश्रेणीका मासिकपत्र हो गया है। इससे हमको बहुत संतोष हुआ है......सम्पादककी महत्वाकांक्षा इसे इससे भी उच्च कोटिका पत्र बनानेकी है, परन्तु ग्राहकोंकी सहायता न होनेसे वे इस समय घाटा उठा रहे हैं। इसलिये जैनी भाइयोंको इसके ग्राहक अवश्य होना चाहिये।

(**वन्दे जिनवरम्** मराठी–जुलाई १९०९)

"**जैनहितैषी**–.........इसमें शास्त्रीय चर्चा, शिक्षादायक रसीले उपन्यास, जानने योग्य संक्षिप्त समाचार, और धर्मसम्बन्धी विद्वत्तापूर्ण लेख प्रगट होते हैं, और इसके ग्राहकोंको......महान ग्रन्थ भेंट किया जाता है, जिससे यह पत्र तो मुफ्तमें पड़ जाता है।

(**दिगम्बरजैन** गुजराती–ज्येष्ठ सं० १९६५)

"**जैनहितैषी**–यह हिन्दीभाषाका एक मासिकपत्र है, जो बम्बईसे निकलता है। इसके दो अंक हमें मिले, जिन्हें पढ़कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई। लेख बहुत उपयोगी और सारगर्भित हैं, तथा भाषा प्रौढ़ और रोचक है। हिन्दीमें यह एक निराले ढंगका पत्र है। केवल जैनियोंके कामका ही नहीं है, वरञ्च हिन्दी साहित्यके प्रेमीमात्रके पढ़ने योग्य है।

(**भारतमित्र**–कलकत्ता ९ अक्टूबर १९०९)

जैनहितैषी बम्बईसे निकलता है। उसके नये सम्पादक बाबू नाथूरामजीने उसमें नयी जीवट डाल दी है। ... ...

(**शिक्षा**–आरा १४ अक्टूबर १९०९)

नोट—जैनहितैषीके पुराने ग्राहकोंको चिट्ठीमें अपना नम्बर और नये ग्राहकोंको "नयाग्राहक" यह शब्द अवश्य लिख देना चाहिये। चिट्ठी पत्री इस पतेसे लिखिये;—

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो. गिरगांव—बम्बई.

पुस्तक समालोचन।

शिक्षकोंके कर्तव्य—इस छोटीसी पुस्तकको खंडवाके बाबू चम्पालालजी जौहरीने मराठी भाषासे अनुवादित करके प्रकाशित की है। प्रत्येक माष्टरको तथा अध्यापकको यह पुस्तक वांचना चाहिये, और अपने कर्तव्य क्या हैं, उन्हें जान लेना चाहिये। पुस्तककी भाषा यद्यपि सरल है, परन्तु उनके स्थानोंमें मराठीपन रह गया है, घरदार, पुष्कळ, क्षुल्लक आदि शब्द हिन्दीमें बहुत खटकते हैं मूल्य डांक खर्च सहित दो आना। ग्रन्थकर्ताके पास ही पुस्तक मिल सकती है।

आत्मानुशासन—मराठी टीका सहित—शोलापुरके शेठ जीवराज गोतमचन्दजीने पं० टोडरमलजीकृत हिन्दी वचनिका परसे यह ग्रन्थ मराठी भाषामें अनुवादित किया है। मूल्य दो रुपया। छपाई सफाई बहुत अच्छी। ग्रन्थकी भाषा सरल है। मराठी जाननेवालोंके लिये यह एक शुभ सम्वाद है कि, उनकी भाषामें एक ऐसे उत्तम ग्रन्थका अनुवाद किया गया है. जिसके बनानेवाले पं० टोडरमलजी जैसे धुरंधर विद्वान् हैं। हिन्दीमें अभी ऐसे बहुतसे ग्रन्थ है, जिनका अनुवाद मराठीमें होनेकी बहुत जरूरत है। आशा है कि, शोलापुरके शेठ लोग अपने इस प्रयत्न में और भी उत्साह दिखलावेंगे। जिन भाइयोंको यह ग्रन्थ चाहना हो. वे शोलापुरकी जैन बुकडिपोसे मंगालेवें।

विविध विषय।

सस्ते साहित्यका प्रचार—बम्बई-"सस्तूं साहित्य प्रचारक मित्र मंडल" नामकी एक संस्था स्थापित हुई है, जो उत्तमोत्तम गुजराती भाषाकी पुस्तकें लागतके दामपर बल्कि उससे भी कम दामोंपर वेचती है। हालही उसने भगवद्गीता नामकी प्रसिद्ध संस्कृत पुस्तक गुजराती टीका सहित प्रकाशित की है, कोई १ फार्मकी जिल्द बंधी हुई पुस्तकका दाम दो आने रक्खा है! पहली आवृत्तिकी दशहजार पुस्तकें केवल एक महीनेमें बिक गईं। अब दूसरी आवृत्तिमें १६००० पुस्तकें छपाई गई हैं। संस्थाके संचालक कहते हैं कि, "पुस्तकोंका सस्तापन ही उनके प्रचारका प्रधान उपाय है। हिन्दुस्थान जैसे गरीब देशमें इसकी बडी जरूरत है। जिस पुस्तककी हजार कापीका एक एडीशन दो दो सालमें खतम नहीं होता था, सस्ती होनेसे उसी की दश दश हजार कापियां खप जाना क्या प्रगट करता है? यहां के लोग पुस्तकें चाहते तो हैं परन्तु ज्यादा दाम खर्च कर खरीद नहीं सकते हैं, इधर हमारी समाजके 'मातृभक्त' इसी धुनमें लगे हैं कि सस्ती होनेसे पुस्तकोंमें मजा ही नहीं आता है। सस्ते शाकके समान। जिन्हें पढनेका शोक होगा, वे दशबीस गुने दाम खर्च करके भी हाथके लिखे हुए ग्रन्थ मंगाकर पढेंगे! समाजके भाग्यकी बात है।

ज्योतिप्रसाद भजनमाला ।

उर्दू जैन प्रचारकके सम्पादक लाला ज्योतिप्रसादजीके बनाये हुए नए तर्जके ४१ भजनोंका संग्रह । मूल्य दो आना ।

मनोरमासुन्दरचरित्र ।

यह पुस्तक भी लाला ज्योतीप्रसादजी ए. जे. की बनाई हुई है। चौपाई और दोहा छन्दोंमें इसकी रचना है । इसे नई शीलकथा कहना चाहिये । मूल्य =)

जैनधर्मपर व्याख्यान ।

बाबू बनारसीदासजी एम. ए. के अंग्रेजी व्याख्यानका हिन्दी अनुवाद। पढ़ने लायक । मूल्य ।)

हमारे पुस्तकालयके एजंट ।

१ देहली—जैन कन्यापाठशाला-पहाड़ी धीरज ।

२ जयपुर—मैनेजर मित्रकार्यालय-जौहरीबाजार ।

३ बनारस—चन्द्रप्रसाद जैन-भदैनीघाट जैनमन्दिर ।

४ सागर—कन्हैयालाल मूलचन्द कटरया-कटराबाजार ।

हमारे यहां की सब पुस्तकें वाजिब सूचीपत्रोंके दामोंपर ऊपर लिखे एजंटोंके पास हमेशा मिला करेंगी । देहली, जयपुर, बनारस, और सागर शहरोंके रहनेवालोंको तथा देहातके भाइयोंको चाहिये कि वे हमारे यहांसे पुस्तकें न मंगाकर एजंटोंके यहांसे ही ले लिया करें । ऐसा करनेसे उन्हें डांक खर्चकी किफायत हो जाया करेगी ।

जरूरत ।

आगरा, जबलपुर, इन्दौर, ग्वालियर कलकत्ता, अजमेर, ललितपुर, सम्मेदशिखर, आदि स्थानोंके लिये हमको एजंटोंकी और भी जरूरत है । जो भाई एजंट होना चाहें, वे हमसे पत्रव्यवहार करके कमीशन आदिके नियम तयार कर लेवें। कमीशन खूब दिया जाता है ।

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय,

ठि० हीराबाग धर्मशाला, पो० गिरगांव-बम्बई